Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री सच्चिया माता

ओसवंश: उद्भव और विकास

प्रथम खण्ड: जैनमत और ओसवंश

ओसवंश की कुल देवी

डॉ. महावीरमल लोढ़ा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओसवंश : उद्भव और विकास

(प्रथम खण्ड : जैनमत और ओसवंश)

लेखक

डॉ. महावीरमल लोढ़ा

प्राध्यापक हिन्दी विभाग (से.नि.), राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

प्राचार्य (पूर्व), पारीक महिला महाविद्यालय, जयपुर

प्रेरक

चंचलमल लोढ़ा

प्रकाशक

लोढ़ा बंधु प्रकाशन

मुख्यालय : कटला की बारी, जोधपुर - 342002

दूरभाष : 0291-612875

शाखा : सी-7, भागीरथ कॉलोनी, चौमू हाउस, जयपुर - 302001

दूरभाष : 0141-362334

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रथम संस्करण :
1 जनवरी, 2000

For: Outstanding Book
PL. Remember
सोल सप्लायर
"यतीन्द्र साहित्य सदन"
सेशन कोर्ट के सामने
सरस्वती विहार, भीलवाड़ा (राज.)
फोन नं. 221433 ®
संचालक :- फतेहसिंह लोढ़ा
Current Price 90 400 NZ

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रकाशक
लोढ़ा बंधु प्रकाशन
मुख्य कार्यालय - कटला की बारी, जोधपुर - 342002
शाखा - सी-7, भागीरथ कॉलोनी, चौमू हाउस, जयपुर-302001

लेजर टाइप सेटिंग
प्रिया कम्प्यूटर्स
जयपुर • फोन : 311011

मुद्रण :
इण्डियन मैप सर्विस
शास्त्री नगर, जोधपुर – 342 003

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय-सूची

ओसवंश : उद्‌भव और विकास

(प्रथम खण्ड)

जैनमत और ओसवंश

पृष्ठ

आशीर्वचन एवं सम्मतियां
दो शब्द
विषय प्रवेश

प्रथम अध्याय : पीठिका : ओसवंश के पहले 1-25

भारतीय जन
1. भारत में विविध प्रजातियां
2. भारत में वर्ण व्यवस्था
3. भारत में जाति व्यवस्था
ओसवंश के पहले: क्षत्रिय और राजपूत
अग्निवंश का रहस्य
सूर्य और चंद्रवंशीय मत
ब्राह्मणों की उत्पत्ति
ओसवंश

द्वितीय अध्याय : ओसवंश का प्रेरणा स्रोत : जैनमत 26-184

ओसवंश और जैनमत
जैनमत : ऐतिहासिक यात्रा
1. पूर्व महावीर युग : जैनमत का प्रवर्तन और प्रवर्द्धनकाल
(क) प्रागैतिहासिक काल : आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव : अधिशेष तीर्थंकर
(ख) ऐतिहासिक काल के तीर्थंकर-
22 भगवान अरिष्टनेमि
23 भगवान पार्श्वनाथ
2. महावीर युग : जैनमत का विकासकाल : भगवान महावीर
जैनमत : आचार्य परम्परा (अखण्ड जिनशासन)
भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त
आर्य सुहस्ती और सम्प्राति
ओसवंश का बीजारोपण
3. महावीरोत्तर युग : जैनमत का प्रसार काल
विविध प्रदेशों में जैनमत का प्रसार

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. भद्रबाहु काल (दूसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक)
(क) आगम वाचना और संघभेद काल
(श्रुतिकेवलि भद्रबाहु से देवर्द्धिक्षमाश्रमण तक)
(ख) संक्रांतिकाल और हरिभद्रकाल
(हरिभद्रसूरि से लगभग 1000 ई तक)
(ग) सम्प्रदायभेद काल
(1000 ई से लोंकाशाह तक)
2. वैचारिक क्रांति अथवा लोंकाशाह काल
(लोंकाशाह से आज तक)
स्थानकवासी परम्परा
मूर्तिपूजक परम्परा
तेरापंथी परम्परा
जैनमत : प्रवर्तन से प्रसारकाल तक
ओसवंश : बीजारोपण से उत्कर्ष तक
जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित ओसवंश के गोत्र

तृतीय अध्याय- ओसवंश : उद्भव 185-259
उपकेश वंश : व्युत्पत्ति
प्रथम मत : परम्परागत धार्मिक मत
द्वितीय मत : भाटों और भोजकों का मत
तृतीय मत : तथाकथित ऐतिहासिक मत
ओसिया की प्राचीनता
उपलदेव कौन?
उपकेशगच्छ की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता
ओसवंश का उद्भव: निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय : ओसवंश के उद्भूत गोत्र : पूर्व जातियां 260-395
ओसवंश के 18 गोत्र
गोत्र संख्या
नाम- पद्यात्मक
ओसवंश के गोत्रों का वर्गीकरण
1. प्रतिबोधकर्त्ता के आधार पर
2. गच्छ के आधार पर
3. प्रतिबोध के स्थान के आधार पर
4. गोत्रों के उद्भूत- समय के आधार पर
5. नामकरण के आधार पर
6. पूर्व जाति के आधार पर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. क्षत्रियों से निसृत ओसवंश के गोत्र
2. परिहार/पडिहार राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
3. परमार राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
4. चौहान राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
5. राठौड़ राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
6. कछवाहा राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
7. शिशोदिया राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
8. भाटी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
9. सोलंकी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
10. गौड़ राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
11. दहिया राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र
12. ब्राह्मण (गोत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र
13. अन्य वैश्य वर्ग से निसृत ओसवंश के गोत्र
14. कायस्थों से निसृत ओसवंश के गोत्र

निष्कर्ष

पंचम अध्याय- जैनमत और ओसवंश: सांस्कृतिक संदर्भ **396-446**

जैनमत : सांस्कृतिक संदर्भ
क्षत्रिय और राजपूत : सांस्कृतिक संदर्भ
ओसवंश : सांस्कृतिक संदर्भ
जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का संरक्षण, सम्प्रेषण और सृजन
जैन साहित्य
जैनग्रंथ भण्डार
जैनकला- जैन मूर्तिकला, जैन स्थापत्यकला
जैनतीर्थ
जैन शिक्षण संस्थाएं
जैन पत्रकारिता
ओसवंशीय विशिष्ट पुरुष एवं महिलाएं
जैनमत और ओसवंश : सांस्कृतिक संदर्भ

परिशिष्ट **447-452**

सहायक पुस्तक सूची
(क) हिन्दी
(ख) अंग्रेजी
(ग) पत्र-पत्रिकाएं (हिन्दी)
(घ) Journals (English)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आशीर्वचन और सम्मतियां

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्षण योग्य नितान्त आवश्यक ग्रन्थ

प्रत्येक जाति-ज्ञातिनी का पूर्व इतिहास होता है। वह इतिहास में से वर्तमान कालीन व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता है, बोध पा लेता है।

आजकल जमाना शीघ्रता का पर्याय हो गया है। प्रायः नगरवासी युवकों को स्वयं के पिता के पूर्वज आदि का नाम स्मृति में नहीं है। ऐसे युग में ऐसे 'जैनमत और ओसवंश' ग्रन्थ की नितान्त आवश्यकता है।

आज के जैन के पास यदि ऐसे स्वजाति-ज्ञानि का इतिहास प्राप्त हो तो नई पीढ़ी उससे परिचित हो और इतिहास का रक्षण हो जाए और ऐसी परंपरा का रक्षण तो होना चाहिए।

डॉ. महावीरमलजी लोढा ने अथक परिश्रम किया है। उनके बड़े भाई साहब चंचलमलजी लोढ़ा ने प्रेरणा दी है। स्वयं स्थानक की परंपरा वाले हैं। अतः सहज है उनका परिचय क्षेत्र वह रहा हो, किन्तु इतिहास के लेखन के समय सारी परम्पराओं एक सा आकलन करना जरूरी है।

आशा रखता हूँ कि अगले भाग में वह बात ध्यान में रखकर संपादन-लेखन हो। यह यहाँ पूर्ण सफलता प्राप्त करें, हमारी शुभकामना।

श्री नेमि-देव-हेमचन्द्र सूरि

श्री नेमि-देव-हेमचन्द्र सूरि
शिष्य प्रद्युम्न सूरि

श्रावण शुक्ला, षष्टी, वि.सं. 2055
ओपरा जैन उपाश्रम पालडी,
अहमदाबाद - 7

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आनन्द शताब्दी वर्ष में रचनात्मक कार्य

'ओसवंश का उद्भव और विकास' का प्रथम खण्ड - चंचलमल जी लोढ़ा के द्वारा प्राप्त हुआ। 'जैनमत और ओसवंश' के माध्यम से डा. महावीरमल जी लोढ़ा ने बहुत ही गहरी ऐतिहासिक खोज करने का कार्य किया है। इतिहास में इस वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई, इसके पूर्व में भारत में कैसी जातीय व्यवस्था थी, आदि का सुन्दर वर्णन करते हुये भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक और भगवान महावीर के पश्चात् आचार्य परम्परा का योगदान इस वंश की परम्परा में हुआ, इसका सुन्दर विश्लेषण करते हुए साहित्य की दृष्टि से इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

किसी भी जाति की सम्पूर्ण जानकारी के लिए उसका इतिहास जानना बहुत आवश्यक है। इस कृति में इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सुन्दर संकलन किया है। यह कृति संघ, समाज एवं शोध छात्रों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। आनंद शताब्दी वर्ष में साहित्य की दृष्टि से यह एक रचनात्मक कार्य अनुमोदनीय है। हमारा हार्दिक आशीर्वाद है कि आप अपनी रचनात्मक शक्ति को इसी प्रकार प्रकाशित करते रहें।

मंगलमैत्री के साथ।

आ० शिवमुनि

(आचार्य शिवमुनि)

गणेश भवन, जालना

दिनांक : 17 अगस्त, 1999

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक दुस्तर अनुसन्धान यात्रा

॥ अर्हम् ॥

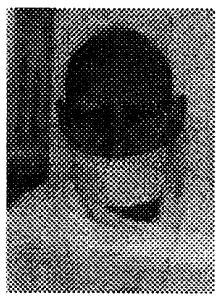

ओसवाल जाति का उद्भव अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण और युगान्तरकारी घटना है। जैनाचार्यों के गौरवशाली कर्तृत्व और प्रभावशाली व्यक्तित्व का उसे एक निदर्शन कहा जा सकता है। क्षत्रिय जैसी मरने-मारने को उद्यत रहने वाली युद्धप्रिय जाति को अहिंसा प्रधान जीवन जीने को उद्यत बना देना किसी चमत्कार से कम नहीं है। आमूलचूल वैचारिक परिवर्तन द्वारा ही ऐसा संस्कारान्तरण संभव हो सकता है। विभिन्न समयों में विभिन्न जैनाचार्यों ने ऐसा किया। उस कालखण्ड में अहिंसा संस्कारों में दीक्षित उस समुदाय का नामकरण 'ओसवाल' किया गया। विभिन्न गोत्रों के रूप में उसकी शाखा-प्रशाखाओं के फैलाव ने उसे एक शतशाखी कल्पवृक्ष बना दिया।

ओसवाल जाति ने संस्कृति, कला, साहित्य, राजनीति एवं व्यवसाय आदि प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में उन्नत शिखरों पर अपने ध्वज गाड़े हैं। अनेक विद्वानों ने ओसवंश के विभिन्न समयों के उन प्रगति-पड़ावों का अध्ययन करने का प्रयास किया है, परन्तु उक्त कार्य बहुत श्रम साध्य और समय साध्य है। जितना जाना गया है उससे अनेक गुण अधिक ज्ञातव्य है। यह एक दुस्तर अनुसंधान-यात्रा है, जो पूर्ण होकर भी पूर्ण नहीं होती। मंजिल पर पहुँचने पर पता चलता है कि आगे और भी मंजिलें हैं।

डॉ. महावीरमल लोढा की पुस्तक "जैनमत और ओसवंश" का प्रथम खण्ड है - जैनमत और ओसवंश। प्रस्तुत पुस्तक कोरा इतिहास ही नहीं है, यह जैनमत के परिप्रेक्ष्य में ओसवंश के इतिहास के साथ उसके विकास पर भी प्रकाश डालने का उपक्रम है। विद्वान लेखक ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों के विचारों का भरपूर उपयोग करते हुये अनेक निष्कर्ष निकाले हैं। उनसे अनेक प्रश्नों को समाहित करने का प्रयास हुआ है, तो साथ ही अनेक नई जिज्ञासाओं के जागरण के द्वार भी खुले हैं। मैं इसे लेखक के श्रम की सफलता मानता हूँ। आशा करता हूँ - पुस्तक का दूसरा खण्ड भी प्रकाश में आकर ग्रंथ को शीघ्र ही पूर्णता प्रदान करेगा।

दिनांक - 10 अगस्त, 1999
तातेड़ गेस्ट हाऊस, सरदारपुरा,
जोधपुर

मुनि बुद्धमल्ल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

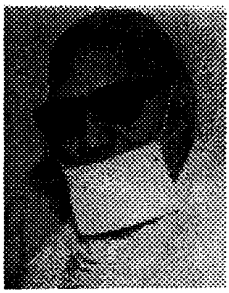

मदनगंज
दिनांक 4 अक्टूबर, 1999

ओसवंश सत सृजन की,
मेहनत करी कमाल,
निज जाति सद्मान की,
'रजत' लेखों सद्हाल ।

रूप मुनि 'रजत'
प्रवर्त्तक
श्री जैन श्वेताम्बर श्रमण संघ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

Paayas Arunvijay Maharaj
16 Aug., 1999
पूना
श्री आदीश्वर जैन मंदिर
आदिनाथ सोसायटी
पूना - सतारा रोड़
पूना - 421037

इतिहास की कड़ी जोडने वाला आधार स्तम्भ ग्रंथ

"जैन मत और ओस वंश" प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन का अवसर मिला। काफी वर्षों से मन में एक ऐसी जिज्ञासा आकार लेती थी कि ..... जैन धर्म के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय थे और उनके ही वंशज आज हम सब अब कोई क्षत्रिय नहीं है। आखिर क्यों और कैसे ? आज क्षत्रियों में जैन धर्म का नामोनिशान नहीं रहा है और अब कोई क्षत्रिय या राजपूतादि कोई जैन धर्म के पद पर भी नहीं आते हैं। मात्र ढाई हजार वर्षों के अन्तराल काल में इतना ह्रास कैसे हो गया ? बड़ा आश्चर्य एवं असमंजस का विषय है।

काफी लम्बी-चौड़ी जिज्ञासा कई वर्षों से बनी रही कि ..... हम आज ओसवाल या पोरवाल हैं, आखिर क्यों ? यह गोत्र कैसे बना ? यह हमारा वंश कैसे चला ? क्या हम ही तो क्षत्रियों के परिवर्तित रूप वाले तो नहीं हैं ? अगर इन रहस्यों का पता चले और यह तथ्य उजागर होकर सामने आए कि ..... 'हम ही क्षत्रियों के परिवर्तित रूप वाले हैं और क्षत्रिय हमारे पूर्वज थे' तो हमें जरूर गौरव होगा और आनन्द भी होगा।

आज जब श्रीमान चंचलमलजी लोढ़ा स्वयं यह पुस्तक लेकर पूना पधारे और मुझे मिले, प्रस्तुत पुस्तक हाथ में दी तथा मौखिक कुछ बात भी बताई तब लगा कि अनेक वर्षों की उपरोक्त जिज्ञासा संतोषने का अवसर आया है। पूरा समय मिलने पर अक्षरशः पूर्ण अवलोकन करूँगा और आगे प्रगट होने वाला द्वितीय-तृतीय भाग भी जरूर देखूँगा। तब काफी समाधान होगा, ऐसी आशा है।

सचमुच तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने वंश-गोत्रादि के इतिहास की जानकारी रखनी ही चाहिए। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि .... प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन से ओसवालों को स्वगोत्र-वंश आदि की उत्पत्ति एवं वृद्धि आदि की संतोषप्रद सामग्री मिलेगी। उससे काफी आनंद होगा। इस प्रयास के लिए श्रीमान चंचलमलजी लोढा एवं लेखक महावीरमलजी लोढा-उभय बंधुओं ने जो पुरुषार्थ किया है, वह वास्तव में सराहनीय है, प्रशस्य है।

मैं उभय बंधुओं को हार्दिक आशीर्वाद के साथ शत्-शत् अभिनंदन देते हुए प्रस्तुत प्रयास की काफी सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इतिहास की कड़ी जोड़ने में प्रस्तुत ग्रन्थ आधारस्तम्भ बनेगा।

धर्मलाभ !

अरुणविजय

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समाज, देश और जाति के लिये वरदान रूप

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता है कि आदरणीय सुश्रावक समाज सेवी श्रीमान चंचलमलजी लोढा की प्रेरणा व प्रयत्न से डॉ. महावीरमलजी लोढा द्वारा ओसवाल वंश का इतिहास प्रकाशित हो रहा है। कोई भी जाति अपनी सभ्यता, संस्कृति से ही जीवित रह सकती है। ओसवाल जाति भी अपनी संस्कृति से आज भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक भारत के प्रत्येक क्षेत्र में इसका अमूल्य योगदान रहा है। इतिहास की दृष्टि से भी इसमें विमलशाह, उदयन, दीवान मुहणोत नैनसी, रतनसिंह भण्डारी, अजमेर के शासक धनराज, इन्द्रराज सिंधी, बीकानेर के करमचन्द, मेवाड़ के आशाशाह ने उदय सिंह को शरण दी, भामाशाह महाराणा प्रताप के दीवान रहे, जगडूशाह आदि अनेक धर्मवीरों - दानवीरों ने इस ओसवाल वंश की गौरव गाथा में चार चाँद लगाए हैं।

इसी प्रकार जैनाचार्यों की परम्परा में आचार्य अमरसिंह जी, आचार्य अमोलक ऋषि जी, आचार्य हस्तीमल जी, आचार्य आनन्द ऋषि जी, आचार्य देवेन्द्र मुनि जी आदि अनेकानेक आचार्यों को देने का गौरव इस ओसवाल जाति को रहा है।

ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में इसके उद्भव एवं विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जो प्रत्येक पाठक की जानकारी हेतु पठनीय है। आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है आप द्वारा किया गया यह प्रयास समाज देश व जाति के लिए वरदान रूप सिद्ध होगा, आपके इस सद्प्रयास के लिए साधुवाद व मंगल भावनाएँ अर्पित हैं।

आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनि जी के शिष्य

डॉ. राजेन्द्र मुनि

ओरंगाबाद

17-8-99

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तुत्य ग्रंथ

'ओसवंश : उद्भव और विकास' का प्रथम खण्ड 'जैनमत और ओसवंश' जैनमत और ओसवंश के पारस्परिक सम्बन्धों की दृष्टि से एक अनूठा ग्रंथ है। मैं उभय बंधुओं - प्रेरक श्री चंचलमल जी लोढ़ा और लेखक डॉ. महावीर मल लोढ़ा के इस स्तुत्य प्रयास के लिये मंगल कामना करता हूँ।

ज्ञान मुनि
ब्यावर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराष्ट्र वाणीभूषण साध्वी श्री प्रीतिसुधाजी महाराज

औऽऽसवाल है मोटो ।
किमकर रखणी अपणी शान ।।
सऽऽज्जन सत्पुरुषारो ।
आपा रखना किमकर मान ।।
वाऽऽरी कर्तवगारी री ।
इतिहास ही रखसी याद ।।
लऽऽक्षण सपूतरा है ।
ये ही, ताजो करे पुरानो स्वाद ।।
जात लिखो तो घणा रोब सु ।
सोचो आई कठा सू आ ।।
जात ही सु आ मिली न्यात है ।
बात पूछो ला किण ने जा ।।
आप आपरी मूल जात रो ।
खोज निकालो भेद ।।
सबसु प्रीत रखो हिरदासु ।
मेटो अंतर मन रा खेद ।।

साध्वी प्रीतिसुधा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हर पीढ़ी के लिये प्रकाश स्तम्भ

इतिहास की गौरव गाथाओं में ओसवंश का अविस्मरणीय सहयोग सदैव से रहा है। चाहे वह धार्मिक हो, आर्थिक हो, राजनैतिक हो और चाहे पारमार्थिक क्षेत्र ही क्यों न हो, ओस वंश में जन्में पले बड़े हुए भामाशाह, आशाशाह, पेपड़शाह, जगडुशाह, सारंगशाह आदि-आदि के दान समर्पण और करुणा की दिव्य गौरव गाथाएँ आज भी जन-जन के मुख प्रस्फुटित होती है। इन्हीं कर्णधारों के कारण ओसवंश का इतिहास आज भी चमक रहा है।

जैन इतिहास के प्रांगण में महान् क्रांतिकारी आचार्य श्री धर्मदास जी महाराज, क्षमाश्रमण श्री भूधरजी म.सा. युगप्रधानाचार्य चक्रवर्ती आचार्य श्री जयमल जी म.सा., आगम मर्मज्ञ स्व. आचार्य श्री जीतमल जी म.सा., आगम मर्मज्ञ स्व. आचार्य श्री जीतमल जी म.सा. साहित्य सूरी आचार्य प्रवर श्री लालचन्द्र जी म.सा. आदि महापुरुषों का अभूतपूर्व अमिट योगदान रहा है।

इतिहास मर्मज्ञ सुश्रावक श्रीमान् चंचलमल सा लोढ़ा के सद्प्रयासों से और लेखक डॉ. महावीर मल जी लोढ़ा का ओसवाल वंश का इतिहास ग्रंथित रूप में ओसवाल समाज के लिए एक वरदान सिद्ध होगा। आपका यह प्रयास श्रम साध्य है। इससे पूर्व भी ओसवाल वंश की स्थापना व विस्तार आदि की चर्चा छोटी-बड़ी पुस्तकों के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, मगर इतना विशाल ग्रंथाकार के रूप में प्रयास तो सम्भवतः प्रथम बार ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

श्रीयुत लोढ़ा जी का यह सत्प्रयास आने वाली हर पीढ़ी के लिए प्रकाश-स्तंभ का कार्य करें, इसी शुभाशंसा के साथ।

महासती श्री सुगन कुंवर
ब्रज-मुधकर भवन
13-10-99

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतिहास का कल्पवृक्ष

आत्मा की हमारा परमात्मा है,
ज्ञान की कुंजी ही कल्पवृक्ष है,
हमारा आधार धर्म का कल्पवृक्ष है।
इतिहास का कल्पवृक्ष है -
जैनमत और ओसवंश।

साध्वी कंचन कंवर
कुचेरा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतिहास निर्माण की दिशा में उपयोगी ग्रन्थ

'ओसवाल वंश : उद्भव और विकास' के प्रथम भाग को देखकर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ। यह ग्रंथ अपने आप में एक अनूठा ग्रन्थ है। इसमें भगवान महावीर के पूर्वकालीन तथा उत्तरकालीन वर्ण व्यवस्था का तथा विभिन्न परम्पराओं का उल्लेख करने के साथ ही ओसवाल गोत्रों पर प्रकाश डाला है। इस ग्रंथ में जैन तीर्थ, मूर्तिकला, शिक्षण संस्थान आदि का भी परिचय दिया है।

ओसवाल वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई, जैनधर्म पर किस प्रकार उनका प्रभाव पड़ा, अहिंसा प्रधान जीवन जीने को कैसे उद्यत हुए, इस पर लेखक डॉ. महावीरमलजी लोढ़ा ने अच्छा प्रभाव डाला है।

प्रस्तुत पुस्तक इतिहास की निर्माण दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। यह पुस्तक केवल पठनीय ही नहीं, अपितु संग्रहणीय भी है।

मेरी यह शुभकामना और पूज्या श्री प्रेमकवरजी म.सा. का पूर्ण आशीर्वाद है कि निःस्वार्थ सेवाभावी श्रीमान् चंचलमलसा लोढ़ा की प्रेरणा तथा श्रीमान् डॉ. महावीरमल सा लोढ़ा का यह प्रयास इतिहास के क्षेत्र में कीर्तिमान सिद्ध हो।

ओसवाल जाति का है नूतन ग्रंथ विशेष
गागर में सागर भरा, पढ़कर बनो ज्ञानेश

साध्वी विमलवती

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

19-9-99

शुभाशंसा

"ओसवाल वंश का उद्भव और विकास प्रथम खण्ड' मुझे भतीजे चंचलमल लोढ़ा ने दिखाया और मैंने उसे सरसरी निगाह से देखा। लेखक भतीज महावीरमल लोढ़ा का यह प्रयास प्रशंसनीय है। यूरोपीयन हिस्ट्री के लेखक हेज ने अपनी पुस्तक की भूमिका में कहा है- "Man without man's past is meaningless." ओसवंश का उद्भव व विकास कैसे हुआ, इस वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई, ओसवाल जाति में कौन-कौन सी जातियों के लोग, जैसे राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ इत्यादि समाविष्ट हुए हैं, जैन धर्म का किस प्रकार उन पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिससे उनको अहिंसा प्रधान जीवन जीने को उद्यत बना दिया, इन बातों पर लेखक ने अच्छा प्रकाश डाला है। जैन धर्म की मैं दो बड़ी देन मानता हूँ - एक तो शाकाहारी भोजन व दूसरा अहिंसा का सिद्धान्त, जिससे केवल भारतवासी ही नहीं, बल्कि समस्त संसार के लोग प्रभावित हुए हैं।

चञ्चलमल व महावीरमल इस प्रयास के लिये बधाई के पात्र हैं और मैं उनके लिये अपनी शुभकामनाएँ व आशीर्वाद प्रेषित करता हूँ।

चाँदमल लोढ़ा

चाँदमल लोढ़ा
मुख्य न्यायाधिपति
(सेवानिवृत्त)
राजस्थान उच्च न्यायालय,
जोधपुर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक ऐतिहासिक दस्तावेज

डॉ. महावीरमल लोढ़ा द्वारा लिखित 'ओसवंश : उद्भव और विकास' के प्रथम खण्ड 'जैनमत और ओसवंश' का अवलोकन किया। इसमें वर्ण एवं जातियों की उत्पत्ति, जैन दर्शन, ओसवंश का उद्भव, ओसवंश की 2400 गोत्रों की सूची, गोत्रों का विश्लेषण किया, यह श्रमसाध्य एवं प्रशंसनीय कार्य है। लेखक ने गहन अध्ययन कर अनेक ग्रन्थों शिलालेखों, पट्टावलियों से शोध कर समाजोपयोगी महत्वपूर्ण कार्य किया है।

इस पुस्तक का कार्य सराहनीय है एवं वन्दनीय है।

डॉ. महावीरमल लोढ़ा के साहित्यिक यज्ञ का यह महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है।

यह ऐतिहासिक दस्तावेज सिद्ध होगा, ऐसी कामना है।

श्री कृष्णमल लोढ़ा
पूर्व न्यायाधिपति (सेवानिवृत्त), राजस्थान उच्च न्यायालय
पूर्व अध्यक्ष, राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण राजस्थान
संरक्षक, अखिल भारतीय जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक प्रमाणिक ग्रंथ

ओसवाल वंश पर पूर्व में कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, किन्तु जैनमत और ओसवंश के प्रेरणा के संबंधों को उजागर करने वाली यह प्रथम पुस्तक है। प्रागैतिहासिक काल के प्रमाणों से पुष्ट कर लेखक ने ओसवाल जाति को आर्यजाति स्वीकार किया है तथा जैनाचार्यों को ओसवंश का प्रेरणा स्रोत कहा है। भगवान ऋषभ के युग से महावीर के युग तक का विश्लेषण करते हुए जैन धर्म के विकास की कहानी को वर्तमान युग तक धारा प्रवाह रूप में प्रेषित करने का परिश्रम पाठक के लिए उपयोगी रहा है। ओसिया (मारवाड़) स्थान को साधारणतः ओसवाल वंश की उत्पत्ति के साथ जोड़ा जाता है, मगर कोई भी परम्परा एक दिन में प्रारम्भ नहीं होती। ओसिया के शिलालेख ओसवंश की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हैं। लेखक ने पट्टावलियों, गुटकों, विभिन्न ग्रन्थागारों के साहित्य का उपयोग करते हुये पुस्तक को प्रामाणिक स्तर प्रदान किया है। वर्तमान में ओसवाल जाति, जैनधर्म के पूरक के रूप में स्वीकार की जाती है, यद्यपि जाति और धर्म के कार्य-कलापों में बहुत अन्तर होता है। फिरभी ओसवाल समाज की व्यवस्था में जैनधर्म प्रतिबिम्बित होता है। जर्मन विद्वान व्यूहलर दक्षिण भारत की यात्रा के समय एक जैन परिवार के यहाँ ठहरा था और उनकी जीवन शैली को देखकर जैन धर्म की ओर आकर्षित हुआ था। उसके परिणामस्वरूप हर्मन जेकोबी ने गहरा अध्ययन कर प्रमाणित किया था कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से भिन्न है। लेखक ने गहरे अध्ययन और परिश्रम से पुस्तक को विस्तार दिया है, वह स्तुत्य है।

आशा है यह पुस्तक ओसवाल और जैनमत के लोगों के लिए ही उपयोगी नहीं होगी, अपितु साधारण पाठक को भी प्रेरित करेगी। लेखक ने अनेक पुस्तकें विभिन्न विषयों पर लिखी हैं, लेकिन यह पुस्तक अपनी ही जाति और धर्म को समर्पित कर लेखक ने समाज से ऋणमुक्त होने का प्रयास किया है। साधुवाद.

महावीर राय गेलड़ा

महावीर राय गेलड़ा
निदेशक (से.नि.)
महाविद्यालय शिक्षा, राजस्थान सरकार,
जयपुर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

49, हिम्मत नगर,
टोंक रोड़, जयपुर

श्रीपाल जैन
दिनांक 6-10-99

संदर्भ ग्रंथ के लिये सार्वजनिक सम्मान के पात्र

यह तथ्य तो सर्वविदित है कि श्वेताम्बर जैन मत तथा ओसवाल जाति एक-दूसरे से अभिन्न हैं और उनका इतिहास परस्पर गुम्फित है। इस बिन्दु को दृष्टि में रख विद्वान लेखक डॉ. महावीरमल लोढ़ा ने "जैनमत और ओसवंश" का लेखन प्रस्तुत किया है, जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। पूर्वाग्रहरहित होकर डॉ. लोढ़ा ने ओसवाल जाति, ओसिया नगरी और विभिन्न गोत्रों के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न प्रचलित मतों का सम्यक् आकलन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कर अपने विचारों को पाठकों के समक्ष रखा है। जैन धर्म के उत्थान-पतन का काल विभाजन उनका मौलिक चिन्तन है। अपने पक्ष को शिलालेखों, पट्टावलियों, भोजकों और भाटों के कवित्तों, अधिकारी इतिहासवेत्ताओं के कथनों का सहारा लेकर तर्कयुक्त रूप में प्रस्तुत किया है। इस विशद फलक को चित्रित करने में उनको कितना कठोर परिश्रम करना पड़ा होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। वास्तव में यह पुस्तक एक संदर्भ ग्रंथ का रूप धारण कर चुकी है और भविष्य में इस विषय पर लिखने वालों के लिये यह प्रेरणा स्रोत बनेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। प्रत्येक ओसवाल के घर में इस पुस्तक का होना एक अनिवार्यता बन गई है। डॉ. लोढ़ा अपने प्रयास के लिये न केवल बधाई, अपितु समाज द्वारा सार्वजनिक सम्मान के पात्र भी हैं।

श्रीपाल जैन
प्राचार्य (से.नि.)
महाविद्यालय शिक्षा,
राजस्थान सरकार,
जयपुर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डॉ. धर्मचन्द जैन

एम.ए., पी-एच.डी.
(एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर)
प्रधान सम्पादक : जिनवाणी
547394

मिश्रीलालजी ठेकेदार का मकान,
आकाशवाणी के पीछे,
॥ पावटा "सी' रोड़,
जोधपुर - 342010 (राज.)
दिनाङ्क : 17.9.99

एक स्तुत्य प्रयास

'ओस (वाल) वंश : उद्भव और विकास' पुस्तक के प्रथम खण्ड का स्थाली पुलाक न्याय से अवलोकन किया। यह खण्ड जैन इतिहास को प्रस्तुत करने के साथ ओसवंश के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालता है। ग्रन्थ में वर्ण-व्यवस्था, महावीर पूर्व, महावीर युग, महावीरोत्तर युग एवं जैनधर्म के विभिन्न सम्प्रदायों एवं परम्पराओं की संक्षिप्त चर्चा करने के साथ ओसवंश के गोत्रों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया गया है। ओसवाल जाति में क्षत्रिय राजपूतों के अतिरिक्त ब्राह्मण, कायस्थ आदि जाति के लोग भी समाविष्ट हुए हैं, ऐसा इस ग्रंथ में निर्देश है। जैनों के सांस्कृतिक सन्दर्भ को प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थ भण्डारों, मूर्तिकला, जैनतीर्थों, शिक्षण-संस्थाओं, जैन पत्रकारिता आदि का भी ग्रन्थ में परिचय दिया गया है। लेखक के समक्ष श्री सुखसम्पतराज भण्डारी, श्री सोहनराज भंसाली, श्रीमती मनमोहिनी, श्री माँगीलाल भूतोड़िया आदि के द्वारा रचित ओसवाल वंश का प्रतिपादन करने वाली पुस्तकें विद्यमान रही हैं। अतः इनके प्रकाश में एवं अनेक मूलग्रन्थों एवं द्वितीयक सन्दर्भग्रन्थों के प्रकाश में यह पुस्तक लिखी गई हैं। लेखक श्री महावीरमल लोढ़ा एवं प्रेरक श्री चंचलमल लोढ़ा का यह प्रयास स्तुत्य है।

(धर्मचन्द जैन)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विस्तृत ज्ञान और गहन परिश्रम का परिचायक

'जैनमत व ओसवंश' का प्रथम खण्ड देखने का अवसर मिला। प्रयत्न स्तुत्य है। डॉ. महावीरमल लोढ़ा व उनके अग्रज चंचलमल लोढ़ा ने जिस प्रयत्न को हाथ में लिया है, वह श्रमसाध्य होते हुए भी अत्यन्त महत्व का है। जैनमत भारत के प्राचीनतम धर्मों में से एक है और उसकी दार्शनिक मान्यताओं ने समस्त भारतीय जीवन, आचार, संस्कृति व चिन्तन को प्रभावित किया है और इसी वैशिष्ट्य ने राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथलों में एक अत्यन्त उच्च जीवन पद्धति को भारत में प्रवाहित होने दिया और विश्व शान्ति हेतु उच्च मानदण्डों को स्थापित किया। जैनों का इतिहास सम्पूर्ण भारतीय परम्परा का इतिहास है।

ग्रन्थ में जैन आचार्यों व आध्यात्मिक प्रवाह का जिस गहराई से वर्णन किया गया है और उसमें जैनों के अतिरिक्त वैदिक पौराणिक मान्यताओं का समावेश किया गया, वह लेखक के विस्तृत ज्ञान और गहन परिश्रम का परिचायक है।

ओसवंशियों की मूल उत्पत्ति क्षत्रियों से हुई, पर इतिहास की गहराईयों में जावें तो और इसके साथ अन्य अनेक वैश्य जातियों का जैन धर्म में प्रवेश देश की विभिन्न दार्शनिकों धाराओं का संघर्ष और उनमें से जैन विचारधारा को सुरक्षित निकालने का प्रयत्न इतिहास का महत्वपूर्ण पहलू है और उस पहलू पर भी और गहराई से चिन्तन हो तो इतिहास के अनेक अधखुले पृष्ठ उजागर हो सकेंगे, मैं परमप्रभु से इस प्रयत्न की सफलता की प्रार्थना करता हूँ।

चम्पालाल सालेचा

25.9.99

चम्पालाल सालेचा

सदस्य

नाकौड़ा जैन तीर्थ ट्रस्ट, मेवानगर

(बाड़मेर जिला, राजस्थान)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दो शब्द

जाति का इतिहास जातीय जीवन की महत्वपूर्ण घटना होती है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन में ओसवंश का आविर्भाव और फिर उसका विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। ओसवंश एक गौरवपूर्ण जाति है और बचपन से ही मेरे मन में ललक रही कि ओसवंश के गौरवशिखरों की प्रशस्ति में मैं अपना योगदान प्रस्तुत करूं।

दो दशक पहले इस देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूम घूम कर मैंने 'ओसवाल: दर्शन: दिग्दर्शन' के लिये अनेक जीवनवृत एकत्रित किये। मेरी अपनी सीमाएं थी और वह कार्य प्रकाशित होने पर भी आधा अधूरा ही रहा।

पूना में रहते हुए एक लम्बे समय तक ओसवाल जाति की पत्रिका 'बंधु संदेश' का सम्पादन-प्रकाशन किया और उसमें ओसवाल जाति के इतिहास को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की।

मेरे अनुज डॉ. महावीरमल लोढ़ा लगभग चार दशकों से हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन से जुड़े हुए हैं। उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् मैंने उन्हें प्रेरणा दी कि जीवन के इस मोड़ पर जाति का इतिहास लिखकर धर्म और जाति से भी उन्हें जुड़ना चाहिये

डॉ. महावीरमल ने "ओसवंश: उद्भव और विकास' का प्रथम खण्ड **'जैनमत और ओसवंश'** प्रस्तुत कर श्लाघनीय कार्य किया है। यह प्रबन्ध ओसवंश के उद्भव के प्रश्न की दृष्टि से एक प्रामाणिक और अनुसंधानपरक दस्तावेज सिद्ध होगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

यह 'ओसवंश: उद्भव और विकास' का पहला पड़ाव है, दूसरा पड़ाव - द्वितीय खण्ड ओसवंश के गोत्रों पर प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करेगा। लेखक ने गोत्र सम्बन्धी प्राय: सभी उपलब्ध शिलालेखों और धातु प्रतिमा लेखों को एकत्रित कर लिया है। विविध गोत्रों की प्रामाणिक सामग्री- गुटकों, वंशावलियों आदि को एकत्रित करने का मैंने बीड़ा उठाया है। ओसवंश के विकास को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिये ओसवंश के विशिष्ट पुरुषों/नारियों के जीवनवृत और उपलब्धियों की अपेक्षा रहेगी और मुझे विश्वास है कि ओसवंश के सभी क्षेत्रों- व्यवसाय और वाणिज्य, राजनीति और समाज, कला और संस्कृति के विशिष्ट पुरुषों/नारियों की उपलब्धियों का लेखा जोखा हमें प्राप्त होगा।

प्रामाणिक सामग्री की उपलब्धि एक दुस्तर कार्य है, किन्तु ओसवंशियों के सहयोग से हमें अवश्य सफलता मिलेगी।

C. M. Lodha

चंचल मल लोढ़ा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय प्रवेश

'**जैनमत और ओसवंश**' ग्रंथ को प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यधिक सुख की अनुभूति हो रही है। मेरे अग्रज लोढ़ा कुलभूषण श्री चंचलमल जी ने लगभग एक दशक पूर्व मेरे मन में 'ओसवंश का इतिहास' लिखने की प्रेरणा जागृत की। सेवानिवृत्ति के अनन्तर 'नैतिक शिक्षा: विविध आयाम' के प्रकाशन के पश्चात मेरे अग्रज ने मुझे यह दायित्व सोंपा कि मैं 'ओसवंश: उद्भव और विकास' को दो खण्डों में प्रस्तुत कर ओसवंश के इतिहास को एक नयी दृष्टि प्रदान करूँ।

लगभग 7 दशक पहले श्री सुखसम्पतराज जी भण्डारी का 'ओसवाल जाति का इतिहास' प्रकाशित हुआ था। यह ओसवाल जाति के इतिहास लेखन का पहली बार व्यवस्थित और आधुनिक दृष्टिकोण से प्रयत्न था। इसके पहले फुटकर प्रयत्न हुए थे। उस समय भण्डारी जी के नेतृत्व में चार दलों ने डेढ़ लाख मीलों की लम्बी यात्रा की। भण्डारी जी ने अथक परिश्रम करके ग्रंथ का निर्माण किया। यह ग्रंथ ओसवाल जाति के इतिहास का पहला मील का पत्थर था। लेखक के अनुसार 'इस जाति का इतिहास कितना महत्वपूर्ण और गौरवमय रहा है, यह बात इस इतिहास के पाठकों को भली भाँति रोशन हो जाएगी।' स्वयं लेखक ने स्वीकार किया कि इसमें शिलालेखों का अभाव है। अभी कमियों के बावजूद लेखक का दावा था कि 'अभी तक कोई भी जातीय इतिहास, भारतवर्ष में इसकी जोड़ का नहीं है।'

श्रीमती मनमोहिनी के 'ओसवाल: दर्शन: दिग्दर्शन' ने ओसवाल कौन क्या (Whose, Who) की भूमिका के रूप में ओसवंश के इतिहास को प्रस्तुत किया गया। ओसवाल कौन क्या की सामग्री जुटाई थी- श्री चंचलमल लोढ़ा ने। इसकी भूमिका में स्पष्ट कहा है 'संस्कृति प्राण है तो जाति शरीर। बिना प्राण के शरीर नहीं रह सकता।' खण्ड खण्ड विचारों के प्रस्तुतीकरण के कारण इसकी भूमिका में प्रबन्धात्मक अन्विति का अभाव खटकता है। इस ग्रंथ ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया, 'ओसवाल जाति का इतिहास जैनधर्म के इतिहास से बहुत अलग नहीं है। जैनधर्म यदि एक निर्बन्ध झरना है तो उस झरने का जल दो तटों की सीमा में बंधकर बहने पर ओसवाल जाति संज्ञक सरिता कहा जा सकता है।'

'ओसवाल जाति के इतिहास' के लगभग आधी शताब्दी के पश्चात् श्री सोहनराज भंसाली ने 'ओसवाल वंश: अनुसंधान के आलोक में' प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका में लेखक ने स्वीकार किया, 'जैन जातियों में कौनसी जाति कब

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थापित हुई ? किसने कौन कौन से गोत्र स्थापित किये या प्रसिद्ध किये ? इसका कोई प्राचीन या प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता।' श्री अगरचंद नाहटा ने भंसाली की प्रशंसा में कहा कि इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि प्रकाशित जैन प्रतिमा लेखों व शिलालेखों आदि की इस ग्रंथ का आधार बनाया गया है। इस ग्रंथ का लेखक साम्प्रदायिक अभिनिवेश से मुक्त नहीं हो सका। यह निर्विवाद है कि चैत्यवंश के समूल उन्मूलन में खरतरगच्छ का महत्वपूर्ण योग रहा है, किन्तु ओसवंश को सिर्फ खरतरगच्छ के दृष्टिकोण से देखना कदापि उचित नहीं। उपकेशगच्छ को पूर्णत: नकार कर और अन्य गच्छों की प्राय: उपेक्षा कर खरतरगच्छ की सीमा में बंधने के कारण यह वैज्ञानिक अनुसंधानपूर्वक कार्य भी अपने लक्ष्य में भटक गया। इस ग्रंथ के प्रकाशन के एक दशक पश्चात् इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, इससे इस ग्रंथ की लोकप्रियता का आभास होता है।

श्री मांगीलाल भूतोड़िया का 'इतिहास की अमरबेल-ओसवाल' का प्रकाशन युगान्तरकारी साबित हुआ। प्रथम खण्ड 1988 में और द्वितीय खण्ड 1992 में प्रकाशित हुआ। डा. लक्ष्मीमल सिंघवी ने माना कि विद्वान लेखक ने दुस्तर अनुसंधान यात्रा पूरी की। डॉ. सिंघवी के अनुसार श्री भूतोड़िया जी ने इस पुस्तक में गहरी और बहुमुखी जिज्ञासाओं को जगाया है। श्री कन्हैयालाल सेठिया ने इसे 'ऐतिहासिक दस्तावेज' और डा. नरेन्द्र भानावत ने इसे 'एक प्रामाणिक दस्तावेज' माना। डा. कल्याणमल लोढ़ा ने स्वीकार किया, 'सचमुच अपने अध्यवसाय, लगन और परिश्रम से ओसवाल समाज की उत्पत्ति और तज्जन्य ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सामग्री का गहरा अध्ययन किया है। मैं अभिभूत हो गया हूँ। इस वैदुष्य का लाभ सबको मिलना चाहिये।' श्री श्रीचन्द जी रामपुरिया के अनुसार 'भारतीय संस्कृति, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति आदि बहु दिशाओं में ओसवालों के अवदान को यह ग्रंथ मुखरित करता है।' श्री चन्द्रास्वामी के अनुसार 'यह ओसवाल समाज के लिये एक कल्पवृक्ष सिद्ध होगा।'

ओसवंश के इतिहास लेखन की इस गौरवमय परम्परा के क्रम में मैंने भी 'ओसवंश-उद्भव और इतिहास' को दो खण्डों में प्रस्तुत करने का दायित्व निभाने का दुस्साहस किया, किन्तु प्रथम खण्ड के प्रकाशन के साथ मुझे अहसास हुआ है कि मैंने ओसवाल जाति के इतिहास लेखन को आगे बढ़ाकर एक नयी दिशा खोजी है।

'जैनमत और ओसवंश' में ओसवंश के उद्भव को जैनमत के परिपार्श्व में प्रस्तुत कर जैनमत और ओसवंश के बीच सांस्कृतिक सेतु को इस ग्रंथ में स्वीकार

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया गया है।

प्रथम अध्याय 'ओसवंश के पहले : भारतीय जन' में भारत की प्रजातियों, वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था के विशाल बियावान में ओसवंश को ढूंढने की चेष्टा की गई है।

जैनमत ओसवंश का प्रेरणा स्रोत है और जैनाचार्य ओसवंश के सूत्रधार रहे हैं। द्वितीय अध्याय 'ओसवंश का प्रेरणा स्रोत : जैनमत' में जैनमत का सम्पूर्ण इतिहास सिमट गया है। 'पूर्व महावीर युग' जैनमत का प्रवर्त्तन और प्रवर्द्धनकाल है, 'महावीर युग 'जैनमत का विकासकाल' और 'महावीरोत्तर युग' को हम जैनमत का प्रसारकाल कह सकते हैं। इसी क्रम में महावीर युग में ओसवंश का बीजारोपण हुआ और फिर महावीरोत्तर युग में ओसवंश का प्रवर्त्तन, प्रवर्द्धन, विकास और प्रसार हुआ। इस अध्याय के अन्त में जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्रों को प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय 'ओसवंश : उद्भव' में परम्परागत धार्मिक मत, भाटों और भोजकों का मत और तथाकथित ऐतिहासिक की प्रस्थापना कर उनका गहराई से विवेचन-विश्लेषण किया गया है। लेखक की यह मान्यता है कि तथाकथित ऐतिहासिक मत का आधार लेकर नैणसी मुहणौत से लेकर आज तक ओसवंश के इतिहास को प्रतिष्ठित इतिहासकारों तक ने केवल अनुमानों का सहारा लेकर ओसवंश के आदि पुरुष को उप्पलदेव परमार में ढूंढने की असफल चेष्टा की है। केवल अभिलेखों के आधार पर ही इतिहास की संरचना नहीं हो सकती। मौखिक परम्परा से प्राप्त पट्टावलियों को भी प्रमाण रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। अगर इतिहास का आधार स्वीकार करना है तो केवल अनुमानों के सहारे इतिहास का ढाँचा खड़ा नहीं हो सकता।

चतुर्थ अध्याय 'ओसवंश के उद्भूत गोत्र : पूर्व जातियां' में पूर्व जातियों और उनकी वंशावलियों के परिप्रेक्ष्य में यह प्रस्तुत किया कि किन किन पूर्व जातियों से कौन कौन से गोत्र कब कब उद्भूत हुए ? यह मान्य है कि ओसवंश के अधिकांश गोत्र क्षत्रियों और राजपूतों से उद्भूत हुए हैं। ब्राह्मणों, वैश्यों और कायस्थों से उद्भूत गोत्र नगण्य है।

अंतिम अध्याय 'जैनमत और ओसवंश : सांस्कृतिक संदर्भ' में इस बात की प्रस्थापना की गई है कि जैनमत और ओसवंश के बीच सांस्कृतिक सेतु है। जैनाचार्यों ने लगभग 2500 वर्षों तक मुख्य रूप से क्षत्रियों और फिर राजपूतों (राजपूतकाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में) को अहिंसामूलक जीवन संस्कृति का पाठ पढ़ाया। जैनाचार्यों ने पंच महाव्रतों/ अणुव्रतों के द्वारा सांस्कृतिक प्रतिमानों की स्थापना कर वीरता के प्रतीक क्षत्रियों और राजपूतों का कायाकल्प कर उन युद्धवीरों को कर्मवीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर बना दिया। यह केवल धर्मांतरण न होकर, सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया थी। इस सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में ओसवंश का उद्भव और विकास हुआ। इस दृष्टि से ओसवंश को जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों की प्रयोगशाला कहा जा सकता है। जैनाचार्यों ने कलाकारों की तरह जिन मनुष्यों को बिना तूली और छेनी के रचा और गढ़ा, उससे नये समाज की, नयी संस्कृति की रचना हुई। जैनाचार्यों ने ओसवंश को जो दायित्व सौंपा, उसे ओसवाल जाति ने बड़ी बखूबी से निभाया। श्वेताम्बर परम्परा के जैन साहित्य, जैन ग्रंथागारों, जैन तीर्थों और जैन शिक्षण संस्थाओं आदि के द्वारा ओसवंश के प्रतिष्ठित नररत्नों और महिलाओं ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण, संवर्धन, सम्प्रेषण और सृजन में योग दिया। यह मेरी मान्यता है कि सांस्कृतिक प्रतिमानों की दृष्टि से ओसवंश जैनमत का प्रतिरूप ही नहीं ,किन्तु सार, निचौड़ और आदर्श प्रतीकात्मक रूप है।

ओसवंश के उद्भव और विकास के प्रथम खण्ड को **'जैनमत और ओसवंश'** के रूप में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। मुझे विश्वास है कि समस्त बिखरी सामग्री को अनुसंधानपरक प्रबन्धात्मक दृष्टि से इसमें समेटने की चेष्टा की गई है।

इस मौलिक शोधप्रबन्ध में जिन विद्वज्जनों की कृतियों के विचारों और निष्कर्षों का उपयोग किया गया है , उनका मैं उपकृत है। इसमें विद्वानों के प्रस्तुत तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण ही नहीं , व्यवस्थित और मौलिक प्रस्तुतीकरण भी है।

अंत में मैं अपने अग्रज लोढ़ा कुलभूषण चंचलमल जी के प्रति पुनः आभार व्यक्त करता हूँ , जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और आशीर्वाद से ही यह संभव हो सका है। इस ग्रंथ के लेखन में मेरे काकाश्री प्रो. कल्याणमलसा लोढ़ा ने भी समय समय पर अभिप्रेरित कर मुझ पर महती कृपा की है।

सी 7, भागीरथ कालोनी,
चौमू हाउस, सी-स्कीम,
जयपुर- 302001
दूरभाषः 0141/362334

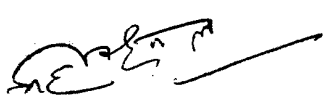

महावीर मल लोढ़ा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रथम अध्याय

पीठिका : ओसवंश के पहले

भारतीय जन

आदमी का उद्‌भव सबसे पहले कहाँ हुआ, यह मनोरंजक और विवादास्पद प्रश्न है। कोई इसे सीरिया में, कोई पश्चिम एशिया में, कोई मध्य एशिया में, कोई बर्मा, कोई अफ्रीका, कोई उत्तरी ध्रुव और अनेक भारतीय विद्वान प्रथम मनुष्य का जन्म भारत में मानते हैं। 'अफ्रीका के पक्ष में एक दलील दी जाती है कि वहाँ चिंपांजी और गोरिल्ला बन्दर बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके सिवाय अफ्रीका में बहुत सी हड्डियाँ पाई गई हैं, जिनके बारे में यह अनुमान है कि वे आदि मानव की हड्डियाँ होंगी।'[1]

'भारतीय इतिहास कांग्रेस' के ग्वालियर वाले अधिवेशन (1952 ई.) में सभापति पद से भाषण देते हुए डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने कहा कि आदि मनुष्य पंजाब और शिवालिक की ऊँची भूमि पर विकसित हुआ होगा, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। मुखर्जी महोदय का मत यह दीखता है कि मनुष्य भारत में ही उत्पन्न हुआ था और इसी देश में उसकी सभ्यता भी विकसित हुई। पंजाब में हिमालय के पास मनुष्य का आदि जन्म, फिर सिंधु की तराई में कृषि सभ्यता का विकास और सिंधु के पठार में भारत की प्राचीनतम सभ्यता का अवशेष पाया जाना, ये सारी बातें एक दूसरे को पुष्ट करने वाली है और अजब नहीं कि अध्ययन और खोज करने पर मुखर्जी महोदय का अनुमान ही सत्य प्रमाणित हो।'[2]

इन विवादों के बीच यह तो निश्चित है कि भारत में जो भी लोग मौजूद हैं, उनके पूर्वज इस देश में अन्य देशों से आये और अन्य देशों से आकर ही उन्होंने आपस में मिश्रित होकर इस देश में जनसमूह की रचना की, जिसे हम भारतीय जनता कहते हैं। और भारत की मिट्टी पर अनन्तकाल से, कितनी विभिन्न जातियाँ, कितने प्रकार के लोगों का समागम होता रहा है, वह किस्सा भी काफी मजेदार है। अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दें, तब भी इस देश में एक के बाद एक, कम से कम ग्यारह जातियों के आगमन और समागम का प्रमाण मिलता है, जिन्होंने इस देश को अपना देश मान लिया और जिनका एक एक सदस्य यहाँ की संस्कृति और समाज में पच खप कर आर्य अथवा हिन्दू हो गया। नीग्रो, आस्ट्रिक, द्रविड़, आर्य, यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल और मुस्लिम आक्रमण के पूर्व तुर्क, इन सभी जातियों के लोग कई झुण्डों में इस देश में आये और हिन्दू समाज में दाखिल होकर सब के सब उसके अंग हो गये। असल में हम जिसे हिन्दू संस्कृति कहते हैं, वह किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि इन सभी जातियों की संस्कृतियों के मिश्रण का परिणाम है।[3]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 27
2. वही, पृ. 27
3. वही, पृ. 28

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(1) नस्ल विज्ञान : भारत में विविध प्रजातियां

समाज के कुछ लोगों के रूपरंग, वेशभूषा, रहन सहन, भाव विचार और जीवन विषयक दृष्टिकोण में कुछ अनिवार्य रूप से एकता पाई जाती है। एक नस्ल के लोगों का दूसरी नस्ल के लोगों को अलग करना मुश्किल काम है। 'मूल नस्लों की पहचान भाषा और शरीर की गठन को देखकर की जाती है।'[1]

भाषाविज्ञान के आधार पर मनुष्य की पहचान सरल कार्य है, किन्तु रूपरंग और शरीर के ढाँचे को देखकर मनुष्य के मूल खानदान का पता लगाना उतना आसान नहीं है, क्योंकि जलवायु के प्रभाव और विवाहादि के द्वारा रक्त के मिश्रण के कारण इस क्षेत्र में बड़ी बड़ी उलझनें पैदा हो जाती है। फिर भी जनविज्ञान (Anthropology) ने जो कसौटियाँ बनाई है, उन पर आदमी की नस्ल की पहचान, बहुत दूर तक सही सही कर ली जाती है।'[2]

नस्ल की पहचान- रंग, खोपड़ी की लम्बाई, चौड़ाई, नाक की ऊँचाई, चौड़ाई, खड़ा या चिपटा होना, आदमी का कद, डील-डौल, मुँह या जबड़े का बड़ा या न बड़ा होना आदि से हो सकती है।

दिनकर के अनुसार जनविज्ञान ने संसार की सभी जातियों को मुख्यत: तीन नस्लों में बाँट रखा है। पहली नस्ल के लोग, गोरे लोगों की है, जिन्हें हम काकेशियन कहते हैं, दूसरी नस्ल के लोग जिनका रंग पीला होता है और जो मंगोल जाति के हैं तथा तीसरी नस्ल उन लोगों की है, जिनका रंग काला है और जो इथोपियन परिवार के हैं।[3] भारतीय जनता में इन तीन रंगों के प्रतिनिधि मौजूद हैं और रंगों की दृष्टि से भारतीय मानवता विश्व मानवता का अद्‌भुत प्रतीक मानी जा सकती है।[4]

दूसरे मत से भारत में चार प्रकार के लोग मिलते हैं।[5]

1. एक तरह के लोग वे हैं, जिनका कद छोटा, रंग काला, नाक चौड़ी और बाल घुंघराले होते हैं। ये आदिवासी हैं।

2. एक दूसरी तरह के लोग हैं, जिनका कद छोटा, रंग काला, मस्तक लम्बा, सिर के बाल घने और नाक खड़ी और चौड़ी होती है। ये द्रविड़ जाति के लोग हैं।

3. तीसरी जाति के लोगों का कद लम्बा, वर्ण गेहुआँ या गोरा, दाढ़ी मूँछ घनी, मस्तक लम्बा तथा नाक पतली और नुकीली होती है। ये आर्य जाति के लोग हैं।

4. एक चौथे प्रकार के लोग बर्मा, असम, भूटान और नेपाल तथा उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तरी बंगाल और काश्मीर के उत्तरी किनारे पर पाये जाते हैं। इनका मस्तक चौड़ा, रंग

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 29
2. वही, पृ. 29
3. वही, पृ. 29
4. वही, पृ. 29
5. वही, पृ. 29-30

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काला-पीला, आकृति चिपटी तथा नाक चौड़ी और पसरी हुई होती है। इनके चेहरे पर दाढ़ी मूँछ भी कम उगती है। ये मंगोल जाति के लोग हैं।

'इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में आर्य, द्रविड़, आदिवासी और मंगोल इन चार जातियों से भारतीय जनता की रचना हुई। हम जिन्हें आदिवासी कहते हैं, उनके बीच नीग्रो और आस्ट्रिक नामक उन जातियों के लोग शामिल हैं, जो द्राविड़ जातियों से पूर्व इस देश में आई थी। इसी प्रकार मंगोल जाति वालों का भी प्राचीन नाम किरात है।'[1] डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी माना है कि मंगोल जाति के लोग आर्यों के आगमन के पूर्व भारत में बस चुके थे, क्योंकि किरात नाम आर्यों के प्रारम्भिक साहित्य में ही मिलने लगता है।

भाषा की दृष्टि से भी इस देश में चार भाषा परिवार हैं।

1. मंगोल जाति के लोगों की भाषा तिब्बती चीनी परिवार की भाषा है।

2. द्रविड़ परिवार की भाषा तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलगु है।

3. हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, असमी, गोरखाली और कश्मीरी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ हैं।

4. आदिवासियों की भाषाएं आस्ट्रिक और आग्नेय भाषा समूह की भाषाएं है।

डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने लिखा है कि भारतीय जनता की रचना जिन लोगों को लेकर हुई है, वे मुख्यत: तीन भाषाओं में विभक्त किये जा सकते हैं - अर्थात् आस्ट्रिक अथवा आग्नेय, द्राविड़ और हिन्द योरोपीय (हिन्द जर्मन)। श्री जयचंद्र ने एक सूक्ति कही है ''भारतवर्ष की जनता मुख्यत: आर्य और द्रविड़ नस्लों की बनी हुई है, उसमें थोड़ी सी छौंक शबर और किरात (मुण्ड और तिब्बत बर्मी) की है।''[2] इस प्रकार रक्त, भाषा और संस्कृति सभी दृष्टियों से भारत की जनता अनेक मिश्रणों से युक्त है। नीग्रो जाति के बाद आग्नेय, आग्नेय के बाद द्रविड़ और द्रविड़ के बाद आर्य इस देश में सांस्कृतिक समन्वय का कार्य शुरू होता है।[3] वस्तुत: शैव-शाक्त, वैष्णव, जैन और बौद्ध, ये आर्य भी थे और द्रविड़ भी।

पाश्चात्य विद्वानों में कई विद्वान भी दूर पर वे एक ही खानदान का मानते हैं। श्री बी.एस. गुहा की छोटी सी पुस्तक ''रेस अफीनिटीज ऑफ द पीपल्स ऑफ इण्डिया'' की समीक्षा करते हुए कहा कि सर आर्थर कीथ ने सन् 1936 में लिखा कि सीमा प्रान्त के पठानों और त्रावणकोर की वन्य जातियों को मिलाने वाला सेतु अभी भी मौजूद है। लेकिन सभी विद्वान यही कहते जा रहे हैं कि भारत में प्रजातिगत जो विभिन्नताएँ हैं, वे इसी कारण है कि भारत के सभी लोग बाहर से आए हैं, यह देखने की किसी ने कोशिश ही नहीं की कि भारत की वे जातियाँ कौन कौन हैं, जिनका उद्भव और विकास भारत में हुआ।[4]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 30
2. वही, पृ. 32
3. वही, पृ. 32
4. वही, पृ. 43

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जूलियन हक्सले को कहना पड़ा कि प्रजातिवाद का सिद्धान्त झूठा भी है और खतरनाक भी। वस्तुत: आर्य शब्द प्रजातिवाचक है, जबकि द्रविड़ शब्द प्रजातिवाचक न होकर स्थानवाचक है। मनु ने द्रविड़ शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिये किया, जो द्रविड़ देश में बसते थे।[1]

डॉ. रामनाथ शर्मा और डॉ. राजेन्द्र शर्मा के अनुसार ''भारत इतना विशाल देश है कि इसको छोटा मोटा महाद्वीप कहना भी अनुचित नहीं होगा। इस विशाल भूखण्ड में लगभग 50,00,000 वर्ष पूर्व के मनुष्य के चिह्न प्रकट हुए हैं। हजारों वर्षों से यहाँ पर बाहर से प्रजातियाँ आती रही। अत: भारतवासियों में अनेक प्रकार की प्रजातियों के शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार से यह प्रजातियों का अजायबघर ही है।''[2]

इन्होंने भारतीय जनता में नीग्रिटो, प्रोटो आस्ट्रेलायड, भूमध्यसागरीय प्रजाति, पिशाच आदि दरद भाषा परिवार की तीन प्रजातियाँ- अल्पाइन, दीनारिक, आर्मीनियन और नार्दिक, और मंगोल प्रजाति मानी है। इसमें नीग्रिटो अफ्रीका और प्रशांत महासागर में बसी नीग्रायड (Negroid) प्रजाति की एक नस्ल है। डा. हट्टन और बी.एस. गुहा के अनुसार नीग्रिटो भारत की सबसे प्राचीन प्रजाति है। प्रोटो आस्ट्रेलायड (Proto Australoid) नीग्रिटो के बाद भारत में आने वाली दूसरी प्रजाति थी। कुछ विद्वानों के अनुसार यही भारत की आदिम प्रजाति है, क्योंकि नेग्रिटो प्रजाति के अवशेष भारत में बहुत कम मिलते हैं। भूमध्यसागरीय प्रजाति भारत में आई हुई तीसरी प्रजाति मानी जाती है। इन्हीं लोगों ने सिन्धु घाटी की सभ्यता स्थापित की। इनकी भाषा सम्भवत: द्रविड़ थी। भूमध्यसागरीय प्रजाति के बाद भारत में मध्य एशिया की पामीर पर्वतमाला और ईरान के पठार से ईसा से 3000 वर्ष पूर्व एक नवीन प्रजाति आई। ये लोग पिशाच अथवा दरद भाषा परिवार की आर्य भाषा बोलते थे। इनमें अल्पाइन प्रजाति गुजरात में, दीनारिक प्रजाति बंगाल, उड़ीसा, काठियावाड़, कन्नड़ और तमिलप्रदेश में और आर्मीनियन प्रजाति बम्बई के परसियों के रूप में मिलते हैं। इण्डो आर्यन की एक बड़ी प्रजाति नार्दिक 1500 ई पूर्व के लगभग भारत में आए और इन्होंने भारत की प्राचीन सभ्यता का निर्माण किया। मेक्समूलर के अनुसार नार्दिक प्रजाति भारत में मध्य एशिया से, तिलक के अनुसार उत्तरी ध्रुव से और गाइल्स के अनुसार यूरोप से आए। भारत की छठी प्रजाति मंगोल है। ये असम में और बर्मा में अधिक पाये जाते हैं। इनका उद्गम इरावती नदी की ऊपरी घाटी, चीन, तिब्बत और मंगोलिया में माना गया है।

इन प्रजातियों के शारीरिक लक्षण ओर रंगों में भिन्नता पाई जाती है। डी.एन. मजूमदार के अनुसार नेग्रिटो का सिर ऊँचा, खड़ा माथा (Vertical Head), छोटा और चौड़ा मुँह, मोटे ओठ, तंग कंधे, ऊंचा कटिप्रदेश, छोटी टांगे, लम्बी भुजाएँ, दाढ़ी और शरीर पर कम बाल हैं। इनके वयस्क पुरुषों का कद 150 से.मी. होता है। इनकी त्वचा का रंग मटियाला, पीला, बाल काले और घुंघराले होते हैं। इनके लक्षण भारतीय समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में पाये जाते हैं।[3]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 43
2. डॉ. रामनाथ शर्मा और डॉ. राजेन्द्र शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, पृ. 15
3. वही, पृ. 15-16

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रोटो आस्ट्रेलायड के दीर्घ कपाल, छोटा कद, घुंघराले बाल, चाकलेटी रंग की त्वचा, धंसी हुई तथा चौड़ी नाक, मोटे ओठ तथा आगे बढ़ी हुई जबड़े की हड्डियाँ होती है। इनका औसत कद 162 से.मी. होता है। इनके बाल काले और कम तथा मुँह तथा दूर-दूर तक उगे हुए होते हैं। इनकी आंखें कुछ काली भूरी होती हैं। मुख्य रूप से विंध्य प्रदेश, दक्षिणी भारत और मध्य भारत में मिलते हैं।[1]

भूमध्यसागरीय प्रजाति लम्बे सिर वाली थी। इनका सिर लम्बा, कद छोटा, औसत ऊँचाई 166 से.मी., चेहरा तंग, ठोडी नोकदार, कुछ सीधी बीच में उठी हुई, मुड़ी हुई सिरे वाली नाक, चौड़ा मुँह, पतले और झिल्लीदार होठ, चौड़ा कटिप्रदेश, लहरदार तथा हल्के भूरे रंग के बाल, हल्की भूरी त्वचा तथा काली आंखें होती है।[2]

आर्यों में अल्पाइन का औसत कद 160 से.मी., कंधा चौड़ा, छाती गहरी, टांगे लम्बी तथा चौड़ी, हाथ चौड़े, उंगलियां छोटी तथा पांव छोटे और चौड़े होते हैं। इनकी स्त्रियों का कटिप्रदेश यूरोपीय प्रजातियों की अपेक्षा पतला होता है। इनका सिर चौड़ा, इनके सिर का आकार गोल, माथा ऊँचा, चेहरा गोल तथा चौड़ा, नाक मांसल, छोटी और चपटी होती है। इनकी त्वचा का रंग पीला, बालों का चैस्टनर तथा आँखों का हैजल भूरा होता है।[3]

दीनारिक (Dinaric) प्रजाति बंगाल, उड़ीसा, काठियावाड़, कन्नड़ और तमिल प्रदेश में मिलती है। ऊँचा शिखर वाला सिर, ढालू माथा, सिर का पिछला भाग चपटा, चौड़ा सर, शीर्ष देशना 83 सें.मी. से अधिक, लम्बा तंग चेहरा, उठी हुई तथा उन्नत नासिका, आगे निकली हुई ठोड़ी, ऊँचा कद, औसत ऊँचाई 170 से.मी., शरीर का गठन और शरीर का ढाँचा भारी, लम्बी टांगे, मोटी गर्दन, नार्दिक लोगों से अधिक चौड़े होंठ, जैतून के रंग वाली काली त्वचा, हल्के भूरे रंग की आँखे, काले भूरे लहरदार तथा शरीर तथा चेहरे पर उगने वाले बाल इनकी शारीरिक विशेषताएँ थी।[4]

आर्मीनियन प्रजाति के लोग मुख्य रूप से बम्बई के पारसियों में मिलते हैं।[5]

नार्दिक प्रजाति के लोग भी इण्डो आर्यन की एक शाखा है। ये पहले सिंधु और यमुना के किनारे बसे और बाद में सम्पूर्ण भारत में बस गये। लम्बा सिर, ऊँची पतली नाक, पतले होंठ, ऊँचा इकहरा शरीर, लम्बा चेहरा, सुनहरे घुंघराले बाल और ऊँचाई 172 से.मी. के अतिरिक्त अन्य विशेषताएँ लम्बी टाँगें, गुलाबी आभा लिये और गौरवर्ण त्वचा तथा नीली और हल्की भूरी आँखें हैं।[6]

---

1. डा. शर्मा और डा. शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएं और संस्कृति, पृ. 17
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 17-18
4. वही, पृ. 18
5. वही, पृ. 18
6. वही, पृ. 19

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंगोल प्रजाति के लोग भारत में असम और बर्मा में अधिक पाये जाते हैं। पीली या भूरी रंग की त्वचा, खड़े या बहुत कम दशाओं में लहरदार बाल, चौड़ा चपटा चेहरा, उभरी हुई हड्डियों वाले गाल, छोटी और चपटी नाक, छोटा कद, औसत 165 से.मी. से भी कम ऊँचाई, छोटी टाँगें, लम्बा धड़, चौड़े कंधे, चौड़ा सिर, शीर्ष देशना 80 से ऊपर, सीधा माथा, मोटे होंठ, गोल ठोड़ी, काले भूरे रंग की आंखें, चेहरे और शरीर पर कम बाल इनकी शारीरिक विशेषताएँ मानी गई हैं।[1]

इनमें से ओसवंश को किसी भी शुद्ध रूप में पाने की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि भारत में अनेकानेक प्रजातियां आई और परस्पर मिश्रित हो गई। 'नब्बे करोड़ से अधिक मनुष्यों के इस देश की प्रजातियों की सही सही गणना करना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है।'[2] यही कहा जाता है कि ओसवंश आर्यों की सन्तान है, किन्तु मिश्रण से इन्कार नहीं किया जा सकता। डी.एन.ए. परीक्षण से कुछ सीमा तक ओसवाल जाति की प्रजाति का अनुमान किया जा सकता है।

(2) भारत में वर्ण व्यवस्था

इस देश में दो ही जातियां प्रमुख रही- आर्य और द्रविड़। इन दोनों जातियों के पारस्परिक मिश्रण की प्रक्रिया बहुत पहले से सम्पन्न हो चुकी थी। पण्डितों में इस बात को लेकर मतभेद है कि अर्य मूलत: भारतवासी थे या बाहर से आए थे, वैसे ही यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि द्रविड़ इस देश के मूल निवासी हैं अथवा इस देश में वे किसी और देश से आये हैं। आर्य और द्रविड़ दोनों प्रकार के लोग इस देश में अनन्त काल से पहले आये हैं और हमारे प्राचीनतम साहित्य में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ये दोनों जातियां बाहर से आई तथा दोनों के बीच लड़ाईयाँ भी हुई थी।[3]

आर्य और द्रविड़ नाम से अभिहित किये जाने वाले भारतवासियों का धर्म एक है, संस्कार एक हैं, भाव और विचार एक हैं और जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण भी एक ही है। शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन और बौद्ध, ये आर्य भी थे और द्रविड़ भी।[4]

इन दोनों प्रजातियों में आर्यों के साथ संस्कृत भाषा देश में आर्यों के साथ आई और उत्कृष्ट संस्कृति, साहित्य और सभ्यता के कारण आर्य विश्व के इतिहास में प्रख्यात हैं।

अन्वेषकों का मत है कि आर्य जाति की एक शाखा ने भारतवर्ष में प्रवेश करके एक नये समाज की स्थापना की। एक मत के अनुसार आर्य मध्य एशिया के रहने वाले थे, तिलक का मत था कि आर्य लोगों का आदि देश उत्तरी ध्रुव था और भारतीय विद्वानों का मत है कि सप्तसिंधव देश (सिंधु नदी से सरस्वती नदी तक) ही आर्यों का आदि देश था।[5] प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ.

1. डॉ. शर्मा और डॉ. शर्मा, भारतीय समाज, संस्थाएं और संस्कृति, पृ. 19
2. वही, पृ. 19
3. श्री रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 34-35
4. वही, पृ. 35
5. डा. सम्पूर्णानंद, आर्यों का आदि देश, पृ. 33

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है कि आर्य भारत में ही स्वयंभूत हुए थे, विचारणीय ही नहीं है।[1]

आर्यों ने इस देश में आकर वेदों की रचना की। ब्राह्मणवादी विचारधाराएं वेदों को अपौरुषेय मानती है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के मत से इनके निर्माण का काल ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व के लगभग है।[2]

सप्तसिंधव देश की सात नदियों के नाम थे- सिन्धु, विपाशा (व्यास), शतद्रु, (सतलज), वितस्ता (झेलम), असिक्री (चनाव), परुष्णी (रावी) और सरस्वती। सरस्वती के पास ही दृषद्वती थी। मनुस्मृति में कहा है - सरस्वती और दृषद्वती देव नदियां है, इनके बीच देव निर्मित ब्रह्मावर्त देश है।'[3]

वैदिक आर्य भारत के जिस भाग से परिचित थे, वह भाग विभिन्न जातियों में विभाजित था और प्रत्येक जाति का एक शासक राजा था। ऋग्वेद में दस राजाओं के युद्ध का वर्णन है, इनमें पांच उल्लेखनीय हैं- अणु, द्रध्यु, तुर्वक, यदु तथा पुरु।[4] इनमें पुरु एक शक्तिशाली राजा थे। ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जो पुरुओं को इक्ष्वाकु सिद्ध करते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पुरुकुत्स इक्ष्वाकु था।[5] शतपथ ब्राह्मण में इन्हें असुर राक्षस बताया है।[6]

ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में पणियों का चित्रण मिलता है। संस्कृत के शब्द पणिक या वणिक, पण्य और विपणि से ऐसा प्रतीत होता है कि पणि लोग ऋग्वेदकालीन व्यापारी थे। पणि वैदिक आर्यों के देवों को नहीं पूजते थे।[7]

ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में दस्यु शब्द का प्रयोग हुआ है। दस्यु यज्ञ नहीं करते थे। ऋग्वेद में इन्हें अकर्मा (क्रिया न करने वाला) अदेवयु (देवताओं का अपक्षपाती), अब्राह्मण, अयज्वान (यज्ञ न करने वाला), अव्रत (व्रतरहित), अन्यव्रत (अतिरिक्त व्रतों का धारण करने वाला), देवपीयु (देवताओं की निन्दा करने वाले) कहा गया है।[8]

दस्यु को अनास (बिना मुख किया या नाकरहित चपटी नाक वाला), मृधुवाचः (न समझने योग्यवाणी) वाला कहा गया।[9]

बाद के साहित्य में एक सुसंस्कृत दानव जाति के अनेक उल्लेख पाए जाते हैं, जो असुर कहलाती थी। महाभारत में असुरों का वर्णन एक सुसंस्कृत दानव जाति के रूप में पाया जाता है। पाण्डव कौरव युद्ध के समय इन असुरों के हाथ में मगध और राजपूताना था।

---

1. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ. 20
2. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पृ. 3
3. मनुस्मृति, 2/7
4. जैन सहित्य का इतिहास, पृ. 14-15
5. शतपथ ब्राह्मण- 8, 5/4/3
6. वही 6, 8/1/14
7. जैन साहित्य का इतिहास, पृ. 16
8. Vedic Index 1, 471-72
9. ऋग्वेद 10/12/8

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाभारत, रामायण और पुराणों में आंध्रो, पुरिंद्रो और शबरों को दक्षिण भारत की जातियाँ बतलाया है।[1] पुण्ड्र लोग बंगाल के उत्तर भाग में रहते थे।

आर्यों के आने के पश्चात् बहुत सी प्राचीन जातियाँ तो लुप्त हो गईं या अन्य जातियों में मिल गई, अथवा अपना प्राधान्य खो बैठी और अनेक जातियाँ प्रकाश में आई।[2] पंजाब की पांच जातियां- पुरु, अनु, द्रह्यु, यदु और तुर्वश पीछे चली गई।

अथर्वेद में 'मागध' नाम की जाति का उल्लेख मिलता है।[3] अथर्ववेद में मागधों को व्रात्यों से सम्बद्ध बतलाया है।[4] विदेशी विज्ञान जिम्मर (Zimmer) ने अथर्ववेद और यजुर्वेद में उल्लिखित मागधों को वैश्य और क्षत्रिय के मेल से उत्पन्न एक मिश्रित जाति बताया है। 'वैदिक इण्डेक्स' में मगध गंधर्वों का देश था, इसलिये मागधों को गंधर्व बतलाया है। यह निश्चित है कि मागधों का पूर्ण रूप से ब्राह्मणीकरण न हो सका।

आरम्भ में वैदिक आर्यों में जातिभेद नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौरोहित्य आदि शासन का काम संयुक्त था।[5] सतत् युद्धों ने वैदिक आर्यों को विवश किया कि अपने अपने व्यवसाय के अनुसार वे अपने को विभिन्न समुदायों में विभाजित करते। धीरे धीरे यौद्धा लोगों का स्थान उन्नत होता गया और वे क्षत्रिय कहलाए।

ऋग्वेद के अंतिम पुरुषसूक्त में राजन्य, ब्राह्मण, वैश्य, शूर्द चार वर्णों का निर्देश है। जिम्मर (Zimmar) मानता है कि ऋग्वेद की जातिहीन परम्परा जो यजुर्वेद की जातिगत परम्परा के रूप में परिवर्तन हुआ, इसका सम्बन्ध वैदिक आर्यों के पूरब की ओर बढ़ने से है। विश्वामित्र और कण्ड्व को क्षत्रिय माना है और विश्वामित्र, जमदाग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ट, काश्यप और अगस्त्य ब्राह्मणों के पूर्व पुरूष हैं। महाभारत में कहा गया है कि आंगिरस, काश्यप, वशिष्ट और भृगु से प्राचीनतम पुराहितों की परम्परा चली है।

उपनिषदों से यह ज्ञात होता है कि क्षत्रियों के पास सर्वोच्च विद्या थी और ब्राह्मण उनके पास जाते थे। क्षत्रिय वर्ग दार्शनिक चर्चाओं में खूब रस लेते थे। वे ज्ञान के मात्र रक्षणकर्ता ही नहीं, स्वयं ज्ञानी और ब्राह्मण तक उनके शिष्य थे।[6]

प्रो होपकिंस ने माना है कि भारत की धार्मिक क्रांति के अध्ययन में विद्वान लोग अपना सारा ध्यान आर्य जाति की ओर लगा देते हैं और भारत के समस्त इतिहास में द्रविड़ों ने जो भाग लिया है, उसकी उपेक्षा कर देते हैं, वे महत्व के तथ्यों तक पहुँचने से रह जाते हैं।[7]

---

1. जैन साहित्य का इतिहास, पृ. 21
2. वही, पृ. 27
3. अथर्ववेद, 5-12-14
4. जैन साहित्य का इतिहास, पृ. 29
5. Vedic Index 2, पृ 36
6. Vedic Age (Indian History Association) Page 430
7. Prof. Hopkins, Religions of India, Page 4-5

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डा. भण्डारकर की मान्यता है कि भारत में जातियों का मिश्रण होता आया है। इन जातियों के अपने देवता होते थे। आर्यों के हाथ में भारत का अधिकार आने से पूर्व कुछ जातियाँ लिंग की उपासना करती थी। लिंग पूजा को आर्यों ने स्वीकार कर लिया था।

आर्य शब्द की व्युत्पत्ति ऋ धातु से बताई गई है, जिसका अर्थ गति होता है। आर्य कदाचित गत्वर (घुमक्कड़) लोग थे। आर्यों ने सबसे पहले 'ऋग्वेद' की रचना की। 'ऋग्वेद' आर्यों का ही नहीं, विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है। कोई इसे पचहत्तर हजार वर्ष पुराना मानता है, तो कोई ईसा से 15000 वर्ष पूर्व की चीज मानते हैं। मेक्समूलर ऋग्वेद की रचना ईसा से 1200-1000 वर्ष पूर्व, विंटरनिज के अनुसार 2300 वर्ष पूर्व और जैकोबी के अनुसार ईसा के 6500 वर्ष पूर्व का माना है।

प्राचीन काल में धंधों के आधार पर समाज को विभक्त करने का कई देशों में रिवाज था। ईरानी समाज में चार जातियाँ थी। पारसियों के अवेस्ता में चार जातियाँ या वर्गों का विधान था -

1. अथ्रवन (ब्राह्मण) 2. रथैस्ताएं (क्षत्रिय) 3. वासयोष (वैश्व) 4. हुतोश (शूद्र)।

भारतीय साहित्य में वर्ण शब्द का उल्लेख पहले और जाति शब्द बहुत बाद में मिलता है। मंगलदेव शास्त्री ने माना है कि हमें वैदिक संहिताओं में जाति शब्द नहीं मिला है। इसी से यह अनुमान लगाया गया कि वर्णभेद की उत्पत्ति रंगभेद के कारण हुई होगी। ब्राह्मणों का वर्ण श्वेत, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीत और शूद्रों का श्याम वर्ण होता है, यह बात महाभारत में कही गई है।

'निरुक्त' में श्री यास्काचार्य ने वर्ण शब्द की उत्पत्ति वरण अथवा चुनाव करने वाली वृ (वृत वरणे) धातु से की है। इस प्रकार वर्ण वह है, जिसको व्यक्ति अपने कर्म और स्वभाव के अनुसार चुनता है।

परम्परागत सिद्धान्त की दृष्टि से 'पुरुषसूक्त' के अनुसार विश्वपुरुष में ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा और शूद्र का स्थान पैरों को प्राप्त है। इस प्रकार ये चारों वर्ण विश्वपुरुष के प्रतीकात्मक अंग है। मुखरूपी ब्राह्मण का कार्य विद्यादान है। बाहुरुपी क्षत्रिय का कार्य समाज की रक्षा करना है। जाँघ के प्रतीक से वैश्य वर्ग का कार्य व्यापार और वणिकता है। पैर होने के कारण शूद्रों का प्रमुख कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा है।

ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' के अनुसार प्रजापति द्वारा जिस समय पुरुष विभक्त हुए तो उसको कितने भागों में विभक्त किया गया, इनके मुख, बाहु, कर और चरण कहे जाते हैं। ब्राह्मण इस पुरुष के मुख से, क्षत्रिय जाति भुजा से, वैश्य जाति उरू से और शूद्र जाति दोनों चरणों से

---

1. भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 35

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्पन्न हुई।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुख किमस्य कौ बाहु कावुरू पादो उच्चते ।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाह राजन्य कृतः ।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पदमों शूद्रोऽजायत ।[1]

भृगु ऋषि ने माना कि वर्ण का सिद्धान्त केवल त्वचा के रंग पर आधारित न होकर कर्म और गुण पर आधारित है। जो लोग भोग, क्रोध, कठोरता, वीरता आदि के युक्त थे, वे रजोपधान अथवा लोहित गुण के क्षत्रिय कहलाये। इसी तरह जो लोग खेतीबाड़ी और पशुपालन आदि में रुचि लेते थे, पीतगुण प्रधान वैश्य वर्ण कहलाये। जो लोग असत्यवादी, लोभी, लालची और हिंसक तथा इस प्रकार श्यामवर्ण वाले व्यक्ति थे, वे शूद्र कहलाये।[2]

परम्परागत सिद्धान्त, रंगसिद्धान्त के अतिरिक्त प्राचीन साहित्य में कर्म और धर्म का सिद्धान्त भी प्रतिपादित था। वैदिक युग में वर्णों की व्यवस्था समाज की आवश्यकताएँ थी- पठनपाठन, धार्मिक और बौद्धिक कार्यों की पूर्ति 2. राज्य व्यवस्था का संचालन तथा समाज की व्यवस्था 3. आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति, 4. सेवा। इन चार आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की उत्पत्ति हुई।[3] यह कर्म धर्म से जुड़ा था।

महाभारत काल में वर्णों की उत्पत्ति जाति के गुणों के आधार पर मानी गई है। सतोगुण प्रधान व्यक्ति ब्राह्मण, रजोयुग प्रधान क्षत्रियय और तमोगुण प्रधान व्यक्ति शूद्र कहलाता है।[4]

इन चारों सिद्धान्तों के विरुद्ध श्री बी.के. चट्टोपाध्याय ने जन्म को वर्ण का कारण बताया। जन्म के कारण ही क्षत्रिय का कर्म करते हुए भी द्रोणाचार्य ब्राह्मण कहलाये। जन्म के कारण ही क्रूर अश्वत्थामा अपनी क्रूरता के बावजूद ब्राह्मण कहलाया। सतोगुणी धर्मराज युधिष्ठिर गुणों से ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय कहलाये। पाँचों पाण्डवों के स्वभाव में भारी अन्तर होते हुए भी वे सभी क्षत्रिय कहलाये।[5]

इसमें वर्ण सिद्धान्त प्रजातीय अंतर पर आधारित है, कर्म का सिद्धान्त व्यक्ति के स्वभाव की ओर संकेत करता है। प्रारम्भ में वर्ण कर्मणा थी, जन्मना नहीं। पुरुरुवा क्षत्रिय राजा था। गाधि उन्हीं के वंश में जन्मे थे। किन्तु गाधि की कन्या सत्यवती से परशुराम के पितामह ऋचीक ने विवाह किया था। इस प्रकार गाधि के पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय और जामाता ऋचीक ब्राह्मण कहे गये हैं।[6] कृष्ण द्वैपायन व्यास की माता धीवर जाति की थी, किन्तु व्यास क्षत्रिय और ब्राह्मण सबके पूजनीय थे।[7]

---

1. ऋग्वेद में 10 सू. 9, 10/3/12
2. भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, पृ 30
3. वही, पृ. 30
4. वही, पृ 31
5. वही, पृ 31
6. संस्कृति के चार अध्याय, पृ 75
7. वही, पृ 76

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाभारत के शांतिपर्व में कहा गया है, युधिष्ठिर ! फिर परमात्मा कृष्ण ने मुख से सौ ब्राह्मण, बाहुओं से सौ क्षत्रिय और उरुओं से सौ वैश्य और चरणों से सौ शूद्रों की सृष्टि की -

ततः कृष्णे महाभागः पुनरेव युधिष्ठिर ।
ब्राह्मणानां शतं श्रेष्ठ मुखा देवा सृजत् प्रभुः ।।
बाहुभ्यां क्षत्रिय शतः वैश्यानामूरुतः शतम् ।।
पद्भयां शूद्र शतञ्चैव केशवो भरतर्षभ ।।

भारतीय समाज में कर्मणा वर्ण व्यवस्था धीरे धीरे जन्मना हो गई और इसी वर्ण व्यवस्था ने धीरे धीरे जाति व्यवस्था का रूप ग्रहण कर लिया।

(3) भारत में जाति व्यवस्था

भारतीय समाज में कर्मणा वर्ण व्यवस्था ही कालान्तर में जन्मना होकर जाति व्यवस्था में परिणत हो गई। जाति क्या है, यह विवादास्पद है। प्रारम्भ में जाति का निर्णय लोग कर्म से करते थे, फिर इसका निर्णय जन्म से करने लगे। अंग्रेजी के Caste को पुर्तगाली भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है उत्पन्न करना।[1]

जाति शब्द जन् धातु से "क्तिन' प्रत्यय करने से बनता है। यद्यपि जाति एक प्रकार का छन्द, मालती वेद की शाखा आदि कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। व्याकरण के मत से किसी शब्द के प्रतिपाद्य अर्थ को जाति कहते हैं, वैयाकरण चार प्रकार के शब्द बतलाते हैं, उनमें ही जातिवाचक एक प्रकार का है, व्याकरण में जाति का लक्षण इस प्रकार कहा है-

आकृति, ग्रहण जातिलिंगानाचं न सर्वभाक ।
सकृदारयात निर्ग्राह्या गोत्रञ्च चरणै सह ।।

जिस आकृति के द्वारा कोई पहचाना जाय, उसको अर्थात् आकृति को जाति कहते हैं।[2]

गौतमसूत्र के अनुसार -

समानः समानकारकः प्रसवो बुद्धि जननमात्म स्वरूपं यस्याः

अर्थात् जिस पदार्थ से समानता का बोध होता है, उसी का नाम जाति है।[3] वात्स्यायन का मत है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से पृथक है, इस भेद को मानकर सामान्य विशेष का नाम जाति है।[4]

भारत में जातियों का उद्गम कब हुआ, यह विवादास्पद है। जातियों का उद्गम वर्ण से हुआ, इसलिये वर्ण व्यवस्था के उद्गम को ही हम जाति का उद्गम मान सकते हैं। पश्चिम के

1. Emile Senart, Caste in India, Page 1
   It was borrowed from Portuguese casta, which signifies properly "breed'.
2. जाति भास्कर, पृ. 1
3. वही पृ. 3
4. वही पृ. 6

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्वान जाति का उद्‌गम केवल ब्राह्मण ग्रंथों से मानते हैं।[1]

ऋग्वेद में चारों जातियों के उद्‌भव का उल्लेख है। प्रजापति द्वारा जिस समय पुरुष विभक्त हुए तो ब्राह्मण जाति इस पुरुष के मुख से, क्षत्रिय जाति बाहु से, वैश्य जाति उरु से और शूद्र जाति चरणों से उत्पन्न हुई।[2]

'तैतिरीय ब्राह्मण' के अनुसार यह सब संसार ब्रह्मा द्वारा सृष्ट हुआ है। कोई ऋक से वैश्य की उत्पत्ति, यजुर्वेद क्षत्रिय की योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान है और सामवेद से ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति कहते हैं।[3]

सर्व हेदं ब्रह्मणा हेदं सृष्टमृग्म्यो जातं वैश्यं वर्ण माहुः।
यजुर्वेद क्षत्रियस्याहु योनिं सामवेदो ब्राह्मणाना प्रसूति।।[4]

'शतपथ ब्राह्मण' में माना गया कि भूः शब्द उच्चारण करके ब्रह्माजी ने ब्राह्मण को उत्पन्न किया, भुवः शब्द कहकर क्षत्रिय को और स्वः शब्द कहकर वैश्य को उत्पन्न किया। यह समस्त विश्वमण्डल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से परिपूर्ण है।[5]

हरिवंश पुराण के अनुसार प्रजापति ने ही दक्षप्रजापति होकर अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न की। अक्षर रूप से सौम्यगुण विशिष्ट ब्राह्मण, क्षर रूप से क्षत्रिय, विकार रूप से वैश्य और धूमविकार से शूद्र हुए।[6]

दक्षः प्रजापति र्भूत्वा सृजते विपुलः प्रजा।
अक्षरा ब्राह्मणः सौम्यः क्षरात्क्षत्रिया बान्धवा।
वैश्या विकारत श्चैव शूद्रा धर्मविकारतः।।

प्राचीन भारत में जाति परिवर्तन सम्भव था। गर्भ से शिनि, शिनि से गार्ग्य उत्पन्न हुए। यह गार्ग्यगण क्षत्रिय से ब्राह्मण में परिवर्तित हो गये[7]-

गार्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्मा द्वह्म ह्यावर्तत।

'मत्स्यपुराण' के अनुसार श्री उरुक्षय के तीन पुत्रत्यसरुण, पुष्करी और कपि क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हुए[8] -

उरूक्षय सुता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गतः

'हरिवंशपुराण' के अनुसार नागाभरिष्ट के तीन पुत्र वैश्य ब्राह्मण भाव को प्राप्त हुए।[9]

---

1. Emile Senart, caste in India, Page XIV
2. जाति भास्कर, पृ. 7
3. वही, पृ. 9
4. तैतिरीय ब्राह्मण 3/12/9/2
5. जाति भास्कर, पृ. 9
6. वही, पृ. 11
7. वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 15
9. वही, पृ. 16

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नागाभरिष्ट पुत्रौ द्वौ वैश्यो ब्राह्मणत : गतौ

'महाभारत' के अनुसार यदि कोई वर्ण अपना कर्म त्याग कर दूसरी जाति के कर्म करता है, तो परजन्म योनि में प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके क्षत्रिय धर्म से जीविका निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर क्षत्रिय योनि में जन्म ग्रहण करते हैं और जो बुद्धिहीन ब्राह्मण लोभ मोह के कारण वैश्यकर्म ग्रहण करता है, वह वैश्यत्व को प्राप्त कर परजन्म में वैश्यत्व ही हो जाता है, इसी प्रकार वैश्य शूद्र हो जाता है। ब्राह्मण अपने धर्म से भ्रष्ट होता होता शूद्रत्व को प्राप्त होता है।[1]

यस्तु ब्रह्मत्वयुत्सज्य क्षात्मं धर्म निषेवते।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्म यौनो प्रजायते॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभ मोह व्यपाश्रयः।
ब्राहमण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्मल्चमति सदा।
स द्विजो वैश्यतमेति वैश्या ता शूद्रतापियात्।
स्वधर्मा प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्व माप्नुते॥

— महाभारत, अनुशासनवर्ण

इस प्रकार प्रारम्भ में जाति या वर्ण का आधार कर्म था, जन्म नहीं। 'महाभारत' के अनुसार जिसमें वैदिक आचार देखे जाय, वह ब्राह्मण, जिसमें वह लक्षण नहीं है, वह शूद्र है। 'महाभारत' में मृग उवाच के अनुसार "इस लोक में वर्णों में कुछ भी विशेषता नहीं, सब संसार ही ब्रह्ममय है, मनुष्यगण प्रथम ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न होकर धीरे धीरे कर्मों से वर्णों में विभक्त हुए। जिन ब्राह्मणों में रजोगुण होकर काम भोगाप्रिय, क्रोध के वशीभूत होकर तथा साहसी और तीक्ष्ण होकर स्वधर्म का त्याग नहीं किया है, वे क्षत्रिय पन को प्राप्त हुए हैं; जिन्होंने रज और तमोगुण मुक्त होकर पशुपालन और कृषि का आश्रय करा लिया, वे वैश्यपन को प्राप्त हुए; जो तमोगुण युक्त होकर हिंसक लुब्ध सर्व कर्मोपजीवी मिथ्यावादी और शौच भ्रष्ट हुए, वे द्विज शूद्रत्व को प्राप्त हुए।[2]

'छांदोग्य उपनिषद' के अनुसार जाति का आधार कर्म नहीं, जन्म है। यदि कर्म से ही वर्णविविभाग होता तो निरन्तर शस्त्रधारणकर्ता परशुरामजी क्षत्रियवर्ण में में गिने जाते और महात्मा द्रोणाचार्य और कृपाचार्य निरंतर यजुर्वेद के पारंगत होने से ब्राह्मणत्व से हीन होकर क्षत्रिय हो जाते।[3]

'मनुस्मृति' के अनुसार चारों वर्णों में समान जातिवाली अक्षय योनि स्त्रियों में विवाहपूर्वक अनुलोभ विधि अर्थात् ब्राह्मण से ब्राह्मणी में, क्षत्रिय से क्षत्रिया से जो संतान उत्पन्न होती है, वह अपने पिता की जाति की होती है।[4] याज्ञवल्क्य ऋषि के अनुसार सवर्णों की सवर्णा

1. जाति भास्कर, पृ. 17
2. वही, पृ. 21-22
3. वही, पृ. 25
4. वही, पृ. 25

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्री में वही जाति उत्पन्न होती है, जो उसके पिता की है। अत्रि मुनि के अनुसार ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण संस्कारों से द्विज होता है, विद्या से विप्र और तीनों वेदों के ज्ञान से श्रोत्रिय कहाता है[1] -,

जन्मना ब्राह्मणों क्षेयं संस्कारैद्विज उच्यते।
विद्ययायाति विप्रत्वं श्रेत्रिय स्त्रिभिरेव च।।

महाभाष्यकर के अनुसार तपस्या, शास्त्र और योनि- यह तीन ब्राह्मण के कारक हैं।

तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येत द्वा ब्राह्मणकारकम्।
तप श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एव सः।।

'मनुस्मृति' के अनुसार सातवीं ब्राह्मण कन्या शूद्र को उत्पन्न करती है। इस प्रकार सातवीं पीढी में शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इस जाति व्यवस्था का आधार कर्म न होकर जन्म था।

विश्वामित्र और कण्व को पुराणों में क्षत्रिय कहा है। आश्वलयन श्रौत्र सूत्र के अनुसार विश्वामित्र, जमदाग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ट, काश्यप और अगस्त्य- ये सब ब्राह्मणों के पूर्वपुरुष है। इन आठों में चार को ब्राह्मण गौत्रों का मूल माना जाता है। 'महाभारत' में कहा गया है कि अंगिरस, काश्यप, वशिष्ट और भृगु, वैदिक आर्यों के प्राचीनतम पुरोहितों की संतान चलते हैं। अथर्ववेद में ब्राह्मण को पृथ्वी का देवता कहा गया है।[2]

जाति व्यवस्था ने हमारे धार्मिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। धर्म और जाति एक दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हैं।[3] यह जाति व्यवस्था देहान्तर और जन्मजन्मान्तरवाद पर आधारित है। देहान्तरवाद हिन्दूवाद का मूलाधार है।[4] जाति समाज की एक अनिवार्य संस्था है।[5]

जाति व्यवस्था में ब्राह्मणों की प्रभुता सर्वत्र स्वीकार की गई है।[6] ब्राह्मणों की श्रेष्ठता सब स्थानों पर प्रतिपादित है। शायद ही कहीं इनकी श्रेष्ठता पर विवाद उठा हो।[7]

---

1. जाति भास्कर, पृ. 27
2. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन धर्म का इतिहास, पृ. 46
3. Castes in India, Page XVII
   Caste is no more than a fragment of the work, which has reshaped the whole fabric of religious Life.
4. वही, पृ. XVII
   The doctrmie of metempsyosis is the corner stone of Hinduism
5. वही, पृ. 13
   It is an institution and an essential one.
6. वही, Page 18
   The pivot of this hierarchy is the recognised superiority of Brahminic caste and its numerous branches.
7. वही पृ. 19
   Brahmins hold a dominant pisition every where, It is rarely that their superiority has been disputed.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रिजले ने जाति की परिभाषा गौत्र की दृष्टि से की है। इसके अनुसार, जाति परिवारों का एक संकलन है, जो एक काल्पनिक पूर्वज, मानवीय या दैवी से सामान्य उत्पत्ति का दावा करते हैं। ब्लण्ट का मत भी रिजले के मत से भिन्न नहीं है। ब्लण्ट के अनुसार एक जाति एक अन्तर्विवाह वाला समूह या अन्तर्विवाह करने वाले समूहों का संकलन है, जो अपने सदस्यों पर सामाजिक सहवास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबंध लगाता है, एक सामान्य परम्परागत व्यवसाय को करता है तथा एक सामान्य उत्पत्ति का दावा करता है तथा साधारणतया एक सजातीय समुदाय को बनाने वाला समझा जाता है। मजूमदार और मदान के अनुसार एक जाति एक बंद वर्ग है।[1] मार्टिण्डेल और मोनेक्सी के अनुसार " जाति व्यक्तियों का समूह है, जिनके कर्तव्यों और विशेषाधिकारों का जादू अथवा धर्म दोनों से समर्थित तथा स्वीकृत भाग जन्म से निश्चित होता है।"[2] केतकर के अनुसार जाति दो विशेषताएं रखने वाला समूह है- 1. सदस्यता उन्हीं तक सीमित रहती है, जो सदस्यों से उत्पन्न होते हैं और उनमें इस तरह उत्पन्न सभी व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। 2. सदस्यों की एक अनुल्लंघनीय सामाजिक नियम द्वारा समूह से बाहर विवाह करने से रोक दिया जाता है।[3] कूले के अनुसार, जब एक वर्ग निश्चित रूप से आनुवांशिक हो जाता है, तब हम उसे जाति कहते हैं।[4] 'मेकाइवर और पेज' के अनुसार, जब स्थिति पूरी तरह पूर्वनिश्चित हो तथा मनुष्य बिना किसी परिवर्तन के आशा के अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होते हों, तब वर्ग जाति का रूप धारण कर लेता है।[5] ग्रीन के अनुसार " जाति स्तरीकरण की ऐसी अवस्था है, जिसमें गतिशीलता, सामाजिक स्थितियों की सीढ़ी में ऊपर नीचे जाना कम से कम विचार की दृष्टि से नहीं हो सकता। एक व्यक्ति जन्म से प्राप्त स्थिति उसकी आजीवन स्थिति होती है। जन्म व्यक्ति के व्यवसाय, निवास स्थान, जीवन पद्धति, साथियों तथा उस समूह का निश्चय करता है, जिसमें उसे अपना जीवनसाथी चुनना है। एक जाति व्यवस्था में सदैव यह विचार सम्मिलित होता है कि नीची जाति के लोगों के साथ शारीरिक अथवा अन्य किसी प्रकार का सामाजिक सम्पर्क भी ऊँची जाति के व्यक्तियों को पतित करने वाला हो सकता है। जातिप्रथा कानून द्वारा रक्षित और धर्म द्वारा स्वीकृत होती है।"[6]

1. Majumdar & I.N. Madan, An Introduction in Social Anthropology, Page 22 – A Caste is a closed class
2. Martindale & Monachesi, Elements of Sociology, Page 529
   A caste as an aggrogate of persons whose share of obligation & privileges is fixed by birth, sanctioned & supported by magic and or religion.
3. Ketkar, History of Caste in India, Page 15
   A caste is a social group having two characterstics (1) Membership is confined to those who are born of members and includes all persons so born. (II) The members are forbidden by an inexorable social law to marry outside the group.
4. Cooley, C.H. Social Organisation, Page 11.
   When a class is somewhat strictly hereditary, we may call it a caste.
5. MacIver & Page, Sociology
   When status is whoely predetermined, so than men are born to their lot in life without any hope of changing it, then the class takes the form of caste.
6. Green, Sociology
   Caste is a system of stratification when mobility, movement up and down the status ladder atleast ideally may not occur. A persons ascribed status in his life time status.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस प्रकार जाति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। आज परस्पर बंधन टूट रहे हैं। जाति केवल समूह सूचक नाम रह गया है। अन्तर्जातीय विवाह हो रहे हैं, खानपान और जीवनपद्धति के बंधन टूट रहे हैं। जाति ने वर्ग का रूप ले लिया है। निश्चित रूप से जाति एक आनुवांशिक, अन्तर्विवाही समूह है, जो सामाजिक संस्तरण में व्यक्ति की स्थिति, व्यवसाय आदि निश्चित करता है।[1] इस प्रकार जाति जन्मजात होती है, इसमें खानपान सम्बन्धी नियम होते हैं, अधिकांश जातियों के व्यवसाय निश्चित होते हैं, सामान्यत: जाति में अन्तर्विवाह होते हैं और उसमें ऊँच नीच के कारण उसका स्तरीकरण होता है।

डॉ. घुरिये के अनुसार 'भारत में जाति इण्डोआर्यन संस्कृति का एक ब्राह्मण बालक है।'[2] परम्परागत सिद्धांत के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जांघों से और शूद्र चरणों से उत्पन्न हुए। नेसफिल्ड के अनुसार व्यवसाय ही भारत में जाति प्रथा के उद्गम के लिये उत्तरदायी है। शरतचन्द्र राय के अनुसार जाति प्रथा की उत्पत्ति इण्डोआर्यन लोगों की वर्ण व्यवस्था, पूर्व द्रविड़ लोगों की जनजाति व्यवस्था और द्रविड़ लोग की व्यावसायात्मक पद्धति के परस्पर प्रभाव और संघर्ष से हुई और इण्डोआर्यन लोगों के कर्मसिद्धान्त ने इसे दृढ़ रूप प्रदान किया।[3] प्रजातिक सिद्धानत के अनुसार जाति का स्तर रक्त की शुद्धता के पृथक्करण पर निर्भर है। मजूमदार के अनुसार "जाति की स्थिति पृथक्करण की सीमा पर निर्भर करती है।[4]" माना के अनुसार जातिप्रथा की उत्पत्ति अनार्य जातियों के धार्मिक विश्वासों और नियमों से हुए। इबेटसन ने जातिप्रथा की उत्पत्ति का कारण जनजातियां, व्यावसायिक श्रेणियां और धर्म माना। होकार्ट के अनुसार समाज का विभाजन धार्मिक प्रथाओं के कारण हुआ। सेनार्ट ने जातिप्रथा की उत्पत्ति को भोजन सम्बन्धी निषेधों के आधार पर समझाया है। हट्टन की बात अधिक उपयुक्त लगती है। इनके अनुसार "यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि जाति व्यवस्था कई भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक कारणों की अन्त:क्रिया का स्वाभाविक परिणाम है।[5]" इस प्रकार जाति व्यवस्था एक जटिल व्यवस्था है और उसकी उत्पत्ति जटिल परिस्थितियों से हुई है।

जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को संगठित करने का कार्य किया। हट्टन के अनुसार तब यह समझा जा सकेगा कि जाति का एक महत्वपूर्ण कार्य, सम्भवत: उसके सब कार्यों में सबसे

---

1. Green, Sociology
   Birth dominates one"s occupation, place of residence, style of life, personal associates, and the group from amongst whom one must find a mate. A caste system always includes the notion than physical or some form of social system is also protected by law and sanctified by religion.
2. डा. रामनाथ शर्मा, और डा. राजेन्द्र शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, पृ. 67
3. भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, पृ. 71-72
4. Majumdar, D.N. Races & Castes of India, Page 292
   We should think that the Caste depends upon the degree of purity of blood and extent of isolation maintained by the social groups.
5. Hutton, J.H. Casta in India, Page 188
   It is urged emphaticelly that the Indian Caste system is the natural result of number of geographical, social, religions, and economic factors.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अधिक महत्वपूर्ण और वह जो सर्वोपरि है जो भारत में जाति को एक अद्वितीय संस्था बना देता है, वह भारतीय समाज को संगठित करना है।[1] गिलबर्ट ने माना है "भारतवर्ष में जातियों की एक व्यवस्था विकसित की है, जो सामाजिक समन्वय की एक योजना के रूप में संघर्षरत राष्ट्रों की यूरोपीय व्यवस्था की तुलना में खरी उतरती है।[2]" जातिप्रथा ने सुप्रजनन की शुद्ध रेखा को बनाए रखा। सेनविक के अनुसार "भारतीय जाति व्यवस्था अन्तर्जातीय विवाह तथा गौत्र बहिर्विवाह द्वारा सुप्रजनन की शुद्ध रेखा (Pure lines of Genetics) को बनाए रखने की उत्तम पद्धति है।"[3] शेरिंग के शब्दों में "जाति स्वच्छता और व्यवस्था की वृद्धि करती है और किसी अर्थ में हिन्दूसमुदाय के सब वर्गों में एकता का बंधन है।"[4] जाति आनुवंशिक व्यवसायों का सबसे दृढरूप है। इस प्रकार भारत में जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को संगठित किया, राजनीतिक और सामाजिक स्थिरता प्रदान की, सुप्रजनन की शुद्ध रेखा को बनाए रखा, सामाजिक और मानसिक सुरक्षा प्रदान की, आनुवंशिक व्यवसायों से व्यापारिक संघ का कार्य किया, प्रौद्योगिक और यांत्रिक प्रशिक्षण दिया और धार्मिक कार्य के साथ सहयोग और भ्रातृत्व का प्रचार किया।

दूसरी ओर जातिव्यवस्था ने स्वस्थ जनतांत्रिक व्यवस्था में बाधा डाली है; स्तरीकरण के द्वारा सामाजिक विघटन किया है; अस्पृश्यता का पोषण किया; हिन्दू समाज को क्षीण किया; धन और श्रम का असमान वितरण किया; शिल्पकला का ह्रास किया और सामाजिक प्रगति में बाधा पहुँचाई।

के. एम. पन्निकर ने जाति व्यवस्था को आज के संदर्भ में घोर अप्रजातांत्रिक माना है। इनके अनुसार 'जनतंत्र और जाति पूर्णतया विरुद्ध है। एक जन्म की समानता पर आधारित है, दूसरा असमानता पर। एक सामाजिक सम्मिलन से बनता है, दूसरा सामाजिक बहिष्करण से। जनतंत्र वर्ग की सीमाओं को तोड़ने की चेष्टा करता है, जाति उसको बनाए रखना चाहती है। सभी महत्वपूर्ण विषयों में जाति और जनतंत्र मूलरूप में विरुद्ध हैं।'[5]

---

1. Hutton, J.H. Castes in India, Page 119
   It will be understood then that one important function of caste, perhaps the most important of all its functions, and the one, which above all other makes Caste in India a unique institution, is or has been to integrate society territorial nationalities.
2. Gilbert, People of India, Page 82
   India has developed a system of castes which as a scheme of social adjustment compares rather fovourarly with the Europeon system of warring.
3. भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, पृ. 84
4. Sherring, Hindu Tribes & Castes, Page 279
   Caste promotes cleanliness & order and is in a certain sense a bond of union among all classes of Hindu Society.
5. Pannikar, K.M., Caste & Democracy, Page 37
   Democracy & Caste are totally opposed as we have tried to show, then one is based on equality & other inequality of birth. The one is actuated by the principle of social inclusion, the other is by the principle of social exclusion. Democracy tries to break down the barriers of class, caste seeks to perpetuate then, Democracy imparts universal education in order that class consciousness might vanish, caste refuses, education, exept to the governing class.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बदलती परिस्थितियों ने जातियों ने अपने स्वरूप को बदला है और अब इसे अराष्ट्रीय और अप्रजातांत्रिक व्यवस्था नहीं कह सकते हैं। यह कहना भी भूल है कि जाति केवल विश्रृंखलित सामाजिक संस्था है, जो भारतवर्ष के वातावरण को दुर्गंध से भर रही है। केवल राजनीतिक और कुछ राजनीतिक दलों के कारण सामाजिक समानता के नाम पर जातिवाद का जहर फैल रहा है, जिससे हमारा जनतंत्र को खतरा है। जनतंत्र को खतरा जातियों से नहीं, चुनाव की राजनीति में आंकठ डूबे राजनीतिज्ञों से है।

ओसवंश से पहले : क्षत्रिय और राजपूत

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार वीर संवत् 70 वर्ष बाद ओसियां में प्रतिबोध पाकर जो क्षत्रिय जैन बने, वे 18 गोत्रों के थे।[1] भाटों के अनुसार 222 वि.सं. में जो क्षत्रिय जैन बने, वे क्षत्रियों के 18 गोत्रों के थे। ओसवाल जाति का उद्‌गम मूल क्षत्रिय माना जाता है। कालांतर मैं जैन धर्म के प्रभाव से हिंसा छोड़कर ये व्यावसायी बने। ओसवंश की उत्पत्ति क्षत्रियों और राजपूतों से मानी जाती है, इसलियेउस बात की अपेक्षा है कि राजपूतों की उत्पत्ति के रहस्य की छानबीन की जाय।

इस सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित है।

राजपूत विदेशी हैं।

राजपूत मिश्रित जाति हैं।

राजपूत विशुद्ध आर्यों की संतान हैं।

क्या राजपूत विदेशी है ?

कतिपय इतिहासकारों ने राजपूतों की उत्पत्ति के प्रश्न को जटिल बना दिया है। विलियम क्रुक और डॉ. वी.एस. स्मिथ आदि विदेशी इतिहासकारों ने राजपूतों को विदेशी जातियों की संतान ही मान लिया है।[2] कर्नल टाड के अनुसार राजपूतों के स्वभावों और उनकी आदतों से भी इस बात का साफ पता चलता है कि वे और शक लोग किसी समय एक थे और ठंडे प्रदेश में एक साथ रहा करते थे। इसका प्रमाण है कि शक लोगों की सभी बातें राजपूत जातियों में पाई जाती हैं। शीत प्रधान देश के रहने वाले शकों के स्वभाव और उनकी आदतों को अपना लेना गर्म देश के निवासियों के लिये सम्भव न था। शक लोगों की वीरता, उनकी आदतें और उनके विश्वास राजपूतों में पूर्णरूप से देखने को मिलते हैं। अनेक प्रकार की सामाजिक प्रथाओं के साथ साथ अश्वमेघ यज्ञ की प्रथा भी राजपूतों में वही है, जो शक लोगों में पाई गई है।[3]

कर्नल टाड यह भी कहते हैं कि सती प्रथा, अश्वमेघ यज्ञ, सूर्यपूजा, शस्त्रों और घोड़ों की पूजा और मद्यपान आदि प्रथाएँ राजपूतों ने ज्यों की त्यों शकों और हूणों से ली है। उनका मत है कि पाँचवीं और छठी शताब्दी से पहले राजपूत शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। वे चंदेल,

---

1. सोहनराज भंसाली, ओसवाल वंश: अनुसंधान के आलोक में, पृ. 10
2. ठाकुर ईश्वरसिंह मडाढ, राजपूत वंशावली, पृ. 1
3. कर्नल टाड, राजपूताने का इतिहास, पृ. 38

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राठौड़ ओर गहरवार आदि वंशों को विदेशियों से उत्पन्न हुआ मानते हैं।[1] उनका मत है कि राजपूतों के कुछ वंश आर्यों के और कुछ विदेशियों की संतान है।[2]

भण्डारकर ने भी राजपूतों को विदेशियों की संतान माना है। उनका मत है कि उत्तरी पश्चिमी भारत गुजरात में बसी गूजर जाति, जिनका हूणों का निकट सम्बन्ध है, स्वयं को राजपूत ही मानते हैं।[3]

इतिहासकारों ने राजपूतों को विदेशियों की सन्तान मांना, क्योंकि प्राचीन साहित्य में राजपूत शब्द उपलब्ध नहीं है।

डा. स्मिथ ने राजपूतों के विदेशी मत को स्वीकार कर कहा कि शक, गुर्जर और हूण जातियां शीघ्र ही हिन्दू धर्म में मिलकर हिन्दू बन गई। उनमें से जिन कुटुम्बों और शाखाओं ने कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया, वे तत्काल क्षत्रिय राजवर्ण में मिला दिये गये हैं। वे लिखते हैं कि इसमें कोई संदेह नहीं कि परिहार और उत्तर के कई राजपूत वंश इन्हीं जंगली समुदायों से निकले हैं, जो ईसा की पांचवी या छठी शताब्दी में भारत में आए थे। उन्होंने हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया और उन्हीं से चंदेल, राठौड़, गहरवाड़ आदि प्रसिद्ध राजपूत वंश निकले और उन्हीं ने अपनी उत्पत्ति को प्रतिष्ठित करने के लिये सूर्य चंद्र से जा मिलाया।[4]

विलियम क्रुक ने भी यह दलील दी है कि चूंकि वैदिक क्षत्रियों और मध्यकालीन राजपूतों के समय में इतना अंतर है कि दोनों के सम्बन्धों को सच्चे वंशक्रम से नहीं जोड़ा जा सकता, इसलिये इनकी मान्यता यह है कि जो शक, शीचियन तथा हूण आदि विदेशी जातियां हिन्दू समाज में स्थान पा चुके थे और देश रक्षक के रूप में सम्मान प्राप्त कर चुके थे, उन्हें महाभारत और महाभारत कालीन क्षत्रियों से सम्बन्धित कर सूर्य और चंद्रवंशी मान लिया गया।[5]

राजपूत विशुद्ध आर्य हैं

यह भ्रामक धारणा है कि राजपूत विदेशी हैं। वाल्मीकि रामायण में भी अश्वमेघ का उल्लेख है, इसलिये इस आधार पर राजपूतों का उद्‌गम शकों से मानना उचित नहीं है।

इन विदेशी विद्वानों का मत कल्पना की उड़ान है। राजपूतों की जिन प्रथाओं को कर्नल टाड ने शकों और हूणों से ली गई बताते हैं, वे प्रथाएं तो यहाँ वैदिक युग में वर्तमान थी। वैदिक युग में जब अपने पति जलंधर की मृत्यु का समाचार पतिव्रता वृंदा सुनती है, तो तुरंत चिता पर सती हो जाती है। रावण के बलात्कार करने पर कुशुध्वज ऋषि की पुत्री वेदवती अपने अपमान की पीड़ा न सहन करके तुरंत सती हो गई थी। रावण की पुत्रवधू सुलोचना और महाभारत

---

1. राजपूत वंशावली पृ. 1
2. वही, पृ. 1
3. वही पृ. 2
4. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 31
5. वही, पृ. 32

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में पाण्डु की पत्नी माद्री का सती होना इतिहास प्रसिद्ध है। इसी तरह कृष्ण के साथ उनकी आठों पटरानियां और बलराम के साथ रेवती सती हुई थी।[1]

अश्वमेघ और राजसूय यज्ञ भी प्राचीन आर्यों की प्रथाएं हैं। रामायणकाल में राजा जनक ने स्वयंवर यज्ञ, राजा राम ने अश्वमेघ यज्ञ, महाभारत में राजा द्रुपद ने द्रोपदी स्वयंवर यज्ञ और युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किये थे। इसी प्रकार सूर्य की पूजा, शस्त्रों की पूजा तथा अश्वमेघ यज्ञ, जिसे कर्नल टाड घोड़ों की पूजा कहते हैं, प्राचीन समय में भी विद्यमान थी।[2]

सूर्यवंश और चंद्रवंश की उत्पत्ति प्राचीन साहित्य में उपलब्ध है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के अनुसार

चन्द्रादित्य मनुनांच प्रवश क्षत्रिय: स्मृत:[3]

चौहानों, चालुक्यों और गुर्जर प्रतिहारों को विदेशी गूजर कहना उपयुक्त नहीं है। चौहान महर्षि वत्स, चालुक्य महाराज उदयन तथा प्रतिहार महाराज राम के लघु भ्राता लक्ष्मण की संतान है।[4]

स्वामी दयानन्द सरस्वती, ओझाजी, डा. दशँरथ शर्मा, डॉ. गोपीनाथ शर्मा, श्री जगदीश सिंह गहलोत, डा. इन्द्र, डॉ. चिन्तामणि विनायक वैद्य, ठाकुर देवीसिंह निर्वाण और यूरोपियन इतिहासकार नेसफिल्ड, इब्टसन, टेवलीय ह्वीलर राजपूतों को विशुद्ध आर्यों की सन्तान मानते हैं।[5]

डॉ. वैद्य के अनुसार जातीय परम्पराओं और सभी सम्भावनाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि राजपूत विशुद्ध आर्य है और वे विदेशियों की सन्तान नहीं है।[6]

ओझाजी ने माना है कि राजपूतों और विदेशी रस्मोरिवाज में जो साम्यता कर्नल टाड ने बताई है, वह साम्यता विदेशियों से राजपूतों ने उद्धृत नहीं की है, वरन् उनकी साम्यता वैदिक और पौराणिक समाज और संस्कृति से की जा सकती है। अतएव उनका कहना है कि शक, कुषाण या हूणों के जिन रस्मोरिवाज और परम्पराओं का उल्लेख सभ्यता बताने के लिये कर्नल टाड ने किया है, वे भारतवर्ष में अतीतकाल से प्रचलित थी।[7] ओझाजी ने सिद्ध किया है कि दूसरी शताब्दी से सातवीं तक क्षत्रियों के उल्लेख मिलते हैं और मोर्यों और नन्दों के पतन के बाद भी क्षत्रिय होना प्रमाणित है। कटक के पास उदयगिरि के वि.सं. पूर्व की दूसरी शताब्दी के राजा खारवेल के लेख में कुसुम्ब जाति के क्षत्रियों का उल्लेख है। इसी तरह नासिक के पास पाण्डव गुफा में वि.सं. के दूसरी शताब्दी के लेख में क्षत्रियों का वर्णन मिलता है। गिरनार पर्वत के 150 ई पूर्व

1. राजपूत वंशावली, पृ. 2
2. वही, पृ. 2-3
3. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 10-15
4. राजपूत वंशावली, पृ. 5
5. वही, पृ. 7
6. वही, पृ. 7
7. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 32

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के लेख में यौधयों को स्पष्ट कर क्षत्रिय लिखा है। तीसरी शताब्दी के आसपास जग्गयपेट तथा नागार्जुनी कोंड के लेखों में इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का नामोल्लेख है।[1]

श्री जगदीश सिंह गहलोत का भी मत है, "मुसलमानों के आक्रमण तक यहाँ के राजा क्षत्रिय कहलाते थे। बाद में उनका बल टूट गया और ये स्वतंत्र राजा के स्थान पर सामन्त, नरेश हो गये। मुसलमानों के समय में ही इन शासक राजाओं की जाति के लिये राजपुत्र या राजपूत शब्द काम में आने लगा।[2]"

ओझाजी का मत है, मुसलमानों के राजत्वकाल में क्षत्रियों के राज्य क्रमशः अस्त हो गये और जो बचे उनको मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, अतः वे स्वतंत्र राजा न रहकर सामन्त से बन गये। ऐसी दशा में उनके लिये मुसलमानों के समय में राजवंशी होने के कारण "राजपूत' नाम का प्रयोग होने लगा।

वस्तुतः राजपूत मिश्रित जाति भी नहीं है, क्योंकि हिन्दू धर्म, विशेषकर राजपूतों के नियम और उपनियम इतने कठोर थे कि उसमें दूसरे धर्मानुयायी को प्रविष्ट न होने दिया जाता था। यहाँ की वर्णव्यवस्था और राजपूतों के नियम ईस्वी शताब्दी के बाद तो इतने कठोर हो गये कि किसी भी क्षत्रिय की जरा सी गल्ती होने पर उसे जाति से निकाल दिया जाता था।[3]

अतः राजपूत जाति न विदेशी है और न मिश्रित, किन्तु विशुद्ध आर्यों की सन्तान है।

अग्निवंश का रहस्य

पंवार, परमार, चौहान (चाहमान), चालुक्य तथा प्रतिहार (गुर्जर प्रतिहार) इन 4 वंशों को कई इतिहासकार अग्निवंशी मानते हैं। इन मतों का उल्लेख सर्वप्रथम चन्दरबरदाई ने अपने ग्रंथ 'पृथ्वीराजरासो' में किया है। चन्दरबरदाई का मत है कि जब परशुराम ने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से शून्य कर दिया, तो राक्षसों ने ऋषियों को सताना शुरू कर दिया। राक्षस ऋषियों द्वारा रचाये गये यज्ञों में हाड़मांस आदि डालकर अपवित्र कर विध्वंस कर दिया करते थे। ऐसी स्थिति में वशिष्ठ आदि कई ऋषियों ने आबू पर्वत पर एक यज्ञ रचाया और प्रभु से प्रार्थना की कि हमारी रक्षा के लिए एक शक्तिशाली जाति उत्पन्न की जाय। कहते हैं कि उस यज्ञ में चार शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने नाम पर उपरोक्त चार वंशों को चलाया।[4] मुहणोत नैनसी ने अपनी ख्यात में, सूर्यमल मिश्रण ने 'वंश भास्कर' में, कवि धनपाल ने 'तिलक मंजरी' में, अबुलफजल ने 'आइने अकबरी' में, कवि जोधराज ने 'हम्मीर रासो' में तथा पद्मगुप्त ने 'नवसाहसांक चरित' में इस मत की पुष्टि की है।[5]

यह मत केवल मात्र कवियों की मानसिक कल्पना का फल है। कोई इतिहास का

---

1. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ. 41-76
2. जगदीश सिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास, पृ 7
3. राजपूत वंशावली, पृ. 6
4. वही, पृ. 8
5. वही, पृ. 8-9

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्यार्थी यह मानने को उद्यत नहीं हो सकता कि अग्नि से भी किसी का सृजन होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्दरबरदाई वशिष्ठ द्वारा अग्नि से इन वंशों की उद्भूति से यह अभिव्यक्त करता है, जबकि विदेशी सत्ता से संघर्ष करने की आवश्यकता हुई तो इन वंशों के राजपूतों ने अपने आपको शत्रुओं से मुकाबला करने को सजग कर दिया।[1]

छठी शताब्दी से 16वीं शताब्दी के अभिलेखों तथा साहित्यिक ग्रंथों की सामग्री हमें यह प्रमाणित करने में सहायता पहुँचाती है कि इन चार वंशों में तीन वंश सूर्यवंशी और एक चन्द्रवंशीय थे। राजशेखर ने महेन्द्रपाल को रघुकुल तिलक की उपाधि से अलंकृत किया है। इसी तरह कई दानपत्रों से सोलंकियों का चंद्रवंशी होना प्रमाणित है। बिहारी प्रस्तर अभिलेख में चालुक्यों की उत्पत्ति चन्द्रवंशीय बतायी गई है। हर्ष अभिलेख, 'पृथ्वीराजविजय' काव्य तथा 'हमीर महाकाव्य' से चौहान सूर्यवंशीय क्षत्रिय की संतान है। परमारों के सम्बन्ध में जहाँ तहाँ उल्लेख मिलते हैं, उनमें उदयपुर प्रशास्ति, पिंगल सूत्रवृति, तेजपाल अभिलेख आदि मुख्य है, यहाँ इन्हें अग्निवंशीय नहीं बताया गया है।[2] इस प्रकार चार क्षत्रियों को अग्निवंशीय कहना बनावटी और अव्यावहारिक है। 'पृथ्वीराजरासो' की प्रामाणिकता ही संदिग्ध है, इसलिये केवल 'पृथ्वीराजरासो' के आधार पर चार क्षत्रिय गोत्रों को अग्निवंशीय कहना कदापि उचित नहीं। डॉ. दशरथ शर्मा इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह भाटों की कल्पना की एक उपज मात्र है।[3]

सूर्य और चंद्रवंशीय मत

जहाँ अग्निमत का खण्डन ओझा जी ने किया है, वहाँ वे राजपूतों को सूर्यवंशीय और चंद्रवंशीय मानते हैं। वेदप्रतिपाद्य क्षत्रिय जाति में सूर्यवंश विख्यात है, दूसरा चंद्रवंश है, इन्हीं वंशों के क्षत्रियों के नाम से भी अनेक वंश विख्यात हुए हैं।[4] ओझाजी ने अग्निवंशीय तीन गोत्रों को सूर्यवंशीय और एक को चन्द्रवंशीय कहकर उदाहरण के लिये 1028 वि. (971 ई.) के नाथ अभिलेख में, 1034 ई (971ई) के आटपुर लेख में, 1324 वि (1285 ई) के आबू के अभिलेख में तथा 1485 वि (1428 ई) के श्रृंगी ऋषि के लेख में गुहिलवंशीय राजपूतों का रघुकुल से उत्पन्न बताया गया है। इसी तरह 'पृथ्वीराज विजय', 'हमीर महाकाव्य', 'सुजानचरित्र' ने चौहानों को क्षत्रिय माना है। वंशावली लेखकों ने राठौड़ों को सूर्यवंशी, यादवों, भाटियों और चंद्रावली के चौहान को चंद्रवंशीय निर्दिष्ट किया है।[5] ओझा जी के अनुसार राजपूत प्राचीन क्षत्रियों के वंशधर हैं और जो लेखक ऐसा नहीं मानते, उनका कथन प्रमाण शून्य है। इस मत को सभी राजपूतों की उत्पत्ति के लिये स्वीकार करना आपत्तिजनक है, क्योंकि राजपूतों को सूर्यवंशी बताते हुए उनका वंशक्रम इक्ष्वाकु से जोड़ दिया गया है, जो प्रथम सूर्यवंशीय राजा हैं। बल्कि सूर्य और चंद्रवंशीय समर्थक भाटों ने तो राजपूतों का सम्बन्ध इन्द्र पद्मनाम, विष्णु आदि से बताते हुए

---

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 29
2. वही, पृ. 29-30
3. वही पृ. 30
4. जातिभास्कर, पृ. 209
5. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 30

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक काल्पनिक वंशक्रम बना दिया है। इससे स्पष्ट है कि वे भी इनकी उत्पत्ति के विषय में किसी निश्चय पर नहीं पहुँचने पाये हैं। अलबत्ता इस मत का एक ही उपयोग हमें दिखायी देता है कि ग्यारहवीं शताब्दी से इन राजपूतों का क्षत्रियत्व स्वीकार कर लिया गया।[1] कर्नल टाड के अनुसार व्यास ने सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु से लेकर रामचन्द्र तक सूर्यवंश के सत्तावन राजाओं का उल्लेख किया है। .....ययाति से चन्द्रवंश प्रारम्भ होता है। ..... युधिष्ठिर, जरासंध और बहुरथ तक जो कृष्ण और कंस के समकालीन थे, ... चन्द्रवंशी थे।[2] गहलोत के अनुसार, 'सारांश यह है कि वर्तमान राजपूतों के राजवंश वैदिक और पौराणिक काल में राजन्य उग्र, क्षत्रिय आदि नाम से प्रसिद्ध सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्रियों की सन्तान है। ये न तो विदेशी ही है और न विधर्मियों के वंशज ही, जैसा कि कुछ यूरोपियन लेखकों ने अनुमान किया है।[3] लिखित साहित्य के अतिरिक्त अनेक शिलालेख भी राजपूतों को सूर्य और चंद्रवंशी बताते हैं। इनमें प्रमुख हैं प्रथम शताब्दी का उदयगिरि का शिलालेख, तेजपाल मंदिर में 1230ई. का शिलालेख जिसके अनुसार घूम्रवाल, परमार राजा सूर्यवंशी थे; सीकर जिले में हर्षनाथ के मंदिर से प्राप्त शिलालेख के अनुसार चौहानों के पूर्वज सूर्यवंशी थे; अजमेर में ओझाजी को प्राप्त शिलालेख में सूर्यवंश की भारत में प्रस्तुति का वर्णन किया गया है; चित्तौड़ की जयदेवी के मंदिर से प्राप्त 14वीं शताब्दी का शिलालेख जिसमें सूर्यवंश का वर्णन है; चिड़ावा में प्राप्त 15वीं शताब्दी का शिलालेख वंशावली देता है और जालौर और नाडौल में प्राप्त 13वीं शताब्दी के शिलालेख जिसमें राठौरों को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है।[4] डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार, "अग्निकुण्ड का सिद्धान्त चारण व भाटों की मानसिक कल्पना थी, जिसका एक मात्र आधार अपने संरक्षकों के लिये उच्चकुल की तलाश करना था। राजपूत सूर्य और चन्द्रवंशी थे।[5]"

ब्राह्मणों से उत्पत्ति

डा. भण्डारकर प्रथम विद्वान थे, जिन्होंने चौहानों की उत्पत्ति किसी विदेशी (खज्जर) ब्राह्मण से बताई है। फिर तो कई विद्वानों और लेखकों ने राजपूतों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से बता दी। मण्डोर के प्रतिहार ब्राह्मण के वंश के थे। इसी प्रकार आबू के प्रतिहार वशिष्ट ऋषि की सन्तान थे। आधुनिक इतिहासकार डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने इस बात को स्वीकार किया है कि मेवाड़ के नागर जाति के ब्राह्मण गुहेदत्त के वंशज हैं। श्री ओझाजी ने भी इस सिद्धान्त को माना है। मेवाड़ के महाराजा कुम्भा ने जयदेव के 'गीत गोविन्द' पर टीका लिखते समय स्वयं स्वीकार किया है गुहिलोत की उत्पत्ति गुहेदत्त से हुई है, किन्तु अधिकांश राजपूत इसे स्वीकार नहीं करते।

डॉ. भण्डारकर ने जहाँ गुर्जर मत को विदेशी आधार पर स्थित किया है, वहाँ यह भी प्रतिपादन किया है कि राजपूत वंश धार्मिक वंश से भी सम्बन्धित थे, जो विदेशी थे। इस मत की

---

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ. 41-78
2. वही पृ. 31
3. कर्नल टाड, राजपूताने का इतिहास, पृ. 42
4. जगदीशसिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास, पृ. 3
5. बी.एम. दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ. 9

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुष्टि के लिये वे बिजोलिया शिलालेख को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें वासुदेव के उत्तराधिकारी सामन्त को वत्सगोत्रीय ब्राह्मण बताया गया है। उनके अनुसार राजशेखर ब्राह्मण का विवाह अवन्ति सुन्दरी के साथ होना चौहानों का ब्राह्मण वंश से उत्पत्ति होने का अकाट्य प्रमाण है। 'कायमखां रासा' में भी चौहानों की उत्पत्ति वत्स से बताई गयी है, जो जमदाग्नि गोत्र से था। इस कथन भी पुष्टि सुण्डा तथा आबू के अभिलेख से भी होती है। इसी तरह भण्डारकर का मत है कि गुहिल राजपूतों की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से थी।[1] दूसरी ओर डा. ओझा तथा वैद्य इस ब्राह्मणवंशीय मत को अस्वीकार करते हैं और लिखते हैं कि जो भ्रांति डॉ. भण्डारकर को राजपूतों की ब्राह्मणों की उत्पत्ति से हुई है, वह द्विज, ब्रह्मक्षत्री, विप्र आदि शब्दों से हुई है, जिनका प्रयोग राजपूतों के अभिलेखों में हुआ है। परन्तु इनकी मान्यता है कि इनका प्रयोग क्षत्रिय जाति की अभिव्यक्ति के लिये हुआ है, न कि ब्राह्मण जाति के लिये।[2] डॉ. शर्मा ने स्वीकार किया है कि भारतवर्ष का इतिहास ऐसे कई उदाहरणों को प्रस्तुत करता है, जहाँ प्रारम्भ में ब्राह्मण होते हुए कई राजवंश क्षत्रिय पद को प्राप्त हुए। ऐसे वंशों में कण्व और शंग वंश मुख्य हैं।[3]

राजपूतों को बड़ा बताने के लिये उस समय के लेखकों, धार्मिक ग्रंथों और शिलालेखों ने कभी उन्हें दैविक शक्ति से उत्पन्न किया और कहीं उन्हें ब्राह्मणों की सन्तान बताकर सम्मानित किया। अग्निकुण्ड का सिद्धान्त बताकर उन्हें देवताओं की कृति बताना चाहा। यहाँ इतने समर्थक और अच्छा बताने वाले हैं, वहाँ उन्हें विदेशी, धर्मपरिवर्तित और आदिवासी अनार्य कहने वालों की भी कमी नहीं है। स्मिथ ने उन्हें हूण से कहा, भण्डारकर ने उन्हें नागर ब्राह्मण की सन्तान कहा, वेदव्यास ने उन्हें सूर्य और चंद्रवंशी कहा।[4]

डा. शर्मा ने भी यह स्वीकार किया है कि यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में और बाद में गुप्तकाल में कुछ विदेशी प्रजातियाँ- शक, पहलवाज (Pahlvas) और हूण भारत में आए, उत्तर भारत में बसे और वे हिन्दुओं और क्षत्रियों जैसे युद्धपरक लोगों में एकीकृत वर्ग ने उन्हें क्षत्रिय का दर्जा भी प्रदान किया है। अपनी महत्वपूर्ण परिस्थितियों के कारण वे राजपूत हुए। समय के साथ राजपूत और क्षत्रिय शब्द समानार्थक हो गये।[5]

अंत में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजपूतों की उत्पत्ति का न देवीसिद्धान्त ठीक है,

---

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ. 33-34
2. वही पृ. 34
3. वही पृ. 34
4. बी.एम. दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ. 9-10
5. G.N. Sarma, Origin of Rojputs, page 10
   The sum & substance of the following discussion lead us to believe they during the penod preceding and following the supremay of early and later Guptas, many foreign races like the Saka, the Pahlavas & Huns had come to India, settled in the northern part of the country, adopted the manners & customs of Hindus & merged in the Khstriya or other worlike people, due their value & devotion to Hinduism, the priestly class conterred upon them the status of Kshatriyas. As they enjoyed a royal position they turned themselves as Rajputs. In the course of time the Kshatriyas & the Rajputs became identical terms.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न अग्निवंशीय सिद्धान्त, न सूर्यवंशी और चन्द्रवंशीय सिद्धान्त, न ब्राह्मणवंशीय सिद्धान्त और न विदेशी सिद्धान्त। डॉ. कानूनगो के अनुसार "अग्निकुण्ड की कहानी इस प्रगतियुग में नहीं चल सकती। उनकी सूर्य और चन्द्र से उत्पत्ति एक काल्पनिक सत्य हो सकती है, लेकिन यह सत्य है कि इतिहास में उन्होंने महाकाव्यकाल के क्षत्रियों की परम्परा को बनाए रखा है।[1]" राजपूत जाति आर्यों की सन्तान है, क्षत्रियों की सन्तान है, किन्तु दीर्घकाल में थोड़े बहुत मिश्रण से इन्कार नहीं किया जा सकता। आज के युग में शुद्ध प्रजाति और रक्त की शुद्धता का आग्रह व्यर्थ है।

ओसवंश

ओसवंश की उत्पत्ति मुख्यरूप से क्षत्रियों और राजपूतों से और आंशिक रूप से अन्य जातियों से हुई है। ओसवाल जाति आर्य जाति की सन्तान है और उनकी धमनियों में क्षत्रिय आर्यों का रक्त प्रवाहित है। इस दीर्घ अवधि पर कहाँ और कब मिश्रण हुआ, इससे कौन इन्कार कर सकता है ?

• • •

1. Dr. Kanungo, Studies in Rajput History, Introduction

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

द्वितीय अध्याय

ओसवंश का प्रेरणा स्रोत : जैनमत

ओसवंश और जैनमत

ओसवंश और जैनमत एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से जुड़े हैं। ओसवंश के अस्तित्व की कल्पना जैनमत के परे नहीं की जा सकती। इस जाति की मानसिकता, इसकी नैतिकता, इसका समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र का मूलाधार जैनमत है। ओसवंश का इतिहास जैनधर्म के इतिहास से बहुत अलग नहीं है, जैनधर्म यदि एक निर्बन्ध झरना है, तो इसकी सीमा में बंधकर बहने वाली ओसवाल संज्ञक जाति को सरिता कहा जा सकता है।[1] ओसवंश की निर्झरिणी जैनमत से ही प्रवाहित है। जैनमत का सांस्कृतिक संदर्भ ओसवंश के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। जैनमत और जैनाचार्यों ने युगों युगों से जिस जीवन शैली की प्रस्थापना की, उसकी प्रयोगशाला ओसवंश है।

जैनमत: ऐतिहासिक यात्रा

प्रागैतिहासिक युग से लेकर आजतक-आदि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर आजतक जैनमत ने लम्बी यात्रा पूरी की है, उसे तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है।

1. पूर्व महावीर युग : जैनमत का प्रवर्तन और प्रवर्द्धनकाल
2. महावीर युग : जैनमत का विकासकाल
3. महावीरोत्तर युग : जैनमत का प्रसारकाल

(1) पूर्व महावीर युग : जैनमत का प्रवर्तन और प्रवर्द्धनकाल

सिन्धुघाटी में जैनमत के अवशेष

भारत में आर्यों के पूर्व सिंधुघाटी की सभ्यता वर्तमान थी। यह सभ्यता ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व की है। मोहनजोदड़ो निवासी योग की प्रणालियों से परिचित थे। श्री रामचंद्र चंदा के अनुसार "मोहनजोदड़ो से प्राप्त पत्थर की मूर्ति, जिसे पुजारी की मूर्ति समझ लिया गया है, वह मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये प्रेरित करती है कि सिन्धुघाटी की सभ्यता में योगाभ्यास होता था और योग की मुद्रा में मूर्तियां पूजी जाती थी।"[2] उस समय की खड़ी मूर्तियां योग की कायोत्सर्ग की मूर्तियां हैं।[3] डा. राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार "यह मुद्रा जैन योगियों की तपश्चर्या में विशेष रूप से मिलती है। यदि ऐसा हो तो शैवधर्म की तरह जैन धर्म का मूल भी ताम्रयुगीन सिन्धु सभ्यता तक चला जाता है।[4] वस्तुत: श्रमण परम्परा श्रमणों की योगियों की परम्परा है। मोहनजोदड़ो की

---

1. मनमोहिनी, ओसवाल: दर्शन : दिग्दर्शन, पृ 23
2. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पृ 99.
3. वही पृ. 101
4. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ 23-24

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तरह हड़प्पा से प्राप्त मूर्तियाँ भी नग्न है, जिसमें एक शिव की मूर्ति मानी गई है और दूसरी को श्री रामचन्द्र जैसे पुरातत्वविद वृषभ तीर्थंकर की मूर्ति मानते हैं। उन्होंने अपने लेख में शिश्नदेवा का अर्थ नग्नदेवता माना है।[1]

श्री रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार भी मोहनजोदड़ो की खुदाई में योग के प्रमाण मिलते हैं और जैनमार्ग के आदि तीर्थंकर ऋषभदेव थे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है, जैसे शक्ति कालांतर में शिव के साथ समन्वित हो गई। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना है कि ऋषभदेव वैदोल्लिखित होने पर भी वेदपूर्व हैं।[2]

प्रागैतिहासिक काल: आदि तीर्थंकर : 1. ऋषभदेव

जैनमत का प्रवर्तन प्रागैतिहासिक काल में आदि तीर्थंक ऋषभदेव के द्वारा हुआ। जैनमत अत्यधिक प्राचीन है। जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए। अंतिम मनु नाभिराम थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभदेव हुए, जिन्होंने अहिंसा और अनेकान्तवाद का प्रवर्तन किया है। जैनपण्डितों का विश्वास है कि ऋषभदेव ने लिपि का आविष्कार किया तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन जातियों की रचना की। भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।[3] भगवान ऋषभदेव मानव समाज के आदि व्यवस्थापक और प्रथम धर्मनायक रहे हैं।[4] वैदिक परम्परा के धर्मग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' में भी प्रथम मनु स्वायंभुव के मन्वन्तर में ही उनके वंशज अग्नीघ्र से नाभि ओर नाभि से ऋषभदेव का जन्म होना माना गया है।[5]

ऋग्वेद के 'रुद्रसूक्त' में कहा गया है कि हे वृषभ! ऐसी कृपा करो कि हम कभी नष्ट न हों।

एवं वभ्रो वृषभ चेकितान यथादेव न हुणीये न हंसी।[6]

'ऋग्वेद' के ऋषभदेव वृषभ हैं, धर्म के प्रतीक हैं और हिरण्यगर्भ भी[7]-

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्थय जात: पतिरेक आसीत।
स दाधार पृथ्वी द्याभुतिमां कस्मै देवाय हविषा विधेय॥

ऋग्वेद का हिरण्यगर्भा वास्तव में कौन है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। हिरण्यगर्भ शब्द लाक्षणिक है, यह महान् शक्तियों का प्रतीक है, किन्तु जैन मान्यता के अनुसार ऋषभदेव हिरण्यगर्भा है। 'महापुराण' में भी ऋषभदेव को हिरण्यगर्भा माना गया है।[8]

---

1. पं कैलाशचंद्रशाली, जैन साहित्य का इतिहास, पृ 106
2. आजकल, मार्च, 1962, पृ. 8
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 146
4. आचार्य हस्तीमल जी, जैनधर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 9
5. वही, पृ. 14
6. ऋग्वेद, 2-33-15
7. वही, पृ. 2-33-16
8. महापुराण 1-68

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गभ ट्ठि अस्स जस्स हिरणवुट्ठी संकचणा पडिया ।
तेणं हिरणगब्भो जयम्मि उवगिज्जरा उसभो ।।

'महाभारत' में शिव के साथ ऋषभ का नाम गिनाया है [1]:-

ऋषभत्वं पवित्राणां योगिनां निष्कल: शिव:

'शिवपुराण' में शिव का आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के रूप में अवतार का उल्लेख है।[2] ऋग्वेद और अथर्ववेद में ही नहीं, महाभारत, शिवपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि वैष्णव परम्परा के पुराण नाभिनन्दन ऋषभदेव की यशोगाथाओं से भरे पड़े हैं। पुराणों में इन्हें भगवान का आठवां अवतार माना गया है। मनुस्मृति में इनका यशोगान है। बौद्ध ग्रंथ 'आर्य मंजुश्री' में इनकी यशोगाथा है।[3]

बौद्ध साहित्य के अनुसार भारत के आदि सम्राटों में नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभपुत्र भरत की गणना की गई है। इन्होंने हेमवंतगिरि हिमालय पर सिद्धि प्राप्त की। वे व्रतपालन में दृढ़ थे। वे ही निर्ग्रंथ तीर्थंकर ऋषभ जैनों के आदि देव थे।[4]

'श्रीमद्भागवत' में ऋषभावतार का पूरा पूरा वर्णन है और उन्हीं के उपदेशों से जैनधर्म की उत्पत्ति बताई गई है। डॉ. आर.जी. भण्डारकर के अनुसार "250 ई. के लगभग पुराणों का पुनर्निर्माण होना प्रारम्भ हुआ और गुप्तकाल तक यह क्रम जारी रहा। इस काल में समय समय पर नये पुराण भी रचे गये।"[5]

पुराणों की कथाओं को कपोल कल्पित नहीं माना जा सकता। श्रीमद्भागवत में स्पष्ट उल्लेख है कि नग्नश्रमणों का धर्म के उपदेश के लिये उद्भव हुआ।[6]

भागवतकार के अनुसार सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, यश और पराक्रम आदि सद्गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम ऋषभ रखा।[7] दिगम्बर परम्परा के ग्रंथों में ऋषभ का कई स्थानों पर वृषभदेव नाम उपलब्ध होता है। धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाले हैं, इसलिये इन्द्र ने इनका नाम वृषभदेव रखा।[8] चूर्णिकार के उल्लेखानुसार ऋषभ का एक नाम काश्यप भी रखा गया।[9]

---

1. महाभारत 14-18
2. शिवपुराण 4-47-47
3. आचार्य हस्तीमल जी म., जैनधर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ. 38
4. आर्य मंजुश्री 390-91-92
5. Dr. R.G. Bhandarkar, A Peep into Early Indian History, Part I, Page 56
6. श्रीमद्भागवत् पुराण 20-5-3
   वर्हिषी तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान परमार्षिमि
   प्रसादितो नाभे प्रिय चिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां
   धर्मान् दर्शयितु कामो वातरशनानां श्रमणाना मृषीण
   मर्ह व मैकिना शुक्लया तनुवावतार ॥
7. वही, 5-4-2, पृ. 556, (गोरखपुर संस्करण)
8. आवश्यक चूर्णि, पृ 151
9. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 21

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान ऋषभदेव मानव समाज के आदि व्यवस्थापक और प्रथम धर्मनायक रहे हैं।[1] कल्पसूत्र में भगवान ऋषभदेव के पाँच नामों का उल्लेख है- 1. ऋषभ, 2. प्रथम राजा 3. प्रथम भिक्षाचर, 4. प्रथम जिन 5. प्रथम तीर्थंकर।[2] महापुराण के अनुसार भगवान ऋषभदेव जिस समय माता के गर्भ में आए, उस समय कुबेर ने हिरण्य की वर्षा की, इस कारण इनका नाम हिरण्यगर्भा भी रखा गया।[3] उत्तरकालीन आचार्यों और जैन इतिहासकारों ने भगवान ऋषभदेव को कर्मभूमि और धर्मभूमि के आद्यप्रवर्तक होने के कारण आदिनाथ के नाम से उल्लेख किया है। शताब्दियों से भगवान ऋषभदेव आदिनाथ के नाम से विख्यात है। ऋषभदेव ने सशक्त राष्ट्र का निर्माण किया, राज्य की सुव्यवस्था के लिये आरक्षक दल का निर्माण किया और राष्ट्र को 52 जनपदों में विभक्त किया, चार प्रकार की सेना और चार सेनापतियों की नियुक्ति की दण्ड व्यवस्था प्रचलित की, दण्डनायक और पदाधिकारियों की नियुक्ति की, प्रजा को स्वावलम्बी बनाया और इस प्रकार महाराज ऋषभ ने एक सुन्दर, सशक्त और सुसमृद्ध राष्ट्र के निर्माण की पूरी तैयारी की। लोकनायक और राष्ट्र स्थविर के रूप में महाराज ऋषभदेव ने विविध व्यवहारोपयोगी विधियों से तत्कालीन जनसमाज को परिचित कराया। ऋषभदेव कर्मभूमि में आगमन के समय कर्मभूमि के कार्यकलापों से नितान्त अनभिज्ञ उन भोगभूमि के भोले लोगों को कर्मभूमि के समय में सुखपूर्वक जीवनयापन की कला सिखाकर मानवता को भटकने से बचा लिया।[4]

भगवान ऋषभदेव का गृहस्थ परिवार विशाल था, उसी प्रकार उनका धर्म परिवार भी विशाल था। यों देखा जाय तो प्रभु ऋषभदेव की वीतरागवाणी को सुनकर कोई बिरला ही ऐसा रहा होगा, जो लाभान्वित एवं श्रद्धाशील न हुआ हो। अगणित नर-नारी, देव-देवी और पशु तक उनके उपासक बने।[5]

'जम्बूद्वीप प्रज्ञति सूत्र' के अनुसार चौरासी गणधर, बीस हजार केवली साधु, चालीस हजार केवली साध्वियाँ, चौरासी हजार साधु, तीन लाख साध्वियाँ, तीन लाख पचास हजार श्रावक और पांच लाख चौपन हजार श्राविकाएं थीं।[6] भगवान ऋषभ ने विशाल समुदाय को श्रमण संस्कृति में संस्कारित किया।

'श्री मद्भागवत' के अनुसार भगवान ऋषभदेव साक्षात् ईश्वर ही थे। अज्ञानियों को उन्होंने सत्यधर्म की शिक्षा दी।[7] भगवान् ऋषभ ने पुत्रों को शिक्षा देते समय कहा, "मेरे इस अवतार स्वरूप का रहस्य साधारण जनों के लिये बुद्धिगम्य नहीं है। शुद्ध तत्व ही मेरा हृदय है और उसी में धर्म की स्थिति है। मैंने अधर्म को बहुत दूर ढकेल दिया है, इसलिये सत्युरुष मुझे

---

1. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 14
2. कल्पसूत्र, 194
3. महापुराण, पर्व 12 और 15
4. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, प्रथमखण्ड, पृ. 38
5. वही, पृ. 127
6. वही, पृ. 128
7. श्री मद्भागवत पुराण, 5-4-14

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋषभ कहते हैं। पुत्रो ! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतों को मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से पद पद पर मेरी उपासना करो।"[1]

भगवान् ऋषभ को युगों युगों से लोकनीति, राजनीति, धर्मनीति- इन तीन नीतियों का आदिकर्ता, कर्मवीरों और धर्मवीरों का आदि प्रवर्तक, सकल सुरासुरों का वन्दनीय और प्रथम जिन माना गया है।[2]

सार्वभौम लोकनायक और सार्वभौम धर्मनायक के रूप में ऋषभदेव की कीर्ति जगत में अक्षुण्ण रही है, इसलिये प्राचीन धर्मग्रंथों में ऋषभदेव को धाता, भाग्यविधाता और भगवान आदि लोकोत्तर नामों से अलंकृत किया गया है।[3]

भगवान ऋषभ के समय में मानव समाज किसी कुल, जाति और वंश के विभाग में विभक्त नहीं था। जब समाज में विषमता बढ़ी तब आदिनाथ ऋषभ ने वर्णव्यवस्था का सूत्रपात किया। इन्होंने सुदृढ़ और शक्तिसम्पन्न लोगों को क्षत्रिय की संज्ञा दी, कृषि और वाणिज्य में निपुण लोगों को वैश्य और जनसमुदाय की सेवा करने वालों को शूद्र की संज्ञा दी। इस प्रकार ऋषभदेव के समय में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की उत्पत्ति हुई।[4]

इस प्रकार प्रागैतिहासिक युग के उत्खनन और वैदिक और वैदेत्तर साहित्य में ऋषभदेव के अस्तित्व और स्वरूप को देखा जा सकता है। जैनमत के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से ही जिन शासन और श्रमण संस्कृति की स्रोतास्विनी प्रवाहित हुई। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के काल को जैनमत का प्रवर्तन काल कह सकते हैं।

ऐसा लगता है कि जैनमत के आदि प्रवर्तक और संस्थापक ऋषभदेव ने वर्णव्यवस्था का सूत्रपात कर परोक्ष रूप में ओसवंश का बीजारोपण कर दिया।

श्रमण परम्परा

भारत के धार्मिक इतिहास में दो भिन्न परम्पराओं के दर्शन होते हैं- उनमें से एक ब्राह्मण की है, दूसरी श्रमण की। भारतवर्ष का क्रमबद्ध इतिहास बुद्ध और महावीर के काल से प्रारम्भ होता है। उस काल से लेकर इन दोनों परम्पराओं का पृथक्त्व बराबर लक्षित होता है।[5]

सिकन्दर के समकालीन यूनानी लेखकों ने साधुओं की दो श्रेणियाँ बताई हैं- श्रमण, ब्राह्मण और पतंजलि ने अपने महाभाष्य में श्रमण और ब्राह्मण में शाश्वत विरोध बतलाया है।[6]

श्वेताम्बर जैन आगमों में पाँच प्रकार के श्रमण बताए गये हैं - निर्ग्रंथ, शाक्य, तापस, गैरुक और आजीवक। वाल्मीकि रामायण में ब्राह्मण, श्रमण और तापसों का पृथक पृथक उल्लेख किया गया है।

---

1. श्री मद्भागवत पुराण 5-4-14
2. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड पृ 141
3. वही, पृ. 23
4. महापुराण 16-243, 246
5. महाभाष्य-2-4-12
6. वही, 18, पृ 28

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर जैन अगमों में आठ प्रकार के ब्राह्मण परिव्राजक और आठ प्रकार के क्षत्रिय परिव्राजक बतलाए गए हैं।

महावीर और बुद्ध दोनों के अनुयायी साधु श्रमण कहे जाते थे और महावीर तथा बुद्ध दोनों प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् महाश्रमण कहलाये। ये दोनों क्षत्रिय थे। दोनों वेद और ब्राह्मण परम्परा के विरोधी थे। वैदिक संस्कृति में जो तत्व पीछे से प्रविष्ट हुए- आत्मविद्या, पुनर्जन्म, तप, मुक्ति, उन सबको दोनों मानते थे।

'वृहदारण्यक उपनिषद' और 'तैत्तिरिय आरण्यक' के समय में श्रमण वर्तमान थे। डा. भण्डारकर का कथन है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में ऐसे व्यक्ति मौजूद थे, जो श्रमण कहे जाते थे। वे ध्यान में मग्न रहते थे और कभी कभी मुक्ति का उपदेश देते थे, जो प्रचलित धर्म के अनुरूप नहीं होता था।[1]

श्रमणों की परम्परा को हम योगियों की परम्परा कह सकते हैं।

मथुरा म्युजियम में दूसरी शती की, कायोत्सर्ग स्थित एक वृषभदेव की मूर्ति है। इस मूर्ति की शैली सिन्धु से प्राप्त मोहरों पर अंकित खड़ी हुई देवमूर्तियों के बिल्कुल मिलती है।[2]

राधामुकुद मुखर्जी ने भी चंदा के निष्कर्ष को स्वीकार कर कहा है "उन्होंने (चंदा ने) 6 अन्य मुहरों पर खड़ी हुई मूर्तियों की ओर ध्यान दिलाया है। यह मुद्रा जैन योगियों की तपश्चर्या में विशेष रूप से मिलती है, जैसे मथुरा संग्रहालय में स्थापित तीर्थंकर ऋषभ देवता की मूर्ति में। इसमें सिन्धु सभ्यता एवं ऐतिहासिक भारतीय सभ्यता के बीच की खोई हुई कड़ी का भी एक उभय सांस्कृतिक परम्परा के रूप में उद्धार हो जाता है।"[3]

मोहनजोदड़ो के निवासियों में लिंग सहित शिव को पूजने की प्रथा थी।[4] भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के संयुक्त निदेशक श्री टी.एन. रामचंद्रन ने माना है "हड़प्पा की मूर्ति के उपरोक्त गुण विशिष्ट मुद्रा में होने के कारण यदि हम उसे जैन तीर्थंकर अथवा ख्याति प्राप्त तपो महिमा युक्त जैन सन्त की प्रतिमा कहें, तो कुछ भी असत्य न होगा।"[5]

इस प्रकार मोहनजोदड़ो से प्राप्त नग्न मूर्ति को श्री रामचन्द्र चंदा ने सम्भावना रूप में ऋषभदेव की मूर्ति बतलाया है और इधर हड़प्पा से प्राप्त कबन्ध को श्री रामचन्द्रन ने ऋषभदेव की मूर्ति बतलाया है। इस कारण डॉ राधाकुमुद मुखर्जी ने माना कि शैवधर्म की तरह जैन धर्म का मूल भी ताम्रयुगीन सिन्धु सभ्यता तक चला जाता है।[6]

व्रात्य परम्परा

श्रमण परम्परा को व्रात्यों से जोड़ा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय की एक कठिन

1. Collected works of Dr. R.G. Bhandarkar, Part I, Page 10
2. Modern Review, June 1932
3. डा. राधाकुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता, पृ 23-24
4. Indian Litereature, April, 1936, Page 767
5. पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पृ 105-106
6. वही, पृ 107

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पहेली व्रात्य भी रहा है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में व्रात्य शब्द आया है।[1] नरमेध में जिन मनुष्यों का बलिदान किया जाता था, उसमें व्रात्य भी थे। दूसरी ओर अथर्ववेद में व्रात्यों को विद्वानों में उत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील और विश्वपूज्य माना है। व्रात्यों को मगध का वासी बताया गया है। मनुस्मृति में लिच्छिवियों को व्रात्य बतलाया गया है। 'महापरिनिव्वाण सुत्त' से पता चलता है कि अर्हतों और चैत्यों के अनुयायी व्रात्य कहलाते थे।[2]

डॉ. हावर ने व्रात्यों को रुद्र का अनुयायी बताया है। पाल कारपेण्टर (Paul Carpenter) ने व्रात्यों को आधुनिक शैवों का पूर्वज तथा अथर्ववेद के उक्त व्रात्य को रुद्र शिव बतलाया है, किन्तु कीथ ने लिखा कि अथर्ववेद के काण्ड 15 से इस बात का समर्थन नहीं होता कि व्रात्य रुद्र शिव है।'

जायसवाल ने व्रात्यों को अब्राह्मण क्षत्रिय माना है, जहाँ महावीर का जन्म हुआ। बेवर ने व्रात्यों को बौद्ध धर्म से सम्बद्ध माना, किन्तु वैदिक साहित्य और बौद्ध धर्म के बीच में सुदीर्घ अन्तराल है। बौद्ध धर्म जैसा अब्राह्मण धर्म जैन धर्म ही हो सकता है।

व्रात्य का सम्बन्ध व्रत से है। जैन धर्म में व्रतों का बड़ा महत्व है, वह आज किसी भी ब्राह्मणेत्तर धर्म में नहीं है।

अतः व्रात्य भ्रमणशील जैन साधु थे, जो उत्तरकाल में वज्जि या परिव्राजक कहे गये। वस्तुतः व्रात्य परम्परा श्रमण परम्परा का ही अपर नाम है।

वैदिक वाङ्मय में व्रात्य का उल्लेख है। व्रात्य के सम्बन्ध में हिरण्यगर्भ शब्द उल्लेखनीय है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में व्रात्य शब्द आया है।[3] यजुर्वेद और तैतिरीय ब्राह्मण में व्रात्य का अर्थ नरमेध की बलि सूची में आया है। महाभारत में व्रात्यों को महापापियों में गिनाया गया है।[4] अथर्ववेद में कहा गया है-

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापति समैश्यत्।[5]

व्रात्य ने अपने पर्यटन में प्रजापति को शिक्षा और प्रेरणा दी। व्रात्य को विद्वानों में उत्तम, महाधिकारी, पुण्यशील और विश्वपूज्य माना गया। इस प्रकार, 'व्रात्य शब्द व्रत से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है व्रतपुण्य कार्य में दीक्षित मनुष्य या मनुष्यों का समुदाय।[6] व्रात्यों को रुद्र अनुयायी बताया उचित नहीं है। व्रात्यों को आधुनिक शैवों का पूर्वज तथा अथर्ववेद के उक्त व्रात्य को रुद्र शिव बतलाया था।[7]

---

1. ऋग्वेद 1-163-8
2. जयचन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ 349
3. ऋग्वेद 1-163-8, 9-14-2
4. महाभारत 5-35-46
5. अथर्ववेद, काण्ड 15
6. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 31
7. Oriental Journal, Geneva, 15, Page 355-368

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथर्ववेद के आधार पर ए.बी. कीथ ने इसका निराकरण कर कहा कि यह सिद्ध नहीं होता कि व्रात्य रुद्र शिव था। श्वेताश्वर उपनिषद[1] में कहा गया है -

यो देवात् प्रभवश्च ड्रगभवश्च विश्वाधियो रुद्रो
महर्षि हिरण्यगर्भं जनयायास पूर्वम्

यदि व्रात्य हिरण्यगर्भ है, तो प्रश्न उठता है कि हिरण्यगर्भ कौन व्यक्ति है। जैन शास्त्रों में ऋषभदेव को हिरण्यगर्भ माना है।

प्रागैतिहासिक युग: अधिशेष तीर्थंकर

प्रागैतिहासिक काल के द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ से लेकर इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ और ऐतिहासिक काल के दो तीर्थंकरों भगवान अरिष्टेनमि और भगवान पार्श्वनाथ के काल को जैनमत के इतिहास का प्रवर्द्धन काल कह सकते हैं।

2. श्री अजितनाथ

ऋषभदेव के पश्चात् द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हुए। जम्बूद्वीप महाविदेह क्षेत्र में सीता नामक नदी के दक्षिणी तट पर सुलीमा नामक नगरी थी। इसी के राजा विमलवाहन अगले जीवन में इक्ष्वाकुवंशीय महाराजा जित शत्रु की महारानी विजया देवी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। माघ शुक्ला अष्टमी की महापुनीता रात्रि में रोहिणी नक्षत्र में पुत्ररत्न का जन्म हुआ। राजा ने कहा, जब से यह अपनी माता के गर्भ में आया, तब से मुझे कोई जीत नहीं सकता, इसलिये यह अजितनाथ है। इनके भाई का नाम सगर कुमार था। महाराजा अजितनाथ का आदर्श शासन रहा। अजित ने बड़े भाई की तरह सगर का राजाभिषेक किया। माघ शुक्ला नवमी के दिन रोहिणी नक्षत्र में अजितनाथ ने स्वयं वरमालाओं को उतार कर दीक्षा ग्रहण की। अजितनाथ बारह वर्ष तक ग्राम ग्राम विचरण करते रहे। आपका निर्वाण चैत्र शुक्ला पंचमी को मृगशीर्ष नक्षत्र में हुआ। इनके अनुज सगर ने भी अपने पौत्र भगीरथ को राज्य सिंहासन पर आसीन किया और भगवान अजितनाथ के चरणकमलों में श्रमण धर्म अंगीकार किया।

3. श्री सम्भवनाथ

भगवान अजितनाथ के बाद तीसरे तीर्थंकर श्री सम्भवनाथ हुए। क्षेमपुरी के राजा विपुलवान ने श्रावस्ती नगरी के महाराज जितारी के यहाँ पुत्र रूप में जन्म लिया। आपने फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को मृगशिर नक्षत्र में जितारी के यहाँ जन्म लिया। आपकी माता का नाम सुसेना[2] था। उस समय देश की भूमि धनधान्य से लहलहा उठी, अत: माता पिता ने नाम सम्भवनाथ रखा।[3] इनके विवाह के पश्चात् इनके पिता प्रव्रजित हुए। मगसिर सुदी पूर्णिमा को

1. श्वेताश्वर उपनिषद 15-5-1
2. तिलोयण्णति, गाथा 526-549
3. चउपन्न महापुरिस चरित पृ 72
   गब्भये जिणिदे णिहाणाइयं बहुयं संभूया, जायभिय
   रजस्स सयलस्स वि सुहं संभूय ति कलिऊण
   संभवाहिहाणं कुणति सामिणो।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृगशिर नक्षत्र में संयमधर्म में दीक्षित हुए। चौदह वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात् कार्तिक कृष्णपंचमी को श्रावस्ती नगरी में मृगशिर नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया। आप चैत्र शुक्ला छठ को मृगशिर नक्षत्र में सिद्ध, मुक्त और निवृत्त हो गये।

4. श्री अभिनन्दन

भगवान सम्नक्नाथ के पश्चात चतुर्थ तीर्थंकर अभिनन्दन हुए। पूर्वभव में महाबल (समवयांग सूत्र में धर्मसिंह) का जीव महाराजा संवर के यहां तीर्थंकर रूप में उत्पन्न हुआ। महारानी सिद्धार्था ने वैशाल शुक्ला चतुर्थी को गर्भ धारण किया, किन्तु हरिवंशपुराण[1] के अनुसार माघ शुक्ल 12 को यह घटना घटित हुई। माता पिता और परिजनों में प्रसन्नता छा गई इसलिये इनका नाम अभिनन्दन रखा।[2] इनके पिता ने इन्हें राज्यपद दिया और स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की। आप दीक्षा के दूसरे दिन साकेतपुरी पधारे। अट्ठारह वर्षों की कठोर साधना के पश्चात् पौष शुक्ला चतुर्दशी को अभिजित नक्षत्र में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। वैशाख शुक्ला अष्टमी को निर्वाण पद प्राप्त किया।

5. श्री सुमतिनाथ

जम्बूद्वीप के पुष्कलावती में आप महाराजा विजयसेन और सुदर्शना के पुत्र थे। राजकुमार का नाम पुरुषसिंह रखा गया। पिता की आज्ञा लेके वैराग्य प्राप्ति के पश्चात् आचार्य विजयानन्द के पास श्रमणधर्म में दीक्षित हो गये। यही पुरुषसिंह अयोध्यापति महाराज मेघ के यहां माता मंगलावती के गर्भ से जन्मे सुमतिनाथ कहलाए। वैशाख शुक्ला अष्टमी को मध्यरात्रि के समय मघा नक्षत्र में आपका जन्म हुआ। महाराज मेघ ने कहा "मेरे पुत्र ने उलझी हुई समस्याओं का हल निकाला है, इसलिये मेरे पुत्र का नाम सुमतिनाथ रखा जाय।" पाणिग्रहण के पश्चात् आप वैशाख शुक्ला नवमी के दिन मघा नक्षत्र के समय मुनि बन गये। बीस वर्षों की कठोर तपस्या के पश्चात् चैत्र शुक्ला एकादशी ने दिन मघा नक्षत्र के समय आपको केवल ज्ञान हुआ। चैत्र शुक्ला नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में सिद्ध और मुक्त होकर निर्वाण पद प्राप्त किया।

6. श्री पद्मप्रभु

सुसीमा नगरी के न्यायप्रिय शासक महाराज अपराजित अगले भव में कौशाम्बी नगरी के महाराजा धर के यहाँ छठे तीर्थंकर महाप्रभु के रूप में जन्म लिया। आप माघ कृष्णा षष्टी के दिन चित्रा नक्षत्र में माता सुसीमा की कोख में गर्भ धारण किया और कार्तिक कृष्ण द्वादशी के दिन जन्मे। बालक के शरीर की प्रभा पद्म के समान थी, इसलिये इनका नाम महापद्म रखा गया। विवाह के पश्चात् कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन दीक्षा ग्रहण की। आप छः मास तक कठोर तपस्या करते रहे और फिर चैत्र सुदी पूर्णिमा के दिन चित्रा नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया।

---

1. हरिवंश पुराण, गाथा- 169-180,
2. चउपन्न महापुरिस चरित्र, पृ 75

भगवम्मि रागब्भत्थ कुलं रज्जं णगरं अभिणंदह, ति तेण जणणि
जणएहिं वियरिऊअण गुण निप्फ अभिणंदके ति बाययमं कयं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंगसिर वदी एकादशी के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

7. श्री सुपार्श्वनाथ

क्षेमपुरी के महाराजा नंदिसेन का जीव भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन विशाखा नक्षत्र में वाराणसी नगरी के महाराज प्रतिष्ठासेन के रानी की कोख में स्थान ग्रहण किया। और ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को विशाखा नक्षत्र में जन्म लिया। नामकरण के समय महाराज प्रतिष्ठा सेन ने सोचा कि गर्भकाल में माता के पार्श्व शोभन रहे, अत: बालक का नाम सुपार्श्वनाथ रखा जाय।[1] विवाह के पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को एक हजार अन्य राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। नवमास के पश्चात् फाल्गुन शुक्ला षष्टी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ और फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को निर्वाण पद प्राप्त किया।

8. श्री चन्द्रप्रभ स्वामी

मंगलावती नगरी के महाराज पद्म अगले भव में चैत्रकृष्ण पंचमी को अनुराधा नक्षत्र में चन्द्रपुरी के राजा महासेन की रानी सुलक्षणा की कोख में गर्भधारण किया और पौष कृष्ण एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में जन्म हुआ।[2] बालक की प्रभा चंद के समान थी, इसलिये बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा। पाणिग्रहण के पश्चात् पौष कृष्णा त्रयोदशी को अनुराधा नक्षत्र में विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। तीन मास के पश्चात् फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। भाद्रपद कृष्ण सप्तमी को अनुराधा नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया।

9. श्री सुविधिनाथ

इन्हें पुष्पदंत भी कहा जाता है। पुष्कलावती विजय के भूपति अगले भव में काकन्दी नगरी के महाराज सुग्रीव और रामादेवी के यहाँ आप तीर्थंकर सुविधिनाथ के रूप में जन्मे। महापद्म का जीव फाल्गुन कृष्णा नवमी को मूल नक्षत्र में रामादेवी की कोख में गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ। गर्भकाल में माता सब विधियों में कुशल रही, इसलिये इनका नाम सुविधिनाथ और गर्भकाल में माता को पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ, अत: पुष्पदंतभी रखा गया। इस प्रकार सुविधि और पुष्पदंत- प्रभु के ये दो नाम प्रख्यात हुए।[3] पाणिग्रहण के पश्चात् और लम्बे समय तक राज्य संचालन के पश्चात् एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। कार्तिक शुक्ला तृतीया को मूल नक्षत्र में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और कृष्णा नवमी के दिन मूल नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया।

10. श्री शीतलनाथ

सुसीमा नगरी के महाराज पद्मोत्तर अगले भव में तीर्थंकर शीतलनाथ के रूप में

---

1. चउपन्न महापुरिस चरित, पृ 86
   भगवम्भि ग गब्भगए जणणी सुपासत्ति तओ
   भगवओ सुपासत्तिणामं कयं।
2. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, 3/6/32
   पौष कृष्ण 13 मानी गई है।
3. वही, पृ 49-50

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जन्मे। भद्दिलपुर के राजा दृढरथ इनके पिता और नन्दादेवी इनकी माता थी। बालक के गर्भकाल के समय महाराज दृढ़रथ की भयंकर दाह ज्वर की पीड़ा नन्दादेवी के स्पर्शभाव से शांत हो गई, इसलिये बालक का नाम शीतलनाथ रखा।[1] माता नंदा ने माघकृष्णा द्वादशी को पूर्वापाढ़ा नक्षत्र में पुत्ररत्न को जन्म दिया था। माघकृष्ण द्वादशी को पूर्वापाढा नक्षत्र मे दीक्षित हुए और पौषकृष्णा चतुर्दशी को पूर्वापाढा नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया। वैसाख कृष्णा तृतीया को पूर्वापाढा नक्षत्र के समय प्रभु ने निर्वाण पद प्राप्त किया।

11. श्री श्रेयांसनाथ

ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ पूर्वभव में पुष्करद्वीप के राजा नलिनगुल्म थे। सिंहपुरी नगरी के अधिनायक महाराज विष्णु इनके पिता और महारानी विष्णु देवी इनकी माता थी। बालक के जन्म के समय राजपरिवार और राज का श्रेयकल्याण हुआ, इसलिये बालक का नाम श्रेयांसनाथ रखा।[2] पाणिग्रहण के पश्चात् एक हजार राजाओं के साथ फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी को को श्रवण नक्षत्र में अशोक वृक्ष के नीचे प्रव्रज्या ग्रहण की। माघ कृष्ण अमावस्या को केवलज्ञान प्राप्त किया और श्रावण कृष्ण तृतीया को धनिष्ठा नक्षत्र में निर्वाण प्राप्त किया।

12. श्री वासुपूज्यजी

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य जी पूर्वभव में पुषकरार्द्ध द्वीप के मंगलावती विजय में पद्मोत्तर राजा थे। भारत की प्रसिद्ध चम्पा नगरी के प्रतापी राजा इनके पिता और जयादेवी माता थी। ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को शतभिषा नक्षत्र में पद्मोत्तर के जीव ने गर्भ में स्थानग्रहण किया और फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन शताभिषा नक्षत्र में इनका जन्म हुआ। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार तीर्थंकर वासुपूज्य अविवाहित माने गये हैं, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के "चउपन्न महापुरिस चरियं' में विवाह एवं राज्यपालन के पश्चात् दीक्षा ग्रहण की।[3] माघ शुक्ला द्वितीया को शताभिषा नक्षत्र के समय केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया।

13. श्री विमलनाथ जी

तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ अपने पूर्वभव में महापुरी नगरी के पद्मसेन थे। पद्मसेन का जीव वैशाख शुक्ला द्वादशी को उत्तराभाद्र नक्षत्र में माता श्यामा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। महाराज कृतवर्मा कपिलपुर के महाराजा थे और उनकी महारानी थी श्यामा। माघ शुक्ला तृतीया को उत्तराभाद्रपद में विमलनाथ का जन्म हुआ। बालक के गर्भ में रहते समय माता मन से निर्मल रही, इसलिये बालक का नाम विमलनाथ रखा गया।[4] पाणिग्रहण के पश्चात् माघ शुक्ला चतुर्थी की उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में विमलनाथ दीक्षित हुए। भगवान विमलनाथ ने आषाढ़ कृष्ण सप्तमी को

---

1. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्त, पृ 47
2. वही, पृ 86
3. चउपन्न महापुरिसचरित, पृ 104
4. त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चरित्त, पृ 48

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुष्य नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया।

14. श्री अनन्तनाथ

चौदहवें तीर्थंकर अनन्त नाथ पूर्वभव में अरिष्टानगरी के महाराज पद्मरथ थे। पद्मरथ के जीव ने श्रावण कृष्णा सप्तमी को रेवती नक्षत्र में माता सुयशा की कुक्षि में स्थान ग्रहण किया। इनके पिता अयोध्या के महाराज सिंहसेन थे। इनका जन्म वैसाख कृष्णा त्रयोदशी को रेवती नक्षत्र के समय हुआ। महाराज सिंहसेन ने माना "बालक की गर्भावस्था के समय मैंने उत्कट अपार शत्रु सैन्य पर विजय प्राप्त की, इसलिये बालक का नाम अनन्तनाथ रखा जाय।"[1] 'पाणिग्रहण के पश्चात् एक हजार राजाओं के साथ वैसाख कृष्णा चतुर्दशी को रेवती नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की और चैत्र शुक्ला पंचमी को रेवती नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया।

15. श्री धर्मनाथ

पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ पूर्वकर्म से भद्दिलपुर के महाराज सिंहरथ थे, जिन्होंने वैसाख शुक्ला सप्तमी को पुष्य नक्षत्र में रत्नपुर के महाराज भानु की महारानी सुव्रता के गर्भ में स्थान ग्रहण किया। पिता ने कहा, "बालक के रहते माता की भावना सदा धर्ममय रही, अतः बालक का नाम धर्मनाथ रखा जाता है।"[2] पाणिग्रहण के पश्चात् माघ शुक्ला त्रयोदशी को पुष्य नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की और पौष शुक्ला पूर्णिमा के दिन केवल ज्ञान प्राप्त किया। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को तीर्थंकर धर्मनाथ ने निर्वाण पद प्राप्त किया।

16. श्री शांतिनाथ

सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ पूर्वभव में रत्नसंचया नगरी के महाराज मेघरथ थे। भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को भरणी नक्षत्र में हस्तिनापुर के महाराज विश्वसेन की महारानी की कुक्षि के गर्भ में स्थान ग्रहण किया और ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को भरणी नक्षत्र में जन्म हुआ। महारानी अचिरादेवी के गर्भ में प्रभु का आगमन होते ही महामारी का भयंकर प्रकोप शांत हो गया, अतः बालक का नाम शांतिनाथ रखा गया।[3] विवाह के पश्चात् आपने चक्रवर्ती पद से सम्पूर्ण भारतवर्ष पर शासन किया और एक हजार राजाओं के साथ कृष्णा चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की। आपको केवल ज्ञान की प्राप्ति पौष शुक्ला नवमी को भरणी नक्षत्र में हुई और ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को भरणी नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया।

17. श्री कुंथुनाथ जी

सत्रहवें तीर्थंकर पूर्व भव में खडगी नगरी के महाराज सिंहावत थे। सिंहावत के जीव ने महारानी श्रीदेवी की कुक्षि में श्रावण वदी नवमी को कृतिका नक्षत्र में गर्भ रूप में स्थान ग्रहण किया। वैसाख शुक्ला चतुर्दशी को कृतिका नक्षत्र में प्रभु ने जन्म लिया।

---

1. चउपन्न महापुरिस चरित, पृ 129
2. त्रिषष्टि शलाका पुरिष चरित, पृ 49
3. चउपन्न महापुरिस चरित, पृ 150

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराज वसुसेन ने कहा, गर्भ समय में बालक की माता ने कुंथु नाम के रत्नों की राशि देखी, अत: बालक का नाम कुंथुनाथ रखा जाता है।[1] वैसाख कृष्ण पंचमी को कृतिका नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की और चैत्रशुक्ला तृतीया को कृतिका के योग में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। वैसाख कृष्ण प्रतिपदा को कृतिका नक्षत्र में प्रभु ने निर्वाण पद प्राप्त किया।

18. श्री अरनाथ

अट्ठारहवें तीर्थंकर अरनाथ पूर्वभव में सुसीमा नगरी के महाराज धनपति थे। धनपति का जीव हस्तिनापुर के महाराज सुदर्शन की रानी महादेवी की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को गर्भरूप में उत्पन्न हुआ और मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को रेवती नक्षत्र में जन्म लिया। गर्भकाल में माता ने बहुमूल्य रत्नमय चक्र के अर को देखा इसलिये बालक का नाम अरनाथ रखा गया।[2] पाणिग्रहण और राज्यभोग के पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को रेवती नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की और कार्तिक शुक्ला द्वादशी को रेवती नक्षत्र में केवल ज्ञान प्राप्त किया। प्रभु ने मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को रेवती नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया।

19. श्री मल्लिनाथ

भगवान मल्लिनाथ का जीव तीसरे भव से महाविदेह क्षेत्र का महाराजा महाबल था। मिथिला के महाराजा कुम्भ की महारानी प्रभावती देवी की कुक्षि में मल्लिनाथ ने गर्भ रूप में स्थान ग्रहण किया। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी की मध्यरात्रि को अश्विनी नक्षत्र का योग होने पर बालिका मल्लि का जन्म हुआ। अर्हत मल्लि ने पौष मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र के योग के समय, तीन सौ महिलाओं और आठ राजकुमारों- नंद, नंदिमित्र, सुमित्र, बलमित्र, भानुमित्र, अमरपति, अमरसेन और महासेन के पास दीक्षा ग्रहण की। प्रभु को पौष शुक्ला एकादशी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और चैत्र शुक्ला चौथ की अर्धरात्रि को निर्वाण पद प्राप्त किया।

20. श्री मुनिसुव्रत जी

बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत पूर्वभव में चम्पा नगरी के महाराज सुरश्रेष्ठ थे। सुरश्रेष्ठ के जीव ने राजगृही की महारानी पद्मावती की कोख में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को श्रावण नक्षत्र में स्थान ग्रहण किया और ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन श्रावण नक्षत्र में पुत्ररूप में जन्म लिया। गर्भ के समय माता मुनि रूप में व्रतपालती रही, इसलिये बालक का नाम मुनि सुव्रत रखा गया। विवाह के पश्चात् फाल्गुन कृष्णा अष्टमी के दिन श्रवण नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की। फाल्गुन कृष्णा द्वादशी के दिन प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में निर्वाण पद प्राप्त किया। जैन साहित्य के अनुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम मुनिसुव्रत के समकालीन थे।

---

1. चउपन्न महापुरिस चरित, पृ 152
2. वही, पृ 153

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐतिहासिक काल के तीर्थंकर

21. श्री नेमिनाथ

इक्कीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीव पूर्वभव में कोशाम्बी नगरी के राजा सिद्धार्थ थे। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन अश्विनी नक्षत्र में राजा सिद्धार्थ के जीव ने मिथिला नगरी के राजा महाराज विजव की महारानी वप्रा के गर्भ में उत्पन्न हुआ और श्रावण कृष्ण अष्टमी को अश्विनी नक्षत्र में पुत्र रूप में जन्म लिया। जब बालक गर्भ में था, तब शत्रुओं ने राजा विजय के समक्ष नमन किया था, इसलिये बालक का नाम नेमिनाथ रखा गया।[1] पाणिग्रहण के पश्चात् अषाढ कृष्ण नवमी को दीक्षा ग्रहण की और मृगशिर कृष्णा एकादशी को केवलज्ञान प्राप्त कर अरिहंत कहलाए। वैसाख कृष्ण दशमी को अश्विनी नक्षत्र में प्रभु ने निर्वाण पद प्राप्त किया।

22. श्री अरिष्टनेमि

भगवान श्री अरिष्टनेमि ने हस्तिनापुर के पूर्व भूपति श्रीषेण की भार्या महारानी श्रीमती ने शंखकुमार के रूप में जन्म लिया और तीर्थंकर पद की योग्यता का सम्पादन किया। महाराज शंख का जीव कार्तिक कृष्णा 12 के चित्रा नक्षत्र के योग में महाराज धर्मशीला की महारानी शिवादेवी के कुक्षि में गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ। श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन चित्रा नक्षत्र के योग में अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। इनके पिता के अनुसार "बालक के गर्भकाल के समय हम सब प्रकार के कष्टों से बचे और माता ने अरिष्ट रत्नमय चक्रनेमि का दर्शन किया, इसलिये बालक का नाम "अरिष्टनेमि' रखा गया है।"[2]

समुद्र विजय हरिवंशीय राजा थे। बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत भी इसी प्रशस्त हरिवंश में हुए थे। हरिवंशीय महाराज शौरि से अंधिक वृष्णि और योगवृष्णि दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। अन्धिक वृष्णि के दस पुत्र हुए- समुद्र विजय, अक्षोम, स्तभिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचंद और वसुदेव। समुद्र विजय सबसे बड़े और वसुदेव सबसे छोटे थे। समुद्र विजय के पुत्र थे अरिष्टनेमि और वसुदेव के श्रीकृष्ण। अरिष्टनेमि के विवाह का आयोजन किया गया, किन्तु विरक्त अरिष्टनेमि ने दीक्षा ग्रहण की। प्रव्रज्या ग्रहण करने के 54 दिन पश्चात् आश्विन कृष्ण अमावस्या की चित्रा नक्षत्र में प्रभु को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को चित्रा नक्षत्र के योग के समय निर्वाण पद प्राप्त किया।

आधुनिक इतिहासकार अब तक केवल भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर को ही ऐतिहासिक पुरुष मानते रहे, किन्तु अनुसंधानों से यह प्रमाणित हो गया है कि अरिष्टनेमि भी ऐतिहासिक पुरुष थे। प्रसिद्ध कोशकार डा. नरेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्वज्ञ फुहर्र, प्रो वारनेट, कर्नल टाड, डा. हरिसन, डा. प्राणनाथ विद्यालंकार और डा. राधाकृष्णन आदि विज्ञ विद्वानों ने धारणा व्यक्त की है कि अरिष्टनेमि एक ऐतिहासिक पुरुष रहे हैं।[3]

'ऋग्वेद' में अरिष्टनेमि शब्द बार बार आया है। 'महाभारत' के शांतिपर्व में अरिष्टनेमि

1. चउपन्न पुरिस चरित, पृ 177
2. आवश्यक चूर्णिका, उत्तरार्द्ध, पृ 3
3. आचार्य हस्तीमलजी, जैनधर्म का वृहद् इतिहास-तीर्थंकर खण्ड, पृ 429

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का उल्लेख है।[1] ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्यान्य ग्रंथों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख हुआ है। यह माना जाता है कि कृष्ण घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य थे। धर्मानन्द कोशाम्बी ने घोर आंगिरस को अरिष्टनेमि या नेमिनाथ माना है।[2] यजुर्वेद के अनुसार अध्यात्म को प्रकट करने वाले संसार के सब जीवों को सब प्रकार के यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से जीवों की आत्मा बलवान होती है, उन सर्वज्ञ अरिष्टनेमि के लिये आहुति समर्पित है।[3] इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के माण्डूक्य प्रश्न और मुण्डक में भी अरिष्टनेमि का नाम आया है। 'महाभारत' के विष्णु के सहस्र नामों में 'शूरः शौरिर्जनेश्वर' पद व्यवहृत हुआ है।

हरिवंशपुराण में कृष्ण और उसके चचेरे भाई का वंश परिचय दिया है।

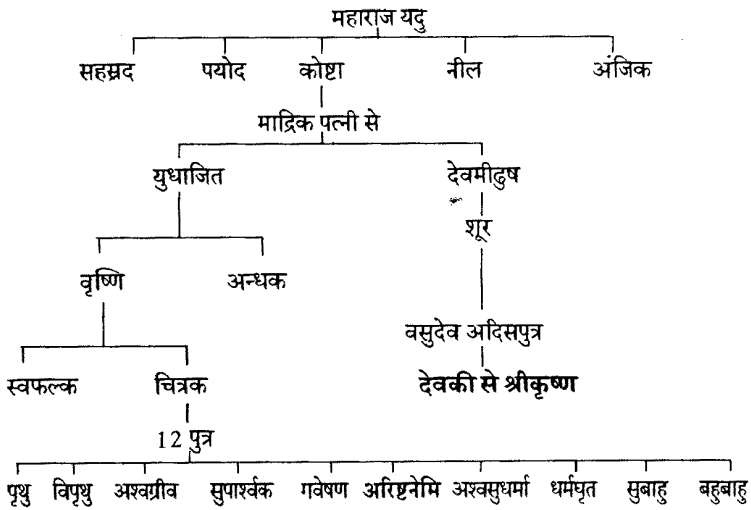

वैदिक परम्परा के मान्य ग्रंथ 'हरिवंश पुराण' में दिये गये यादव वंश के वर्णन से यह सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि चचेरे भाई थे और दोनों के परदादा युधाजित और देवभीदुष सहोदर थे। जैन परम्परा में अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय को वसुदेव का बड़ा सहोदर माना गया है। यह भी सम्भव है कि चित्रक समुद्र विजय का ही अपर नाम हो।

अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण दोनों का जन्म यदुकुल में हुआ। जैन अनुश्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण बाईसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे। उनके प्रपितामह का नाम शूर था और पितामह का नाम था अन्धिक वृष्णि। शूर ने मथुरा के निकट सौरिपुर नामक नगर की स्थापना की थी। सौरिपुर नरेश अन्धक वृष्णि के दसपुत्र थे। उनमें से सबसे बड़े पुत्र का नाम समुद्रविजय था। अन्धिकवृष्णि ने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजय को राज्य देकर जिन दीक्षा धारण कर ली। उनके सबसे छोटे पुत्र का नाम वासुदेव था। वह अपने बड़े भाई समुद्रविजय के अनुशासन में रहता था

1. महाभारत, शांतिपर्व, पृ 288
2. जैन धर्म का वृहद इतिहास, तीर्थंकर खण्ड, पृ 429
3. यजुर्वेद संहिता अ. 9, म. 25 (सातवलेकर संस्करण, वि.स. 1984)
   वाजस्यनु प्रसव बभूवे मा च विश्वा भुवनाति सर्वमः.
   स नेमिराजा, परियाति विद्वान प्रजां पुष्टि वर्धमानो अस्मै स्वाहा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और अनेक कलाओं का पारंगत था। वासुदेव के सम्बन्ध में शिकायत मिलने पर समुद्रविजय ने उसे महल से निकलने पर टोक लगा दी, किन्तु वह घूमता घूमता कंस से मिला। कंस उग्रसेन का पुत्र था। एक बार जरासंध ने समुद्रविजय को अपने शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। समुद्रविजय ने कंस के साथ वासुदेव की अधीनता में एक सेना भेजी। जरासंध ने प्रसन्न होकर वासुदेव को मथुरा राज्य और अपनी पुत्री देनी चाही, किन्तु वसुदेव ने अस्वीकार कर दिया और कंस को उस पारितोषिक का अधिकारी बताया। जरासंध ने कंस के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके उसे मथुरा राज्य दे दिया।

जैन पुराणों के अनुसार सौरिपुर में समुद्रविजय के यहाँ अरिष्टनेमि नाम का पुत्र हुआ। उससे प्रथम समुद्रविजय के लघुभ्राता वसुदेव से वासुदेव श्रीकृष्ण का जन्म हो चुका था।

'अरिष्टनेमि निवृत्तिमार्गी' थे और श्रीकृष्ण प्रवृत्तिमार्गी। अरिष्टनेमि ने ही भविष्यवाणी की थी कि "आज से बारहवें वर्ष में मद्यपान के निमित्त में द्वीपायन मुनि के क्रोध से द्वारकापुरी का विनाश होगा और वन में सोते हुए श्री कृष्ण का अन्त जरत् राजकुमार के निमित्त से होगा।"

छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को घोर आंगिरस का शिष्य माना गया है। आंगिरस ऋषि ने देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को कुछ नैतिक तत्वों का उपदेश दिया, जिसमें अहिंसा भी है। उपनिषदों ने यहीं से अहिंसा तत्व ग्रहण किया।

श्री धर्मानन्द कौशाम्बी ने घोर आंगिरस के अरिष्टनेमि होने की सम्भावना व्यक्त की है, क्योंकि जैन ग्रंथकारों के अनुसार श्री कृष्ण के गुरु नेमिनाथ तीर्थंकर थे।

'अथर्ववेद', 'प्रश्नोपनिषद' और मुण्डक उपनिषदों में अरिष्टनेमि का नाम आया है। 'महाभारत' में कहा गया है

कालनेमि महा वीरः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।[1]

आगरा जिले में बटेश्वर के पास शौरिपुर नामक स्थान है। प्रारम्भ में यही यादवों की राजधानी थी। जरासंध के भय से यादव लोग यहीं से भागकर द्वारिकापुरी में जा बसे थे। यहीं पर अरिष्टनेमि का जन्म हुआ, इसलिये उन्हें शौरि भी कहा गया है

खेताद्रो जिनो नेर्मियुगादिर्विमलचले।
ऋषिणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गर य कारणम्॥

'स्कन्दपुराण' में अरिष्टनेमि का उल्लेखकर उन्हें मोक्षमार्ग का कारक बताया गया है।

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम्।
तनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतः गतः॥
पद्मासनः समासीन श्याममूर्ति दिगम्बरः।
नेमिनाथः शिवोऽयैतं नाम चक्रेऽस्य वामनः॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपाप प्रकाशकः।
दर्शनाथ् स्पर्शानादेव कोटि यज्ञ फल प्रदः॥

---

1. महाभारतः अनुशासनपर्व, 82

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थात् जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव, श्यामवर्ण, नग्न दिगम्बर और पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नमिनाथ रखा। यह नमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाला है। उसके दर्शन और स्पर्शन से करोड़ों यज्ञों का फल होता है।

जैन मान्यता नमिनाथ को कृष्णवर्ण मानती है और उनकी मूर्ति भी अन्य जैन मूर्तियों के समान दिगम्बर और पद्मासन में स्थित होती है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मासन रूप जैन मूर्ति को शिव की संज्ञा दे दी गई है।[1]

ब्राह्मणों को अनेक पुरानी वैदिक रीतियों को त्यागना पड़ा। जान पड़ता है नमिनाथ की मूर्ति की शिव के रूप में उपासना उसी का फल है। आज भी बद्रीनाथ में जैन मूर्ति बद्रीविशाल के रूप में पूजी जाती है। इस प्रकार बाईसवें तीर्थंकर नमिनाथ या अरिष्टनेमि जैन परम्परा के ऐतिहासिक तीर्थंकर हैं।

23. श्री पार्श्वनाथ

भगवान अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) के पश्चात तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ हुए। आप भगवान महावीर से 250 वर्ष पूर्व हुए। ऐतिहासिक युग ईसा पूर्व नौवी शताब्दी के मध्य प्रारम्भ होता है, जब काशी के राजा अश्वसेन के घर तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने जन्म लिया। कौशल और विदेह के साथ काशी को भी प्राधान्य उत्तरवैदिक काल में मिला था।

जैन मान्यता के अनुसार भगवान महावीर के जन्म से 278 वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ का जन्म काशी में हुआ था। भगवान महावीर का जन्म ईस्वी पूर्व 599 में हुआ, अत: भगवान पार्श्वनाथ का जन्म ईस्वी पूर्व 877 में हुआ।

भगवान पार्श्व ने अपने आठवें भव में स्वर्णबाहु के रूप में तीर्थंकर पद प्राप्त करने की योग्यता अर्जित की। चैत्रकृष्ण चतुर्थी के दिन विशाखा नक्षत्र में स्वर्णबाहु का जीव वाराणसी के महाराजा अश्वसेन की महारानी वामा की कुक्षि में गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ। आचार्य गुणभद्रक ने 'उत्तर पुराण' और पुष्पदन्त ने 'महापुराण' में पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्राह्मी लिखा है।

देवगुप्तसूरि के "पार्श्वनाथ चरित्र' और 'त्रिषष्टि शलाका का पुरिस' में अश्वसेन के गोत्र को इक्ष्वाकुवंशी बतलाया है। 'तिलोयपण्णती' में आपका वंश उग्रवंश बतलाया है।[2] पुष्पदंत ने पार्श्व के वंश को उग्रवंशीय बतलाया है। इस प्रकार दिगम्बर मान्यता के अनुसार पार्श्वनाथ उग्रवंशी थे, जबकि श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार इक्ष्वाकुवंशी। ऋषभदेव इक्ष्वाकुवंशी थे, इसलिये यह माना जा रहा है कि उग्रवंश भी इक्ष्वाकुवंश की एक शाखा ही होना चाहिये। सम्भव है कि उग्रसेन से ही काशी में उग्रवंशी राज्य की स्थापना हुई हो। 'विष्णुपुराण' और 'वायुपुराण' में काशिराज ब्रह्मदत्त के उत्तराधिकारी को योगसेन, विश्वकसेन और झल्लाट बतलाया है।

---

1. पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पृ 173
2. महापुराण, 94-4-23

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डा. भण्डारकर ने पुराणों के विश्वकसेन और जातकों के विस्ससेन, पुराणों के उदकसेन और जातकों के उदयमह को एक ही बतलाया है। डा. राय चौधरी के अनुसार भारतवंश का स्थान एक नये वंश ने लिया, जिसका वंशनाम ब्रह्मदत्त था। हारीत कृष्णदेव ने ब्रह्मदत्त को वंशनाथ माना है। 'महाभारत' में 100 ब्रह्मदत्तों का निर्देश है। जातक में काशीराज ब्रह्मदत्त के युवराज सोट्ठीसेन को 'विदेह पुत्र' कहा है।[1] आजकल के इतिहासकार पार्श्व को उरग या नागवंशी भी कहते हैं।

डा. राय चौधरी ने कुम्भकार जातक के उल्लेखानुसार उत्तर पांचाल का राजा दुम्मुख, कलिंग का राजा करण्डु, गांधार का राजा नगजित (नग्गजित) और विदेह का राजा नाभि, ये सब समकालीन थे।[2] 'जैन उत्तराध्ययन' सूत्र में इन सबको जैनधर्म का अनुयायी माना है। डा. राय चौधरी ने इन राजाओं के समय को 777 ई.पू. और 543 ई.पू. के बीच रखा है, क्योंकि यह सभी महावीर के पूर्ववर्ती थे। इन राजाओं का निर्देश ऐतरेय ब्राह्मण[3] और शतपथ ब्राह्मण[4] में भी मिलता है।

जैन साहित्य में पार्श्वनाथ के पिता का नाम अश्वसेन या अस्ससेण बतलाया है। यह नाम न तो हिन्दू पुराणों में मिलता है और न जातकों में मिलता है। गत शताब्दी में रचे पार्श्वनाथ पूजन में इनके पिता का नाम विस्ससेन रखा है- "तहाँ विस्ससेन नरेन्द्र उदार।'

डा. भण्डारकर ने जातकों के आधार पर ब्रह्मदत्त के अतिरिक्त वाराणसी के छ राजा बतलाए हैं- उग्गसेन, धनंजय, महासीलव, संयम, विस्ससेन, उदयभट्ट। इस प्रकार जातकों के विस्ससेण और पुराणों के विश्वकसेन के साथ इसकी एकरूपता बैठती है।

जब पार्श्वनाथ ने तीस वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली, तब एक बार एक नाग युगल को पीड़ित देखा, पार्श्वनाथ ने उन्हें बचाया और धर्मोपदेश दिया। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला गया है कि पार्श्वनाथ के वंश का नागजाति के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध था।

नामकरण के विषय में उल्लेख है कि इनके पिता अश्वसेन के अनुसार "बालक के गर्भस्थ रहते समय इनकी माता ने अंधेरी रात्रि में पास (पार्श्व) में चलते हुए सर्प को देखकर मुझे सूचित किया और अपनी प्राणहानि से मुझे बचाया, अत: इस बालक का नाम पार्श्वनाथ रखना चाहिये।'[5]

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के कुछ प्रमुख ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि वासुपूज्य, मल्ली, नेमि, पार्श्व और महावीर कुमार अवस्था में दीक्षित हुए, इसी आधार पर दिगम्बर परम्परा इन्हें अविवाहित मानती है। श्वेताम्बर मान्यता है कि तीस वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहकर भी पार्श्व काम भोग में आसक्त नहीं हुए।

आपको चैत्रकृष्ण चतुर्थी के विशाखा नक्षत्र में चंद्र के योग के समय केवल ज्ञान

---

1. Dr. R. Chaudhary, Political History of Ancient India, Page 64.
2. वही, Page 124
3. ऐतरेय ब्राह्मण 7-34
4. शतपथ ब्राह्मण 8 1-4-10
5. त्रिषष्टि शलाका पुरिस चरित 9-3-45

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्पन्न हुआ। लगभग 70 वर्ष तक विहार करते हुए पार्श्वनाथ ने जैनमत का प्रचार-प्रसार किया और श्रावण शुक्ला अष्टमी को विशाखा नक्षत्र में चन्द्र का योग होने पर निर्वाण प्राप्त किया।

"पासनाथ चरिऊं' के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ के निम्नांकित गणधर थे-

1. शुभदत्त	2. आर्यघोष	3. वशिष्ठ	4. आर्य ब्रह्म
5. सोम	6. आर्यश्रीधर	7. वारिसेन	8. भद्रयश
9. जय	10. विजय		

क्या श्रमण परम्परा की नींव ऋषभदेव ने डाली ? हर्मन जेकोवी ने माना है कि बुद्ध के पूर्व निर्ग्रंथ सम्प्रदाय विद्यमान था। आधुनिक इतिहासकार भगवान पार्श्व को निर्ग्रंथ सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हैं। डा. हर्मन जेकोबी के अनुसार "यह प्रमाणित करने के लिये कोई आधार नहीं है कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। वास्तव में निर्ग्रंथ धर्म का प्रवर्तन पार्श्वनाथ से भी पहले का है। जैन परम्परा ऋषभ को प्रथम तीर्थंकर/आदि संस्थापक मानने में एकमत है।"[1]

भगवान पार्श्वनाथ की वाणी में करुणा, मधुरता और शांति की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित होती थी। उनके उपदेशों का प्रभाव वैदिक ऋषि पिप्पलाद, मुण्डक सम्प्रदाय के भारद्वाज ऋषि, उत्तर वैदिक कालीन ऋषि नचिकेता और वैदिक क्रियाकाण्ड के कट्टर विरोधी अजित केश कम्बल आदि पर स्पष्ट दिखाई देता है।

पिप्पलाद के अनुसार प्राण या चेतना जब शरीर से पृथक हो जाती है, तब शरीर नष्ट हो जाता है। मुण्डक सम्प्रदाय के तापस सिर मुंडाकर भिक्षा माँगते थे। नचिकेता शीतजल में जीव मानते थे।

बुद्ध पर भी पार्श्वमत का प्रभाव पड़ा। पार्श्वनाथ के चतुर्याम का सान्निवेश बुद्ध के शील स्कन्ध में है

पार्श्वनाथ की वाणी का ऐसा प्रभाव था कि उनसे बड़े-बड़े राजा महाराजा भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। कलिंग के शक्तिशाली राजा करकुंड, पांचाल नरेश दुर्मुख या द्विमुख, विदर्भ नरेश भीम, गान्धार नरेश नागजित या नागाति भी तीर्थंकर पार्श्व के समसामयिक नरेश थे।

पार्श्वनाथ श्रमण परम्परा के अनुयायी थे। जैन साहित्य में पाँच प्रकार के श्रमण बतलाए गये हैं- निर्ग्रंथ, शाक्य, तापस, गैरुक और आजीवक। जैन साधुओं को निर्ग्रंथ श्रमण कहते हैं। डा. याकोबी ने यह प्रमाणित किया था कि बुद्ध के पहले निर्ग्रंथ सम्प्रदाय था।

महावीर के पूर्व इस निर्ग्रंथ सम्प्रदाय का नेतृत्व भगवान पार्श्वनाथ ने किया। आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार वही निर्ग्रंथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। पार्श्वनाथ चातुर्याम- सर्व प्रकार के प्राणघात का त्याग (अहिंसा) सब प्रकार के असत्यवचन का त्याग, सर्वप्रकार के अदत्तादान (बिकी हुई वस्तु ग्रहण) का त्याग, और सब प्रकार की परिग्रह का त्याग धर्म की स्थापना की थी।

---

1. Indian Antiquary, Vol IX, Page 163
But there is nothing to prove that Parsve was founder of Jainism. Jain tradition is unanimous in making Rishab, the first Tirthankara, as the founder.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित जैन दर्शन के सिद्धान्त केवल महावीर की ही देन नहीं है, वह पार्श्वनाथ की भी देन है। इस तरह का विभागीकरण करना उचित नहीं है।

वस्तुतः दार्शनिक चिन्तन का उहापोह उपनिषदों में माना जाता है। यह निश्चित है कि उपनिषद भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व के नहीं है। उस काल से ही उनका प्रणयन प्रारम्भ हुआ था। बहुत से विद्वानों का कहना है कि प्राचीनतम उपनिषदों को ईस्वी पूर्व 600 से पूर्व नहीं रखा जा सकता। डा. विन्टरनीट्स ने उन्हें ईस्वी पूर्व 750-500 के मध्य रखा है।[1]

न केवल जैन साहित्य से किन्तु बौद्ध साहित्य से भी पार्श्वनाथ की ऐतिहासिक प्रमाणित होती है। डा. याकोबी के अनुसार, यदि जैन और बौद्ध सम्प्रदाय एकसा प्राचीन होते , जैसा कि बुद्ध और महावीर की समकालीनता तथा दोनों सम्प्रदायों का संस्थापक मानने से अनुमान है कि ऐसा उपदेश किसी वैदिक ऋषि का नहीं हो सकता।

धर्मानन्द कोशाम्बी ने भगवान पार्श्वनाथ पर 'पार्श्वनाथ का चार याम' नामक पुस्तक लिखकर अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है। भगवान पार्श्वनाथ अहिंसक क्रांति के अग्रदूत हैं।

तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष हैं। उनका तीर्थ प्रवर्तन भगवान महावीर से 250 वर्ष पहले हुआ। भगवान महावीर के समय तक उनकी परम्परा अविच्छिन्न थी। भगवान महावीर के माता-पिता भगवान पार्श्व के अनुयायी थे। अहिंसा और सत्य की साधना को समाजव्यापी बनाने का श्रेय भगवान पार्श्व को है। भगवान पार्श्व अहिंसक परम्परा के उन्नयन द्वारा अत्यन्त लोकप्रिय हो गये थे।[3] मेजर जनरल फर्लांग के अनुसार ""उस काल में सम्पूर्ण भारत में एक ऐसा अति व्यवस्थित, दार्शनिक, सदाचार एवं तप प्रधान धर्म अर्थात् जैनधर्म अव्यवस्थित था, जिसके आधार से ही ब्राह्मण एवं बौद्धादि धर्म सन्यास बाद में विकसित हुए।"[4] डा. हर्मन जैकोबी ने भगवान पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार किया है।[5] उत्तराध्ययन सूत्र की भूमिका में डा. चार्ल शार्पेटियर ने लिखा, ""जैनधर्म निश्चित रूपेण महावीर से प्राचीन है। उनके प्रख्यात पूर्वगामी पार्श्व प्रायः निश्चित रूपेण एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान रह चुके हैं, एवं परिणामस्वरूप मूल सिद्धान्तों की मुख्य बातें महावीर से बहुत पहले सूत्ररूप धारण कर चुकी होंगी।[6]"

---

1. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 203
2. हरिवंशपुराय, पर्व 1, अध्याय 33
3. युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन परम्परा का इतिहास, पृ 19
4. डा. ज्योतिप्रसाद, भारतीय इतिहास, एक दृष्टि, पृ 149
5. The Sacred Books of the East, Vol XIV Int Page 21
   "That Parsva as a historical person is now admitted by all."
6. The Unttaradhyayane Sutras, Introduction, Page 21
   We ought to remember both, the Jain religion is certainly older than Mahaveer, his reputed predecessor Parsva having almost certainly existed as a real person, and that subsequently, the main points of original doctrive may have been codified long before Mahavira.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान पार्श्वनाथ निस्संदेह ऐतिहासिक पुरुष थे, यह आज ऐतिहासिक तथ्यों से असंदिग्ध रूप में प्रमाणित हो चुका है। जैन साहित्य ही नहीं, बौद्ध साहित्य से भी भगवान पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता प्रमाणित है।[1] आधुनिक इतिहासकार पार्श्वनाथ को निर्ग्रंथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक मानते हैं। वस्तुत: निर्ग्रंथ परम्परा पार्श्वनाथ के पहले ही विद्यमान थी। डा. हर्मन जैकोबी के अनुसार यह प्रमाणित करने के लिये कोई आधार नहीं है कि पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा ऋषभ को प्रथम तीर्थंकर (आदि संस्थापक) मानने में सर्वसम्मति से एकमत है।

पार्श्वनाथ के शिष्यों की लम्बी परम्परा थी। श्वेताम्बरी जैनागमों में अनेक व्यक्तियों को "पासावाच्चिज्ज' कहा गया है। इसका संस्कृत रुप पार्श्वातत्यीय है। इसका अर्थ है - पार्श्वस्वामी के शिष्य। 'आचरांग सूत्र' में भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ पार्श्वपत्यीय श्रमणोपासक और माता त्रिशला को पार्श्वापत्यीय श्रमणोपासिका लिखा है।

भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्याम धर्म- हिंसा का त्याग, असत्य का त्याग, चौर्य त्याग और परिग्रह के त्याग के साथ इनकी वाणी में करुणा, मधुरता और शान्ति की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित होती थी। परिणामत: जन जन के मन पर उनकी वाणी का मंगलकारी प्रभाव पड़ा, जिससे हजारों नहीं लाखों लोग उनके अनन्य भक्त बन गये।[2]

एक मान्य वैदिक ऋषि पिप्पलाद, प्रख्यात ब्राह्मण ऋषि भरद्वाज, उपनिषदकालीन वैदिक ऋषि नचिकेता, वैदिक क्रियाकाण्ड के विरोधी अजित केश कम्बल- सब पर पार्श्वनाथ का प्रभाव पड़ा। उस समय समस्त व्रात्य क्षत्रिय सब जैनधर्म के उपासक थे। पार्श्वनाथ के समय में पार्श्वनाथ ही इष्टदेव माने जाते थे।[3]

पूर्व महावीर युग में भगवान ऋषभदेव ने जैनमत का प्रवर्तन किया, किन्तु दूसरे तीर्थंकर से लेकर बाईसवें और तेईसवें तीर्थंकर- अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ तक के युग को हम जैनमत का प्रवर्द्धनकाल कह सकते हैं। अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ ने श्रमण परम्परा के प्रवर्द्धन में योग देकर जैनमत के विकास की पृष्ठभूमि निर्मित की।

---

1. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 499
2. वही, पृ 503
3. वही, पृ 507

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(2) महावीर युग: जैनमत का विकासकाल

जैनमत के प्रवर्तनकाल और प्रवर्द्धनकाल के पश्चात् चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के युग को जैनमत का विकासकाल कह सकते हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभ देव से लेकर तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने श्रमण परम्परा के द्वारा इस देश में धार्मिक क्रांति का सूत्रपात किया, किन्तु महावीर ने जैनमत में धार्मिक क्रांति के साथ आध्यात्मिक क्रांति का उद्घोष किया। जैनमत के इतिहास में महावीर का अवदान युगान्तकारी रहा और वे एक ऐसे मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक युग का पटाक्षेप हो रहा था और एक नया युग जन्म ले चुका था। महावीर युग का प्रसार प्रथम श्रुतकेवलि भद्रबाहु के समय तक है, क्योंकि भद्रबाहु के साथ महावीर के अखण्ड जिनशासन का अन्त हुआ और वह श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों में बँट गया।

भगवान महावीर

बौद्ध पिटकों में 'निर्दिष्ट निगंठ' नाटपुत्र ही जैनों के अंतिम तीर्थंकर महावीर हैं। 'निगंठ नाटपुत्र' निर्ग्रंथों के बड़े भारी संघ के अधिपति थे, यह बौद्ध पिटकों के उल्लेखों से स्पष्ट है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार महावीर कुण्डपुर या कुण्डग्राम के राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। दिगम्बर परम्परा के अनुसार सिद्धार्थ नाथवंश या णाह वंश के क्षत्रिय थे और श्वेताम्बरी परम्परा के अनुसार णायकुल के थे। इन्हें णायकुलचंद और णायपुत्र कहा है।[1] राहुल सांकृत्यावन ने नाटपुत्र का अर्थ ज्ञातृपुत्र और नाथपुत्र दोनों किया है। बेवर के अनुसार "यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नहीं है कि निगंठों या निर्ग्रंथों के प्रमुख नाटपुत्र या ज्ञातिपुत्र और ज्ञातवंश के उत्तराधिकारी एवं निर्ग्रंथ अथवा जैन सम्प्रदाय के अंतिम तीर्थंकर वर्धमान एक ही ऋषि हैं।" बौद्ध बार बार कहते हैं कि निगंठ नाटपुत्र अपने को अर्हंत कहते और सर्वज्ञ मानते हैं। बुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी बड़ा प्रभावशाली एवं खतरनाक था तथा बुद्ध के समय में ही उसका धर्म फैल चुका था।[2]"

भगवान महावीर का जन्म कुण्डपुर या कुण्डग्राम में हुआ, यह दोनों सम्प्रदायों को मान्य है। 'आचरांग सूत्र' में कुण्डग्राम को एक सन्निवेश कहा है। सन्निवेश का अर्थ है, नगर के बाहर का प्रदेश। आचरांग सूत्र[3] को भगवान महावीर को नाथ या ज्ञातृकुल के और विदेह देश माना है-

नाए नाटपुत्र नाथकुल निव्वते विदेहे विदेहजच्चे
सूमालै तीसं वासई विदेहं सित्ति कट्टु आगार मज्झे वसित्ता।[4]

'सूत्रकृतांग' में भी भगवान महावीर को वैसालिय (वैशालिक) कहा है।[5] वैशालिय कहने के तीन अभिप्राय हैं - उनकी माता विशाला थी, वे विशाल कुल में उत्पन्न हुए थे तथा उनके

---

1. पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पृ 43
2. Bevar, Indian Sect of the Jains Page 29, 36
3. आचरांगसूत्र, 2/3/399
4. वही, 2/3/402
5. सूत्र कृतांग, 1/2/3

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वचन विशाल थे। डा. याकोबी के अनुसार वैशालिक का अर्थ स्पष्ट रूप से वैशालीवासी होता है और जब कुण्डग्राम वैशाली का बाह्यभाग था, तो महावीर को वैशालिक कहना उचित ही है।

डा. याकोबी के अनुसार बौद्ध ग्रंथ 'महावग्ग' में हम पढते हैं कि जब बुद्ध कोटिग्गान में थे, तो राजधानी वैशाली के तिच्छवी और गणिका अम्बपाली उनके दर्शनार्थ आए थे। वहाँ वे नातिका भाग में ठहरे। अत: यह बहुत कुछ सम्भव है कि बौद्धों का कोटिग्गाम ही जैनों का कुण्डग्राम हो। नामों की समानता के साथ नातिकाओं का निर्देश भी इसी का समर्थन करता है, क्योंकि नातिका स्पष्ट रूप से ज्ञात्रिक क्षत्रियों का सूचक है। महावीर इन्हीं ज्ञात्रिक क्षत्रियों के वंशज थे।[1]

जैन और बौद्ध उल्लेखों के अनुसार कुण्डपुर या कुण्डग्राम विदेह देश में वैशाली के निकट होना चाहिए। ज्ञातृवंश लिच्छिवियों के कुल में महावीर ने जन्म लिया था, उनके वंशज आज भी जथरिया जाति के रूप में बिहार के मुजफ्फर जिले के इसी परगना में निवास करते थे तथा वह मुजफ्फर जिले का वसाढ ही वैशाली था तथा कुण्डग्राम भी उसी के निकट होना चाहिये। अब कुण्डग्राम को वासकुण्ड कहते हैं, जो प्राचीन वैशाली का ही एक भाग था। वैशाली के तीन भाग थे- एक खास वैशाली (वसाढ), एक कुण्डपुर (वासकुण्ड) और एक बनियाग्राम। उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिये रहते थे।

उस समय लिच्छिवियों के गणतंत्र का प्रधान राजा चेटक था। दिगम्बर परम्परा के अनुसार चेटक की पुत्री और श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार चेटक की बहन त्रिशला या प्रियकारिणी का विवाह सिद्धार्थ से हुआ था। 'अगुत्तर निकाय' अद्धकथा में वैशाली की समृद्धि का वर्णन है।

महावीर के पितृकुल की अपेक्षा मातृकुल का राजवंशानुगत सम्बन्ध अधिक व्यापक और अधिक प्रभावक था। बौद्ध ग्रंथों में चेटक का नाम नहीं है। डा. याकोबी के अनुसार "जैनों ने अपने तीर्थंकर भगवान महावीर के परमभक्त तथा सम्बन्धी चेटक की स्मृति को सुरक्षित रखा है। उन्हीं के प्रभाव के कारण वैशाली जैनधर्म का गढी बनी हुई थी, जब कि बौद्ध उसे पाखण्डियों या विद्रोहियों का शिक्षालय मानते थे।[2]"

चेटक के सात पुत्रियां थी। सबसे बड़ी त्रिशला सिद्धार्थ से ब्याही थी और छठी चेलना मगध के राजा श्रेणिक राजा बिम्बसार से ब्याही थी। अत: मगध के साथ महावीर का निकट का सम्बन्ध था। बिम्बसार बौद्ध था, किन्तु चेलना के प्रभाव से वह महावीर का भक्त बना।

चेटक की अन्य पुत्रियों में मृगावती वत्स देश के कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक से, सुप्रभा दशार्क देश के हेमकच्छपुर के राजा दशरथ से, प्रभावती कच्छदेश के रोरुक नगर के राजा उदयन से ब्याही थी। महीपुर के राजा सत्यकी ने ज्येष्टा की मांग की, किन्तु मना करने पर चेटक पर चढ़ाई की। युद्ध में हारने पर वह साधु हो गया और बाद में ज्येष्ठा और चन्दना भी साध्वी हो गई।

---

1. Dr. H. Yakobi, The Second Books of the East, Part 22, Page 11
2. वही, पृ. 22-23

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर परम्परा में त्रिशला को चेटक की बहन माना है और चेटक के सात पुत्रियाँ मान्य हैं- प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा और चेलना। प्रभावती का विवाह सिन्धु सौवीर देश के राजा उदयन से हुआ, पद्मावती चम्पा के राजा दधिवाहन से, मृगावती कौशाम्बी के राजा शतनीक से, ज्येष्ठा महावीर के भाई नन्दिवर्धन से और चेलना राजगृही के राजा श्रेणिक से ब्याही थी और सुज्येष्ठा साध्वी हो गई थी। उससे यह ध्वनित होता है कि मातृकुल के प्रभाव के कारण महावीर के सौवीर, अंग, वत्स, अवन्ती, विदेह और मगध के राजघरानों से सम्बन्ध थे।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर का गर्भ परिवर्तन हुआ। एक देव ने महावीर को ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में परिवर्तित किया। 'भगवतीसूत्र' में महावीर स्वयं कहते हैं कि देवनन्दा मेरी माता है। दिगम्बर लोग इसे हास्यास्पद समझते हैं। गर्भ परिवर्तन का विचार जैनों की मौलिक रचना नहीं है। यह उस पौराणिक कथा की अनुप्रतिकृति है, जिसके अनुसार श्रीकृष्ण को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में परिवर्तित किया गया। डा. याकोबी ने टिप्पणी में कहा है "मेरा अनुमान है कि सिद्धार्थ के दो पत्नियाँ थीं, एक ब्राह्मणी देवनन्दा, जो महावीर की वास्तविक माता थी और एक क्षत्रियाणी त्रिशला। त्रिशला के साथ विवाह होने से उच्चवंशी तथा महान् प्रभुत्वशाली व्यक्तियों के साथ उनका सम्बन्ध हो गया, इसलिये सम्भवतया यह प्रकट करना कि महावीर त्रिशला का दत्तक पुत्र नहीं, किन्तु औरस पुत्र है, अधिक लाभदायक समझा गया।[1]" वस्तुत: याकोबी ने क्लिष्ट कल्पना का सहारा लिया है, जो अमान्य है।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर अविवाहित ही रहे, न उन्होंने स्त्री सुख भोगा और न राजसुख। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार उनका विवाह यशोधरा से हुआ और उनकी कन्या जमालि से ब्याही गई।

'आवश्यक निर्युक्ति' की गाथा के अनुसार "महावीर अरिष्टनेमि, पार्श्व, मल्लि और वासुपूज्य को छोड़कर शेष तीर्थंकर राजा थे और ये पाँचों तीर्थंकर यद्यपि राजकुल और विशुद्ध क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे, फिर भी उन्हें राज्याभिषेक इष्ट नहीं हुआ और उन्होंने कुमार अवस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।"

वीरं अरिट्ठनेमि, पासं, मल्लि च वासु पुज्जंच।
ए ए मात्तुण जिणे अवसेसा आसि रायण्णि॥
रायकुलेसु वि जाया विसुद्धवंसेषु खत्तिय कुलेसु।
न च इच्छिया मेसया कुमार वासंमि पव्वया॥[2]

जिन्होंने कुमार अवस्था में प्रव्रज्या धारण की उन महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्व, मल्लि और वासुपूज्य को छोड़कर शेष तीर्थंकरों ने विषयों का सेवन किया-

---

1. Dr. H. Yakobi, The Sacred Book of the East, Page 22, Page 31
2. आवश्यक नियुक्ति, 243, 244 सूक्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गामायरा विसया निसेविया ते कुमार वज्जेहिं
गामागराइएसु व केसि (सु) विहरो भवे कस्स ।।[1]

श्वेताम्बर मान्यता मल्लिनाथ को छोड़कर सबको विवाहित मानती है। पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के अनुसार हमें भी महावीर की पत्नी यशोदा के नाम के साथ बुद्ध की पत्नी यशोधरा का स्मरण हो आता है और लगता है कि महावीर के जीवन में यशोदा का लाया जाना, कहीं बुद्ध की पत्नी यशोधरा की अनुकृति तो नहीं है।''[2]

तीस वर्ष की अवस्था में मार्गशीर्ष वदी दशमी के दिन महावीर ने प्रव्रज्या ग्रहण की। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार महावीर 13 वर्ष तक चीवरधारी रहे और उसके पश्चात् नग्न दिगम्बर होकर विचरे।

समणे भगवं महावरे संवच्छरं साहियं मासं
चीवरधारी हुत्था, तेण परं अचेलए पाणि पडिग्गहिरा ।[3]

'आवश्यक निर्युक्ति' में लिखा है कि चौबीसों तीर्थंकर एक वस्त्र के साथ प्रवर्जित हुए। भद्रगणि क्षमा श्रमण के अनुसार "जब वह वस्त्र गिर जाता है तो सभी अचेल वस्त्ररहित नग्न हो जाते हैं।'

तहति गहिरा गवत्था सवत्थतिथोवए सणत्थं ति।
अभिविक्खमंति सव्वे तमि चुएऽचेलया हुंति ।।

भगवान महावीर ने अपना उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया। उनके काल में धर्म की भाषा संस्कृत थी, किन्तु महावीर और बुद्ध ने लोकभाषा में ही उपदेश दिया।

चूर्णिकार जिनदास महत्तर के अनुसार अट्ठारह प्रकार की देशी भाषाओं में नियत सूत्र को अर्धमागध कहते हैं।

मगहद्धविसयमासा निबद्द अद्ध मागहं, अहवा
अट्ठारसदेसी भासाणियतं अद्धमागधं।

मार्कण्डेय ने माना है कि शौरदेवी भाषा के निकटवर्ती होने से मागधी ही अर्धमागधी है।

शौरसेन्या अदूरत्वादिय मेवार्धं मागधी

क्रमदीश्वर ने माना कि महाराष्ट्री से मिश्रित मागधी ही अर्धमागधी है

महाराष्ट्री मिश्रण अर्धं मागधी

महावीर निर्वाण के 980 वर्ष पश्चात् वलभी में उनका संकलन सम्पादन और लेखन हुआ।

---

1. आवश्यक नियुक्ति सूत्र
2. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 244
3. कल्पसूत्र, 16

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्य में भगवान महावीर के ग्यारह गणधर बतलाये हैं। इनमें प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम थे। आचार्य गुणभद्र ने अपने पुराण में ग्यारण गणधारों के नाम इस प्रकार बताए हैं - इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्मा, मौर्य, मौन्द्र, पुत्र, नैत्रेय, अमम्पन, अन्धवेल या अस्वयेल और प्रभास।[1]

श्वेताम्बर साहित्य में नाम इस प्रकार हैं- इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडिक (त) मौर्यपुत्र, अक्पित अचलभ्राता अक्पित, मेतार्य और प्रभास। इन्द्रभूति का गौत्र गौतम, वर्ण ब्राह्मण था, वे चारों वेद और छ वेदांगों के ज्ञाता थे। दिगम्बर और श्वेताम्बर साहित्य में इन्द्रभूति के पश्चात् सुधर्मा के सम्बन्ध में स्वल्प जानकारी मिलती है।

पार्श्वनाथ का धर्म चतुर्याम था। महावीर का धर्म पंच महाव्रत रूप तथा अचेलक है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में गौतम ने पार्श्व और महावीर के धर्म में उक्त अन्तर होने के कारण उनकी शिष्य परम्परा की प्रवृत्ति और मानस को ही बतलाया है। सारांश यह है कि पार्श्वनाथ की परम्परा के निर्ग्रंथ सरलमति और समझदार हो थे, इसलिये आधक विस्तार न करने का भी वे यथार्थ आशय को समझकर ठीक रीति से व्रत का पालन करते थे, किन्तु महावीर की परम्परा के निर्ग्रंथ कुटिल और नासमझ थे। इसलिये महावीर ने परिग्रह त्याग व्रत में स्त्री त्याग व्रत को पृथक करके व्रतों की संख्या पाँच कर दी।[2]

'स्थानांग सूत्र' की व्याख्या टीकाकार ने प्रस्तुत की है, मध्य के 4 तीर्थंकर तथा वेदेहस्थ तीर्थंकर चतुर्याम धर्म का तथा प्रथम और अंतिम पंचयाम धर्म का कथन शिष्यों से अपेक्षा करते हैं। वास्तव में तो दोनों पंचयाम धर्म का कथन प्रतिपादन करते हैं, किन्तु प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के साधु ऋजु जड़ से वक्र जड़ से होते हैं, अत: परिग्रह छोड़ने का उपेक्षा देने पर परिग्रह त्याग में मैथुन त्याग भी गर्भित है, यह समझने और समझकर उनका त्याग करने में समर्थ होता है, किन्तु शेष तीर्थंकरों के साधु ऋजु और प्राज्ञ होने के कारण तुरंत समझ लेते हैं कि परिग्रह में मैथुन भी सम्मिलित है, क्योंकि बिना ग्रहण किये स्त्री को नहीं भोगा जा सकता।[3]

---

1. आचार्य गुणभद्र, उत्तरपुराण, 24/373-374
2. उत्तराध्ययन सूत्र 23

   पुरिसा उज्जुजडा उ वक्व जड्ढा य पच्छिमा।
   मज्झिमा उज्जुप्पन्ना उ तेण धम्मो दुहा कए। 261
   पुरिमाणं दुवि सोज्झो उ परिमाणं दुरणुपालओ।
   कप्पो मज्झिमगाणं तु सुविसुज्झो सुपालओ। 27

3. स्थानानांग सूत्र, 266

   टीका "इहं चेह भावत्ता। मध्यम तीर्थकराणां विदेहकानाञ्च चतुर्यामधर्मस्य पूर्व पश्चिम तीर्थंकर योश्व पंचयामधर्मस्य प्ररूपणा शिष्या पेक्षया।
   परमार्थतस्तु पञ्च मास्यवै वोभयेषा मध सौ, यत् प्रथम पश्चिम तीर्थंकर साधव:
   ऋजुजड़ा वक्रजड़ाश्चेति तत्वादेव पारिग्रहो वर्जनीय इत्युपदिष्टे
   मैथुनवर्जन भव बोदधुं पारुयितुं च न क्षमा। मध्यम विदेह ज तीर्थ साधवस्तु ऋजु प्राज्ञास्तद्वोदधुं, वर्जयितुं च क्षमा इति।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्तुतः गहराई से देखा जाय तो पार्श्वनाथ के चतुर्याम धर्म और महावीर के पंचयाम में तत्वतः कोई मौलिक भेद नहीं है।

72 वर्ष की अवस्था में बिहार प्रदेश के पटना जिले के अन्तर्गत पावा नामक स्थान पर भगवान महावीर ने मुक्तिलाभ किया। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर का उपदेश सुनने के लिये विभिन्न देशों के राजा पावा में पधारे। भगवान महावीर ने एकत्र जनसमूह को 6 दिन तक उपदेश दिया। सातवें दिन रात्रि के समय रातभर उपदेश दिया। जब रात्रि के पिछले पहर में सब श्रोता नींद में थे, तब भगवान महावीर पर्यांकसन से शुक्ल ध्यान में स्थित हो गये। जैसे ही दिन निकलने का समय हुआ, महावीर प्रभु ने निर्वाण लाभ किया। जब मनुष्य जागे तो उन्होंने देखा कि वीर प्रभु निर्वाण लाभ कर चुके हैं, उस समय गौतम गणधर के सिवाय, उनके सभी शिष्य उपस्थित थे।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार उन्नीस वर्ष, पाँच मास और बीस दिन पश्चात् कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी के दिन स्वाति नक्षत्र के रहते हुए रात्रि के समय निर्वाण को प्राप्त हुए।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार कार्तिक कृष्ण अमावस्या को स्वाति नक्षत्र के रहते हुए रात्रि के पिछले प्रहर में महावीर का निर्वाण हुआ।

विक्रम संवत् के 470 वर्ष पहले तथा ईस्वी सन् से 527 वर्ष पहले भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था। डा. हर्मन जेकोबी इस मत के सहमत नहीं है। इनके अनुसार महावीर के निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् जिस विक्रम राजा होने का उल्लेख है, उसका इतिहास में कोई अस्तित्व नहीं है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार बुद्ध का निर्वाण ईस्वी सन् के 570 वर्ष पूर्व हुआ था। बुद्ध की अवस्था निर्वाण के समय 80 वर्ष थी। यदि जैन गाथाओं के अनुसार ई.पू. 527 वर्ष में हुआ होता तो उस समय बुद्ध की आयु 30 वर्ष होनी चाहिये, परन्तु यह सब मानते हैं कि 36 वर्ष की उम्र के पहले बुद्ध को बोधिलाभ नहीं हुआ था। ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार अजातशत्रु बुद्ध के निर्वाण से 8 वर्ष पूर्व राजगद्दी पर बैठा और उसने 32 वर्ष तक राज्य किया था। अब यदि उक्त जैन गाथाओं के अनुसार महावीर का निर्वाणकाल माना जाता है तो उक्त बात घटित नहीं होती। महावीर का निर्वाणकाल कल्पित है, अतः उसमें 60 वर्ष कम करना चाहिए।[1]

यह माना जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य महावीर के निर्वाण से 219 वर्ष पश्चात् और बुद्ध निर्वाण से 218 वर्ष पश्चात् गद्दी पर बैठा। इस तरह जैनों की काल गणना के अनुसार चन्द्रगुप्त ईस्वी सन् से 326 या 325 वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा।

जार्ल कार्पेण्टिर ने महावीर के निर्वाण के संवत् के विषय में शंका की। उसके पश्चात् स्व काशीप्रसाद जायसवाल ने महावीर ओर बुद्ध के निर्वाण की विद्वत्तापूर्वक विवेचना की।उन्होंने 18 वर्ष की भूल बताकर वीर निर्वाण संवत् में 18 वर्ष बढाने का सुझाव दिया।

जुगलकिशोर मुख्तार ने इस संदर्भ में जायसवाल के 18 वर्ष बढाने से और इसकी और जार्ल चार्पेंटियर के 80 वर्ष घटाने के सुझाव को सदोष बताकर प्रचलित वीर निर्वाण संवत् को ही ठीक ठहराया। इसके पश्चात् मुनि कल्याणविजय जी ने भी एक निबन्ध लिखकर वीर

---

1. जैन साहित्य का इतिहास

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्वाण संवत् को ठीक प्रमाणित किया।

जैन और बौद्ध उल्लेखों के अनुसार महात्मा बुद्ध, अजीविक सम्प्रदाय के संस्थापक मक्खलि गोशाल, वैशाली नरेश चेटक, मगध राजा श्रेणिक या बिम्बसार और श्रेणिक पुत्र अभय और कुणीक या अजातशत्रु, ये इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति महावीर के समकालीन थे।

लिच्छवी गणतंत्र के प्रमुख चेटक की सबसे बड़ी पुत्री की कुक्षि से महावीर का जन्म हुआ था और सबसे छोटी पुत्री चेलना श्रेणिक की पटरानी और कुणीक की जननी थी।

जैन ग्रंथकारों[1] के अनुसार श्रेणिक चरित के आधार पर श्रेणिक के पिता ने श्रेणिक को राज्य से निकाल दिया था। मार्ग में ब्राह्मण मिला, उनकी बुद्धिमती पुत्री से श्रेणिक का विवाह हुआ। उससे अभयकुमार नामक पुत्र हुआ। पिता की मृत्यु पर श्रेणिक को मगध का राज्य मिला और बड़ा होने पर अभयकुमार राजमंत्री हुआ। अभयकुमार के मंत्रित्वकाल में राजा श्रेणिक चेटक की सबसे छोटी पुत्री चेलना पर आसक्त गये और चेटक से उसकी याचना की। चेटक द्वारा अस्वीकृत करने पर अभयकुमार ने छल से चेलना का हरण कर श्रेणिक से उसका विवाह करा दिया। चेलना के प्रयत्न से राजा श्रेणिक ने जैनधर्म स्वीकार किया और महावीर का उपदेश सभा का प्रधान श्रोता बना। जब 42 वर्ष की अवस्था में भगवान महावीर को केवल ज्ञान हुआ और राजगृही में पदार्पण हुआ, उस समय राजाश्रेणिक चेलना के साथ निवास करते थे। हरिशेष के 'कथाकोश' के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण से सात वर्ष पाँच मास पश्चात् श्रेणिक की मृत्यु हुई। बौद्ध और जैन ग्रंथों से इसका समर्थन नहीं होता।

जैनों में परम्परा से प्रचलित वीर निर्वाणकाल को और बौद्धों में परम्परा से प्रचलित बुद्ध निर्वाणकाल को ही ठीक मान कर चलने से बुद्ध, महावीर, गोशालक, श्रेणिक, अभयकुमार और अजातशत्रु आदि की समकालीन तथा जैन और बौद्ध ग्रंथों में वर्णित घटनाओं की संगति ठीक बैठ जाती है।

	महावीर	बुद्ध
जन्म	599 ई.पू.	624 ई.पू.
बोधिलाभ	557 ई.पू.	599 ई.पू.
निर्वाण	527 ई.पू.	544 ई.पू.

जिनशासन के चौबीसवें और अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए, जिनका समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी माना गया है, जो कि विश्व के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, जबकि भगवान महावीर ने और उनके समकालीन महात्मा बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश देकर धार्मिक और सांस्कृतिक क्रांति का सूत्रपात किया, लगभग उसी समय चीन में लाओत्से और कन्फूशियस, यूनान में पाइथोगोरस, अफलातून और सुकरात, ईरान में जरथुष्ट, फिलीस्तीन में जिरेमिया और इर्जाकेल आदि महापुरुष अपने अपने क्षेत्र में धार्मिक क्रांति के सूत्रधार बने।[2]

1. वृहद् कथा कोष, कथा 55
2. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 532-533

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिस समय महावीर का आविर्भाव हुआ, उस समय यज्ञों में निरीह पशुओं की बलि दी जाती थी, धार्मिक क्रियाओं का भार सदाचारी या दुराचारी, पण्डित या मूर्ख ब्राह्मणों पर था। जातिव्यवस्था में मानव समाज जकड़ा हुआ था और शूद्र लोग न वेद की ऋचाएं सुन सकते थे, न बोल सकते थे और न पढ़ सकते थे।

भगवान महावीर न केवल एक महान धर्म के संस्थापक ही थे, किन्तु महान् लोकनायक, क्रांतिद्रष्टा और विश्वबंधुत्व के प्रतिमान थे। महावीर ने मानवता को अहिंसा, दया और प्रेम का पाठ पढ़ाया, रूढ़िवाद, पाखण्ड और वर्णभेद को ध्वस्त कर समता का उद्घोष किया। भगवान महावीर ने विश्व को सच्चे समतावाद, साम्यवाद, अहिंसावाद, स्यादवाद, अपरिग्रहवाद और आत्मवाद का अमृत पिलाकर भटकती मानवता को नया रास्ता दिखाया।

भगवान महावीर के धर्मपरिवार में नौ गण और ग्यारह गणधर- इन्द्रभूति, अग्निमूर्ति, वायुभूर्ति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और श्री प्रभास्थ थे। ये सभी ब्राह्मण थे।

भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में कर्मवाद की महत्ता बताकर नैतिक मूल्यों का शंखनाद किया है। महावीर ने कहा, बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नहीं देखा, वैसे ही इन्द्रिय सुख में भी कोई सुख दिखाई नहीं देता।[1] खुजली का मनुष्य जैसे खुजलाने पर दुख को सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य कामजन्य दुख को सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य कामजन्य दुख को सुख मानता है।[2] रागद्वेष संसारी जीव के परिणाम होते हैं, परिणामों से कर्मवध होता है। कर्मवध के कारण जीव चार गतियों में शासन करता है- जन्म लेता है। जन्म से शरीर और शरीर से इन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं। उसके जीव विषयों का सेवन करता है, उससे फिर रागद्वेष होता है। इस प्रकार जीवन संसार चक्र में भ्रमण करता है।[3] जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है। यहाँ संसार दुख ही हे, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।[4]

---

1. समणसुत्तं, पृ 16, 17
   सुट्ठि मागिज्जंतो, कत्थ वि केलीइ नत्थि जह सारो।
   इंदि अविसएसु तहा, नत्थि, सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं॥
2. वही, पृ 17, 18
   जहं कच्छुल्लो कच्छुं, कंडय माणे दुहं मुणई सुक्खं।
   मोहाडरा मणुस्सा, वह कण दुहं सुहं विंति॥
3. वही पृ 19
   जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होरि परिणामो।
   परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदि॥
   गदिमधिगदस्स देहो, देहादो इंदियाणि जायंते।
   तेहि दु विसवग्गहणं, तत्वो रागो वा देसो वा॥
   जायदि जीव जीवस्सेवं, भावो संसार चक्कवालम्मि।
4. वही, पृ 19
   जन्मं दुक्खं, जरा दुक्खं, रोगा य मरणादि य।
   अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतवो॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर्म से मुक्ति पाने के लिये मोक्ष प्राप्ति के लिये महावीर ने धर्म का उपदेश दिया। महावीर ने कहा, धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम, और तप उसके लक्षण है। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसके देवता भी नमस्कार करते हैं।[1] उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्णव, उत्तम शौर्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग और उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य ये दसधर्म हैं[2], मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव है।[3]

महावीर का धर्म आत्मवादी धर्म है। महावीर ने कहा, आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामदुग्ध धेनु है, आत्मा ही नन्दन वन है।[4] महावीर का आत्मवादी धर्म श्रेष्ठ जीवन मूल्यों पर आधृत है। महावीर ने कहा, क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान विनय को नष्ट करता है[5], माया मैत्री को नष्ट करती है और लोभ सब कुछ नष्ट करता है। क्षमा से क्रोध का हनन करें, नम्रता से मन को जीतें, ऋजुता से माया को और संतोष को लोभ से जीतें।[6]

महावीर ने साधु के पंच महाव्रत और श्रावक के लिये पंच अणुव्रतों की उद्घोषणा की। महावीर ने अपरिग्रहवाद का उपदेश दिया। महावीर ने कहा, जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है।[7] जैसे हाथी को वश में रखने के लिये अंकुश होता है, नगर की रक्षा के लिये खाई होती

---

1. समणसुत्तं, पृ 29
   धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजयो तवो।
   देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥
2. वही, पृ 28-29
   उत्तमखममद्धवज्जव-सच्चसउच्च ज संजमं चेव।
   तव चागम किंचण्हं बम्ह इदि दसविहो धम्मो॥
3. वही, पृ 28-29
   खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमन्तु में।
   मित्ति में सच्चभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि॥
4. वही, पृ 39
   अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कडसामली।
   अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा में नंदणं वणं॥
5. वही, पृ 43
   कोहो पीइं पणासेद्, माणो विणय नासणो।
   माया मित्राणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥
6. वही, पृ 43
   उवसमेण हणे कोहं, माणं, भद्दवया जिणे।
   मायं चऽज्ज भावेण, लोभं संतोसओ जिणे॥
7. वही, पृ 44-45
   संग निमित्तं मारइ, भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं।
   सेतइ मेहुण मुच्छं, अधरिमाणं, कुणइ जीवो॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है, वैसे ही इन्द्रिय निवारण के लिये परिग्रह का त्याग कहा गया है।[1]

महावीर ने अहिंसावादी जिन दर्शन की महत्ता स्थापित की। महावीर ने कहा, "ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। इतना जानना ही पर्याप्त है कि अहिंसामूलक समताही धर्म है और यही अहिंसा का विज्ञान है; [2] सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं, इसलिये प्राणवध को भयानक जानकर निर्ग्रंथ उसका वर्जन करते हैं।[3] जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अत: आत्महितैषी (आत्मकाम) पुरुषों ने सभी तरह की जीव हिंसा का परित्याग किया है[4]; जिसे तो हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तो आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है;[5], जैसे जगत में मेरुपर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल और कुछ नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।[6]

महावीर के मतानुसार आत्मा के तीन रूप हैं- बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। इंद्रिय समूह को आत्मा के रूप में स्वीकार करने वाला बहिरात्मा है, आत्मसंकल्प-देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करने वाला अंतरामात्रा है और कर्मकलंक से विमुक्त आत्मा परमात्मा है।[7] महावीर के अनुसार परमात्मा के दो रूप हैं- अर्हंत और सिद्ध। केवल ज्ञान से समस्त पदार्थों को जानने वाले सशरीर जीव अर्हंत हैं तथा सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) के संप्राप्त ज्ञान शरीर जीव सिद्ध हैं।[8]

---

1. समणसुत्तं, पृ 46-47
   गंथगच्चाओ इंदिय णिवारणे अंकुसो व हथिस्स।
   णयरस्स खाइया वि य, इंदिय गुची असंगत्तं ॥
2. वही, पृ 46-47
   एयं खु नाणियो सारं, जं न हिंसइ कैचण।
   अहिंसा समवं येव, एताइंते वियाणिया ॥
3. वही, पृ 46-47
   सव्वे जीवा वि इच्छांति, जीविउं न मरिज्जिउं।
   तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंधा वज्जयेंति णं ॥
4. वही, पृ 48-49
   जीव वहो अप्पहो, जीव दया अप्पणो दया होइ।
   ता सव्व जीवाहिंसा पस्चिता अत्ताकामेहिं ॥
5. वही, पृ 4-49
   तुमं सि नाम स चेव, हैतत्वं ति मन्नसि।
   तुमं सि नाम स चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नासि ॥
6. वही, पृ 50-51
   तुंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि।
   जह तह जयंमि जाणसु धम्ममहिंसा समं नत्थि ॥
7. वही, पृ 56-57
   अक्खाणि बहिरप्पा, अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो।
   कम्म कलंक विमुक्को, परमप्पा भण्णए देवो ॥
8. वही, पृ 56-57
   सशरीरा अरहंता, केवल णाणेण मुणिय सयलत्था।
   णाणशरीर सिद्धा, सव्वुत्तम सुक्ख-संपत्ता ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महावीर ने सम्यग् ज्ञान, सम्यगदर्शन, सम्यग्चारित्र्य को मोक्षमार्ग कहा है। इसे रत्नमय भी कहा गया है। धर्म आदि का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। अंगों और पूर्वों का ज्ञान सम्यग्ज्ञान। तप से प्रयत्नशीलता सम्यगचरित्र है। यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।[1] ज्ञान से जीवादि पदार्थों को जानता है। दर्शन से उनका श्रद्धान करता है, चारित्र्य में कर्मास्रव करता है और तप से विशुद्ध होता है[2]; सम्यग्दर्शन के विरुद्ध ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान के बिना चारित्र्यगुण नहीं होता है, चारित्र्यगुण के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण (अनन्त अरन दे) नहीं होता।[3] आत्मा में लीन आत्मा ही सम्यग्दृष्टि है ; जो यथार्थरूप में आत्मा को जानता है वही सम्यग्ज्ञान है और उसमें स्थित रहना ही सम्यक्चारित्र्य[4] है और आत्मा ही मेरा ज्ञान है, आत्मा ही दर्शन और चरित्र है, आत्मा ही प्रत्याख्यान है और आत्मा ही संयम और योग है।[5]

महावीर ने चारित्र्य पर अधिक बल दिया। महावीर ने कहा, चरित्र्य शून्य पुरुष का विपुल शास्त्राध्ययन भी व्यर्थ ही है, जैसे कि अंधे के आगे लाखों करोड़ों दीपक जलाना व्यर्थ है[6], चरित्र्य सम्पन्न का अल्पतम ज्ञान भी बहुत है और चरित्र्यविहीन का श्रुतज्ञान भी निष्फल है।[7]

महावीर ने श्रावक और साधु को परिभाषित किया है। सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, वायु के

---

1. समणसुत्तं, पृ 68-69
   धम्मा दीखं सद्दहणं सम्मतं णाणमंग पुव्वगंद।
   चिट्ठा तंवसि चरिया, ववहारो मोक्खभग्गो त्ति ॥
2. वही, पृ 68-69
   नाणेण जाणई भवि, दंसणेण य सद्दते।
   चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥
3. वही, पृ 70-71
   नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा।
   अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निवाणं॥
4. वही, पृ 72-73
   अप्पा अप्पमि रओ, सम्माइट्ठी हवेई फुडु जीवो।
   जाणइ तं सण्णाणं, चरदिह चास्तिमंगुत्ति ॥
5. वही, पृ 72-73
   आया हु महं नाणे, आया मे दंसणे चरित्रे यं।
   आया पच्चक्खणि, आया में संजमे जोगे ॥
6. वही, पृ 86-87
   सुवहुं पि सुयमहीयं किं, काहिइ चरणविप्प होणस्स।
   अंधस्स जह पलित्ता, दीव सयसहस्स कोडी वि ॥
7. वही, पृ 86-87
   थोवम्मि सिक्खदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्तसंपुण्णो।
   जो पुण चरित्तहीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गम्भीर, मेरु के समान निश्चल, चन्द्रमा के समान शीतल, मणि के समान कांतिमान, पृथ्वी के समान सहिष्णु, सर्प के समान अनियत आश्रयी, और आकाश के समान निरवलम्ब साधु परमपद मोक्ष की खोज में रहते हैं।[1] केवल सिर मुंडाने से श्रमण नहीं होता, ओम का जाप कहने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता, कुशचीवर पहनने से कोई तपस्वी नहीं होता।[2] वह समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है और तप से तपस्वी होता है।[3]

भगवान महावीर ने तत्वज्ञान का उपदेश दिया। महावीर ने कहा जहाँ न दुख है न सुख, न पीड़ा है न बाधा, न मरण है न जन्म, वही निर्वाण है।[4] जहाँ इंद्रियाँ है न उपसर्ग, न मोह न विस्मय, न निद्रा है न तृष्णा और न भूख है, वहीं निर्वाण है।[5]

महावीर स्यादवाद के व्याख्याता थे। महावीर ने कहा दूध और पानी की तरह अनेक विरोधी धर्मों द्वारा परस्पर घुले मिले पदार्थ में यह धर्म और वह धर्म का विभाग करना उचित नहीं। जितनी विशेष पर्याय हों, उतना ही अविभाग समझना चाहिये।[6] स्यात अस्ति, स्यातनास्ति, स्यात् आस्तिनास्ति, स्यात् अवक्तव्यं, स्यात आस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्यं, स्यात् आस्तिनास्ति अवक्तव्यं-इन्हें प्रमाण सप्तमंगी जानना चाहिये।[7]

---

1. समणसुत्तं पृ 108-109
   सीह-गय-वसह-मिय-पसु, मारुद-सुरूवति-मंदरिंदु-मणी।
   खिदि-उरगंवरसरिसा, परम-पय-विमग्गया साहू ॥
2. वही, पृ 30-31
   न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
   न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण त तावसो ॥
3. वही, पृ 30-31
   समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
   नाणेण य मुणी होइ, तवणे होइ तावसो ॥
4. वही, पृ 196-197
   णवि दुक्खं णवि सुक्खं, णवि पीड़ा णेव विज्जदे बाहा।
   णवि मरनं णवि जणणं, तत्थेव य होय णित्वाणं ॥
5. वही, पृ 196-197
   णवि इंदिय उवसग्गा, णवि मोहो विम्हयो ण वणिद्दाय।
   णयण्हा णेव भुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं ॥
6. वही, पृ 214-255
   अन्नोनाणु गयाणं, इमं वतं व तं व 'विभयणमजुतं।
   जह दुद्धपाणियाणं, जावंत विसेसपज्जाया ॥
7. वही, पृ 230-231
   अत्थि त्ति णत्थि दो विय, अव्वत्तव्वं सिएण संजुत्तं।
   अव्वत्तव्वा ते तह, पमाणभंगी सुणायव्वा ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनमत: आचार्य परम्परा (अखण्ड जिनशासन)

जैनग्रंथों में महावीर के प्रमुख शिष्य प्रशिष्यों की भी परम्परा का उल्लेख काल कर्म से किया गया है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के निर्वाण के पश्चात् 62 वर्ष में तीन केवली और तत्पश्चात् 100 वर्ष में 5 श्रुतकेवली हुए। तिलोयपण्णति के अनुसार 'जिस दिन वीर प्रभु का निर्वाण हुआ, उसी दिन उनके प्रधान शिष्य केवल ज्ञानी हुए। उनके मुक्त होने पर सुधर्मास्वामी केवलज्ञानी हुए। उनके मुक्त होने पर जम्बूस्वामी केवल ज्ञानी हुए। जम्बूस्वामी के मुक्त होने पर अनुबद्ध केवली नहीं हुआ।' आगे लिखा है- नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, चौथे गोवर्द्धन, पाँचवें भद्रबाहु- यह पाँच पुरुष श्रेष्ठ जगत में विख्यात श्रुतकेवली हुए। इन पाँचों के काल का सम्मिलित प्रमाण 100 वर्ष होता है। इसके पश्चात् भरतक्षेत्र में कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ।'[1]

इन्द्रनंदि श्रुतावतार में तीनों केवलियों का पृथक पृथक काल दिया है। नन्दिसंघ की 'प्राकृत पदावली' में प्रत्येक केवली और श्रुतकेवली का पृथक पृथक काल दिया है-

तीन केवल		पाँच श्रुतकेवली	
1. गौतम गणधर	12 वर्ष	1. विष्णु कुमार	14 वर्ष
2. सुधर्म स्वामी	3 वर्ष	2. नंदिमित्र	16 वर्ष
3. जम्बूस्वामी	38 वर्ष	3. अपराजित	4 वर्ष
		4. गोवर्धन	19 वर्ष
		5. भद्रबाहु	21 वर्ष
	62 वर्ष		100 वर्ष

इस तरह भगवान महावीर के निर्वाण में भद्रबाहु श्रुतकेवली पर्यन्त 162 वर्ष होते हैं। श्रवणबेलमोल के शिलालेख-1 में दूसरे कैवली का नाम लीतामही पाया जाता है। हरिवंशपुराण, श्रुतावतार तथा शिलालेख 105 में उसके स्थानपर सुधर्मा नाम है। 'जम्बू पण्णती' में स्पष्ट लिखा

---

1. तिलोयपण्णति, 1476-1484

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी।
वारो तास्मि सिद्धे सुधम्भसामी तदो जादो। 1476॥
तस्मि कदकम्मणा से जंबूसामित्ति केवली जादो।
तत्थावि सिद्धिपण्णे केवालिणों णत्थि अणुबद्धा। 1477॥
वासट्ठी वासाणि गोदम पहुदीण णाणवंताणं।
धम्मपयट्टण काले परिमाणं पिंडरूपेण। 1478॥
णंदीय णंदिमित्तो विदिओ अवराजिदो तइज्जोय।
गोवद्धणों चउत्थो पंचमओ भद्दबाहुत्ति॥ 1479॥
पंच इमे पुरिसवरा चउदसपूव्वी जगम्मि विक्खादा।
ते बारस अंगधरा तित्थे तित्थि सिरिबद्धमाणस्स॥1483॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है कि लोहार्यका नाम सुधर्मा ही था।[1]

यह सम्भव है कि कहीं नन्दी और कहीं विष्णु नाम आता है। यह सम्भव है कि आचार्य का पूरा नाम विष्णु नन्दि हों, संक्षेप में उन्हें कहीं विष्णु और कहीं नन्दि कहा गया हो।

वीर निर्वाण के 170 वर्ष बीतने पर भद्रबाहु स्वामी का स्वर्गवास हुआ। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार -

श्री वीर मोक्षात् वर्ष शतै सहात्यपते गति सति।
भद्रवाद्र रपि स्वामी ययौ स्वर्ग समधिजा ।।[2]

भद्रबाहु ही एक ऐसे हैं, जिन्हें दोनों सम्प्रदायों ने माना है भद्रबाहु का युगप्रधानत्व दोनों सम्प्रदायों को स्वीकार्य है। इन्हीं के समय में संघभेद प्रारम्भ हुआ है। भद्रबाहु का स्थान अखण्ड जैन परम्परा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

दिगम्बर जैन ग्रंथ और शिलालेख इन्हें मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त का समकालीन सिद्ध करते हैं। विदेशी और देशी इतिहास भी इनसे सहमत हैं। किन्तु काल गणना के हिसाब से समकालीनता सिद्ध नहीं होती। दोनों के बीच 60 वर्ष का अन्तर पड़ता है। यदि भद्रबाहु के समय वीर निर्वाण 162 में 60 वर्ष बढ़ा दिये जाये तो चन्द्रगुप्तमौर्य और भद्रबाहु की समकालीनता ठीक बन जाती है।

जम्बू स्वामी केवली के पश्चात् होने वाले युग प्रधान आचार्यों में भद्रबाहु ही एक ऐसे हैं, जिन्हें दोनों सम्प्रदायों ने माना है। जम्बू स्वामी के पश्चात् और भद्रबाहु स्वामी से पहले होने वाले 4 आचार्यों के नाम दोनों सम्प्रदायों में मिला है। इससे यह स्पष्ट है कि वे एक दूसरे से भिन्न व्यक्ति हैं, किन्तु भद्रबाहु का युगप्रधानत्व दोनों सम्प्रदायों को स्वीकार्य है। इसलिये भद्रबाहु का स्थान अखण्ड जैन परम्परा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त

दिगम्बर साहित्य के हरिषेणकृत 'वृहतकथाकोश' की कथा 131 के अनुसार भद्रबाहु पुण्ड्र देश के निवासी एक ब्राह्मण के पुत्र थे, जिन्हें चतुर्थश्रुत केवली गोवर्धन ने उनके पिता से मांगकर विद्वान बना दिया। भद्रबाहु गोवर्धन के पश्चात् पंचम श्रुतकेवली हुए। बाद में दिव्यज्ञान से यह जाना कि 12 वर्ष तक अकाल पड़ेगा। वे दक्षिण की ओर चले गये और चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशाखाचार्य बनकर दीक्षा ली। यह निर्विवाद है कि वृहत् कथाकेश में जिस भद्रबाहु का आख्यान दिया है, वे श्रुतकेवली भद्रबाहु ही हैं और उनके समय में चंद्रगुप्त नाम का यदि कोई राजा हुआ तो

पंचाण मेलिदाणं काल पमाणं हवेदि वाससदं।
बीदम्मि पंचमरा भरहे सुतकेवलि गत्थि ॥1484॥

1. जम्बू पण्णाति, श्लोक 10
तेणवि लोहजस्सं य लोहज्जेण य सुधम्मणामेणं।
मणहर सुधम्मणा रक्कु जंबुणामाणसय णिद्दिट्ठं ॥10॥
2. हेमचन्द्राचार्य, परिशिष्ट पर्व

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वह मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ही है।[1]

सत्यकेतु विद्यलंकार के अनुसार 'इस अनुश्रुति में कोई संदेह नहीं करते हैं कि चन्द्रगुप्त नाम का उज्जियिनी का एक राजा आचार्य भद्रबाहु के साथ श्रवणबोलगोल में आया था और वहाँ पहुँचकर अनशनव्रत कर स्वर्गलोक सिधारा है। परन्तु प्रश्न यही है कि चन्द्रगुप्त है कौन सा ? जैन साहित्य के अनुसार यह अशोक का पौत्र है।'[2]

चन्द्रगुप्त द्वितीय सम्प्राति के नाम से प्रसिद्ध है। सम्प्रति और भद्रबाहु की समकालीनता सिद्ध नहीं होती। अशोक के पौत्र सम्प्राति का राज्याभिषेक 40 ई.पू. हुआ, अर्थात् चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्याभिषेक के 100 वर्ष पहले। उस समय भद्रबाहु का अस्तित्व किसी भी तरह सम्भव नहीं है। श्वेताम्बर परम्पराओं में सम्प्राति को जैनधर्म का महान् उद्धारक बताया है। आर्य सुहस्ती ने उसे जैन धर्म में दीक्षित किया था। श्वेताम्बर पट्टावलियों के अनुसार भद्रबाहु श्रुतकेवली के 75 वर्ष पश्चात् आर्य पदासीन हुए थे।

डा. स्मिथ के अनुसार 'चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यकाल किस प्रकार समाप्त हुआ, इसका ठीक प्रकाश जैन कथाओं से ही पड़ता है। जैनियों ने सदैव उक्त मौर्य सम्राट को बिम्बसार के सदृश जैन धर्मावलम्बी माना है और उनके इस विश्वास को झूठ कहने के लिये कोई उपयुक्त कारण नहीं है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि शिशुनाग नंद और मौर्य राजवंशों के समय में जैनधर्म मगध प्रान्त में बहुत जोरों पर था। एक बार जहाँ चन्द्रगुप्त के धर्मवलम्बी होने की बात मान ली, फिर उनके राज्य को त्याग कर जैन विधि के अनुसार संल्लदेखना विधि के द्वारा मरण करने की बात सहज ही विश्वसनीय होती है।'[3]

जैन ग्रंथों के अनुसार कि भद्रबाहु ने श्रमणबेलगोल में शरीर त्यागा। राजर्षि चन्द्रगुप्त ने उनसे बारह वर्ष पीछे समाधिमरण किया। इस बात का समर्थन श्रवणबेलगोला आदि के नामों, ईसा की सातवीं सदी के उपरान्त के लेखों तथा दसवीं शताब्दी के ग्रंथों से ज्ञात होता है।

बेलगोला के चन्द्रगिरि पर्वत, पार्श्वनाथ बस्ती के शिलालेख संख्या-1 में भद्रबाहु को श्रुतकेवली न बतलाकर निमित्त ज्ञानी और चन्द्रगुप्त के स्थान पर प्रभाचंद्र का उल्लेख किया है, किन्तु बेलगोला के शिलालेख संख्या 17, 18, 40, 54 और 108 में भद्रबाहु को श्रुतकेवली और चन्द्रगुप्त को उनका शिष्य बतलाया है।[4]

---

1. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैन साहित्य का इतिहास, पूर्वपीठिका, पृ 343
2. सत्यकेतु विद्यालंभार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, पृ. 424
3. Dr. Smith, Oxford History of India, Page 75-76
4. जैन शिलालेख संग्रह, भाग-1

(1) श्री भद्रः सर्वतो योहि भद्रबाहुरिति श्रुतः ।
श्रुतकेवली नाथेषु चरमः परमो मुनि ॥4॥
चन्द्रप्रकाशोज्जवल सान्द्र कीर्तिः श्री चन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्य।
(2) श्री भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणाम्मिह पश्चिमोऽपि।
अपश्चियमोऽभूत् विदुषां विजेता सर्वश्रुतार्थ प्रतिपादनेन ॥8॥
तदीय शिष्यो जनि चन्द्रगुप्तः समग्रशीलानत देववृद्धः ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरे भद्रबाहु का समय ईस्वी सन् से 53 वर्ष पूर्व माना जाता है। अत: दोनों भद्रबाहुओं के मध्य तीन शताब्दियों का अंतराल है। श्वेताम्बर साहित्य में द्वितीय भद्रबाहु को वराहमिहिर का भाई लिखा है। वराहमिहिर का काल ई.पू. 505 निश्चित है।

चन्द्रगुप्त का पूर्वाधिकारी नन्द जैन था, यह बात खारवेल के शिलालेख से स्पष्ट है। भद्रबाहु श्रुतकेवली और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीन सिद्ध है।

आर्य सुहस्ती और सम्प्राति

'कल्पसूत्र स्थिरावली' के अनुसार आर्य यशोभद्र के दो शिष्य थे- संभूतविजय और भद्रबाहु। संभूतविजय के शिष्य का नाम भद्रबाहु था। स्थूलभद्र के दो शिष्य थे- आर्य महागिरि और सुहस्ती।

आर्य भद्रबाहु का स्वर्गवास वीर निर्वाण से 170 वर्ष पश्चात् हुआ। स्थूलभद्र वीर निर्वाण 170 से 215 तक आचार्य पद पर रहे। इनके पश्चात् आर्य महागिरि 30 वर्ष तक और तत्पश्चात् सुहस्ती 46 वर्ष तक पदासीन रहे।

श्वेताम्बरीय उल्लेखों के अनुसार स्थूलभद्र अंतिम नँद के मंत्री शर्कहाल (शकटार) के पुत्र थे। उनके शिष्य सुहस्ती ने अशोक के पौत्र सम्प्रति को जैन धर्म में दीक्षित करके जैनधर्म का महान् उद्धार कराया था। स्थूलभद्र का स्वर्गवास चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में हुआ है। आर्य सुहस्ती ने चन्द्रगुप्त मौर्य, तत्पुत्र, बिम्बसार, तत्पुत्र अशोक और अशोक के पौत्र सम्प्रति का राज्यकाल देखा।[1]

श्री जायसवाल ने चन्द्रगुप्त का राज्यकाल ई.पू. 326 ई. से 302 तक तथा सम्प्रति का राज्यकाल ई.पू. 40 से 23 तक ठहराया है। अर्थात् चन्द्रगुप्त और सम्प्राति के मध्य एक शताब्दी का अन्तर है। जैन स्रोतों के अनुसार सम्प्राति चंद्रगुप्त के 105 वर्ष पश्चात् राज्यासन पर बैठा।[2]

'मत्स्य पुराण' और 'विष्णु पुराण' में दशरथ के बाद सम्प्रति का नाम है। जायसवाल जी ने परिणाम निकाला कि सम्प्राति दशरथ का छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। अत: उन्होंने अशोक के 8 वर्ष तक कुणाल का, उसके 8 वर्ष पश्चात् दशरथ और उसके बाद सम्प्रति का काल ठहराया है।

मुनिकल्याण विजय जी ने आर्य महागिरि का स्वर्गवास वीर निर्वाण 291 में और अशोक का राज्यकाल वीर निर्वाण 205 तक माना है।

श्वेताम्बर साहित्य में सम्प्राति की एक कथा है। आर्य सुहस्ती ने कौशाम्बी में एक दरिद्र व्यक्ति को दीक्षा दी, वह अगले जन्म में कुणाल का पुत्र हुआ। अंधे कुणाल ने अशोक से राज्य मांगा। अशोक ने कहा तुम अंधे हो, तुम्हें राज्य का क्या प्रयोजन। उसने कहा - मेरे सम्प्राति

---

1. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 328
2. Journal of Bihar, Orrisa Research Society, Patna Part Ist, Page 94-95

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(अभी) पुत्र हुआ है। अशोक ने उसका नाम सम्प्राति रख दिया। जब आर्य सुहस्ती उज्जियिनी पधारे तब सम्प्रति को पूर्व जन्म का ध्यान हुआ और वे आर्यसुहस्ती के भक्त और श्रमण बच गये। सम्प्राति के नगर में चारों ओर भोजनशालाएं स्थापित की। यह साधुओं के लिये भी थी। आर्यसुहस्ती जानते थे कि इस प्रकार का अन्य साधुओं के लिये अग्राह्य है तब भी शिष्य सम्प्राति के मोह में उसका समर्थन दिया।

श्वेताम्बर साहित्य में स्थूलभद्र द्वितीय को शकटार पुत्र कहा है। शकटार के पुत्र स्थूलभद्र का नाम तो क्या, संकेत भी दिगम्बर जैन ग्रंथों और जैनेत्तर साहित्य में नही है।

श्रुतकेवलि भद्रबाहु तक महावीर युग का प्रसार है, क्योंकि भगवान महावीर के 170 वर्षों तक श्रमण परम्परा और जैन संघ सुव्यवस्थित रहा। श्रुतकेवली का नाम दोनों परम्पराओं- श्वेताम्बरों और दिगम्बर में है, किन्तु समय का भेद है।

दिगम्बर परम्परा इसे निम्नानुसार 162 वर्ष का काल मानते हैं

केवली गौतम	12 वर्ष
केवली सुधर्मा	20 वर्ष
केवली जम्बूवासी	38 वर्ष
श्रुतकेवली विष्णु	14 वर्ष
श्रुतकेवली नंदिमित्र	16 वर्ष
श्रुतकेवली अपराजित	25 वर्ष
श्रुतकेवली गोवर्द्धन	17 वर्ष
श्रुतकेवली भद्रबाहु	29 वर्ष
	162 वर्ष

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार 170 वर्ष निम्नानुसार है।

1. सुधर्मा	20 वर्ष
2. जम्बू	44 वर्ष
3. प्रभव	11 वर्ष
4. श्वयभत	23 वर्ष
5. यशोभद्र	50 वर्ष
6. संभूतविजय	8 वर्ष
7. भद्रबाहु	14 वर्ष

पंचमश्रुतकेवलि भद्रबाहु का समय चंद्रगुप्त के समकालीन ठहरता है। स्मिथ ने स्वीकार किया है चंद्रगुप्त ने जैनमुनि का पद अंगीकार किया।[1]

---

1. Vincent Smith, History of India Part IX Page 146
Jain now disposed to believe that the tradition is probably true in livne on its main theme that Chandragupta really abdicted & became Jain ascetic.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'तिलोयपण्णति' में स्पष्ट है कि मुकुटधर राजाओं में अंतिम चंद्रगुप्त नामक नरेश ने जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की।[1] भद्रबाहु का जीवन श्रमणबेलगोला के मंदिर, मूर्तियों, किंवदंतियों के लिपियों के आधार पर डा. बसंतकुमार चटर्जी द्वारा निर्मित हुआ है। इससे पता चलता है कि भद्रबाहु की दीक्षा आचार्य यशोभद्र के पास वीर निर्वाण संवत् 131 के बाद हुई। भद्रबाहु 45 वर्ष तक गृहस्थ में रहे और 14 वर्ष तक संघ के एक मात्र संघ के एक मात्र आचार्य रहे और वीर निर्वाण 170 के वर्ष में 66 वर्ष की आयु में इनका निर्वाण हुआ।

भद्रबाहु ने ही दक्षिण भारत को जैनधर्म के रंग में रंग कर जैनमत के विकास में अभूतपूर्व योग दिया। कदम्ब और चालुक्यवंशी राजा अजैन होने पर भी जैनधर्म पर विशेष अनुराग रखते थे।

भद्रबाहु का जन्म ब्राह्मण परिवार में वीर निर्वाण सं. 94 में हुआ और 45 वर्ष के गृहस्थाश्रम के पश्चात् वीर निर्वाण संवत् 139 में भगवान महावीर के पाँचवें वट्टधर आचार्य यशोभद्रस्वामी के पास निर्ग्रंथ श्रमणदीक्षा ग्रहण की। वीर निर्वाण संवत् 148 में आचार्य सम्भूतविजय के साथ आपको भी आचार्य पद पर नियुक्त किया। भगवान महावीर के छठे पट्टधर आचार्य सम्भूतविजय के स्वर्गवास के पश्चात् वीर निर्वाण संवत् 156 में संघ के संचालन की पूर्ण बागडोर सम्भाल ली। आचार्य भद्रबाहु को- आचरांग, सूत्रकृतांग, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुत स्कन्ध, कल्प, व्यवहार, सूर्य प्रज्ञप्ति, और ऋषिभाषित इन दस सूत्रों, भद्रबाहु संहिता और वासुदेव चरित्र नामक ग्रंथ का कर्ता माना जाता है।

आपको दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में पाँचवें तथा अंतिम श्रुतकेवली माना जाता है। अनेक लेखकों ने आपकी भावपूर्ण स्तुति की है। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के जीवन के अंतिम चरण में ही दिगम्बर और श्वेताम्बर- मतभेद का सूत्रपात हो चुका था।

दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्पराओं के ग्रंथों से देखने से पता चलता है कि भद्रबाहु कई हुए। दिगम्बर परम्पराओं में भद्रबाहु नाम के 6 आचार्य हुए हैं और श्वेताम्बर परम्परा में दो आचार्य।

श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ जैनमत में एक युग का पटाक्षेप होता है, क्योंकि भद्रबाहु के जीवन के अंतिम चरण में ही अखण्ड जिन शासन दिगम्बर और श्वेताम्बर की दो धाराओं में विभक्त हो गया और उसके पश्चात् शने शने अनेक गणों, संघों और सम्प्रदायों में बँट गया और सम्प्रदायवाद के रंग में रंग गया।

---

1. तिलोयप्पण्णति, 4/1481

मउडधरेसुं चरित्तो जिण दिक्खं धर दिचन्दगुत्तोय।
ततो मउड़धरा दुप्पव्वजजं णेय गिहंति ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओसवंश का बीजारोपण

महावीर युग में ही 'उपकेश गच्छ पट्टावली' के अनुसार वीर निर्वाण सं. 70 में पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों में सातवें पट्ट रत्नप्रभसूरि ने उपकेशनगर (ओसियां) में चातुर्मास किया। 'उपकेश गच्छ पट्टावली' में उल्लेख है कि भिन्नमाल के राजा भीमसेन के पुत्र पुंज का राजकुमार उत्पलदेव अपने पिता से रुष्ट होकर क्षत्रिय मंत्री उहड़ के साथ भिन्नमाल से निकल पड़ा और उसने 12 योजना लम्बे चौड़े क्षेत्र में उपकेशनगर बसाया। वहाँ आहार पानी की अनुपलब्धि थी। एक दिन उपकेशनगर के राजा उत्पल के दामाद त्रैलोक्यसिंह को, जो मंत्री उहड़ का पुत्र था, एक भयंकर विषिधर ने डस लिया। उस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उसे जीवन दान दिया। उस अद्‌भुत घटना से प्रभावित होकर अनेक क्षत्रियों ने जैनधर्म अंगीकार किया और वे महाजन कहलाए। यही महाजन भविष्य के उपकेशनगर के नाम के कारण ओसवाल कहलाए। आचार्य रत्नप्रभु ने सच्चिकादेवी को ओसवालों की कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। 'पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' में आचार्य रत्नप्रभसुरि की अविच्छिन्न परम्परा को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार महावीर युग के अंतिम चरण में ओस (वाल) वंश का बीजारोपण महाजन वंश के रूप में उपकेशनगर, उएसनगर अथवा ओसिया में हुआ।

महावीरोत्तर युग : जैनमत का प्रसारकाल

विविध प्रदेशों में जैनमत का प्रसार

भगवान महावीर के पश्चात् जैनमत का प्रसार पूरे देश में हुआ और उनके द्वारा बताए रास्ते को अंगीकार कर श्रावक धर्म के निकष पर खरे उतरने लगे। महावीर के पश्चात्, प्रकृति के विनाश के पश्चात् भी पूरे देश में तीर्थंकारों की मूर्तियां, विहार, गुफाएं, मंदिर के रूप में देश में जैनमत की लम्बी विरासत मिलती है। ओसवंश ने भी जैनमत की लम्बी सांस्कृतिक विरासत को अपने भीतर संजो कर रखा है।

जैन समाज का देश में छोटा समुदाय है, जिन्हें अल्पसंख्यक कहा जा सकता है और जब अल्पसंख्यक समुदायों- मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध और पारसी की बात आती है, तो उन्हें दूर तक इसे बहुसंख्यक हिन्दू समाज का अंग (Offshoot) मान लिया जाता है।[1] एक समय में वे अल्पसंख्यक नहीं थे। श्रमण सभ्यता पूरे देश में फैली हुई थी।

जैनमत की कहानी में बिहार ने एक विशिष्ट भूमिका निभाई है। वर्द्धमान या महावीर बिहारी की धरती में ही जन्मे। बिहार तीन तीर्थंकारों- शीतलनाथ, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ की

---

1. Jain Journal, Mahaveer Jayanti Special, Page 146
The Jains today are a small community in this country which may reasonably be called a minority and yet when minorities are usually referred to the muslims, the sikhs, the Christians, the Budhists, the Parsis, the Jain are scarcely remembered or mentioned as if they are a remote offshoot of a dominant Hindu majority.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भी जन्मभूमि रही है। इसके अतिरिक्त बीस तीर्थंकारों- अजितनाथ (द्वितीय), सम्भवनाथ (तृतीय), अभिनन्दन (चतुर्थ), सुमतिनाथ (पंचम), पदमप्रभु (षष्ट), सुपार्श्वनाथ (सप्तम), सुविधिनाथ (नवम्), शीतलनाथ (दशम्), श्रेयांसनाथ (एकादश), विमलनाथ (तेरहवें), अनन्तनाथ (चौदहवें), धर्मनाथ (पन्द्रहवें), शांतिनाथ (सोलहवें), कुंतीनाथ (सत्रहवें), अरनाथ (अट्ठारहवें), मल्लिनाथ (उन्नीसवें), मुनिसुव्रत (बीसवें), नेमिनाथ (इक्कीसवें) और पार्श्वनाथ (तैबीसवें) तीर्थंकारों की निर्वाण भूमि रही है। भगवान ऋषभ ने प्रस्तर युग की समाप्ति और कृषियुग के प्रारम्भ के पहले मगध में उपदेश दिया था। यहीं अशोक के पौत्र सम्प्राति ने जैनमत का प्रचार भारत में ही नहीं, सुदूर अफगानिस्तान में भी किया।[1] मानवीय अर्थवत्ता के कारण जैनमत दूर दूर तक फैला। बिहार के राजाओं में श्रेणिक (बिम्बसार), कुणीक (अजातशत्रु) चेटक, जीतशत्रु, नंदिवर्द्धन, चन्द्रगुप्त, सम्प्राति और सलीयुक जैनमत के अनुयायी थे।[2] बिहार में अनेक जैन मूर्तियां है, किन्तु अनेकों को बौद्धमत की मान लिया गया है, फिर भी जैन पुरानवेशेषों की दृष्टि से बिहार सम्पन्न है। हजारीबाग जिले में पार्श्वनाथ पहाड़ी पवित्र स्थान माना जाता है। पटना के अजायबघर में ग्यारहवीं शताब्दी की जैन मूर्तियां उपलब्ध है। बिहार में राजगृह, नालंदा, पावापुरी, और पाटलीपुत्र में जैन पुरावशेष उपलब्ध है। ग्रावक पहाड़ी में एक गुफा में पार्श्वनाथ की सुन्दर मूर्ति है। शहबाद में छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक की जैनमूर्तियां उपलब्ध हैं। मारवाड़ के राठौड़ जैन यहां बस गए थे, उनके द्वारा स्थापित चौदहवीं शताब्दी की एक मूर्ति में 1386 ई अंकित है।[3] आरा और उसके निकट डालमिया नगर में एक जैन मंदिर है। करणगढ़ में करण के राजकुमार ने जैनमत स्वीकार किया था और इसका प्रचार किया। पाटलीपुत्र जैन साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहीं जैन विद्वान भद्रबाहु और स्थूलिभद्र हुए और यहीं प्रथम जैनसभा हुई। पावापुरी जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है। राजगृह में भगवान महावीर ने अनेक बार उपदेश दिये। यहां चीनी ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी में निर्ग्रंथ मुनियों को देखा।[4] उदयगिरी की पहाड़ियों की एक गुफा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है। राजगृह में 212 फीट लम्बी पार्श्वनाथ की मूर्ति है, जिनके सिर पर सप्तमुखी सर्व छत्र बनाए हुए हैं। राजगृह में ही तीन जैन मूर्तियों- गौतम स्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया था। इन तीन गणधरों की जन्मभूमि भी बिहार ही है। इस प्रकार

---

1. Jain Journal, April 69, Page 147
   The grandson of Ashoke Samprati was converted to the creed and spread the gospel of Jainism, not only in different parts of India, but even in the distant land of Afganistan.
2. वही, पृ 147
   Among the kings of Bihar who followed Jainism, mention may be made of Srenik (Bimbsar) Kunika (Ajat Satru) Cetake, Jit Satru, Nandivardhan, Chandragupta, Samprati, Salisuka.
3. वही, पृ 157.
   Some Rathor Jains of Marwar had settled at Mesarh in the 14th century A.D. and an inscribed Jain image bearing the date 1386 could be seen at Masarh.
4. वही, पृ 158.
   The Chinese traveller Hieun Tsang visited India in the 7th century A.D. noticed Nirgrantha on the Vaibhara hill.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनमत के पुरावशेषों की दृष्टि से बिहार शीर्ष पर है।

आज बंगाल में जैनमत लुप्तप्रायः है, किन्तु एक समय ऐसा नहीं था। महावीर ने बंगाल में भी यात्रा की थी। भद्रबाहु का जन्म बंगाल में हुआ। गुप्तकाल में एक तांबे की प्लेट पांचवी शताब्दी (478-79 ई) की उपलब्ध है, जो एक जैन पुरावशेष है। ह्वेनसांग ने भी बंगाल में अनेक निर्ग्रंथ साधुओं को देखा। बंगाल में नवीं और दसवीं शताब्दी की अनेक जैनमूर्तियां उपलब्ध है। ऋषभ की मूर्तियां ध्यानमुद्रा और कायोत्सर्ग की मुद्रा में यहाँ मिलती है। बंगाल के अनेक जिलों के साथ सुन्दरवन के जनपदों में बौद्धमत और हिन्दूमत के साथ जैनमत भी एक शक्तिरूप में उपस्थित था।[1]

उड़ीसा में जैनमत का इतिहास पार्श्वनाथ और उनके भी पहले अट्ठारहवें तीर्थंकर अरनाथ तक जाता है, जिन्हें प्रथम भिक्षा रायपुरा में मिली।[2] पार्श्वनाथ का कलिंग के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जैनमत का सम्बन्ध उड़ीसा से तेइसवें तीर्थंकर से रहा है, जिन्होंने इस देश के आध्यात्मिक जीवन को बहुत प्रभावित किया है।[3] महावीर के पिता कलिंग के शासक के मित्र थे और महावीर ने उपदेश देने के लिये तोसाली और मोसाली की यात्रा की थी। हठीगुम्फा शिलालेख की चौदहवीं पंक्ति में डा. जायसवाल बताते हैं कि कलिंग के कुमारी पहाड़ियों में महावीर ने व्यक्तिगत रूप से उपदेश दिया था।[4] चंद्रगुप्त के साम्राज्य में कलिंग नहीं था, क्योंकि वह ऐसे राज्य पर आक्रमण नहीं चाहता था, जो उसके ही धर्म को मानता हो।[5] कलिंग में जैनमत का स्वर्णयुग खारवेल के समय में था।[6] खारवेल के समय के बारे में विद्वानों में मतभेद है और यह समय चौथी, तीसरी, दूसरी और पहली शताब्दी में हो सकता है। खारवेल के समय में जैनमत का बहुत प्रचार हुआ। यहाँ एक सम्मेलन भी हुआ, जब आगमों को लिपिबद्ध किया गया। इसके साधु श्वेताम्बर

---

1. Jain Journal, Page 166.
   Jainism continued to be a potent force along with Budhism & Brahminism in the once florishing Janpadas of the Sunderbans, now wild & forlorn.
2. वही, पृ 166
3. वही, पृ 166
   All these indicate that possibly Jainism was introduced into Orissa by the twenty third Tirthankara and it exercised a considerable influence in the spiritual life of the country.
4. वही, पृ 168
   Dr. Jayaswal on the basis of the Hathigumpha inscription also holds that Mahavira personally preached his religion in the Kumari Hill of Kalinga.
5. वही, पृ 168
   The farflung empire of Chandragupta did not inclnde Kalinga probably due to the fact that it was a land of Jainism & Chandragupta did not like to wage war on a country which professed his own religion.
6. वही, पृ 169
   The golden age of Jainism prevailed in Kalinga under illustrious Kharvala.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परम्परा के थे, क्योंकि वे श्वेत वस्त्र धारण करते थे।[1] खारवेल के पश्चात् तृतीय शताब्दी की एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है और यह तृतीय शताब्दी के महाराजा धर्मधर की है। डा. अल्टेकर के अनुसार ये मुरन्दा परिवार के खार वेलोत्तर युग के जैन शासक थे।[2] इसके पश्चात् कलिंग में बौद्धमत लोकप्रिय हो गया। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने कलिंग में निर्ग्रंथ साधुओं को देखा था। उस समय खण्डगिरि और पद्मगिरि में जैनमत लोकप्रिय था। बालासोर के एक शिलालेख के अनुसार कुमारसेन दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी का जैनमत का अध्यापक था।[3] उड़ीसा में आठवीं से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी में जैन मत का बहुत प्रचार था, इसका प्रमाण इस काल की उपलब्ध मूर्तियां हैं। इसके पश्चात् वैष्णवमत और जगन्नाथ पूजा के कारण उड़ीसा में जैनमत का ह्रास हुआ। जगन्नाथ में भी नाथ शब्द का उपयोग जैनमत के प्रभाव के कारण था। उड़ीसा जैन कलाओं की दृष्टि से समृद्ध है। जैपुर, नन्दपुर, भैरवसिंहपुर में जैन तीर्थंकारों की अनेक मूर्तियां उपलब्ध हुई है। कटक के जैन मंदिर में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां है। अब वहाँ श्रमण सभ्यता केवल एक छोटे समुदाय तक सीमित है, किन्तु आठवीं शताब्दी तक इसका वहाँ व्यापक प्रसार था।

मध्यप्रदेश में मौर्यकालीन और गुप्तकालीन जैन अवशेष नष्ट होने के कारण उपलब्ध नहीं है। विदिशा के उदयगिरी की गुफा में तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति उपलब्ध है, जिनके सिर के ऊपर सांप व छत्र है। खजुराहो में हिन्दू मंदिरों के अतिरिक्त तीन जैन मंदिर है। इन मंदिरों में एक घंटिया मंदिर है। घंटिया मंदिर के उत्तर पूर्व में आदिनाथ का मंदिर है और तीसरा मंदिर पार्श्वनाथ का है।[4] चंदेला साम्राज्य के पहले का दसवीं शताब्दी का जिननाथ मंदिर है, जिसमें सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ की 16 फीट की मूर्ति शांति की सही प्रतिमा है।[5] आठवीं शताब्दी क चंदेल राज्य चंद्रवर्मा के समय की सैंकड़ों जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई है। देवगढ़ में गुर्जर परिहार राजाओं के समय का 784 ई. का एक मंदिर है। इसके शिलालेख से पता चलता है कि यह नागभट्ट द्वितीय के पौत्र और वत्सराज के प्रपौत्र भोजदेव का शिलालेख है।[6] 1294 ई में यहाँ जैनमत का बहुत प्रचार था। एक मंदिर में शांतिनाथ की 12 फीट की मूर्ति है। पुरातत्व विभाग को यहाँ जैन सम्बन्धी 1200 शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ग्वालियर में हिन्दू, बौद्ध और जैन- तीनों की

---

1. Jain Journal, Page 170
   The monks appear to have belonged to the Svetambara order as they wore pieces of clothes and robes.
2. वही, पृ 170
   A gold coin of the Maharaja Rajdhiraja Dharmdhar of the 3rd century A.D. has been found form Sisupalgarh in course of the excavation and according to Dr. A.S. Altelcar, he was probably a Jain king of the Murunda family, who controled Orissa in the post Kharvala period.
3. वही, पृ 172
   Further inscription from Balsore mentions one Kumarsena who seems to have been a Jain teacher of the 10th century A.D.
4. वही, पृ 175
5. वही, पृ 176
6. वही, पृ 177

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। इसके किले में छठी शताब्दी के कच्छवाहा वंश के वज्रदम्म जैनधर्म का भक्त था, उसने एक जैनमूर्ति स्थापित की। इसके प्रतिहार शासक भी जैनधर्म के भक्त थे, जिनका शासन 1593 ई तक चला। यह सभी जैनधर्म, जैन संस्कृति, जैन साधुओं के सहयोगी थे, इसलिये इस युग को जैनधर्म का स्वर्णयुग कह सकते हैं।[1] हाथीद्वार और सास बहूद्वार के बीच के एक जैन मंदिर को मस्जिद में परिवर्तित किया गया। उर्बही गेट के पास 75 फीट ऊँची एक आदिनाथ की मूर्ति है। देवकुण्ड जैन संस्कृति में दिगम्बर परम्परा का केन्द्र था। ग्वालियर भी भट्टारकों का महत्वपूर्ण केन्द्र था। वेल्सा जिले के उदयगिरि में तो 425-26 ई. की पार्श्वनाथ की मूर्ति मिली है।[2] नरवाड़ा में 1213 ई और 1348 ई के मध्य की मूर्तियां उपलब्ध हुई है। ऐसा पता चलता है कि मध्यप्रदेश में दिगम्बर परम्परा का वर्चस्व था।

जहाँ तक उत्तरप्रदेश का प्रश्न है, यह जैनमत की दृष्टि से अति प्राचीन है। भगवान ऋषभदेव यहीं अयोध्या में और भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी में जन्मे। कोई आश्चर्य नहीं कि ईसा की आठ शताब्दी के पहले से लेकर दसवीं-बारहवीं शताब्दी तक जैनमत का यहाँ बहुत प्रचार-प्रसार हुआ।[3] अयोध्या भगवान ऋषभदेव के अलावा अजितनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ और अनन्तनाथ की भी जन्मभूमि रही है। सरयू नदी के किनारे कुछ जैनमंदिर हैं। श्रावस्ती तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ की जन्मभूमि थी। कौसाम्बी छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु की जन्मभूमि थी। सारनाथ में ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ, चन्द्रपुरी में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु, फैजाबाद के कम्पिला में तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ, रतनपुरा में पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ और हस्तिनापुर में सोलहवें, सत्रहवें और अट्ठारहवें तीर्थंकर शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ जन्मे। आगरा के पास सौरीदार में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ जन्मे। मथुरा जैनमत का प्राचीन केन्द्र रहा है। यहाँ तीसरी शताब्दी का जैनस्तूप उपलब्ध है।[4] जिनप्रभ सूरिके अनुसार यहाँ यक्ष कुबेर ने सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के सम्मान में एक स्तूप का निर्माण करवाया।[5] मथुरा के जैन समुदाय ने केवल चार तीर्थंकरों का ही चयन किया- प्रथम ऋषभनाथ, सातवें सुपार्श्वनाथ, तेबीसवें पार्श्वनाथ और चौबीसवें महावीर।

जैनमत का उद्गम सर्वप्रथम पूर्वी भारत में हुआ और फिर इसका प्रसार पूरे भारत में फैला। जहाँ इसका उद्गम हुआ, वहाँ इसने वर्चस्व खो दिया, किन्तु दक्षिण और पश्चिम में इसके

---

1. Jain Journal, April 69, Page 179
   All of them were great patrons of Jain religion, Jain culture & Jain monks & this religion, therefore had its golden age in this region.
2. वही, पृ 181.
3. वही, पृ 183
   It is no wonder therfore, that Jainism was in a most flourishing condition from the 8th century B.C. to the 10th or 12th centuries A.D. in Uttar Pradesh.
4. वही, पृ 185
5. वही, पृ 186
   According to Jinprabha Suri, it believed that the ancient stupa was erected by Kuvera Yaksa in honour of 7th Tirthankara Suparsvanath

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसार ने राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों को प्रभावित किया। महावीर के निर्वाण के साथ ही जैनमत ने अविभाजित पंजाब में प्रवेश किया।[1] जैन साधुओं और श्रावकों के भ्रमण और अशोक के पौत्र सम्प्राति के कारण जैनमत का दूर दूर तक प्रचार हुआ। तक्षशिला में 500 जैन मंदिर हैं। ऋषभ ने भरत को अयोध्या और बाहुबलि को तक्षशिला सौंपा था। हड़प्पा में खुदाई में जो मिट्टी की मूर्तियां मिली हैं, उनकी तुलना रामप्रसाद चंदा ने जैनमूर्तियों से की है। विशेष रूप से इसकी तुलना मथुरा में उपलब्ध ऋषभ की कायोत्सर्ग की मुद्रा से की जा सकती है।[2] ऋषभ वृषभ का अपभ्रंश है और बैल ऋषभ का प्रतीक चिह्न है। सिंधु घाटी में पृष्ठभूमि में बैल है। यह सहज ही पता लगाया जा सकता है कि ध्यान की मुद्रा जो जैनमत में है, वही हजारों वर्ष पहले सिंधु घाटी की सभ्यता में थी। प्राचीन स्थलों से भावी खोज से पता चलेगा कि दोनों में कितनी समानता है।[3] कांगड़ा की घाटी एक समय में जैनमत से सम्पन्न थी।[4] मुल्तान में खरतरगच्छ के जिनदत्तसूरि ने संवत 1169 में चतुर्मास किया था। 1582 ई. में बीकानेर के मंत्री जैन बनिया कर्मचंद ने अकबर के दरबार में शरण लेकर यहाँ आवास किया। कर्मचंद के कारण अकबर के दरबार में जैनमत की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और इस समय जिनचंद्रसूरि ने अकबर को प्रभावित किया। पंजाब में मारवाड़ से कई श्रावक परिवार और साधु पंजाब के शहरों में आए और बस गये। जैन साधुओं ने अपने उपासरे भी स्थापित किये।

बदली का शिलालेख बताता है कि पांचवी शताब्दी में राजस्थान में जैनमत विद्यमान था। सावतीं शताब्दी से लेकर आधुनिक समय तक यह धर्म राजस्थान में ऊँचे पद पर साधुओं के भव्य व्यक्तित्व, शासकों और राजकुमारों के सहयोग और धनी वणिक वर्ग की उदारता के फलस्वरूप रहा।[5] 1276 ई. के भीनमाल के एक शिलालेख के अनुसार महावीर स्वयं श्रीमाल नगर पधारे और इससे यह पता चलता है कि यहाँ जैनमत का खूब प्रसार था। गौतम श्रीमालनगर के ब्राह्मणों से अप्रसन्न थे। वे वहाँ से काश्मीर प्रस्थान कर गये और श्रीमालनगर लौटने पर इन्होंने

---

1. Jain Journal, April, 1969, Page 190
2. वही, पृ 192.
3. वही, पृ 192.

   It can reasonably be inferred that a cult of meditation similar to that practised by jainas formed part of the Indus Valley civilization thousand years ago. Further discoveries from other ancient sites might reveal more signs of resemblance between the Indus Cult and Jain religion.
4. वही, पृ 194

   That the valley of Kangra was once a flourishing centre of Jainism.
5. वही, पृ 199

   From the 7th century A.D. through modern times, this religion has remained on a high pedestal in Rajasthan by the lofty personalities of the Sadhus, the cooperation of the rulers & the princes and the magnanimity of the business community.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैश्यों को जैनमत में दीक्षित किया।[1] 1369 ई. के एक शिलालेख के अनुसार महावीर स्वयं अपने जीवन के सैंतीसवें वर्ष अर्बुदभूमि पधारे।[2] बदली के शिलालेख से यह पता चलता है कि राजस्थान में जैनमत का व्यापक प्रचार था। महावीर के निर्वाण के 84 वर्ष की तिथि के इस शिलालेख में एक स्थल मज्जमिका का उल्लेख है। यह वस्तुत: चित्तौड़ के पास का मध्यमिका है, जिसका पंतजलि के 'महाभाष्य' में उल्लेख है।[3] इस शहर की नींव प्रियग्रंथ ने रखी, जो तीसरी शताब्दी के सुहास्ती का शिष्य था।[4] मौर्यकाल में राजस्थान में जैनमत सम्पन्न था। साहित्यिक प्रमाण और शिलालेख से सिद्ध है कि चंद्रगुप्त जैन था। इसके साम्राज्य में राजस्थान का भी कुछ अंश था। इसने गंगाणी में एक मंदिर में पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की थी। जैन इतिहास में अशोक के पौत्र सम्प्राति को जैन अशोक कहा जाता है। यह परम्परा से मान्य है कि उसने राजस्थान, गुजरात और मालवा में अनेक मंदिर निर्मित किये।[5] ग्रीक स्रोतों ने माना है कि पश्चिमी भारत में उस समय कई नग्न साधु थे, जो भूखे रहकर मृत्यु को प्राप्त होते थे और उनका समाज में बहुत सम्मान था। कई महिलाएं उनके निर्देश से संयम का जीवन बिताकर धर्म और दर्शन का अध्ययन करती थी।[6] शककाल में भी जैनमत का ऊँचा स्थान प्राप्त था। विक्रमादित्य के समय में मालवा गणराज्य दक्षिणी पूर्वी राजस्थान का एक अंग था और जैनमत पश्चिमी भारत में

---

1. Jain Journal, April 63, Page 199.
It is known from an inscription (1276) obtained at Vinmal that Mahavira has himself come to Srimalnagar. Even the text of the Srimal Mahatamya reveals the flourishing nature of Jainism here. According to it, Gautam became unhappy at the behaviour of Brahmins of Srimalnagar and went to Kashmir on his return to Srimalnagar, he converted the Vaisyas to Jainism.

2. वही, पृ 199
From an inscription (V. 1369) obtained Mungsthale, it is known that Mahavira had himself come to Arbudhbhumi during the 37th years of his life.

3. वही, पृ 200
In the greatest evidence in support of the propogation of Jainism in Rajasthan is contained in the Badli inscription dated 84th year affer the death of Mahavira, it has a a mention of a place called Magghamika. This is the same Madhyamika of Chittor of which Patanjali makes mention in the Mahabhasya.

4. वही, पृ 200
The foundation of the city was laid by Priyagranta, a disciple of Suhasti in the 3rd century.

5. वही, पृ 200
In the Jain history, he (Samprati) is known as Jain Ashoka. According to tradition he erected many temples & images in Rajasthan, Gujrat & Malva.

6. वही, पृ 200
According to them many nudist monks, when they called Gymmosophists used to move about in this region. They expressed themselves to hardships & converted death by starvation. They held a position of esteem in society. ladies practised restraint & studied religion & philosophy under their guidance.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक जीवन्त धर्म था। जैन परम्परा के अनुसार विक्रमादित्य स्वयं जैन हो गया था।[1] जैन ग्रंथों के अनुसार अजमेर और पुष्कर के बीच में हर्षपुरा में करीब 300 जैन मंदिर थे, किन्तु इतिहास में हर्षपुरा के नाम का अस्तित्व विद्यमान नहीं है। श्रवणवेलगोला के एक लेख के अनुसार सामंतभद्र दूसरी शताब्दी में जैनमत के प्रचार के लिये मालवा गया था, जो दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान का एक अंग था। ह्वेनसांग ने स्वीकार किया है कि जैनमत का प्रचार तक्षशिला से सुदूर दक्षिण तक था।[2] सातवीं शताब्दी के वसतगढ़ मंदिर से यह पता चलता है कि उस समय राजस्थान में जैनमत का अस्तित्व था। आठवीं और नवीं शताब्दी में हरिभद्र सूरि के प्रयत्नों से इस धर्म का राजस्थान में खूब प्रसार हुआ।[3]

मुस्लिम यात्रियों ने आठवीं नवीं शताब्दी में राजस्थान में जैनमत का अस्तित्व स्वीकार किया है।[4] कई ने बौद्ध मूर्तियों और जैन मूर्तियों के बीच भेद नहीं किया और जैन मूर्तियों को बौद्ध मूर्तियां मान लिया। यही गल्ती आगे चलकर यूरोपियनों ने की। अबजैदुल ने जिन नग्न साधुओं का वर्णन किया, वे बौद्धभिक्षु न होकर जैन साधु थे। जैनमत का अत्यधिक विकास राजपूत काल में हुआ, वे सहनशील थे और जैनमत के प्रसार में पूर्ण सहयोग दिया। प्रतिहारों के समय में जैनमत का अच्छा समय था। ओसिया में वत्सराज ने महावीर मन्दिर का निर्माण करवाया। 783 ई में जिनसेन ने अपने इस शासक का उल्लेख 'हरिवंशपुराण' में किया है।[5] इसको उत्तराधिकारी नागभट्ट 792 ई. में शासक बना, जो जैन साधु बप्पभट्ट सूरि का प्रशंसक था और इसके आदेश से इसने अनेक स्थानों पर जैन मंदिर निर्मित करवाए।[6] 840 ई में मिहिरभोज शासक बना जो, गोविन्दसूरि से प्रभावित था। कुक्कुक मण्डोर का प्रतिहार शासक था। यह संस्कृत का विद्वान और जैनमत का संरक्षक था। घटियाला शिलालेख के अनुसार इसने 861 ई. में एक जैनमंदिर का निर्माण

---

1. Jain Journal, April 63, Page 201
   During the region of Vikramaditya, the Malwa Republic was a part of South East Rajasthan & Jainism was a living religion in western India. According to Jain tradition vikramaditya himself became a Jain.
2. वही, पृ 201
   It is known from Huen Tsang"s account that Jainism was practised from Taxila to the extreme south.
3. वही, पृ 202
   In the Vasatgarh temples there is an image of the 7th century A.D. This supports the existence of Jainism in Rajasthan in this century. In the 8th & 9th centuries this religion became widespread in Rajasthan by the efforts of noted Haribhadra Suri.
4. वही, पृ 202
   We know of the existence of Jainism in the 8th & 9th Centuries from Muslim Travellers.
5. वही, पृ 203
   Jainism had a good time under the Pratihars. There is a Mahavira Temple at Osia, that was built by Vatsraja.
6. वही, पृ 203

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करवाया।[1] चौहानों के काल में जैनमत का खूब प्रचार हुआ। जिनदत्त सूरि अर्णोराज का समकालीन था। नाडोल में 960-1252 ई. के बीच चौहानों ने शासन किया। चौहान अश्वराज ने जैनमत स्वीकार किया और राज्य में पशुवध का निषेध किया। इस सम्बन्ध में अनेक शिलालेख उपलब्ध हैं। चावड़ा (Cavadas) और चालुक्यों में भी जैनमत अच्छी स्थिति में रहा। चावड़ा शासक बनराज ने सिलागना सूरि (Silagana Suri) को निमंत्रित किया और अपना समस्त शासन इनके चरणों में रख दिया। इन्होंने यह स्वीकार नहीं किया। इसके बदले वनराज ने अनहिपुरा पाटन में पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनवाया और श्रीमाल और मरुधर देश के व्यापारियों को अनहिलपुरा में बसने के लिये आमंत्रित किया। चालुक्य शासकों जयसिंह और कुमारपाल के काल में जैनमत का व्यापक प्रसार हुआ। जयसिंह के काल में दिगम्बर साधु कुमुदचंद्र और श्वेताम्बर साधु देवसूरि के बीच शास्त्रार्थ हुआ। कुमारपाल ने तो जैनमत स्वीकार कर लिया। भीम द्वितीय के काल में दो शक्तिशाली पुरुषों - वास्तुपाल और तेजपाल ने 1230 ई में माउण्ट आबू में प्रसिद्ध जैनमंदिर का निर्माण करवाया। परमार राजाओं के काल में भी जैनमत की अत्यधिक प्रगति हुई। मालवा के परमार शासक भी जैनमत के प्रति सहानुभूति रखते थे। मेवाड़ सिरोही, कोटा और झालावाड़ इस साम्राज्य के अधीन थे। मालवा के शासक नरोवर्मन के काल में जिनवल्लभ सूरि प्रसिद्ध जैनसाधु थे, जिनकी विद्वत्ता से राजा आतंकित थे। राठौड़ों का हटूण्डी में दसवीं शताब्दी में शासन रहा। वासुदेवाचार्य के परामर्श पर विद्ग्धराज ने एक ऋषभदेव का मंदिर बनवाया और भूमि दान में दी। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में भरतपुर में जैनमत का व्यापक प्रचार हुआ। इसी तरह मेवाड़, वाग्देश (डूंगरपुर, बांसवाड़ा प्रतापगढ़) कोटा, सिरोही, जैसलमेर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर में जैनमत का व्यपाक प्रचार हुआ। दसवीं शताब्दी में जिनेश्वर सूरि की कृपा से पुत्र प्राप्त होने पर भाटी राजपूतों ने लुद्रवा में पार्श्वनाथ मंदिर का निर्माण करवाया। जोधपुर में एक ओसवाल खंजाची ने भीमदेव के शासन में 1168 ई में सत्यपुर (सांचोर) में एक मंदिर बनवाया। बीकानेर के महाराज रायसिंह जैनमत के भक्त थे। इन्होंने कर्मचंद्र की प्रार्थना पर अकबर से लूटे गये 1052 मूर्तियां (सिरोही की) पुनः प्राप्त की। जयपुर में कछवाहा शासकों के राज्य में लगभग 50 जैन दीवान रहे। अलवर में ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई है। इस प्रकार राजस्थान में जैनमत का प्रवेश तो महावीर के समय में ही हो गया, किन्तु सातवीं शताब्दी से लेकर आजतक जैनमत का व्यापक प्रसार हुआ। वस्तुतः ओसवाल जाति का उद्भव और नामकरण भी राजस्थान में ही हुआ।

शताब्दियों से गुजरात जैनमत की शक्तिशाली भूमि रही है। ऋषभ और नेमिनाथ ने शत्रुंजय और गिरनार में तपस्या की थी। पांचवी शताब्दी में सौराष्ट्र के वल्लभी में एक जैन सम्मेलन हुआ था।[2] 'कुवलयमाला' के अनुसार छठी और सातवीं शताब्दी में यहाँ अनेक जैन मंदिर थे। चालुक्य शासक दुर्लभ राज के काल में वर्द्धमानसूरि और इनके शिष्य जिनेश्वर सूरि हुए। 1024

1. Jain Journal, April 1963, Page 203
2. वही, पृ 212

In the 5th century of Christian era, a conference of Jain monks was held at Vallabhi in Saurastra.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ई. में एक शास्त्रार्थ हुआ। विमलनाथ का प्रसिद्ध और भव्यमंदिर बताता है कि ग्यारहवीं शताब्दी में गुजरात में जैनमत कितना अधिक लोकप्रिय था। सिद्धराज के काल में गुजरात में जैनमत ने एक नया इतिहास रचा, जब उनके दरबार में दिगम्बरों की हार और श्वेताम्बरों की विजय हुई।[1] इसका उल्लेख एक समकालीन नाटक 'मुद्रिता कुमुदचंद्र' में है। यह शास्त्रार्थ दिगम्बर सन्त कुमुदचंद्र और श्वेताम्बर सन्त देवचन्द्रसूरि (1086-1169 ई) के बीच हुई थी। यह शास्त्रार्थ सिद्धराज के समक्ष 1181 ई. की वैसाख की पूर्णिमा को हुआ था। इसके पश्चात् गुजरात में श्वेताम्बर परम्परा फलीफूली। सिद्धराज ने एक मंदिर का भी निर्माण करवाया। कुमारपाल भी गुजरात में जैनमत का महत्वपूर्ण सहायक और संरक्षक था। कुमारपाल ने कई जैन मंदिर बनवाए। जालोर के शिलालेख से पता चलता है कि कुमारपाल हेमप्रभसूरि के ज्ञान से प्रभावित थे। कुमारपाल के पश्चात् गुजरात में राजकीय संरक्षण के स्थान पर वणिकों का संरक्षण मिला। वस्तुपाल और तेजपाल ने कई जैनमंदिर बनवाए। वस्तुपाल ने गिरनार का मंदिर बनवाया। उदयप्रभसूरि दोनों भाइयों वस्तुपाल और तेजपाल के गुरु थे। वस्तुपाल और तेजपाल के पश्चात् गुजरात में जैनमत में कोई महान् ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं जुड़ा, किन्तु गुजरात में जैनमत पूरी शक्ति से अपनी जड़ें जमा चुका था।

दक्षिण भारत में प्रारम्भ से ही दिगम्बर सम्प्रदाय का घर रहा है और वहाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लिये बहुत कम अवकाश रहा।[2] जैनों का दक्षिण भारत में दर्शन, व्याकरण, वास्तुकला, शिल्पकला, साहित्य और चित्रकला की दृष्टि से गौरवपूर्ण अवदान रहा है।[3] जैनों ने तमिल साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी से ही दक्षिण भारत में जैनमत का खूब प्रचार हुआ। अनेक पुरावशेष-शिलालेख, मूर्तियां, मंदिर और साहित्य सामग्री इसके ज्वलंत प्रमाण हैं।

---

1. Jain Journal, April, 1963, Page 213
   The next land mark in the history of Jainism in Gujrat was the reign of Sidharaja when the Swetambara doctrine became, so to say the legal Jaina doctrine of Gujrat as the result of a debate held in the court of Sidharaja, where the Digambaras had to acknowledge the defeat.
2. वही, पृ 222
   South India was the sole abode of Digambar sect from the beginning and that it afforded little quarter to the followers of Swetambar sect.
3. वही, पृ 247
   The Jaines made a glorious contribution to the philosophy, Grammer, Architecture, Sculpture, Literature and Painting of South India.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महावीरोत्तर युग : जैनमत का प्रसारकाल

श्वेताम्बर परम्परा की दृष्टि से महावीरोत्तर युग को निम्नांकित चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) भद्रबाहुकाल (दूसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक)

(क) आगमवाचनाकाल और संघभेदकाल (श्रुतकेवलि भद्रबाहु से देवर्द्धि क्षमाश्रमण तक)

(ख) संक्रांतिकाल और हरिभद्रकाल (हरिभद्रपूरि से लगभग 1000 ई तक)

(ग) सम्प्रदायभेदकाल (1000 ई से लोंकाशाह तक)

(ii) वैचारिक क्रांति अथवा लोंकाशाह काल (लोंकाशाह से आज तक)

(1) भद्रबाहुकाल

श्वेताम्बर परम्परा की दृष्टि से भद्रबाहु के पश्चात के इतिहास को भद्रबाहु काल का नाम दिया जा सकता है, क्योंकि भद्रबाहु के समय में ही संघभेद का बीज पड़ा ; भद्रबाहु के समय में ही प्रथम वाचना की भूमिका निर्मित हो गई ; भद्रबाहु के समय जिस श्वेताम्बर परम्परा का बीजारोपण हुआ ; उसी का प्रवर्तन, प्रवर्द्धन और विकास आगे चलकर हुआ। इन 1500 वर्षों में पहले संघभेद हुआ और फिर सम्प्रदाय भेद।

लगभग 1500 वर्षों का इतिहास भद्रबाहु के कृतित्व से प्रभावित है, इसलिये इसका नाम भद्रबाहुकाल देना समीचीन जान पड़ता है। भद्रबाहु के समय से लेकर लोंकाशाह तक जैन मत की श्वेताम्बर परम्परा ने कितने ही उतार चढ़ाव देखे।

(i) (क) आगमकाल और संघभेदकाल
(श्रुतकेवलि भद्रबाहु से देवार्द्धिक्षमाश्रमण तक)

श्रुतकेवलि भद्रबाहु के पश्चात् दो घटनाएं धीरे धीरे एक साथ घटित हुई - (1) आगमों की वाचना और (2) संघभेद। जैनमत के इतिहास की यह दोनों घटनाएं एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़ी हैं। भद्रबाहु के पश्चात् ही दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायों का बीजवपन हो गया। पाटलिपुत्र वाचना में इसका बीजवपन हुआ, माथुरी वाचना में इसका अंकुर फूटा और वलभी वाचना में संघभेद ने वटवृक्ष का रूप धारण कर लिया। वलभी वाचना के ठीक बाद में श्वेताम्बर पट की पताका फहराने लगी।

संघभेद

भगवान महावीर का धर्मसंघ-श्वेताम्बर और दिगम्बर उन दो परम्पराओं में विभक्त हुआ, इस विषय में इन दोनों परम्पराओं की मान्यताओं में मतभेद है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु और चंद्रगुप्त मौर्य के काल में ही जैनमत दो सम्प्रदायों दिगम्बर और श्वेताम्बर में विभाजित हुआ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरिषेण के 'वृहत्कोश कथा' (वि.स. 989), देवसेन के 'दर्शनसार' (वि.स. 999)[1], भावसंग्रह और रत्नंदी के 'भद्रबाहु चरित्र' आदि दिगम्बर ग्रंथों में श्वेतांबर संघ के उद्भव की कथा है।

देवसेन के 'दर्शनसार'[1] के अनुसार विक्रमराजा की मृत्यु के 136 वर्ष पश्चात् वलभीपुर में श्वेतपट संघ उत्पन्न हुआ। श्री भद्रगणि के शिष्य शांतिनाथ के नाम के आचार्य थे, उनका जिनचंद्र नाम का एक शिथिलचारी दुष्ट शिष्य था। उसने माना कि वस्त्रधारण करने वाला मुनि मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

श्वेताम्बर-दिगम्बर किस समय उत्पन्न हुआ- इस प्रश्न पर यदि मोटे तौर पर विचार किया जाय तो दोनों परम्पराओं की मान्यताओं में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होगा। केवल तीन वर्ष का अन्तर है। इस प्रकार सम्प्रदाय भेद दिगम्बर परम्परा की प्राचीन एवं साधारणतय वर्तमान में प्रचलित मान्यतानुसार वीर निर्वाण संवत् 606 में और श्वेताम्बर परम्परा की सर्वसम्मत मान्यतानुसार वीर निर्वाण संवत् 601 में हुआ माना जाता है।[2] डॉ. गुलाबचंद्र चौधरी के अनुसार ईसा की 4-5वीं शताब्दी में जैनसंघ के वहाँ विशाल दो सम्प्रदाय-श्वेतपट महाश्रमण संघ और निर्ग्रंथ महाश्रमण संघ का अस्तित्व था।[3] वस्तुत: कलिंग के शासक खारवेल के समय में श्वेताम्बर मत अस्तित्व में आ चुका था। यहाँ एक सम्मेलन भी हुआ, जब आगमों को लिपिबद्ध किया गया। इनके साधु श्वेताम्बर परम्परा के थे, वे श्वेतवस्त्र धारण करते थे। खारवेल के समय के बारे में विवाद है, यह समय ईसा के बाद 4,3,2 और प्रथम शताब्दी का हो सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार दिगम्बर सम्प्रदाय की स्थापना कब हुई, यह अब भी अनुसंधान सापेक्ष है। परम्परा से इसकी स्थापना वीर निर्वाण की छठी सातवीं शताब्दी में मानी जाती है। श्वेताम्बर नाम कब पड़ा, यह भी अन्वेषण का विषय है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सापेक्ष शब्द हैं। इनमें से एक के नामकरण होने के बाद ही दूसरे के नामकरण की आवश्यकता हुई।[4] श्वेताम्बर से दिगम्बर शाखा निकली, यह भी नहीं कहा जा सकता। दिगम्बर से श्वेताम्बर शाखा का उद्भव हुआ, यह भी नहीं कहा जा सकता है। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने को मूल और दूसरे को अपनी शाखा बताता है। किंवदन्ती के अनुसार वीर निर्वाण 601 वर्ष के पश्चात् दिगम्बर सम्प्रदाय का जन्म हुआ, यह

---

1. दर्शनसार

एक्कसए छत्तीसे विक्कभरायस मण्णपतस्य ।
सोरट्ठे बलतीए उपण्णो संघी ॥1॥
सिरिभद्द बाहुगणिणो सीसोणामेण संति आइरिओ।
तएस थ सी दुट्ठो जिणचंदो मंदचारित्तो ॥2॥
तेण कियं मययेदं इत्थीणं आत्थे तब्भवे मोक्शो ।
केवलाणाणीण पुण अण्ण करताव तहा रोगो ॥3॥
अंबर सहिओ वि जई सिज्यई वीरस्स गब्भचारतै।
परलिंगे विय मुत्ती द्वासुयं योज्नं च सव्वत्थ ॥4॥

2. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ 10
3. जैन शिलालेख संग्रह भाग 3 (माणिकचंद दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति) प्रस्तावना, पृ 3
4. युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन परम्परा का इतिहास (छठा संस्करण, 1990) पृ 66

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर मानते हैं और दिगम्बर मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण 609 में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ।[1]

दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय का बीजारोपण भगवान महावीर के सातवें पट्टधर आचार्य भद्रबाहु स्वामी के काल से जुड़ हुआ है। ये महान् ज्योर्तिधर आचार्य सदा से सर्वप्रिय और सर्वविख्यात रहे हैं। ये दस सूत्रों- आचरांग, सूत्रकृतांग, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुत स्कन्ध, कल्प, व्यवहार, सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित का निर्युक्तिकार माना गया है। इनका जन्म वीर निर्वाण संवत् 94 में हुआ और आपने वीर निर्वाण संवत् 139 में भगवान महावीर के पाचवें पट्टधर यशोभद्र स्वामी के पास श्रमण दीक्षा ग्रहण की। दिगम्बर परम्परा के अनुसार अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के जीवन के अंतिम चरण में ही दिगम्बर - श्वेताम्बर- इस प्रकार के मतभेद का सूत्रपात हो चुका था।[2] उस समय मध्यप्रदेश में भयंकर अनावृष्टि के कारण दुष्काल पड़ा। आचार्य विमलसेन के शिष्य आचार्य देवसेन ने दिगम्बर परम्परा के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भावसंग्रह' में श्वेताम्बर परम्परा की उत्पत्ति का विवरण दिया है। इसमें कहा गया, राजा विक्रम की मृत्यु के 136 वर्ष पश्चात् सोरठ देश की वल्लभी नगरी में श्वेतपट-श्वेताम्बर संघ की उत्पत्ति हुई। उज्जयिनी नगरी में भद्रबाहु नामक एक आचार्य थे। वे निमित्तशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। अपने निमित्त ज्ञान के बल पर उन्होंने अपने संघ से कहा, यहाँ पर निरन्तर बारह वर्ष पर्यन्त भयंकर दुष्काल का प्रकोप रहेगा, अत: आप लोग अपने अपने संघ के साथ अन्यान्य प्रान्तों और क्षेत्रों की ओर चले जाओ। भद्रबाहु की वह भविष्यवाणी सुनकर सभी गणनायकों ने अपने अपने संघ के साथ उज्जयिनी के विभिन्न क्षेत्रों से विहार कर दिया और जिन प्रदेशों में सुभिक्ष था, वहाँ जाकर विचरण करने लगे। शांति नामक एक संघपति अपने बहुत से शिष्यों के साथ सुरम्य सोरठ प्रदेश की वल्लभी नगर में पहुँचा।[3] अपने साधुसंघ के साथ आचार्य शांति के वल्लभी पहुँचने के पश्चात् वहाँ पर भी बड़ा भी बड़ा भीषण दुष्काल पड़ा। वहाँ घोर दुष्काल के कारण ऐसी वीभत्स स्थिति उत्पन्न हो गई कि भूख से पीड़ित एक लोग अन्य लोगों के पेट चीरकर उनकी आंतों और ओझरियों के अन्न निकाल-निकाल कर खाने लगे। इस भयावह स्थिति से मजबूर होकर संघ के

---

1. युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन परम्परा का इतिहास (छठा संस्करण, 1990) पृ 67-68
2. जैन धर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ 326
3. देवसेन, भावसार, गाथा संख्या 52-56

छत्तीसे वरिससए विक्कम रायस्स मरण पत्तसा।
सोरट्ठे उपणो सेवड़ संघो हु वल्लहीए ॥52॥
आसी उज्जेणीयरे आयरियो भद्दबाहु णायेण।
जाणिय सुणिमित्तधरो माणियो संघो णियो तेण॥53॥
होहइ इह दुब्भिक्खं बारह बरसाणि जाव पुम्माणि।
देसंतराए गच्छह णिय णिय संघेण संजुत्ता ॥54॥
सोऊण इयं पयणं णाणा देसेहि गणहरा सव्वे।
णिय णिय संघ पउत्ता वितरिया जत्त सुमिक्खं ॥55॥
एक्क पुण संति णायो संपत्तो वल्लही णाम णयरीरा।
बहुसीस सम्पउत्तो विसए सोरट्ठए रम्मे ॥56॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभी साधुओं ने कम्बल, दण्ड, तूंबा, पात्र और आवरण हेतु श्वेतवस्त्र धारण कर लिये।[1] दुर्भिक्ष के समाप्त होने पर उसने पुनः आदेश दिया कि अब पुनः श्रेष्ठ आचरण को ग्रहण करो, किन्तु प्रथम शिष्य ने मना कर दिया। शांताचार्य के इस कथन से रुष्ट होकर उनके उस प्रधान शिष्य ने लम्बे डण्डे से गुरु के सिर पर प्रहार किया, जिसके आघात से स्थविर आचार्य का प्राणान्त हो गया और वे मरकर व्यन्तर जाति के देव बने। आचार्य के मरने पर उनका वह प्रमुख शिष्य संघाधिपति बन बैठा और प्रकट में श्वेताम्बर हो गया।[2].

आचार्य हरिषेण के 'वृहतकथाकोश' के अनुसार आचार्य भद्रबाहु के स्वर्गसिधारने के पश्चात् दुष्काल के समय श्रावकों ने निवेदन किया, आप लोग भिक्षापात्र लेकर भिक्षा लाने हेतु रात्रि के समय ही घरों में आया करें। रात्रि में लाया हुआ आहार दूसरे दिन खा लिया करें। कुछ समय पश्चात् उन श्रमणों में से एक अत्यंत कृषकाय श्रमण अर्द्धरात्रि के समय भिक्षापात्र लिये गृहस्थ के घर ने भिक्षार्थ प्रविष्ट हुआ। रात्रि के घनानांधकार में उस नग्न साधु के कंकालावशिष्ट गृहिणी इतनी अधिक भयभीत हुई कि तत्काल उसका गर्भ गिर गया। अब श्रावकों ने श्रमणों से प्रार्थना की कि वे अपने बांये स्कन्ध पर कपड़ा (अर्द्धफालक) भिक्षा ग्रहण करते समय रखें। भिक्षा ग्रहण करते समय बायें हाथ से कपड़े को आगे की ओर कर दें और दक्षिण हाथ से ग्रहण किये हुए पात्र में भिक्षा ग्रहण करें। सुभिक्ष होने पर तीन आचार्य रामिल, स्थूलवृद्ध और स्थूलभद्राचार्य ने अर्द्धफालक त्याग कर निर्ग्रंथ मुनियों का वेश धारण कर लिया और जो साधु कष्ट सहन से कतराते थे और जिनका मनोबल दृढ़ नहीं था, उन्होंने जिनकल्य और स्थविर कल्प के विधान की कल्पना कर निर्ग्रंथ परम्परा के विपरीत स्थविर कल्प परम्परा को ग्रहण किया।[3]

दिगम्बर परम्परा के अपभ्रंश के कवि रयधू के "महावीर चरित्" में स्थूलभद्र के स्वर्गारोहण के पश्चात् दुष्काल में स्थूलाचार्य आदि श्रमणों द्वारा पात्रदण्ड वस्त्रादि ग्रहण करना

---

1. देवसेन, भावसार, श्लोक 57-58

तत्थ वि गयस्स जायं, टुब्भिवल दारुणं महाघोरं।
जत्थ वियारिय उयरं खद्दो रंकेति कुरुत्ति ॥57॥
तं लहिऊण णिमित्त गहियं सव्वेहि कम्बलिदंडं।
दुद्दियपत्तं च तहा पावत्थ सेयवत्सं च ॥58॥

2. वही, श्लोक 66-69

ता संतिणा पउत्तं चरिय पमट्ठेतिं जीवियं लोए।
रायं णहु सुन्दरणं दूसणयं जइण मग्गस्स ॥66॥
णिषा थं पण्णयणं जिणवरणाहेण आक्सेयं परमं।
तं छडिऊण अण्णं पवत्त माणेण मिच्छदं ॥67॥
ता रूसिऊण पहओ सीसे सीसेण दीह दंडेण।
थविरो धाराण मुओ, जाओ सौ वितरों दैवो ॥68॥
इयरो संघाहिवइ पयडिय पासंड सेवड़ो जाओ।
अक्खइ लोए धम्मं सग्गंथं अत्थि णिव्वाणं ॥69॥

3. आचार्य हरिषेण, बृहतकथकोश, श्लोक 66

त्यक्त वार्द्ध कर्पटं सद्यः संसारात्त्रस्त मानसाः।
नैर्ग्रन्थ्यं हि तवः कृत्वा मुरिरूप दधु स्त्रयः ॥66॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लिखा है। यही कथा कुछ परिवर्तन के साथ दिगम्बर परम्परा के ग्रंथ 'भद्रबाहु चरित्र' (वि.स. 1629) में अंकित है।

भट्टारक रत्न नन्दि के 'भद्रबाहु चरित' के अनुसार 'भद्रबाहु स्वामी की भविष्यवाणी होने पर बारह हजार साधु उनके साथ दक्षिण की ओर विहार कर गये। परन्तु रामल्थ, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि उज्जियिनी में ही रह गये। दुर्भिक्ष पड़ने पर उनके शिष्य विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जियिनी आए। उस समय स्थूलाचार्य ने कहा कि शिथिलाचार छोड़ दो। पर उन्होंने क्रोधित होकर स्थूलाचार्य को मार डाला। इन शिथिलाचारियों से अर्धकालक सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इसके बहुत समय बाद उज्जियिनी में चन्द्रकीर्ति नाम का राजा हुआ। उसकी कन्या वल्लभीपुर के राजा को ब्याही गई। उस कन्या ने अधिफालक साधुओं के पास विद्याध्यान किया था, इसलिये वह उनकी भक्त थी। एक बार उसने अपने पति से उन साधुओं को अपने यहाँ बुलाने के लिये कहा। राजा ने बुलाने की आज्ञा दे दी। वे आए और उनका खूब स्वागत सत्कार हुआ। परन्तु राजा को उनका वेश अच्छा न लगा। वे रहते थे नग्न, पर ऊपर वस्त्र रखते थे। रानी ने अपने पति के मन का भाव जानकर साधुओं के पास पहनने के लिये श्वेत वस्त्र भेज दिये। साधुओं ने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। उस दिन से सब साधु श्वेताम्बर कहलाने लगे, इनमें जो प्रधान था, उसका नाम जिनचंद्र था।[1]

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा का आरम्भ श्रुतकेवली भद्रबाहु से न होकर स्थूलचंद्र से होता है। इन्होंने स्थूलभद्र को अंतिम श्रुतकेवली माना है।[2]

दिगम्बर ग्रंथों के अनुसार भद्रबाहु श्रुतकेवली का शरीरान्त वीर निर्वाण संवत् 162 में हुआ। और श्वेताम्बरों का उत्पत्ति वीर निर्वाण संवत् 603 में हुई थी। दोनों के बीच साढे चार सौ वर्षों का अन्तर है। वास्तव में अर्धफालक नाम का कोई सम्प्रदाय नहीं हुआ। 'भद्रबाहु चरित्र' से पहले किसी भी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है।

मथुरा के कंकाली टोले के पास प्राप्त जैन अवशेषों में एक शिलापट्ट पर एक जैन यति कृष्ण की मूर्ति मिली है। कण्ह की मूर्ति वस्त्र पहने होने से उसे श्वेताम्बर मूर्ति कहा जा सकता है, संवत् 95 के साल में वासुदेव का राज्य था, तब की यह होनी चाहिये। 'जैन साहित्य' इतिहास में लिखा है-

"आ एक जैन स्तूप नो भाग छे जे उक्त मथुराली कंकाली टीला टेकरी मायी निकलेल छे। कुल ते चार आकृतियों (मूर्तियों) छेल्ला चार तीर्थंकर नभि, नेमि, पार्श्व अने वर्धमाननी छे। नीचे ना भागमा कण्हनी मूर्ति ने वस्त्र पह रावेलां होता थी ते श्वेताम्बर मूर्ति मानी शंकाय। आमां आवेल मूल लेख कोई अनिर्णीत लिखिमां छे। आरंभ मां 95 के साल जब वसुदेव का राज्य था, तब की होनी चाहिये।" वुलहट ने माना है कि नेमिणं देवता के बाएं घुटने के पास एक छोटी सी आकृति नंगे मनुष्य की है, जो बाएं हाथ में वस्त्र होने से तथा दाहिना हाथ ऊपर को उठा होने से

1. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 378-379
2. पट्टावली समुच्चय, वीरमगांव, गुजरात, पृ 25
योगीन्द्र स्थूलभद्रोऽभूत सान्त्यः श्रुतकेवली

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक साधु मालूम होता है।[1]

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'पट्ट के ऊपर भाग के स्तूप के चार तीर्थंकर है, जिनमें पार्श्वनाथ (सर्पफणालंकृत) और चौथे सम्भवत: भगवान महावीर है। पहले दो ऋषभनाथ और नेमिनाथ हो सकते हैं। पर तीर्थंकर मूर्तियों पर न कोई चिह्न है और न वस्त्र। पट्ट में नीचे एक स्त्री और उसके सामने एक नग्न श्रमण खुदा हुआ है। वह एक हाथ में सम्मार्जनी और बाएं हाथ में एक कपड़ा (लंगोट) लिये हुए हैं, शेष शरीर नग्न है।'[2]

सम्भवत: श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अर्धफालक सम्प्रदाय का प्रारम्भिक रूप यही प्रतीत होता है। श्वेताम्बराचार्य हरिभद्र के 'संबोधि प्रकरण' से प्रकट होता है कि विक्रम की 7वीं 8वीं शताब्दी तक श्वेताम्बर साधु भी मात्र एक कटिवस्त्र रखते थे। तथा जो साधु उस कटिवस्त्र का उपयोग निष्कारण करता था, वह कुसाधु माना जाता था। प्रारम्भ में शरीर का गुह्य अंग ही ढाँकने का विशेष ख्याल रखता था। पीछे यह धागे से कमर में बांधा जाने लगा। इसे चोलपट्ट कहते हैं। चोल चुल्ल से बना है, जिसका अर्थ है - क्षुद्र पट्ट।

अर्धपालक सम्प्रदाय का अस्तित्व किसी की कल्पना का विषय न होकर वास्तविक ही है और वही वर्तमान श्वेताम्बर समाज का पूर्वज भी है। कथा अटपटी सी है। किसी नगरी के राजा के आदेश मात्र से अर्धफालक से श्वेताम्बर बन जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

पं. बेचरदास के अनुसार, वलभी नगरी में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति बहलाने में ऐतिहासिक तथ्य निहित है, क्योंकि वर्तमान में उपलब्ध श्वेताम्बरीय आगमों का संकलन वलभी नगरी में ही किया गया और उनकी संकलना और लेखन के पश्चात् श्वेताम्बर-दिगम्बर भेद की एक अटूट दीवार खड़ी हो गई, जिसने दोनों को सर्वदा के लिये पृथक कर दिया।

श्वेताम्बर साहित्य से वीर निर्वाण के 609 वर्ष बीतने पर रथवीरपुर में बोटिक शिवमूर्ति से बोटिक मत उत्पन्न हुआ। इसकी कथा है कि रथवीरपुर में शिवभूति नाम का एक क्षत्रिय रहता था। वह रात्रि को बहुत विलम्ब से आता था। एक रात देर से अपने पर मा ने द्वार नहीं खोला। वह साधु बन गया। राजा ने उसे बहुमूल्य रत्न कम्बल दिया। एक दिन आचार्य ने शिवभूति की अनुपस्थिति में उस रत्न कम्बल को फाड़कर उसके पैर पोंछने के आसन बना दिये। एक दिन शिवभूति ने कहा, जिनकल्प क्यों नहीं धारण करते ? उत्तर था- जम्बू स्वामी के पश्चात् जिनकल्प का विच्छेद हो गया है। उसने कहा, मैं उसे धारण करूँगा। उसने वस्त्र त्याग दिये। उसकी बहन नमस्कार करने आई, वह भी नग्न हो गई। वह नगर में भिक्षा मांगने गई, तब एक गणिका ने उसे वस्त्र पहना दिये। नंगी स्त्री वीभत्स लगती है, इसलिये शिवभूति ने उसे सवस्त्र रहने की आज्ञा दे दी। पश्चात् शिवभूति ने कोडिन्स और कोट्टवीर नाम के दो को अपना शिष्य बना लिया। इस प्रकार बोटिक शिवभूति से बोटिकों का मत उत्पन्न हुआ।

दिगम्बर लेखक दिगम्बर वेश से जैन मुनि का साधारण आचार मानकर दुर्भिक्षजनित

---

1. India Antiquary, Part II Page 316
2. डा. वासुदेव अग्रवाल, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग 10, पृ 80

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई शिथिलाचारिता को श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति का जनक बतलाते हैं और श्वेताम्बर लेखक जम्बूवासी के पश्चात विच्छिन्न हुए जिनकल्प पुन: संस्थापन करने को दिगम्बर मत की उत्पत्ति का जनक मानते हैं। श्वेताम्बरों के अनुसार जिनकल्प (दिगम्बरत्व की प्रकृति) जम्बूस्वामी तक अविच्छिन्न रूप से चली आती थी। उसके पश्चात् ही उसका विच्छेद हुआ और शिवभूति ने उसे पुन: प्रचलित करके दिगम्बर सम्प्रदाय की सृष्टि की।

'केम्ब्रिज हिस्ट्री' के अनुसार 'यह समय (भद्रबाहु का दक्षिणागम) जैन संघ के लिये दुर्भाग्यपूर्ण प्रतीत होता है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईस्वी पूर्व 300 के लगभग संघभेद का उद्‌गम हुआ, जिसने जैन संघ को श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों में विभाजित कर दिया।'[1]

आर सी मजूमदार के अनुसार "जब भद्रबाहु के अनुयायी मगध से लौटे तो एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ। नियमानुसार जैन साधु नग्न रहते थे, किन्तु मगध के जैन साधुओं ने सफेद वस्त्र धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय उत्पन्न हुए।"[2]

पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार, कुछ समय बाद जब अकाल समाप्त हो गया, और कर्नाटक से जैन लोग वापिस लौटे, तब उन्होंने देखा कि मगध के जैन साधु पीछे से निश्चित किये गये धर्मग्रन्थों के अनुसार श्वेत वस्त्र पहनने लगे हैं। इस वस्त्र पहनने वाले जैन साधु श्वेताम्बर और नग्न रहने वाले दिगम्बर कहलाए।[3]

'उत्तराध्ययन' के केशी गौतम संवाद में अचेलता-सचेलता पर प्रकाश डाला गया है। इसमें स्पष्ट कहा है कि महावीर ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया है और पार्श्वनाथ ने सान्तरोत्तर धर्म का उपदेश दिया।[4] सान्तरोत्तर का अर्थ है, ऐसे वस्त्र जिन्हें धारण किये जायें, वह धर्म सान्तरोत्तर है। सान्तर+उत्तर का अर्थ है, ओढ़ना, अर्थात् जो आवश्यकता होने पर वस्त्र का उपयोग कर लेता है, नहीं तो पास में रखे रहता है। पार्श्वनाथ के साधु अचेल भी थे और सचेल भी। जब वे वस्त्र का उपयोग नहीं करते थे तो अचेल कहलाते थे, जब वे वस्त्र का उपयोग करते थे तो सचेल कहलाते थे।

कुछ पार्श्वपंथियों में शिथिलाचारिता थी। श्वेताम्बर साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पार्श्वनाथ के धर्म में साधुओं के लिये सान्तरोत्तर वस्त्र की व्यवस्था थी- अर्थात् साधु वस्त्र पास में रखते थे और आवश्यकता के समय उसे ओढ़ लेते थे। वस्त्र की व्यवस्था के विषय में जितनी कड़ी नीति भगवान महावीर ने अपनाई, उतनी पार्श्वनाथ ने नहीं अपनाई।

श्वेताम्बर परम्परा में प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के लिये अचेल धर्म आवश्यक बतलाया, किन्तु मध्य के बाईस तीर्थंकर के साधुओं के लिये अचेल और सचेल दोनों धर्म

1. Cambridge History of India, Page 147
2. R.C. Majumdar, Ancient India, Part II Page 41
3. पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, भारत के प्राचीन राजवंश, भाग II, पृ 431-432
4. उत्तराध्ययन सूत्र, 23 अ

अचेलओ अ जो धम्मो जो इमो संतरुत्तरो।
देसियो वद्धमाणेणं पासेण व महामुनी॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आवश्यक बताए हैं।

'स्थानांग सूत्र'[1] में वस्त्र धारण करने के तीन कारण बतलाए गए हैं- लज्जा निवारण, ग्लानि निवारण और परीषह निवारण।

'उत्तराध्ययन' की एक कथा के अनुसार आचार्य आर्यरक्षित ने अपनी माता, भार्या, भगिनी आदि सभी स्वजनों को साध्वी बना दिया, किन्तु उसके पिता ने समझाने पर भी लज्जावश साधुपद स्वीकार नहीं किया। वह कहता- मैं कैसें श्रमण बनूं ? जब आचार्यों ने बहुत कहा तो बोला- यदि मुझे दो वस्त्र, कमण्डल, छत्र, जूता और यज्ञोपवीत के साथ प्रवर्जित कर सकते हो तो से मैं साधु बनने को तैयार हूँ।

एक दिन आचार्य साधु संघ के साथ चैत्य वन्दना के लिये गये। तब पहले से सिखाकर तैयार किये गये बालकों ने कहा, "इस छाते वाले साधु के सिवाय हम सब साधुओं की वन्दना करते हैं।" वह वृद्ध बोला, "इन्होंने मेरे पुत्र-पौत्र सब की वन्दना की, मेरी वन्दना नहीं की। क्या मैंने दीक्षा नहीं ली।" तब बालक बोले- "दीक्षा ली होती तो छाता कमण्डल वगैरह तुम्हारे पास कैसे होते ?" वृद्ध ने आचार्य से कहा- "पुत्र। बालक भी मेरी हंसी उड़ाते हैं। मैं छाता नहीं रखूँगा। इसी तरह प्रयत्न करके धोती के सिवाय सब चीजों का त्याग वृद्ध से करा दिया गया।''

इन्ही आर्यरक्षित के स्वर्ग के पश्चात् श्वेताम्बर सम्प्रदाय में धीरे धीरे उपाधियों की संख्या में वृद्धि होती गई। मुनि कल्याण विजय जी के अनुसार "आर्यरक्षित के स्वर्ग के पश्चात् धीरे धीरे साधुओं का निवास बस्तियों में होने लगा और साथ ही नग्नता का भी अन्त होने लगा। पहले मात्र शरीर का गुह्य अंग ही ढंकने का विशेष खयाल रहता था, बाद में सम्पूर्ण नग्नता ढंक लेने की जरूरत समझी गई और उसके लिये वस्त्र का आकार प्रकार भी बदलना पड़ा।"[2]

कुछ विद्वानों का मत है कि महावीर ने अचेलकता को अपनाया, उस पर उनके शिष्य और बाद में आजीविक सम्प्रदाय के गुरु मक्खाल गोशाल का प्रभाव है। यह मंखपुत्र गोशाला में जन्मा था। ऐसा माना जाता है कि गोशालक छः वर्षों तक उनके हाथ रहा।

श्वेताम्बर आगमों के अनुसार महावीर केवल एक वर्ष तक चीवरधारी रहे थे। अतः जब गोशालक ने उन्हें देखा, तब अवश्य ही नग्न होने चाहिये। इसके विपरीत गोशालक के पास उस समय वस्त्र कमण्डल आदि उपकरण थे, जिन्हें उसने महावीर का शिष्य बनने से पूर्व किसी ब्राह्मण को दे दिये।[3] गोशालक की नग्नता का प्रभाव महावीर पर प्रतीत नहीं होता, किन्तु महावीर की नग्नता वे प्रभावित गोशालक ने अपने आजीविक सम्प्रदाय के साधुओं को नग्न रहने का नियम बनाया।[4]

---

1. स्थानांग सूत्रं, 171 सूत्र
   तिहिं ठाणेहिं वत्थं धरेज्जा। तं.- हिरिपात्तियं, दुगंधापत्तियं परीषहणत्तियं 171 सूत्र
2. मुनि कल्याण विजय, श्रमण भगवान महावीर, पृ 292
3. भगवतीसूत्र, 151
   साडिआओ य पाडिआओ य कुंडियाओ य चित्तफलगं च माहणे आयामेई।
4. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 429

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बौद्ध उल्लेख के अनुसार गोशालक को नन्दवक्ख और किस्स संकिच्च को अचेलक परिव्राजक सम्प्रदाय का उत्तराधिकारी बताती है।[1]

डा. हर्नले के अनुसार "बौद्ध साहित्य में गोशालक के दो साथी बताए जाते हैं - किस्स संकिच्च और नन्दवक्ख। महावीर से अलग होने के पश्चात् इन तीनों ने श्रावस्ती से एक सम्प्रदाय के नाते नेता के रूप में एकाकी जीवन बिताना शुरू किया।"[2]

देवसेन के 'दर्शनसार' (वि.स. 990) में प्रारम्भ में बुद्ध को पार्श्वनाथ की परम्परा के निर्ग्रंथ का शिष्य बताया है, वैसे ही मस्करीपुरण साधु (मक्खली गोशालक) को भी पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित बतलाया गया है।[3]

'धम्मपद' की बुद्धघोष कृत टीका में निर्ग्रंथों और अचेलकों में भेद किया गया है। उसके अनुसार अचेलक बिल्कुल नग्न होते हैं, जबकि निर्ग्रंथ मर्यादा की रक्षा के लिये एक प्रकार के आवरण का उपयोग करते हैं।

महावीर के समय के अन्य सम्प्रदायों के नेताओं में पूरणकश्यप ने यह सोचकर कि दिगम्बर रहने से मेरी विशेष प्रतिष्ठा होनी, कपड़े पहनना स्वीकार नहीं किया।

आजीवक सम्प्रदाय के साधु नग्न रहते थे, किन्तु उत्तरकाल के लेखकों ने नग्नता को आजीविकों के साथ जोड़ दिया और दिगम्बरों को ही गोशालक या आजीविकों का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

यह माना गया है कि यदि दिगम्बर सम्प्रदाय आजीविकों से निकला होता या आजीविक ही आगे चलकर दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में परिवर्तित हो गये होते तो आजीविक सम्प्रदाय के संस्थापक गोशालक की विचारधारा का कुछ अंश तो उसमें अवश्य ही परिलक्षित होता।"[4] किन्तु हार्नली ने आजीविक सम्प्रदाय का उत्तराधिकारी दिगम्बर सम्प्रदाय को माना है। शीलांक ने अपनी टीका में और हलायुध ने अपनी 'अभिधान रत्नमाल' में दिगम्बरों और आजीविकों को एक बतलाया है तथा प्राचीन तमिल साहित्य में जैन के लिये आजीविक शब्द का प्रयोग किया जाता है। छठी शताब्दी से वराहमिहिर ने आजीविक शब्द का प्रयोग किया है, यह दिगम्बर जैनों का सूचक है।[5]

श्रीमती स्टीवेंसन के अनुसार "सम्भावना है कि जैन समाज में सदा से दो पक्ष रहे हैं- एक वृद्धों और कमजोरों का, जो पार्श्वनाथ के समय से वस्त्र धारण करते करते आते हैं, जिसे

---

1. Sacred Books of the East, Part 45, Page 29
   The Budhist records speak of him as successor of Nandvikha and Kissa Samkika.
2. Encyclopaedia, Ethics & Religion, Part I, Page 267.
3. देवसेन, दर्शन सार, श्लोक 21
   सिरिवीरणाहतिहत्थे वहुस्सुदो पास संघ गणिसी सो।
   मक्कड़ीपूरण साहू अण्णाणं भासए लोए ॥20॥
4. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 429
5. Encyclopaedia, Ethics & Religion, Part I, Page 266.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थविरकल्प कहते हैं। यह स्थविर कल्पवृक्ष श्वेताम्बर सम्प्रदाय का पूर्वज है और दूसरा पक्ष जिनकल्प है, जो नियमों का अक्षरश: पालन करता था, जैसा महावीर ने किया, यह पक्ष दिगम्बरों का अग्रज है।"[1]

वस्तुत: गौतम गणधर, सुधर्मा स्वामी और जम्बूस्वामी तक भगवान महावीर का जैन संघ अखण्ड रूप से प्रवर्तित हुआ। भगवान महावीर के इन तीनों उत्तराधिकारियों को दोनों सम्प्रदाय अपना धर्मगुरु मानते हैं। यद्यपि अन्तर इतना अवश्य प्रतीत होता है कि दिगम्बर परम्परा गौतम गणधर को ही विशेष महत्व देती है, जब कि श्वेताम्बर परम्परा सुधर्मा को। सुधर्मा के शिष्य जम्बू स्वामी थे। जम्बू स्वामी के पश्चात् अनुबद्ध केवलज्ञानी नहीं हुआ और इस तरह केवलज्ञानियों की परम्परा का अन्त हो गया।

जम्बूस्वामी के पश्चात् ही दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा की गुर्वावली में अन्तर पड़ता है और केवल एक श्रुतकेवली भद्रबाहु है, जिन्हें दोनों मान्य करते हैं। ऐसा लगता है कि जम्बूस्वामी के पश्चात् ऐसा विवाद खड़ा हुआ, जिसके कारण दोनों की आचार्यों की नामावली में अन्तर पड़ गया।

जम्बू स्वामी के पश्चात् जिनकल्प विच्छिन्न हो गया। जिनकल्प विच्छिन्न होने के कथन का यह अभिप्राय हो सकता है कि पूर्व के कठोर मार्ग में नरमी आई और धीरे धीरे वनवासी से चैत्यवासी बन गये।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति वलभी नगरी में हुई। वलभी में किये गये अंगों के लेखनकार्य ने संघभेद की दीवार को स्थायी कर दिया। दिगम्बर परम्परा के अनुसार भद्रबाहु के समय में संघभेद का बीज बो दिया गया और वलभी में उसकी उत्पत्ति हो गई। वलभी में आगम ग्रंथों को पुस्ताकारूढ किया गया। वलभी वाचना का समय वीर निर्वाण संवत् 980 है, जो वि.सं. 510 है।

मथुरा के कंकाली टीले के अवशेष ईसा की प्रथम और द्वितीय शताब्दी के हैं। वुहलर के अनुसार "मथुरा के जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय के थे और दूसरे जिस संघभेद ने जैन सम्प्रदाय को परस्पर विरोधी दो सम्प्रदायों में विभाजित कर दिया, वह ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने के बहुत पहले हो चुका था।"[2] वलभी वाचना से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व वि.स. 357-370 के मध्य में मथुरा में वाचना होने का निर्देश श्वेताम्बर साहित्य में पाया जाता है।

संघभेद की तीनों सीढ़ियाँ क्रमश: स्थापित हुई। भद्रबाहु श्रुतकेवली के पश्चात् गुरुभेद स्थायी रूप से स्थापित हो गया। एक पक्षीय आगम वाचना से प्रारम्भ हुआ संघभेद वलभी में आगमों की संकलन और पुस्तकारूढ़ता के साथ स्थायी हो गया। तथा फिर देवमूर्तियों में पहले वस्त्र को और फिर देव को भी पृथक कर दिया और इस तरह संघभेद चिरस्थायी कर दिया गया।

श्रुतकेवली भद्रबाहु तक अखण्ड जिन शासन की वैजयन्ती फहराती रही और उसके

---

1. Mrs. Stevension, House of Jainism, Page 79.
2. Indian Sect of the Jains, Page 44

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पश्चात् जिन शासन विभक्त हुआ और जिन साहित्य की सुरक्षा और निर्माण की चिन्ता ने श्रुतधरों-श्रुतप्रेमियों को आन्दोलित किया।

संघभेद से श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अंकुरण हुआ और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनि और आचार्य ओसवंश के प्रेरक और सूत्रधार बने।

आगमवाचना

महावीर युग (भद्रबाहु तक) के पश्चात् संघभेद हुआ, किन्तु भद्रबाहु से लेकर देवार्द्धि क्षमाश्रमण तक के युग को हम आगम वाचनाकाल भी कह सकते हैं।

आर्य स्थूलभद्र के दो प्रमुख और पट्टधर शिष्यों- आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती में आर्य महागिरि बड़े थे, इसलिये आर्य महागिरि की शाखा प्रमुख शाखा मानी जानी चाहिये। आर्य महागिरि के पश्चात् वाचक वंश परम्परा दी जा रही है -

आर्य महागिरि
आर्य सुहस्ति
आर्य बलिस्सह
आर्य स्वाति
आर्य शांडिल्य
आर्य समुद्र
आर्य मंगु
आर्य धर्म
आर्य भद्रगुप्त
आर्य वज्र
आर्य रक्षित
आर्य आनन्दिल
आर्य नागहस्ती
आर्य रेवती नक्षत्र
आर्य ब्रह्मदीपक सिंह
आर्य स्कन्दिलाचार्य
आर्य हिमवंत
आर्य नागार्जुन
आर्य गोविन्द
आर्य भूतादिन्न
आर्य लोहित्य
आर्य दृष्टगणि
आर्य देवार्द्धि क्षमाश्रमण

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रथम वाचना- पाटलिपुत्र वाचना

मौर्य सेनापति पुष्यमित्र के अत्याचारों से तंग आकर मगध जैनधर्मावलम्बी जनता की पुकार सुनकर भिक्खुराय खारवेल ने मगध पर आक्रमण कर पुष्यमित्र को दो बार पराजित किया। भिक्खुराय ने श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं को एकत्रित कर आगमों का उद्धार करने के लिये पूर्वज्ञान का संकलन, संग्रह और पुनरुद्धार करवाया। अंग शास्त्रों के संकलन, संग्रह और संरक्षण हेतु खारवेल द्वारा कराए गये संघ सम्मेलन का समय वीर निर्वाण संवत् 323 के पश्चात् 327 से 329 वीर संवत् ठहरता है। पुष्यमित्र 323 वीर निर्वाण संवत् में पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आरूढ हुआ। खारवेल के शिलालेख में स्पष्ट अंकित है कि जैन धर्म के परमपोषक कलिंगराज महामेघवाहन भिक्खुराय खारवेल को पुष्यमित्र द्वारा जैनों पर किये गये अत्याचारों की सूचना मिली, तो उसने राज्यकाल के आठवें वर्ष में पाटलिपुत्र पर एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण कर दिया।[1] यह सम्भव है उस समय संधि हो गई और चार वर्ष पश्चात् उसने फिर पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया।

'हिमवंत स्थिरावली' के उल्लेखानुसार आगम वाचनार्थ आयोजित सम्मेलन में वाचनाचार्य आर्य बलिहस्स भी सम्मिलित थे। आर्य बलिहस्स का वाचनाचार्यकाल वीर निर्वाण संवत् 245 से 327-329 तक था।

द्वितीय वाचना- माथुरी वाचना

वाचक वंश परम्परा में आर्य स्कन्दिल बड़े प्रभावशाली और प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। 'हिमवंत स्थिरावली' के अनुसार मथुरा के ब्राह्मण परिवार में आर्य स्कन्दिल जन्मे और इनके माता पिता प्रारम्भ से ही धर्मावलम्बी थे। मुनि स्कन्दिल ने गुरु आर्य ब्रह्मदीपकासिंह की सेवा में रहकर आगमों का ज्ञान प्राप्त किया। गुरु के स्वर्गगमन के पश्चात आर्य स्किन्दल वाचनाचार्य नियुक्त हुए।आर्य स्कन्दिल का कार्यकाल वीर निर्वाण से 823 से 840 के आस पास है। संक्रातिकाल में श्रुतधरों की संख्या अति न्यून हो गई थी। फलत: आगम विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। अति विकट समय में सुभिक्ष होने पर वीर निर्वाण संवत् 930 से 840 के मध्य स्किन्दल सूरि ने उत्तर भारत के मुनियों को मथुरा में एकत्रित कर आगम वाचना की। पट्टावली समुच्चय के अनुसार, "सुभिक्ष के समाप्त होने पर आर्य स्कन्दिल सूरि ने श्रमण संघ को मथुरा में एकत्रित कर अनुयोग किया।[2]

---

1. कलिंग का शिलालेख

आमे च बसे महता सेना-गोरधगिरि
घाताणयिता राजगहं उपपीड़ाययति
एतिनं च कंमापदान संनादेन संवितसेन-
वाहनो तिणमुंचित मधुर अपयातो
यवनराज डिमित।

2. पट्टावली समुच्चय, परिशिष्ट

दुब्भिक्खम्मि पणट्ठे पुणरवि मिलित समणसंघाओ।
भिहुराए अणुओगो, पतइयो खंदिलो सूरि॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'नन्दिस्थिरावली' में आर्य स्कन्दिल को प्रणाम किया है- जिनके द्वारा संगठित सुव्यवस्थित अनुयोग (आगम पाठ) आज भी भरत क्षेत्र में प्रचलित है, उन महान् यशस्वी आर्य स्कन्दिल को प्रणाम करता हूँ।[1]

उस समय जिस जिस स्थविर को जो जो श्रुत पाठ स्मरण था, उसे सुन सुनकर स्कन्दिलाचार्य ने सर्वानुमति से सुनिश्चित किया। यह वाचना मथुरा में हुई, इसलिये इसे माथुरी वाचना कहते हैं।

यह भी कहा जाता है कि मथुरा निवासी ओसवंशीय पोलाक ने गंधहस्ती के विवरण सहित उन सूत्रों को ताड़पत्रादि पर लिखाकर मुनियों को प्रदान किया।[2]

तृतीय वाचना- वलभी वाचना

जिस समय मथुरा में आचार्य स्कन्दिल के नेतृत्व में आगम वाचना हुई, लगभग उसी समय दक्षिण के श्रमणों को एकत्रित कर आचार्य नागार्जुन ने भी वलभी में एक आगम वाचना की।

दोनों वाचनाओं में भेद है। आगमों का उद्धार करने के पश्चात् आर्य स्कन्दिल और आर्य नागार्जुन नहीं मिल सके। उनका स्वर्गवास हो गया। जो वाचनाभेद रह गया, वह वैसा ही बना रहा। विस्मृत सूत्र और अर्थ को याद करके व्यवस्थित करने में वाचनाभेद हो जाना अवश्वम्भावी है।

हिमवंत क्षमाश्रमण के पश्चात् आर्य नागार्जुन वाचनाचार्य हुए। आर्य नागार्जुन क्षत्रिय संग्रामसिंह के पुत्र थे। वीर संवत् 840 के लगभग वाचनाचार्य आर्य स्कन्दिल के स्वर्गस्थ होते ही ज्येष्ठ मुनि हिमवान् को वाचनाचार्य नियुक्त किया गया और हिमवान् के स्वर्गगमन के पश्चात् आर्य नागार्जुन को युगप्रधानाचार्य के कार्यभार के साथ वाचनाचार्य के पद पर भी प्रतिष्ठित किया गया।

देवद्धि क्षमाश्रमण ने भी वलभी नगरी में श्रमणसंघ का सम्मेलन आयोजित किया। उन्होंने न केवल आगम वाचना द्वारा द्वादशांगी के विस्मृत पाठों को सुव्यवस्थित, संकलित एवं सुगठित ही किया, किन्तु पुस्तकों के रूप में लिपिबद्ध करवाकर दूरदर्शिता का परिचय दिया।

देवद्धि जन्मत: काश्यपगोत्रीय क्षत्रिय थे। देवर्द्धि क्षमाश्रमण ने श्रमणसंघ की अनुमति से वीर निर्वाण संवत् 980 में वलभी में एक महासम्मेलन किया और आगम वाचना के माध्यम से

---

1. नन्दी स्थिरावली, श्लोक 33

जेसिमिमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्डभरहाम्मि।
बहुनयरनिग्गय जसे ते वंदे खंदिलाथरिए ॥

2. हिमवंत स्थिरावली

मथुरा निवासिना श्रमणोपासक वरेण ओसवंशि
भूषणेन पोलाकाभिधेन तत्सकलमपि प्रवचनं
गंधहस्ति कृत विवरणोपेतं तालयत्रा देषु
लेखयित्वा भिक्षुभ्य: स्वाध्यायार्थं समर्पितम् ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आगमों को पुस्तकारूढ़ किया।

कई विद्वान देवर्द्धि क्षमाश्रमण की आगमवाचना न कहकर आगम लेखन ही कहते हैं। इन्होंने मतभेद में नागार्जुनीय वाचना के अनुसार ही आगमों को पुस्तकारूढ किया। अत: इसे आगम वाचना के साथ आगम लेखन मानना उचित है।

उस समय आचार्य नागार्जुन की परम्परा के आचार्य कालक (चतुर्थ) और स्कन्दिली (माथुरी) वाचना के प्रतिनिधि आचार्य देवद्धिक्षमाश्रमण थे। मेरूतुंग ने भी स्पष्ट कहा है कि देवद्धिगणि ने सिद्धान्तों को विनाश से बचाने के लिये पुस्तकारूढ किया।[1]

इसी आगमकाल ने जैनमत ने अनेक राजाओं का संरक्षण प्राप्त किया। मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त जैन था। विसेंट स्मिथ के अनुसार "मैं अब विश्वास करता हूँ यह परम्परा सम्भवत: मूलरूप में यथार्थ है कि चन्द्रगुप्त ने साम्राज्य का परित्याग कर जैन मुनि का पद अंगीकार किया।"[2] इतिहासकार डा. काशीप्रसाद जायसवाल भी मानते हैं कि पाँचवी सदी के जैन ग्रंथ और उसके पश्चात् के शिलालेख यह प्रमाणित करते हैं कि चन्द्रगुप्त जैन सम्राट था। चन्द्रगुप्त ही जैन साधु बनकर विशाखाचार्य कहलाए। श्रमण बेलगोला केचन्द्रबस्तीनाम के चन्दगिर पर अवस्थित मंदिर की दीवारों पर सम्राट चन्द्रगुप्त के जीवन को अंकित करने वाले चित्र हैं। दिगम्बर परम्परा के ग्रंथ 'तिलोयपण्णति' में स्पष्ट लिखा है कि मुकुटधर राजाओं में अंतिम चन्द्रगुप्त नरेश ने जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् मुकुटधारी किसी नरेश ने प्रव्रज्या धारण नहीं की और न ही करेगा।"[3]

कलकत्ता विश्वविद्यालय के बसन्तकुमार चटर्जी ने माना है कि चंद्रगुप्त भद्रबाहु के अभिन्नात्मा थे। प्रो. हर्मन याकोबी चंद्रगुप्त को अकाट्य प्रमाणों से जैन सिद्ध कर चुके हैं।

विशाखाचार्य का आचार्य स्थूलिभद्र से मतभेद था, किन्तु विशाखाचार्य ने अलग सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया, किन्तु यहीं से जैनसंघ में शाखाएं फूटी। मुनि सुशीलकुमार के अनुसार 'श्वेताम्बर और दिगम्बर शब्द बहुत पीछे से चले हैं, किन्तु मुझे यह बात अधिक समीचीन लगती है कि स्थूलिभद्र और विशाखाचार्य का मतभेद तो पहले ही खड़ा हो गया था, जो कालान्तर में दिगम्बर और श्वेताम्बर कहलाई।'[4]

---

1. मेरुतुंग थेरावली, टीका 5
   श्री वीरादनु सहाविंशतम: पुरुषो देवद्धिगणि,
   सिद्धान्तान् अव्यवछेदाय पुस्तकाधिरुढान कार्णीत।
2. Vincent Smith, History of India
   I am now disposed to believe that the tradition is possibly true in its main outhlines and that Chandragupta realy abdicted and became Jain ascetic.
3. तिलोय पण्णति, 4/1481
   मङ्धरेसु चरित्तो जिण दिक्खं धर दि चन्दगुत्तोय।
   ततो मडङ्धरा दुप्प व्वजनं णेय गिहंति ।।
4. मुनि सुशील कुमार, जैन धर्म का इतिहास (संवत् 2016), पृ 129

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थूलिभद्र का स्वर्गवास वीर संवत् 215 हुआ और फिर आर्य महागिरि की दीक्षा हुई। वीर संवत् 245 में आचार्य महागिरि का स्वर्गवास हुआ और आचार्य सुहस्ति को आचार्य बनाया गया। उस समय कुणाल का पुत्र सम्प्राति मगध का शासक था।

सम्प्राति का जन्म ई.पू. 257, वीर निर्वाण संवत् 270 पौष मास में हुआ था। सम्प्राति का स्वर्गवास ई.पू. 203 और वीर निर्वाण संवत् 232 में हुआ।

कल्हण के 'राजतरंगिणी' में स्पष्ट लिखा है कि प्रारम्भ में अशोक जैन था और उसने जैन धर्म का प्रचार काश्मीर में किया था।[1]

अशोक के धर्मचक्र में 24 आरे 24 तीर्थंकारों को सूचित करते हैं। राजा वल्लिधे नामक कन्नड़ ग्रंथ में अशोक को जैन बतलाया है।[2]

अशोक के पौत्र सम्प्राति को आचार्य सुहस्ती ने जैन धर्म की दीक्षा दी। उसने जैन धर्म और अर्हत संस्कृति का ब्रह्मदेश, आसाम, तिब्बत, अफगानिस्तान, तुर्की और अरब स्थान में प्रचार किया। उस समय देश विदेश में जैन धर्म की वैजयन्ती लहरा रही थी।

दूसरी सदी के कलिंग का शासक मिक्खुराय खारवेल जैनधर्म का अनन्य उपासक था। खारवेल सम्भवत: पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्यों के अनुयायी थे। खारवेल के ही प्रयत्नों से पाटलिपुत्र में आगम वाचना हुई, जिसमें कई आचार्य- नक्षत्राचार्य, देवसेनाचार्य, उमास्वामी, श्यामाचार्य आदि एकत्रित हुए। उमास्वामी के 'तत्वार्थ सूत्र' को हम जैनधर्म की गीता कह सकते हैं। 'तत्वार्थ सूत्र' जैनदर्शन का निचोड़ है।

महावीर के 400 वर्ष पश्चात् आगमयुग समाप्त हो चुका था और इस समय समस्त जैन साहित्य प्रतिस्पर्द्धियों के प्रहार सुरक्षार्थ आगमों के आधार पर रचा जाने लगा, जिसको युग की आवश्यकता थी।

'कल्पसूत्र स्थिरावली' के अनुसार देवर्द्धि सुहस्ती शाखा के आर्य खांडिल्य के शिष्य थे। नंदीसूत्र की स्थिरावली, जिनदास रचित चूर्णि, हरिभद्रीया वृत्ति, मलयगिरीया टीका और मेरुतुंग के अनुसार देवद्धि दृष्यगणि के शिष्य थे और तीसरा पक्ष आर्य लोहित्य का शिष्य बताता है। मुनि श्री कल्याणविजय जी ने सुहस्ती परम्परा को मान्यता दी है। देवद्धि क्षमाश्रवण वीर निर्वाण संवत् 1000 में स्वर्ग सिधारे।

अब अनुसंधान से यह पता चला है कि देवर्द्धि क्षमाश्रमण देवर्द्धि दृष्यगणी के शिष्य होने चाहिये।

जैन संघ में उस समय 500 आचार्य थे, जिनको क्षमाश्रमणजी ने श्रुतरक्षार्थ एकत्रित किया। समयसुन्दर गणी ने अपने 'समाचारी शतक' और विनयविजय कृत 'लोकप्रकाश' में इसे

---

1. कल्हण, राजतरंगिणी, श्लोक 101, 102
   यः शांत वृजिनो प्रपन्नो जिन शासनम्।
   पुष्कलेऽत्र वितस्तात्रौ तस्तार स्तूप मण्डले॥
2. मुनि सुशील कुमार, जैन धर्म का इतिहास, पृ 132

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वलभी वाचना का नाम दिया है। मूल में गणधरों से ग्रंथित सूत्रों को देवद्धिगणि ने पुनः संकलित किया। अतः इसी कारण शास्त्र के कर्त्ता देवर्द्धि क्षमाश्रमण कहलाए।

इस प्रकार आगम रचनाकाल के साथ संघभेद से श्वेताम्बर-दिगम्बर मत के रूप में अखण्ड जिनशासन बँट गया। आगमों के पुनर्रुद्धार ने श्वेताम्बर परम्परा को सुदृढ़ भित्ति पर स्थापित कर दिया।

डा. याकोबी के अनुसार, 'सर्व सम्मत परम्परा के अनुसार जैन आगम अथवा सिद्धांतों का संग्रह देवर्द्धि की अध्यक्षता में वलभी सम्मेलन में हुआ। कल्पसूत्र में उसका समय वीर निर्वाण 980 या 993 (454 या 367) दिया गया है। नाथूराम प्रेमी ने एक प्राचीन गाथा को प्रस्तुत किया है।

वलहिपुरंमि नयरे देवडिढय भुह सयल संघेहि।
पुव्वे आगमु लिहिद नव सय असीआणु वीराड ॥

अब जो जैन आगम या अंग साहित्य उपलब्ध है, उसे दिगम्बर जैन सम्प्रदाय मान्य नहीं करता, यह सबको विदित है। दिगम्बर परम्परा में वीर निर्वाण में 683 वर्ष पर्यन्त अंगज्ञान की परम्परा प्रवर्तित रही है, किन्तु उसे संकलित करने या लिपिबद्ध करने का कभी कोई सामूहिक प्रयत्न किया हो, ऐसा आभास नहीं मिलता।

विंटरनीट्ज की मान्यता है 'यद्यपि स्वयं जैनों की परम्परा उनके आगमों के बहुत प्राचीन होने के पक्ष में नहीं है, तथा कम से कम उनके कुछ भागों की अपेक्षाकृत प्राचीनकाल का मानने में और यह मान लेने में कि देवर्द्धि ने अंशतः प्राचीन प्रतियों की सहायता से और अंशतः मौखिक परम्परा के आधार पर आगमों को संकलित किया, पर्याप्त कारण है।'[1]

बेवर का मत है: 'मौजूदा आगम दूसरी और पाँचवी शताब्दी के बीच रचे गये हैं, किन्तु येकोबी का सुझाव है कि उनका कुछ भाग पटना से ही अपेक्षाकृत थोड़े परिवर्तन के साथ आया है।'[2] आगे लिखते हैं, किन्तु यह अधिक सम्भव है कि प्राचीन साहित्य अंशतः सुरक्षित रहा है। यद्यपि यह निस्संदेह है कि संघभेद के समय से श्वेताम्बर साधुओं के द्वारा अपने सम्प्रदाय के अनुकूल इसमें संशोधन की प्रवृत्ति चालू रही। ....आगमों में श्वेताम्बरों की इस प्रवृत्ति के स्पष्ट चिह्न पाये जाते हैं।'[3]

देवर्द्धि क्षमाश्रमण ने जैन सूत्रों को पुस्तकारुढ करके एक कीर्तिमान स्थापित किया। उन्होंने इन आगमों को अध्यायों और अध्ययनों में विभक्त किया और ग्रंथगणण (32 अक्षर का एक श्लोक) की पद्धति चालू की।

वस्तुतः यह ओसवंश का उद्भवकाल भी कहा जा सकता है। श्वेताम्बर परम्परा और ओसवंश की धारा समानान्तर रूप से बही है।

---

1. Winternitge, History of Indian Literature, Part II Page 431-434
2. J.N. Farguhar, An Outline of the Religion & Literature, Page 76
3. वही, पृ 120-121

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आगम साहित्य

आगमों का मूल नाम अंग है। इनकी संख्या 12 है, इसलिये इन्हें द्वादशांग कहते हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा मूल आगमों के साथ नियुक्तियों को मिलाकर 45 आगम मानता है। इसमें 11 अंग, 12 उपांग, 6 मूलधन आदि 10 पइन्ना हैं और कोई 84 आगम भी मानते हैं।[2] श्रुतरूप परम पुरुष के अंगों के तुल्य होने से इन्हें द्वादशांग कहते हैं। अंगों को आगम भी कहते हैं। गणधरों द्वारा रचे गये सूत्रों को सूत्रागम कहते हैं। व्यवहार सूत्र में प्रथम आचरांग सूत्र से लेकर अष्टम पूर्व पर्यन्त अंगों और पूर्वों को तो श्रुत कहा गया है और नवम् आदि शेष छ पूर्वों को आगम कहा गया है। इसका भेद है कि जिससे अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान हो, वे आगम हैं। यों समस्त आगमिक साहित्य को श्रुत कहते हैं। 'श्रुत' का अर्थ है सुना हुआ। तीर्थंकारों से सुनकर गणधर आगमों की रचना करते हैं। परम्परा से आने के कारण आगम कहते हैं।

'विशेषावश्यक' में लिखा है कि तीर्थंकर रूपी कल्पवृक्ष से जो ज्ञानरूपी पुष्पों की वृष्टि होती है, उन्हें लेकर गणधर माला में गूँथ देते हैं।[1]

श्वेताम्बर आगमों में एक नया नाम मिलता है-

गणिपिडग- गणधर का पिटारा।

बारह अंग- द्वादश अंग निम्नानुसार हैं।

1. आचरांग
2. सूत्रकृतांग
3. स्थानांग
4. समवायांग
5. व्याख्या प्रज्ञप्ति
6. ज्ञातृधर्म कथा
7. उपासकाध्ययन
8. अन्तकृद्दश
9. अनुत्तरोपपादिकदश
10. प्रश्न व्याकरण
11. विपाक सूत्र
12. दृष्टिवाद

1. आचरांग

इसमें मुनि की आचारसंहिता है। इसमें 18000 पद हैं। 'आचरांग सूत्र' पर नियुक्ति है, जिसे भद्रबाहु कृत कहा जाता है। एक चूर्णि है और शीलांक (876 ई.) की टीका है।

1. विशेषावश्यक भाष्य

तं नाण कुसुम बुट्ठिं घेतुं वीयाइबुद्धओ सव्वं।
गंथति पवयणट्ठा माला इव चित्त कुसुमाणं॥

2. श्री देवेनु मुनि शास्त्री, जैन आगम साहित्य, पृ. 30

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

2. सूत्रकृतांग

इसमें दो श्रुतस्कन्ध है। दोनों सूत्रों में 23 अध्ययन है- 16+7। इसमें दो स्कन्ध है, द्वितीय स्कन्ध 5,6 को छोड़कर गद्य में हैं। इसमें चार्वाक, बौद्ध और नियतिवाद आदि की समस्या है। बेवर इसे बहुत प्राचीन मानते हैं।[1] 'सूत्रकृतांग' में साधुओं की धार्मिक चर्या का वर्णन है। प्रो विण्टरनीट्ज का कथन है कि प्रथम स्कन्द प्राचीन है और दूसरा स्कन्द एक परिशिष्ट है, जो बाद में जोड़ दिया गया है।[2] इस अंग पर एक नियुक्ति, चूर्णि और शीलांक की टीका है।

3. स्थानांग सूत्र

इसमें जीव-अजीव, स्वसमय, परसमय, लोक अलोक और लोकालोक आदि का व्यवस्थित वर्णन है। दिगम्बरों के अनुसार इसमें 42000 पद और श्वेताम्बर के अनुसार बहत्तर हजार पद हैं। 'स्थानांग सूत्र' की टीका संवत् 1120 में नवांग वृत्तिकार अणहिलपाटन के शिष्य यशोदेवगणि की है।

4. समवायांग

समवाय में सब पदार्थों के समवाय पर विचार किया गया है। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के समवाय का वर्णन करता है। इस अंग की एक विशेषता है- नन्दी सूत्र का निर्देश पाया जाना। नन्दी और समवाय में पाये जाने वाले समान वर्णनों का मूलाधार नन्दी है। डा. बेवर के अनुसार समवाय से नन्दी की विषयसूची संक्षिप्त है।[3] डा. विंटरनीज के अनुसार ""इस बात के प्रमाण हैं कि या तो वर्तमान समवायांग की रचना बाद में की गई या उसमें कुछ भाग बाद में रचे गये।"[4]

5. व्याख्या प्रज्ञप्ति

जीव है या नहीं इत्यादि साठ हजार प्रश्नों का समाधान करता है। उपलब्ध पाँचवें अंग को भगवती भी कहते हैं। इसमें 41 शतक हैं। प्रारम्भिक 20 शतकों को पौराणिक बाना पहनाया गया है और उनमें ऐसा तंतु प्रतीत नहीं होता जो सबको जोड़ता हो। उनमें भगवान महावीर के कार्यों और उपदेशों के विविध उल्लेख हैं। राजगृही के राजा श्रेणिक के समय में भगवान महावीर अपने प्रथम शिष्य गौतम इन्द्रभूति से वार्तालाप करते हैं। 21 से विषय बदल जाता है। 31 से 41 तक सत्, त्रेता, द्वापर और कलियुग आदि का वर्णन है। इसमें पार्श्वनाथ का वर्णन नहीं है, किन्तु इससे पता चलता है कि पार्श्व के अनेक अनुयायी महावीर के शिष्य बने।

6. ज्ञातृधर्म कथा

इसमें बहुत से आख्यान और उपाख्यानों का कथन है। इसका प्राकृत नाम श्वेताम्बर साहित्य में णायधम्म कहा और दिगम्बर साहित्य में णातधम्म कथा है। इसमें अनेक कथाएं हैं।

---

1. Indian Antiquary, Part 17, Page 344-345
2. Winternitge, History of Indian Literature, Part VI, Page 440
3. Dr. Webar, Indian Antiquary, Part 18, Page 374
4. History of Indian Literature, Part VI, Page 442

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रत्येक अध्याय एक स्वतंत्र कथा है। इस अंग पर अभय देवकृत टीका है।

7. उपासकाध्ययन

इसमें श्रावक धर्म के लक्षण हैं। इनमें ग्यारह प्रकार के श्रावकों के लक्षण, उनके व्रतधारण करने की विधि तथा उनके आचरणों के वर्णन है। श्वेताम्बर साहित्य में सातवें अंग का नाम उवासगदश (उपासक दशा) है। इसमें दस अध्ययन में उन उपासकों की कथाएँ हैं, जिन्होंने स्वर्ग प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

8. अन्तःकृहश

जिन्होंने संसार का अंत किया उन्हें अन्तःकृत कहते हैं। टीकाकार अभयदेव के अनुसार अन्तकृत अर्थात् तीर्थंकर जिन्होंने कर्मों और कर्मों के फलस्वरूप संसार का अन्त कर दिया, उनकी दशा है। विषय के अनुसार आठ वर्गों को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है। 1 से 15 तक वर्ग कृष्ण और वसुदेव सम्बन्धित व्यक्तियों की कथाएं 6 और 7 वर्ग- महावीर के शिष्यों की कथाएं, आठवां वर्ग- रत्नावली, मुक्तावली आदि दस तपों का वर्णन है।

9. अनुन्तरोपपाद दश

उपपाद का जन्म ही जिसका प्रयोजन, उन्हें औपपारिक कहते हैं। इस तरह अनुत्तरों से उत्पन्न होने वाले दस साधुओं का जिसमें वर्णन हो, उसे अनुत्तरोपादिकदश नामक अंग कहते हैं।

10. प्रश्नव्याकरण

इसमें लौकिक और वैदिक अर्थ दिये गये हैं। आक्षेप और विक्षेप के द्वारा हेतु और नय के आश्रति प्रश्नों के व्याकरण को प्रश्न व्याकरण कहते हैं।

11. विपाकसूत्र

इसमें सुकृता अर्थात् पुण्य और दुष्कृत अर्थात् पाप के विपाक का वर्णन है।

इस तरह वर्तमान आगम ग्रंथ में से 6 से 11 तक के आगम कथा प्रधान है और वे अपने मूल रूप में नहीं है, किन्तु एकदम परिवर्तित रूप में है। भगवती का रूप सबसे निराला है, उसका संकलन भी उत्तरकाल में हुआ, किन्तु उसमें प्राचीन सामग्री अवश्य है। शेष चार अंग अवश्य ही अपना वैशिष्ट्य रखते हैं, किन्तु वे भी अपने मूलरूप में नहीं है, यह स्पष्ट है।[1]

चार मूलसूत्र

श्री बेवर[2] और विंटरनीज[3] ने उत्तराध्ययन को प्रथम मूलसूत्र बतलाया है। यह आध्यात्मिक रूप में स्थित है, इसलिये इसे मूल कहा गया है। चार्पोण्टिर[4] के अनुसार 'स्वयं

1. जैन साहित्य का इतिहास, पृ 671
2. Indian Antiquary, Part 21, Page 309
3. History of Indian Literature, Part VI Page 466
4. Indian Antiquary, Part 21, Page 309

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महावीर के शब्द किसी भी तरह उचित प्रतीत नहीं होता। शुब्रिंग की राय थी कि जो आध्यात्मिक पथ के मूल अर्थात् शुरू में स्थित हैं, उनके लिये जो मूल सूत्र थे, उन्हें मूलसूत्र कहा गया था। श्री वेबर का कहना था कि यह नाम काफी अर्वाचीन है और मूलसूत्र का मतलब सूत्र से अधिक कुछ भी नहीं है। किन्तु ये सूत्र गद्य रूप नहीं है, किन्तु पद्यों में हैं। उनमें 'उत्तराध्ययन' और 'दशवैकालिक' विशेष प्राचीन है।

(1) आवश्यक सूत्र - इस सूत्र में 6 अध्याय हैं। इनमें सामाजिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान नामक 6 आवश्यकों का कथन है। ये प्रतिदिन आवश्यक है, इसलिये इनका नाम आवश्यक पड़ा। आवश्यक सूत्र पर आवश्यक नियुक्ति नामक व्याख्या है, जिसे भद्रबाहु रचित माना जाता है। इसकी दो प्राचीन टीकाएँ हैं- एक चूर्णि और एक हरिभद्रीय वृत्ति।

(2) दशवैकालिक - विकाल में पढ़ा जा सकने का कारण यह वैकालिक कहा जाता है। इसके दस अध्ययन हैं, इसलिये इसे दशवैकालिक कहा गया है। इसकी नियुक्ति में आचार्य शय्यंभव को दशवैकालिक का रचयिता बताया गया है। दशवैकालिक प्राचीन है, श्वेताम्बर के साथ दिगम्बर सम्प्रदाय में भी इसकी मान्यता रही है। यापनीय संघ के अपराजित सूरि ने भी इसकी टीका रची है। यह अन्वेषणीय है कि इसका प्राचीन रूप यही था या भिन्न।

(3) उत्तराध्ययन - इसका अध्ययन आचरांग के पश्चात होता था, इसलिये इसे 'उत्तराध्ययन'कहा गया। यह भी कहा जाता है कि महावीर ने अपने निर्वाण के अंतिम वर्षामास में छत्तीस प्रश्नों का उत्तर दिया था, उत्तराध्ययन उसी का सूचक है। डा. विंटरनीट्ज के अनुसार 'वर्तमान उत्तराध्ययन' अनेक प्रकरणों का संकलन है और वे प्रकरण विभिन्न समयों में रचे गये थे। उसका प्राचीनतम भाग वे मूल्यवान पद्य है जो प्राचीन भारत की श्रमणकाव्य शैली से सम्बद्ध है और जिनके सदृश पद्य अंशत: बौद्ध साहित्य (धम्मपद) में भी पाये जाते हैं।'[1] इस प्रकार यह एक उपदेशात्मक और कथात्मक संग्रह, जिसमें प्राचीनता का पुट भी नहीं है। एक निर्युक्ति है, जिसे भद्रबाहु की कहा जाता है। एक चूर्णि है। शांतिसूरि और नेमिचंद्र की संस्कृत टीकाए हैं। हर्मन जेकोबी ने इसका अनुवाद जर्मनी में किया, जो 'द सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट' का 45वां खण्ड है।

दस पइन्ना

प्रकीर्ण फुटकर ग्रंथ है। जैन धर्म सम्बन्धी विविध विषयों का वर्णन है। इनकी संख्या दस है

1. चतु:शरण- इसमें बताया है कि अर्हन्त, सिद्ध, साधु और धर्म- इन चार की शरण लेने से पाप की निन्दा और पुण्य की अनुमोदना होती है।

2. आतुर प्रत्याख्यान- इसमें बताया है कि पंडित को रोगावस्था में क्या क्या प्रत्याख्यान करना चाहिये।

---

1. History of Indian Literature, Part II Page, 466-467

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

3. भक्त परिज्ञा- भोजन छोड़ देने को भक्त परिज्ञा कहते हैं। इसमें भक्त परिज्ञा की विधि का निरुपण है।

4. संस्तारक - इसकी 123 गाथाओं में समाधिमरण या संथारे का कथन है।

5. तनुल वैचारिक - इसमें शरीर की रचना को लेकर भगवान महावीर और गौतम के बीच का संवाद है। इसकी गाथाएं 139 हैं। इसके टीकाकार विजयविमलगणि है।

6. चन्द्रवैध्यक - इसमें 174 गाथाएं हैं। इसमें बताया है कि आत्मा के एकाग्र ध्यान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

7. देवेन्द्र स्तव - इनकी 307 गाथाओं में देवेन्द्रों का कथन है।

8. गणिविद्या - इसकी 82 गाथाओं में ज्योतिष का कथन है।

9. महाप्रत्याख्यान - 142 गाथाओं में महाप्रत्याख्यान का कथन है।

10. वीर स्तव - इसकी गाथाओं में भगवान महावीर की गणना स्तुति रूप में है।

'दस पइन्ना' की तालिका अनिश्चित है।

संक्रांतिकाल और हरिभद्रकाल (हरिभद्रसूरि से 1000 ई तक)

संक्रांतिकाल

वीर निर्वाण के एक हजार पश्चात् तक का अर्थात् देवद्धि क्षमाश्रमण के पश्चात् पाँच सौ सात सौ वर्षों का जैनधर्म का इतिहास तिमिराच्छन्न है, विस्मृति के घनान्धकार में विलीन हो चुका था। यही कारण है कि उन पाँच सात सौ वर्षों की अवधि के जैन इतिहास से सम्बन्धित न तो कोई श्रृंखलाबद्ध तथ्य उपलब्ध होते हैं और न विकीर्ण तथ्य ही।[1] इस युग में साधुओं ने तंत्र, मंत्र, यंत्र, मूर्तियों, मंदिरों आदि के माध्यम से प्रभुत्व, सत्ता, ऐश्वर्य, कीर्ति और विपुल वैभव प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। मुनियों का आचरण शिथिल से शिथिलतर होता गया है। सातवीं-आठवीं शताब्दी में जैन साधुओं और पुरोहितों के बीच का अंतर समाप्त हो गया है। वे जैन भक्तों द्वारा प्राप्त अथाह धन के स्वामी होते गये।[2] वीर निर्वाण संवत् 1000 से 1300 तक के जैनधर्म के इतिहास पर भाव परम्पराओं के स्थान पर द्रव्य परम्पराएं छाई रही।

वीर निर्वाण संवत् 850 में चैत्यवासी संघ की स्थापना हुई थी।[3] अंध श्रद्धालुओं ने

---

1. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, (तृतीय खण्ड) पृ 7
2. Ram Bhushan Prasad Singh, Jainism in Early Mediveal Karnataka, Page 51
   Thus the distincation between Jain monks & priests gradually disappeared from the 7th & 8th century. The change in usual practise of priesthood would have surely made them the sole master of enormous wealth acquired from endowments made by the Jain devotees.
3. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, (तृतीय खण्ड) पृ 73

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदारतापूर्वक आर्थिक दान देकर चैत्यवासी संघ को सुदृढ़, सक्षम और सबल बनाया। इन्हें राज्याश्रय भी मिला। राज्याश्रय प्राप्त चैत्यवासी परम्परा भारत के विभिन्न भागों में प्रसूत हुई, फैली और फली फूली। 'वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण से वीर निर्वाण संवत् 1554 तक यही स्थिति रही कि चैत्यवासी परम्परा ही लोकदृष्टि से जैनधर्म की सच्ची प्रतिनिधि और मूल परम्परा के रूप में मान्य रही।'[1] इन्होंने राजाज्ञाएं प्रसारित कर मूल श्रमण परम्परा के साधु साध्वियों का अपने क्षेत्रों में प्रवेश तक निषिद्ध करवा दिया।

श्री सोहनराज भंसाली के अनुसार चैत्यवासी परम्परा का विकसित रूप विक्रम की पांचवी शताब्दी में परिलक्षित हो चुका था। मुनि जयंत विजय जी के अनुसार, 'दुष्काल राज्यक्रांति व राज्यों के उथलपुथल व अन्य मतावलम्बियों के अत्याचारों के कारण जैन समाज के साधुओं ने अपना स्वरूप समेट लिया। उन्होंने छोटे छोटे समुदाय में अपना कार्यक्षेत्र बनाया। वे लोगों की रुचि व रुझान को ध्यान में रखकर शिथिलाचारी बने। जंत्र मंत्र का सहारा लिया। ज्योतिष, निमित्त, शिक्षा, औषधि उपचार आदि का कार्य भी करने लगे। इन सब कार्यों का मुख्य स्थल चैत्यों में था।'[2] इनका धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में वर्चस्व था। यह जैनधर्म के वैचारिक पतन का प्रतीक भी थी। जिनेश्वर सूरि ने फिर इसके प्रतिकार के निमित्त इन चैत्यवासी यतियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन शुरू किया। इन्होंने सुविहित विधिमार्ग का नया गण स्थापित किया। इन्होंने पाटन के राजा दुर्लभराज की राजसभा में चैत्यवास के समर्थक सुराचार्य के विरुद्ध शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की। महाराज दुर्लभ राज ने इन्हें 'तमखरा छो' कहा, जिसके बाद में खरतरगच्छ का प्रादुर्भाव हुआ। मुनि जिनविजय के अनुसार 'प्रभावक चरित्र' के वर्णन से यह तो निश्चित ही ज्ञात होता है कि सुराचार्य उस समय चैत्यवासियों के एक प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। वे पंचासरा पार्श्वनाथ चैत्य के मुख्य अधिष्ठाता थे। स्वभाव से वे बड़े उग्र और वाद विवाद प्रिय थे।[2] जिनेश्वरसूरि और उनके शिष्यसमुदाय ने चैत्यवासी परम्परा का उन्मूलन कर श्वेताम्बर जैन समाज में एक नये युग का प्रवर्तन किया। यदि उस समय ऐसा नहीं होता तो ये जैन मंदिर भोगविलास और भ्रष्टाचार के मठ बन जाते।

वीर निर्वाण की नवीं शताब्दी में चैत्यवासियों में कुछ शिथिलाचारी मुनि उग्रविहार छोड़कर मंदिरों में परिपार्श्व में रहने लगे। देवद्धिगणी के दिगंत होते ही इनका सम्प्रदाय शक्तिशाली हो गया। विद्याबल और राज्यबल दोनों के द्वारा इन्होंने उग्रविहारी श्रमणों पर पर्याप्त प्रहार किया।[3] चैत्यवासी शाखा के उद्भव के साथ एक पक्ष, विधिमार्ग या सुविहित मार्ग कहलाया और दूसरा पक्ष चैत्यवासी पक्ष।[4] 'तपागच्छ पट्टावली' के अनुसार "वीर निर्वाण संवत् 882 के पश्चात् चैत्यस्थिति अथवा चैत्यावास की स्थिति हुई।[5] आचार्य हरिभद्र ने चैत्यावास जन्य तात्कालिक विकृतियों का अपने ग्रंथ 'सम्बोधि प्रकरण' में उल्लेख किया है। विक्रम की

---

1. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 34
2. मुनिजिनविजय, कथाकोश, पृ 43
3. जैन परम्परा का इतिहास, पृ 68-69
4. वही, पृ 69
5. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ 624

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पन्द्रहवीं शताब्दी में यही चैत्यावास परिवर्तित होकर यतिसमाज के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। उपलब्ध साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि विक्रमसंवत् 1285 में चैत्यावास सर्वथा बन्द हो गया और मुनियों ने उपाश्रय में उतरना प्रारम्भ कर दिया।[1]

चैत्यवासी परम्परा के कारण जैन धर्मावलम्बियों का एक बहुत बड़ा भाग धर्म की मूल आध्यात्मिकता से भटक गया। अनहिलपुर पट्टन के महाराज दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासियों की पराजय के साथ ही चैत्यवासियों का पतन प्रारम्भ हो गया और गुजरात में उसका गढ़ ढहना प्रारम्भ हो गया।

भट्टारक परम्परा

इसी चैत्यवासी परम्परा के समानान्तर आचार्य देवद्धिगण क्षमाश्रमण के स्वर्गस्थ होने के पूर्व वीर निर्वाण संवत 840 के आसपास ही भट्टारक परम्परा में नसियां (निसिहियां-निषिधियां), बस्तियं (वसदियां) आदि नामों से अभिहित किया जाने लगा। इन्होंने जैन कुलों के बालकों को शिक्षण देना प्रारम्भ किया। इन शिक्षण संस्थानों ने जैनविद्या का प्रशिक्षण दिया गया। दिगम्बर परम्परा के आचार्य कुदकुन्द के समय चैत्यवासी भट्टारक आदि परम्पराएं लोकप्रिय हो चुकी थी। आचार्य कुन्दकुन्द का समय वीर निर्वाण समय 1000 तदनुसार विक्रम संवत् 530, ईस्वी सन् 473 माना जा सकता है। भट्टारक परम्परा भी अपने उत्कर्षकाल से अपकर्षकाल तक चैत्यवासी परम्परा के ही पद चिह्नों पर चलती रही और फिर उत्तर विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पूर्णत: विलुप्त हो गई, किन्तु दक्षिणी प्रदेशों में अब भी विद्यमान है।

हरिभद्रकाल

साहित्यरचना और संक्रांतिकाल के चैत्यवासी परम्परा के विरोध के स्वर को मुखरता प्रदान करने के लिए हरिभद्रसूरि का आविर्भाव हुआ।

हरिभद्रसूरि महा मेधावी आचार्य थे। हरिभद्रसूरि को जैन परम्परा में साहित्य स्रष्टा और समाज व्यवस्थापक के नाम से ख्याति प्राप्त है। जिनविजयजी ने इनका समय वि.सं. 757 से 857 निश्चित किया है। चित्रकूट नगरी में हरिभद्र राजपुरोहित थे। हरिदत्त जिनदत्त सूरि द्वारा दीक्षित हुए और वे अपने को याकिनी महत्तरा के धर्मगुरु मानने लगे। आचार्य जिनदत्त सूरि ने हरिदत्त के विद्वत्ता से प्रसन्न होकर इन्हें आचार्यत्व प्रदान किया।

'सम्बोधि प्रकरण' में हरिदत्त ने चैत्यावास की शिथिलाचार का चित्र खींचा है। इनके अनुसार, आजकल संयम और त्याग की असिधर पर चलने वाले जैन साधु चैत्य और मठ में निवास करते हैं। पूजा के लिये आरती करते हैं। जिनमंदिर और पौषधशाला चलाते हैं। मंदिर का देवद्रव्य अपने उपयोग में लाते हैं।[2]

---

1. जैनधर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ 628
2. सम्बोधि प्रकरण, पृ 13-19

चेइपमढा इवासं पूयारंभाह निश्चसित्तं,
देवाइ दव्व भोगं जिणहर सालाइ करणं च।
मय किचं जिणपूया परूवणं मय धणाणं जिण दरणे,
गिहिपुरद्यो यअंगाइपवयण कहणं धनट्ठार।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरिभद्र स्पष्ट कहते हैं कि ये मुनि श्रावकों को शास्त्रों का रहस्य नहीं बताते। मुहूर्त्त निकालते हैं। ज्योतिष से शुभाशुभ फल निकालते हैं। रंगीन सुगंधित और धूपित वस्त्र पहनते हैं। स्त्रियों के सामने गाते हैं। साध्वियों का लाया हुआ आहार करते हैं। धन का संचय करते हैं। केश लोच नहीं करते। मिष्टाहार करते हैं। ताम्बूल, घी, दूध, फलफूल का उपयोग करते हैं। वस्त्र, वाहन-शैया रखते हैं। कंधे पर बिना कारण कटिवस्त्र रखते हैं। तेल मर्दन करते हैं। स्त्रियों का संसर्ग करते हैं। मृत गुरुओं के दाह स्थल पर पादपीठ बनवाते हैं। बलि करते हैं। जिन प्रतिमाएं बेचते हैं। गृहस्थों का बहुमान करते हैं। पैसा देकर बालकों को चेला बनाते हैं। वैद्यकी तंत्र, मंत्र आदि करते हैं।[1]

हरिभद्र सूरि ने 1414 ग्रंथों की रचना की। डा. हर्मन जेकोबी के अनुसार 'सिद्धसेन दिवाकर ने जिस जैन दर्शन की पद्धति का प्रचलन किया, उसे पराकाष्टा तक पहुँचाने वाले तो हरिभद्रसूरि ही है।'[2] इन्होंने साम्प्रदायिक अभिनिवेश का प्रवेश नहीं होने दिया। हरिभद्र की दृष्टि-धार्मिक उदारता की दृष्टि थी। वे स्पष्ट कहते हैं- दिगम्बर हो या श्वेताम्बर, बुद्ध हो या अन्य कोई हो, जो भी अपनी आत्मा को समभाव से भावित करता है, वही निस्संदेह मुक्ति प्राप्त करता है।[3] हरिभद्र ने जैन साहित्य को विशाल ग्रंथ राशि अर्पित की। इन्होंने जैन योग साहित्य का सम्पादन किया। वे जैन योग साहित्य के सर्वप्रथम उद्भावक थे। जहाँ सिद्धसेन दिवाकर जैन तर्क शास्त्र के आद्यप्रणेता थे, तो हरिभद्रसूरि जैन योग शास्त्र के।

हरिभद्रसूरि एक बड़े उदारचेता, महानना, पक्षपात रहित सत्योपासक साधु पुरुष थे।

---

1. सम्बोधि प्रकरण, पृ 13-19

नर यगइहेड जो उस निमित्त तेमीच्छमंत जोगाई।
भिच्छ तराय सेवं नीयाण विपाव सहिज्जं
वत्थाइ विविद बण्णाई अइसइ सद्दाइं धुवं वासाइ।
पहिरज्जइ जत्थ गणेत गच्छ मूल गुण मुक्कं
अनत्थिड् बसहा इव पुरओ गायान्ति जत्थ महिलाणं
जत्थ मयार मयारं भणंति अलं सयं दिंति।
सनिहि महाकम्भं जल थल कुसुमाई सव्व सच्चितं
निच्च दुतिवार मोयण विगइल बंगाइ तं बोलं
की वो न कुणई लीयं लज्जइ पडिमाइ जल्ल भुवणेइ
सोराहणों य दिण्डेद, बंधइ, कडिपइमम कज्जे,
वत्थो वगरण पत्ताइ दव्वं नियणिस्सेण संगहियं
गिहिगेहंम्मि यजेसिं ते किणिणो नाण नहु मुणिणो।
गिहिपुर ओ सज्जायं करंति अण्णोणमेव झूंझति
रीसाइयाण कज्जे कलह विवायं उइदूरेंति।
कि बहुणा मणियेण बालाणं ते इवंति रमणिज्जा
दुक्खाणं पुण एए विरहागा छात्र पाव दहा।

2. जैनधर्म का इतिहास, पृ 201

3. हरिभद्रसूरि

आसम्बरो या सेयम्बरी वा बुद्धो वा अहव अन्नोवा।
समभाव मावियप्पा लहेइ मुक्खं न संदेहो॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वे भारत के उच्च धर्माचार्यों के पुण्यलोक इतिहास में उच्चतम पुरुषों में थे। उन्होंने जैन साहित्य में महान् योगदान रूप विशाल ग्रंथ राशि अर्पित की है। उसी प्रकार उन्होंने जैन योग साहित्य का सर्वप्रथम संकलन किया है। जैन योग साहित्य के नवनवीन युग के सर्वप्रथम उद्भावक थे।[1] हरिभद्रसूरि केवल ग्रंथकार ही नहीं थे, अपितु सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न महाकवि भी थे। वे जैन परम्परा के महान् साहित्यकार और समाज व्यवस्थापक ही नहीं, अपितु योग साहित्य के प्रथम निर्माता, समभाव के स्पष्ट उद्गाता और स्याद्वाद के प्रमुख प्रचारक सरल महात्मा पुरुष थे। जैन परम्परा को उनकी देन महान् है। उनका उत्सर्ग अविस्मरणीय है और उनकी विरासत अनमोल और अमर है।[2] 'समराहच्चकहा' इनका महान् ग्रंथ है।

हरिभद्रसूरि के परवर्ती आचार्य भी हरिभद्र के ही अनुगामी रहे हैं, इसलिये मुनि सुशील काम ने 1000 ई तक के काल को हरिभद्रयुग की संज्ञा दी है।

वास्तव में जातियों का इतिहास भी स्पष्ट रूप से यहीं से प्रारम्भ होता है। इसीकाल में जातियाँ और उपजातियां बनी। इसी युग से भारत में जातियों का महाजाल फैला। विद्याधरगच्छीय हरिभद्रसूरि ने पोरवालों को दीक्षित किया।

इसी युग में उद्योतनसूरि (वि.स. 834) ने बाणभट्ट की रचनाशैली के आधार पर अमूल्यकृति 'कुवलयमाला' की रचना की। बप्पभट्टसूरि (जन्म वि.स. 800, मृत्यु वि.स. 875) ने बंगाल के लक्षणावती नगर के राजा को प्रबोध दिया, प्रसिद्ध चावड़ा वंश पर प्रभाव छोड़ा, आमराज्य के पुत्र भोज राजा पर इनका प्रभाव था। जैनधर्म को प्रचार के द्वारा फैलाने वालों में ये प्रभावशाली आचार्य थे। शीलांकाचार्य (वि.स. 925) ने 10000 श्लोकों का "महापुरुष चरित' नामक वृहद ग्रंथ की रचना की, आचरांगसूत्र और 'सूत्रकृतांग' पर वि.सं. 933 में संस्कृत भाषा में टीकाएं लिखी। सिद्धर्षि सूरि (वि.स. 962)- महान् जैनाचार्य थे, जिन्होंने "उपमिति भव प्रपंच कथा' नामक विशाल रूपक ग्रंथ की रचना की। भारतीय साहित्य में अलंकारमयी संस्कृत के कारण इसका विशिष्ट स्थान है। जम्बूस्वामी नाग (वि.स. 1005) ने 'मणिपति चरित्र' ग्रंथ की रचना की। वैदिक शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित पद्युम्नसूरि सपादलक्ष और त्रिभुवनगिरि के राजाओं को जैनधर्म की दीक्षा दी। जैनदर्शन के प्रकाण्ड पण्डित अभयदेव सूरि न्याय के विशालभवन के केशरी थे, तर्क पंचानन में निष्णात थे।[3] धनेश्वर सूरि (ग्यारहवीं शताब्दी) का धारा नगरी के महाराजधिराज मुंज पर गहरा प्रभाव था। इन्होंने अपने गच्छ का नाम चंद्रगच्छ से बदलकर राजगच्छ रखा।

धनपाल मुंज के राजसभा के पण्डित थे, जिन्होंने जैन सिद्धान्तों के अनुरूप 'तिलकमंजरी' नामक संस्कृत में आख्यायिका लिखी। धनपाल के ही भ्राता शोभन ने चौबीस तीर्थंकरों की स्तुतियां लिखी।

आचार्य शांतिसूरि (ग्यारहवीं शताब्दी) ने 'उत्तराध्ययन' सूत्र पर टीका लिखी और

---

1. मुनि सुशीलकुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 203
2. वही, पृ 205
3. वही, पृ 214

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

100 श्रीमाली कुटुम्बों को जैनधर्म की दीक्षा दी। चंद्रगच्छीय वर्द्धमान सूरि (वि.स. 1045) ने हरिभद्रसूरि कृत उपदेश पद, 'उपमिति भव प्रपंच' 'कथानां सम्मुच्चय' और 'उपदेशमाला वृहदवृत्ति' नाम की टीकाएं लिखी। जिनचंद्रभ्रभसूरि (वि.स. 1073) ने 'नवतत्व प्रकाण' की रचना की।

सम्प्रदाय भेद (गच्छभेद)- (1000 ई से लोंकाशाह तक)

जिनेश्वरसूरि ने पाटन में चैत्यावासी साधुओं को शास्त्रार्थ में पराजित कर खरतर उपाधि प्राप्त की, उसी दिन से इस गच्छ का नाम खरतरगच्छ पड़ा। इन्होंने हरिभद्र के अष्टमों पर (वि.स. 1080) में टीका लिखी। इन्होंने सहोदर और सहदीक्षित बुद्धिसागर जी ने 7000 श्लोकों के पंचग्रंथी व्याकरण की रचना की। बुद्धिसागर सूरि जैन समाज के आय वैयाकरण कहे जा सकते हैं। जिनेश्वरसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि (वि.सं. 1095) ने 'सुरसुन्दरी कथा प्राकृत' में लिखी। इनके ही समय में आबू में विमलवसति नामक प्रसिद्ध कलात्मक मंदिर का निर्माण हुआ।

अभयदेवसूरि जैनमत के शास्त्रों के सफल टीकाकार माने जाते हैं। ये अर्हत संस्कृति के महान् एवं दिव्य नक्षत्र थे। अभयदेव सूरि के शिष्य चंद्रप्रभ महत्तर वि.स. 1137 के लगभग प्राकृत भाषा में 'विजयचंद्र चरित' नामक ग्रंथ लिखा। अभयदेव सूरि के ही शिष्य वर्द्धमान सूरि ने प्राकृत में 'मनोरमा चरित' की रचना की। इसके अतिरिक्त वि.स. 1160 में प्राकृत भाषा में 'आदिनाथ चरितं' और वि.स. 1172 मेंत्ति धर्मरत्न करण्ड वृत्ति, की रचना की।

हर्षपुरी गच्छीय मल्लधारी अभयदेवसूरि ओजस्वी वक्ता थे। इन्हीं के उपदेशों से अनेक अजैनों ने जैनमत अंगीकार किया। जिनवल्लभसूरि ने चैत्यावास का त्यागकर नवांगवृत्तिकार अभयदेव सूरि ने पुनः दीक्षा ग्रहण की और वाग्रड (वागड़) की जनता को प्रतिबोधित किया। ये प्रसिद्ध आगमज्ञ और प्रकाण्ड विद्वान थे।

जिनवल्लभसूरि के पट्टधर शिष्य और खरतरगच्छीय महान् प्रभावक पुरुष थे, जिन्होंने सिद्धि से "दादा' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्होंने अनेक राजपूतों को प्रबोध देकर ओसवंश और जैनधर्म के प्रसार में योग दिया।

जिनदत्तसूरि जिनवल्लभसूरि के शिष्य रामदेव गणि ने (वि.स. 1173) 'वैराग्य शतक' के अतिरिक्त ऋषभ और नेमिनाथ पर महाकाव्य लिखे।

चंद्रगच्छीय विजय सिंह सूरि के शिष्य वीराचार्य (वि.स. 1160) ने नागौर क्षेत्र में जैनधर्म की अच्छी प्रभावना की। नवांगवृत्तिकार अभयदेव सूरि के प्रशिष्य और प्रसन्नचंद सूरि के शिष्य देवचंद्र सूरि ने प्राकृत में 'आराधना शास्त्र', 'वीर चरित्र', 'कथारत्नकोश' और 'पार्श्वनाथ चरित' (वि.स. 1165) की रचना की। चंद्रगच्छीय ईश्वरगणी के शिष्य वीरगणि ने वि.स. 1169 में 'पिण्ड नियुक्ति' पर टीका लिखी। वि.स. 1160 में प्रख्यात हेमचंद्र सूरि के गुरु देवचंद सूरि ने प्राकृत भाषा में 'शांतिनाथ चरित' की रचना की।

वृहदगच्छ के मुनिचंद्रसूरि ने बहुत से ग्रंथों पर वृत्तियां और चूर्णियां लिखने का महान कार्य किया। इनका देहान्त वि.स. 1178 में हुआ। मल्लधारी हेमचंद्रसूरि ने वि.स. 1193 'मुनिसुव्रत चरित' और प्राकृत में 'संग्रहणी तत्व' नामक ग्रंथ लिखा। चन्द्रगच्छीय श्री चंद्रसूरि ने वि.स. 1214 में प्राकृत में 12 हजार श्लोकों का 'सनतकुमार चरित' लिखा। श्रीचन्द्रसूरि के

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिष्य हरिभद्रसूरि (याकिनी) ने प्राकृत-अपभ्रंश में चौबीस तीर्थंकरों के जीवनचरित लिखे। चन्द्रगच्छीय मुनिरत्नसूरि ने वि.स. 1235 में आगामी तीर्थंकर अभयस्वामी का चरित्र लिखा।तपागच्छ के ओमप्रभसूरि ने 'सुमतिनाथ चरित', 'सूक्ति मुक्तावलि', 'शतार्थकाव्य', कुमारपाल प्रतिबोध ने संस्कृत में रचना की।

हेमचंद्रसूरि ज्ञान के महासमुद्र माने जाते हैं ।[1] हेमचंद्र ने 'शन्दानुशासन', 'छन्दानुशासन', 'काव्यानुशासन' और 'लिंगानुशासन' के साथ 'कुमारपाल चरित' नामक प्राकृत काव्य और महाकाव्य संस्कृत में लिखा। संस्कृत भाषा में 'त्रिषष्ठि शलाका पुरिष चरित' लिखकर जैनमत में एक युगान्तकारी कार्य किया।

जिनदत्तसूरि का वि.सं. 1265 में प्रादुर्भाव हुआ। आपने हजारों सद्गृहस्थों को दीक्षा दी। विजयसिंह सूरि के शिष्य वर्द्धमान सूरि ने वि.स. 1299 में 4894 श्लोकों में 'वासुपूज्य चरित' की रचना की।

विजयसेन सूरि ने सं 1288 में प्राचीन गुजराती (अपभ्रंश मिश्रित) में 'एवंता मुनिरासु' की रचना की। हर्षपुर गच्छीय नरचन्द्रसूरि ने 'कथा रत्नाकर' में धर्मकथाओं का संग्रह किया। नरेन्द्रप्रभसूरि ने 'अलंकार महोदधि' नामक ग्रंथ की रचना की। चन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि के शिष्य बालचंद्र ने 'बसन्त विलास' महाकाव्य और 'करुणा वज्रायुध' नाटक की रचना की। आचार्य वीरसूरि के शिष्य जयसिंह सूरि ने 'हम्मीर मर्दन' नामक नाटक की रचना की। राजगच्छाचार्य भागरचंद्र सूरि के शिष्य आचार्य माणिक्य चंद्रसूरि ने मम्मट के 'काव्य प्रकाश' पर टीका लिखी। 'शांतिनाथ चरित' और 'पार्श्वनाथ चरित' महाकाव्य आपकी रचना कौशल के ज्वलंत प्रमाण है।

उपाध्याय चंद्रतिलक जी ने संवत् 1312 में 'अभयकुमार चरित्र' की रचना की। 14वीं शताब्दी में राजशेखर ने 'स्याद्वाद कलिका', 'रत्नाकरावतारिका', 'षटदर्शन सम्मुच्चय', 'प्रबन्धकोष' आदि ग्रंथों से साहित्य का प्रवर्तन किया।

कृष्णर्षि गच्छ के जयसिंह सूरि ने संवत् 144 में 'कुमारपाल चरित' की रचना की। महेन्द्रसूरि ने संवत् 1427 में 'यंत्रराज' नामक ग्रंथ लिखा। रत्नशेखर सूरि ने संवत् 1498 में विपुल साहित्य का सर्जन किया। आचार्य जयशेखर सूरि ने संवत् 1496 में 'न्यायमंजरी', 'जैनकुमार सम्भव', और 'उपदेशमाला' नामक तीन ग्रंथों के द्वारा जैन साहित्य को विशेष दिशा प्रदान की। आचार्य मेरुतुंग ने वि.स. 1449 में आगमों का साहित्य क्षेत्र में अवतरण किया। कुलमण्डन ने वि.स. 1443 में 'प्रज्ञापनासूत्र', 'विचारामृतसार' और 'जयानंद चरित्र' आदि श्रेष्ठतम कृतियों की रचना की। श्री जयचंदसूरि की 'सम्यक्त्व कौमुदी' और जयशेखरसूरि की 'प्रबोध चंद्रोदय' जैन साहित्य के गगन के चमकते हो नक्षत्र हैं ।[2] आचार्य मेरूतुंग के शिष्य मागिक्यसुन्दर और माणिक्य शेखर ने 'आचरांगसूत्र', 'उत्तराध्ययन', 'आवश्यकसूत्र' और 'कल्पसूत्र' पर निर्युक्तियां लिखी। इस तरह इस युग को हम साहित्यसर्जन का युग भी कह सकते हैं। साहित्य सर्जन की दृष्टि से यह युग हरिभद्रसूरि के युग से पूरी तरह प्रभावित है।

---

1. मुनि सुशील कुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 239
2. वही, पृ 250

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मध्यकाल में जैनमत में विभिन्न भेद-उपभेदों के रूप में गच्छों और संघों के रूप में अस्तित्व में आया। जैनाचार्यों की धर्मप्रसारक प्रभावना एवं उद्‌बोधन से विभिन्न जातियां मुख्यत: क्षत्रिय और राजपूत जैनमत में दीक्षित हुए।

जैन परम्परा के अनुसार 65 ई. में जिनदत्त के चार पुत्रों- चन्द्र, नागेन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर ने श्रमणधर्म की दीक्षा ली।[1] यही क्रमश चन्द्रकुल, नागेन्द्रकुल, निवृत्तिकुल और विद्याधर कुल के रूप में प्रकट हुए।[2] ऐसा कहा जाता है कि 84 ई. में 4 गणों और 84 गच्छों की उत्पत्ति हुई।[3] कुछ पट्टावलियों में 937 ई. में 84 गच्छों के अस्तित्व में आने का उल्लेख है।[4] वस्तुत: खतरतर गच्छ, अंचलगच्छ, तपागच्छ बाद में अस्तित्व में आए। ये गच्छ अधिकतर सिरोही, मारवाड़ जैसलमेर और मेवाड़ में थे।

खरतगच्छ राजस्थान में सर्वाधिक प्रभावशाली, लोकप्रिय और प्रसिद्ध गच्छ रहा है। यह समय समय पर कई शाखाओं में विभक्त हुआ।[5]

1110 ई. में	जिनवल्लभसूरि द्वारा	मधुकर खरतर शाखा
1112 ई. में	जमशेरसूरि	रूद्रपल्लीय खरतर शाखा
1274 ई. में	जिनसिंह सूरि	लघु खरतर शाखा
1365 ई. में	जिनेश्वरसूरि	वैकट खरतर शाखा
1404 ई. में	जिनवर्धनसूरि	पिप्पलक खरतर शाखा
1507 ई. में	शांतिसागरसूरि	आचार्यिया खरतरशाखा
1629 ई. में	जिनसागर सूरि	लघु आचार्यिया खरतर शाखा
1643 ई. में	रंगविजयगणी	रंगविजय खरतरशाखा

खरतरगच्छ की निम्नशाखाएं भी देखने को मिली है[6]-

1. जिनचन्द्रसूरि द्वारा स्थापित साधु शाखा
2. माणिक्यसूरि शाखा
3. क्षेमकीर्ति शाखा
4. जिनरंग सूरि शाखा
5. खरतरगच्छ का चन्द्रकुल
6. खरतरगच्छ का नंदिगण
7. वर्धमान स्वामी का अन्वय
8. जिनवर्धनसूरि शाखा
9. रंगविजय शाखा

---

1. जैन साहित्य संशोधक 2, अंक 4, परिशिष्ट पृ 10
2. तपागच्छ पट्टावली भाग 1, पृ 71
3. जैन साहित्य संशोधक, खण्ड 2, अंक 4, परिशिष्ट 70
4. पट्टावली प्रबध संग्रह, पृ 91,97
5. डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 84
6. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 84-85

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुछ गच्छ और उनके अभिलेख निम्नानुसार हैं।

वृहद गच्छ

गच्छ के 1046 ई. के अभिलेख सिरोही राज्य में कोटरा ग्राम में है[1], 1158 ई. का अभिलेख नाडोल (मारवाड़) में भी पाया गया है।[2] इस गच्छ का प्राचीनतम अभिलेख 954 ई का सिरोही के दयाणा चैत्य का है जिसमें वृहदगच्छ के परमानन्द सूरि के शिष्य यक्षदेव सूरि का उल्लेख है।[3]

उपकेशगच्छ

इसकी उत्पत्ति मारवाड़ के आसिया या उपकेशनगर से मानी जाती हे। इस गच्छ के देवगुप्त सूरि ने सिरोही में लोटाणा तीर्थ में धातु पंचतीर्थी की प्रतिष्ठा 954 ई. में प्राग्वट शाह सिंह देव के पुत्र नल द्वारा कराई थी।[4] इसे प्राचीनतम गच्छ माना जाता है, किन्तु प्रमाण के अभाव कारण प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट किया गया है।

संडेरक गच्छ

इस गच्छ की उत्पत्ति मारवाड़ में यशोदेव सूरि द्वारा संडेरा में हुई। सांड के विजय के कारण इसका नाम संडेरा रखा गया है। 12वीं शताब्दी में नाडौल में इसका अस्तित्व था।[5] इस गच्छ के शांतिसूरि ने सिरोही राज्य के धराद में 1147 ई. में पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित कराई।[6]

मल्लधारी गच्छ

इस गच्छ का प्राचीनतम उल्लेख 1157 में घाणेराव में प्रीतिसूरि का उल्लेख उपलब्ध है।[7]

ब्रह्माणगच्छ

यह गच्छ सिरोही राज्य में ब्रह्माणक (वरमाणतीर्थ) से उत्पन्न हुआ। इसका प्राचीनतम उल्लेख प्रद्युम्न सूरि का 1160 में धराँद में मिलता है।[8] इसके अतिरिक्त 1185 में सिरोही के वरमाण तीर्थ में[9] और 1166 ई का सिरोही के अजितनाथ मंदिर का एक प्रतिमा लेख है।[10]

निवृत्ति गच्छ

निवृत्ति गच्छ और शेखरसूरि का उल्लेख 1073 ई के लौटाणा तीर्थ से प्राप्त होता है।[11]

---

1. प्राचीन लेखसंग्रह, भाग 1, क्र. 3
2. जैन लेख संग्रह (नाहर), क्रमांक 833, 834
3. श्री जिन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 331
4. वही, क्रमांक 321
5. प्राचीन लेखसंग्रह, क्र 5 और 23
6. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्र. 173
7. वही, क्रमांक 324
8. वही, क्रमांक 200
9. वही, क्रमांक 328
10. वही, क्रमांक 32
11. वही, क्रमांक 318

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृहतपागच्छ:

इस गच्छ के हेमचंद्राचार्य का उल्लेख 1163 ई. में सिरोही के धराद के एक प्रतिमा लेख से प्राप्त होता है।[1] तपागच्छ का उद्भव संवत् 1228 में माना जाता है, किन्तु इसके पूर्व भी तपागच्छ वृहदतपा के रूप में अस्तित्व में था। इसे वृद्धतपा भी कहते हैं।

वायटगच्छ

इस गच्छ का उत्पत्ति स्थल अज्ञात है। सिरोही के अजितनाथ मंदिर में 1078 ई. में एक प्रतिमालेख में इसका उल्लेख है।[2]

धारागच्छ

इस गच्छ की उत्पत्ति मालवा की धारा नगरी में हुई। सिरोही के अजितनाथ मंदिर में 1177 ई. में इस गच्छ की प्रतिमा हैं।[3]

अन्य गच्छों के प्राचीनतम लेख

अन्य गच्छों के प्राचीनतम लेखों में जालोर से चंद्रगच्छ का 1182 ई. [4] का और 1125 ई.[5] का, यशसूरि गच्छ का अजमेर से 1185 ई.[6] का, सेलाना से भावदेवाचार्य गच्छ का 1157 ई. [7] का, और बालोतरा से भावहर्ष गच्छ का 952[8] ई. के अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

पूर्णिमा गच्छ - अन्य गच्छों में पूर्णिमा गच्छ का उद्भव 1179 ई. अथवा 1102 ई. में हुआ। इसकी तीन शाखाएं हैं- प्रधानशाखा, भीमपल्लीय शाखा और साधु शाखा। 1347 और 1567 ई. के बीच इस गच्छ के 43 प्रतिमा लेख मिले हैं।[9]

पूर्णिमा पक्षीय - 1329 ई. और 1547 ई. के मध्य के मध्य 28 मूर्तिलेख इस गच्छ के प्राप्त हुए हैं।[10]

पूर्णिमापक्षे भीमपल्लीय गच्छ - इस गच्छ के उल्लेख 1456 ई. [11] और 1519 ई. [12] में मिले हैं।

1. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 85
2. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 7
3. वही, क्रमांक 36
4. जैन लेखसंग्रह (नाहर), क्रमांक 899
5. अर्बुदा प्रदिशणा लेख संदोह
6. Jain Sects & School, 59
7. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 24
8. जैन लेख संग्रह (नाहर), क्रमांक 736
9. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 178, 70, 273, 54, 139, 360, 119, 221, 18, 94, 121, 356, 28, 2, 368, 56, 262, 32, 140, 141, 93, 71, 8, 261, 79, 168, 11, 95, 126, 217, 166, 207, 31, 246, 101
10. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह परि. 2, पृ 226
11. वही, क्रमांक 521
12. वही, क्रमांक 962

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्णिमा पक्षे कच्छोलीवाल - इस गच्छ के उल्लेख 1456 ई, 1434 ई, 1468 ई और 1470 ई के प्रतिमा लेखों में मिले हैं।[1]

पूर्णिमा पक्षे वटपद्रीय - साँगानेर के महावीर मंदिर में 1466 ई में इसका उल्लेख है।[2]

उपकेशगच्छ - ओसिया से उत्पन्न इस गच्छ का उल्लेख 1287 ई से 1535 ई तक की 58 प्रतिमाओं के लेखन में मिला है।[3]

कृष्णर्षि गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 1416 ई, 1444 ई, 1467 ई, और 1477 ई की मूर्तियों में उपलब्ध हैं।[4] सिरोही की दो मूर्तियों में 1426 ई में इसका उल्लेख है।[5]

कृष्णर्षि तपागच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 1426 ई, 1450 ई, 1468 ई, 1473 ई और 1477 ई के प्रतिमा लेखों में मिलता है।[6]

कोमल गच्छ - इस गच्छ का नाम देरासर ने पार्श्वनाथ मंदिर के अजितनाथ के 1477 ई के लेख में उपलब्ध होता है।[7]

खड़ायथ गच्छ - सिरोही के आदिनाथ मंदिर के 1236 ई में अभिलेख में इस गच्छ का उल्लेख है।[8]

खरतरगच्छ - राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के 1251 ई से 1599 ई तक के 152 प्रतिमा लेखों में इस गच्छ के आचार्यों और श्रावकों के नामोल्लेख मिलते हैं।[9]

खरतर मधुकर गच्छ - खरतरगच्छ की इस शाखा का उल्लेख मेड़ता में 1490 ई के एक लेख में मिलता है।[10]

कोरंट गच्छ - इस गच्छ के नामोल्लेख 1335 ई से 1511 ई तक की 18 मूर्तियों में उपलब्ध हुए हैं।[11]

जगदेव संतानीय गच्छ - सिरोही राज्य के धराद से प्राप्त 2 मूर्तियों- 1465 ई और 1526 ई और जीरादल्ला से प्राप्त 1364 ई की प्रतिमाओं में इस गच्छ के उल्लेख मिलते हैं।[12]

---

1. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 523, 657, 84, 685
2. वही, क्रमांक 626
3. वही, परिशिष्ट, पृ 222
4. वही, क्रमांक 23, 351, 648, 782
5. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, 288, 291
6. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 241, 416, 659, 722, 780
7. वही, क्रमांक 770
8. वही, क्रमांक 56
9. वही, परि. 2, पृष्ठ 223
10. वही, क्रमांक 848
11. वही 2, पृ 223, श्री जैन प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 7, 205
12. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 40, 10, 303 अ,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काछोली गच्छ - सिरोही के काछोली ग्राम से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसी गांव की 1246 ई की एक प्रतिमा में इसका उल्लेख है।[1]

चैत्रगच्छ - चैत्रगच्छ का उल्लेख 1252 ई से 1525 ई तक की 4 मूर्तियों के अभिलेखों में मिलता है।[2]

जीरापल्ली गच्छ - इसे जीराउला गच्छ भी कहते हैं। इसके दो अभिलेख 1492 और 1500 ई के मिलते हैं।[3]

वृहतपा/वृद्धतपागच्छ - यह तपागच्छ से भी प्राचीन प्रतीत होता है। राजस्थान में 1424 ई से 1580 ई तक की 63 मूर्तियों में इसके उल्लेख मिलते हैं।[4]

धिरापद्रीय गच्छ - सिरोही के क्षेत्र के विभिन्न स्थलों से 1413 से 1475 ई के बीच की 8 मूर्तियों के लेखों से इसके अभिलेख मिले हैं।[5]

धर्मघोष गच्छ - आचार्य धर्मघोष के नाम से राजस्थान के विभिन्न जैन मंदिरों में 1252 ई से 1520 ई तक के 53 प्रतिमाओं मे इस गच्छ के नामों का उल्लेख मिलता है।[6]

नागेन्द्र गच्छ - नागेन्द्र कुल से उत्पन्न इस गच्छ के उल्लेख 1238 ई से 1560 ई के मध्य 4 प्रतिमा लेखों में मिले हैं।[7]

निगम प्रभावक गच्छ - सिरोही राज्य की दो प्रतिमाओं पर 1524 ई के दो अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[8]

निवृत्ति कुल/गच्छ - इसका उल्लेख 1472 ई और 1510 के मूर्तिलेखों में मिलता है।[9]

पिप्पल गच्छ - सिरोही क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से 1234 ई. से 1504 ई. के मध्य 51 लेख मिले हैं।[10]

वृहद गच्छ - आबू में उत्पन्न 1259 ई से 1502 ई तक 39 मूर्तियों के अभिलेख मिले हैं।

---

1. श्री जैन प्रतिमा लेखसंग्रह, क्रमांक 332
2. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, परि. 8, पृ 224, श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 106, 67, 155, 37, 213, 267
3. वही, क्रमांक 855 और 892
4. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, पृ 43-45
5. वही, क्रमांक 206, 268, 65, 142, 229, 61, 165, 172 एवं प्रतिष्ठा लेखसंग्रह परि. 2, पृ 227
6. वही, पृ 199, 290, 98, 269, 123 और प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, परि. 2, पृ 225
7. वही, पृ 57, 6, 183, 369, 216, 96, 197, 365, 39, 215, 122, 27, प्रतिष्ठा लेखसंग्रह 22, 58, 151, 167, 366, 696, 883, 931, 946, 951
8. वही, क्रमांक 80, 241
9. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 712, 937
10. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, पृ 40-50

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्रह्माण गच्छ - सिरोही राज्य के वरयाण तीर्थ से उत्पन्न इस गच्छ के 48 प्रतिमा लेख 1284 ई. से 1511 ई. के मध्य मिले हैं।[1]

भावदार गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 1292 ई से 1580 ई के मध्य 25 मूर्तिलेखों में उपलब्ध हुए हैं।[2]

मडाहड गच्छ - सिरोही क्षेत्र के 9 मूर्ति लेखों के 1428 ई. से 1500 ई. के मध्य के लेख प्राप्त हुए हैं।[3]

मडाहड रत्नपुरी गच्छ - इस गच्छ के उल्लेख 1228 ई, 1444 ई और 1500 ई के मिले हैं।[4]

मल्लधारी गच्छ - इस गच्छ के उल्लेख सिरोही क्षेत्र के 30 प्रतिमा लेखों में 1401 ई से 1527 ई के मध्य मिलते हैं।[5]

विमलगच्छ - इस गच्छ का एक मूर्तिलेख 1460 ई का सिरोही क्षेत्र के लुआणा के अजितनाथ के जैनमंदिर का मिलता है।[6]

संडेरक गच्छ - इस गच्छ के उल्लेख 38 मूर्ति लेखों में 1211 ई से 1531 ई तक मिलते हैं।[7]

सरस्वती गच्छ - सिरोही क्षेत्र के घराद गांव से 1456 ई और 1563 ई. के प्रतिमा लेख मिले हैं।[8]

सिद्धान्ति गच्छ - 7 मूर्ति लेखों में 1444 ई से 1541 ई के मध्य इसके उल्लेख मिले हैं।[9]

चित्रापल्लीय गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 1277 ई की जयपुर के पंचायती मंदिर की पंचतीर्थी पर अंकित हैं।[10]

चित्रावाल गच्छ - इस गच्छ के उल्लेख 1444 ई, 1446 ई, 1448 ई, 1451 ई और 1456 ई के मूर्तियों पर मिले हैं।[11]

---

1. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 292, 219, 22, प्रतिष्ठा लेखसंग्रह परि. 2, पृ 226
2. वही, क्रमांक 20, 33, 176, 255, 150, 162, 88, 157, 9, 191, 235, 124, प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 169, 342, 362, 363, 402, 463, 527, 578, 583
3. वही, क्रमांक 334, 103, प्रतिमा लेखसंग्रह क्रमांक 210, 603, 788, 789 आदि।
4. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 253, 339, 891
5. श्री जैन प्रतिमा लेखसंग्रह, क्रमांक 292 ब, प्रतिष्ठा लेखसंग्रह परि. 2, पृ 227
6. वही, क्रमांक 359
7. वही, क्रमांक 208, प्रतिष्ठा लेख संग्रह, परि. 2, पृ 228
8. वही, क्रमांक 174, 264
9. वही, क्रमांक 4, 153, 145, 252, 19, 212, प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 999
10. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 86
11. वही, क्रमांक 346, 370, 397, 434, 505

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चित्रावाला धारापद्रीय गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख नागौर से 1504 ई. का मिला है।[1]

छहितरा गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख जयपुर के सुमतिनाथ मंदिर की पंचतीर्थी पर 1555 ई का मिला है।[2]

जाखड़िया गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख नागौर के शीतलनाथ मंदिर के पंचतीर्थी के 1477 ई का उपलब्ध है।[3]

जालोहरीय गच्छ - मालपुरा के मुनि सुव्रत मंदिर में इस गच्छ का उल्लेख है।[4]

देकात्रीय गच्छ - कोटा के चंद्रप्रभु मंदिर की पार्श्वनाथ पंचतीर्थी पर 1351 ई के लेख में इस गच्छ का नाम है।[5]

द्विवंदनीक गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 1390 ई 1466 ई और 1468 ई के लेखों में मिलता है।[6]

नागर गच्छ - इसकी उत्पत्ति राजस्थान के प्राचीन नाम नगर में हुई है। इसका उल्लेख केकड़ी के चंद्रप्रभु मंदिर की पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी पर 1236 ई का मिलता है।[7]

नागौरी तपागच्छ - तपागच्छ की यह शाखा नागौर में अस्तित्व में आई। इसका उल्लेख 1494 ई के एक मूर्ति लेख में मिलता है।[8]

नाणकीय/ज्ञानकीय गच्छ - इसकी उत्पत्ति नाणा नामक प्राचीन तीर्थ से हुई है। इसका नाणकीय नाम से 1253 ई से 1473 ई के मध्य 4 मूर्तिलेखों और ज्ञानकीय नाम से 1444 ई से 1504 ई के मध्य 3 मूर्तिलेखों में मिलता है।[9]

नाणावल गच्छ - इसकी प्रसिद्धि भी नाणा तीर्थ से हुई। इसके उल्लेख 7 प्रतिमा लेखों में 1472 ई से 1513 ई के मध्य मिलते हैं।[10]

पल्लीगच्छ - पाली से उत्पन्न इस गच्छ के 3 अभिलेख 1378 ई से 1518 ई के मध्य मिलते हैं।[11]

---

1. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 913
2. वही, क्रमांक 1010
3. वही, क्रमांक 773
4. वही, क्रमांक 23
5. वही, क्रमांक 146
6. वही, क्रमांक 173, 372, 652
7. वही, क्रमांक 57
8. वही, क्रमांक 865
9. वही, क्रमांक 68, 89, 139, 301, 349, 381, 467, 519, 675, 697 आदि।
10. वही, क्रमांक 713, 783, 819, 930, 932, 934, 943
11. वही, क्रमांक 162, 177, 183, 261, 262, 197, 430 759, 863, 906, 956

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पल्लीवालगच्छ - पल्लीवाल जाति से सम्बन्धित इस गच्छ के प्रतिमा लेख 1453 ई से 1526 ई के मध्य मिलते हैं।[1]

काशद्रह गच्छ - कोटा के आदिनाथ मंदिर में 1565 ई के प्रतिमा लेख में इसका नाम मिलता है।[2]

पिप्पपल गच्छ - इसका उल्लेख 1459 ई, 1473 ई और 1480 ई के मूर्तिलेखों में मिलता है।[3]

पिप्पपल गच्छेतलाजीय - हरसूली के पार्श्वनाथ मंदिर के सुमतिनाथ पंचतीर्थी पर इसका उल्लेख है।[4]

पिप्पलगच्छे त्रिभवीया - पिप्पल गच्छ की इस शाखा के प्रतिमा लेख 1419 ई, 1467 ई और 1468 ई. के उपलब्ध हुए हैं।[5]

वृहदगच्छे जिनेरावटंके - वृहदगच्छ की इस शाखा का उल्लेख नागौर में सुविधिनाथ पंचतीर्थी पर 1456 ई का उपलब्ध है।[6]

वृहदगच्छे जीरापल्लीगच्छ - वृहदगच्छ की यह शाखा जीरापल्ली में विकसित हुई। सवाई माधोपुर के विमलनाथ मंदिर में मुनि सुव्रत पंचतीर्थी पर 1462 ई में इसका उल्लेख मिलता है।[7]

बोंकड़िया गच्छ - इस गच्छ का उल्लेख 4 मूर्तिलेखों पर 1439 ई से 1505 ई के मध्य मिलता है।[8]

बोंकड़िया वृहद्गच्छ - वृहदगच्छ की इस शाखा का उल्लेख पनवाड़ के महावीर मंदिर की धर्मनाथ पंचतीर्थी पर 1473 ई के लेख में मिलता है।[9]

भीनमाल गच्छ - भीनमाल के नाम से उत्पन्न भिनाय के केसरियानाथ मंदिर में सुविधिनाथ की पंचतीर्थी पर 1456 ई का एक लेख प्राप्त होता है।[10]

राजगच्छ - तीन प्रतिमा लेखों- 1447 ई, 1452 ई और 1453 ई में इसका नाम मिलता है।[11]

---

1. प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्रमांक 470, 472, 723, 823, 973
2. वही, क्रमांक 1021
3. वही, क्रमांक 553, 723, 813
4. वही, क्रमांक 778
5. वही, क्रमांक 217, 640, 677
6. वही, क्रमांक 514
7. वही, क्रमांक 594
8. वही, क्रमांक 315, 714, 716, 916
9. वही, क्रमांक 725
10. वही, क्रमांक 509
11. वही, क्रमांक 379, 441, 458

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रामसेनीय गच्छ - नागौर में पद्मप्रभु पंचतीर्थी पर 1401 ई का एक मूर्तिलेख मिला है।[1]

रुद्रपल्लीय गच्छ - 1449 ई से 1496 ई के मध्य के 12 प्रतिमा लेखों में इसका नाम मिला है।[2]

विद्याधर गच्छ - नागौर के कुंथुनाम मंदिर में 1463 ई में इस गच्छ का नाम है।[3]

वृत्राणा गच्छ - मेड़ता के एक मंदिर के शांतिनाथ पंचतीर्थी में 1450 ई के लेख में इस गच्छ का नाम है।[4]

वृद्ध धाराणद्रीय गच्छ - इस गच्छ का नाम 1383 ई और 1470 ई के शिलालेखों में मिलता है।[5]

शतीशली गच्छ - मालपुरा के मुनि सुव्रत मन्दिर की आदिनाथ पंचतीर्थी के 1477 ई के लेख में इसका नाम है।[6]

साधु पूर्णिमा गच्छ - यह पूर्णिमा गच्छ की शाखा है। 1476 ई के 5 प्रतिमा लेखों में इसका नाम है।[7]

सीतर गच्छ - सवाई माधोपुर के विमलनाथ मंदिर की आदिनाथ पंचतीर्थी के 1405 ई के लेख में इस गच्छ का उल्लेख है।[8]

सुविहित पक्ष गच्छ - कोटा के माणिक्यसागर मंदिर की सुविधिनाथ पंचतीर्थी के 1555 ई के लेख में इसका उल्लेख है।[9]

सुधर्मगच्छ - भैंसरोडगढ के ऋषभदेव मंदिर की अजितनाथ पंचतीर्थी के 1600 ई के लेख में इस गच्छ का उल्लेख है।[10]

हर्षपुरीय गच्छ - इसकी उत्पत्ति हरसूर (हर्षपुरा) से हुई। नागौर के एक मंदिर के 1498 ई के लेख में इसका उल्लेख है।[11]

हारीज गच्छ - हरसूली के पार्श्वनाथ मंदिर की महावीर पंचतीर्थी के 1388 ई के लेख में इसका उल्लेख है।[12]

---

1. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 182
2. वही, क्रमांक 401, 438, 454-456, 520, 570, 669, 741, 830, 840, 873
3. वही, क्रमांक 608
4. वही, क्रमांक 426
5. वही, क्रमांक 166, 687
6. वही, क्रमांक 875
7. वही, क्रमांक 158, 359, 361, 709, 765
8. वही, 186
9. वही, 1011
10. वही, 1074
11. वही, 879
12. वही, 170

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बापड़ीय गच्छ - यह गच्छ जैसलमेर में 13वीं शताब्दी में था।[1]

देवाचार्य गच्छ - 13वीं शताब्दी के एक अभिलेखों में इसका संदर्भ है।[2]

प्रभाकरगच्छ - मेड़ता के एक अभिलेख में इसका संदर्भ है।[3]

व्यवसिंह गच्छ - रत्नपुर (मारवाड़) के 1286 ई में इस गच्छ का उल्लेख है।[4]

हुम्मड़गच्छ - उदयपुर में पन्द्रहवीं शताब्दी में इसका अस्तित्व था।[5]

पालीकीय गच्छ - पाली से सम्बन्धित इस गच्छ का उल्लेख 1439 ई के लेख में है।[6]

पुरन्दर गच्छ - यह वृहदतपा गच्छ से उत्पन्न हुआ है। रेनपुर (मेवाड़) से प्राप्त 1439 ई के लेख में इसका संदर्भ है।[7]

कुतुबपुरा गच्छ - तपागच्छ की यह शाखा मारवाड़ में 16वीं शताब्दी में थी।[8]

ज्ञानकथ्य गच्छ - जयपुर से प्राप्त 1444 ई. के अभिलेख में इसका उल्लेख है।[9]

तावकीय गच्छ या ज्ञानकीय - माणा से प्राप्त 1448 ई के लेख में इसका संदर्भ है।[10]

नागपुरीय गच्छ - इस गच्छ की उत्पत्ति नागौर में हुई।[11]

उद्योतनाचार्य गच्छ - पालि से प्राप्त अभिलेख से पता चला है कि इसकी उत्पत्ति पल्लिकीय गच्छ से हुई है।[12]

सागर गच्छ - तपागच्छ के राजसागर सूरि द्वारा अलग हुए इस गच्छ का संदर्भ ओसिया के लेख में मिलता है।[13]

---

1. जैन लेखसंग्रह (नाहर), 3, क्रमांक 2218
2. वही, भाग 1, क्रमांक 813
3. वही, भाग 3, क्रमांक 764
4. वही, क्रमांक 1059
5. वही, क्रमांक 825 ब
6. वही, 3,700
7. वही, 149-151
8. वही 2, क्रमांक 1143
9. वही 1, क्रमांक 887
10. वही, 2 क्रमांक 1606
11. वही 1, क्रमांक 825
12. वही, क्रमांक 825
13. वही, क्रमांक 304

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चन्द्रगच्छ - चन्द्रकुल से उत्पन्न इस गच्छ की उत्पत्ति सिरोही में हुई। इसका अभिलेख 1435 ई का मिला है।

हस्तिकुण्डी गच्छ - मारवाड़ के हस्तिकुण्डी में उत्पन्न इसका अभिलेख उदयपुर से प्राप्त 1396 ई के लेख में मिला है।[1]

भरतरिपुर गच्छ - 13वीं शताब्दी के एक अभिलेख में इसका अस्तित्व मिलता है।[2]

रतनपुरिया गच्छ - मदाहड गच्छ की इस शाखा का लेख उदयपुर में 1453 ई का उपलब्ध हुआ है।[3]

भीमपल्लीय गच्छ - पूर्णिमा गच्छ की इस शाखा का अभिलेख जोधपुर में 1541 ई का मिला है।[4]

जापदानागच्छ - नागौर के 1477 ई के अभिलेख में इसका संदर्भ है।[5]

तावदार गच्छ - जोधपुर के मुनि सुव्रतनाथ के मंदिर में 1442 ई के अभिलेख में इसका नाम है।[6]

वातपीय गच्छ - जैसलमेर से प्राप्त 1281 ई. के लेख में इसका नाम है।[7]

सरवाला गच्छ - 13वीं शताब्दी में जैसलमेर में इसका अस्तित्व था।[8]

चंचला गच्छ - जयपुर से प्राप्त 1472 के अभिलेख में इसका नाम है।[9]

प्राया गच्छ - 1317 ई के उदयपुर से प्राप्त अभिलेख में इसका नाम है।[10]

निथ्यति गच्छ - मेवाड़ क्षेत्र के 1439 ई के लेख में इसका प्रमाण है।[11]

कासहृद गच्छ - कासिंद्रा से उत्पन्न इस गच्छ का उल्लेख 1242 ई के लेख में मिलता है।[12]

---

1. प्राचीन लेखसंग्रह, क्रमांक 43
2. Annual Report Rajputana Museum, 1923, क्रमांक 9
3. प्राचीन लेखसंग्रह, क्रमांक 49, 124, 256
4. जैन लेखसंग्रह (नाहर) क्रमांक 604
5. वही, 1288
6. वही, क्र. 616
7. Jainism in Rajasthan, Page 68
8. जैन लेखसंग्रह नाहर 3, क्रमांक 2220, 2221, 2222
9. वही, क्रमांक 359
10. Jainism in Rajasthan, Page 68
11. जैन लेखसंग्रह (नाहर), क्रमांक 1078
12. Jain Inscriptions of Rajasthan, Page 194

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुछ प्रमुख श्वेताम्बर गच्छो के प्राचीनतम शिलालेखो का विवरण निम्नानुसार है:-

	गच्छ	संवत/सन्	आचार्य/मुनि	स्थान	स्रोत
1.	खरतरगच्छ	1090 ई	-		जैन लेख संग्रह (नाहर) क्र. 2124
2.	वृहदगच्छ	1046 ई	-	सिरोही (कोटरा)	प्राचीन लेखसंग्रह 1, क्रमांक 3
3.	उपकेशगच्छ	954 ई	देवगुप्तसूरि	सिरोही (लोटापा)	श्री जैन प्रतिष्ठा लेख संग्रह, क्र.321
4.	संडेरक गच्छ	1147 ई	शांतिसूरि	सिरोही (घराद)	वही, क्रमांक 173
5.	मलधारी गच्छ	1157 ई	-	मुछाला (घाणेराव)	वही, 324
6.	ब्रह्माण गच्छ	1160 ई.	पद्युम्नसूरि	सिरोही (ब्रह्माणतीर्थ)	वही, 200
7.	निवृत्ति गच्छ	1073 ई	शेखरसूरि	सिरोही (लोटाणा)	वही, 318
8.	वृहत्तपागच्छ	1163 ई.	हेमचन्द्राचार्य	सिरोही (घराद)	वही, 85
9.	वायर गच्छ	1078 ई	-	सिरोही	प्रतिष्ठा लेख संग्रह क्र. 7
10	चन्द्रगच्छ	1125 ई.		सिरोही	अर्बदाचल प्रशिक्षण जैन लेख संदोह
11.	यशसूरि गच्छ	1185 ई	यशसूरि	अजमेर	Jain sects & Schills Page 59
12.	भावदेवाचार्य गच्छ	1157 ई	भावदेवाचार्य	सेलाना	प्रतिष्ठा लेखसंग्रह, क्रमांक 24
13.	भावहर्ष	952 ई	मुनि भावहर्ष	बालोतरा	जैन लोक संग्रह (नाहर) भाग 1 क्रमांक 736
14.	धनेश्वरगच्छ	861	धनेश्वरसूरि	पटियाला	वही, क्रमांक 945
15.	काम्यक गच्छ	1043 ई	-	-	Jain Seats & School, Page 53
16.	ओसवाल गच्छ	1043 ई	-		प्राचीन जैन लेख संग्रह 2, क्र. 316
17.	ब्राह्मी गच्छी	1087 ई		पाली	Epigraphica India Page 119, 319 to 24
18.	देवाभिदित गच्छ	1144 ई		देलवाड़ा (मेवाड़)	जैन लेख संग्रह (नाहर) क्र. 1998
19.	पिशपालाचार्य गच्छ	1151 ई	पिशपालाचार्य	सिरोही	अर्बुदाचल प्रदिक्षणा लेख सदोह पृ 62
20.	आम्रदेवाचार्य गच्छ	11वीं शताब्दी	आम्रदेवाचार्य (निवृत्तिकुल के)	सिरोही (अमाटी, होटाणा)	वही, क्र. 396, 470, 475, 472
21.	भरतरिपुरा गच्छ	10वीं शताब्दी		भटेवर (मेवाड़)	वही
22.	जलयोधर गच्छ	1156 ई		(जोराद्र गाँव, अजारी)	वही, क्रमांक 408
23.	वातपीय गच्छ	1105 ई	जैसलमेर		Jainism in Raj., Page 68
24.	आरासणा गच्छ	1127 ई	यशोदेवसूरि	दिलवाड़ा	अर्बुदकाल मण्डल का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 45
25.	कासहद गच्छ	1034 ई		सिरोही (कासिद्र)	अर्बुदकाल का सांस्कृतिक वैभव, पृ 46
26.	आंचलगच्छ	1206 ई	जीरावलातीर्थ		धर्मघोष सूरि जैन प्रतिष्ठालेख

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

			संग्रह क्रमांक 308
27. आगमगच्छ	1364 ई	जीरावलतीर्थ	वही, क्रमांक 304
28. तपागच्छ	1228 ई	जैनचन्द्रसूरि	जैन लेखसंग्रह (नाहर) क्रमांक 394

तपागच्छ की शाखाएँ

विजयदेवसूरि तपाशाखा	1675 ई
विजयराज तपाशाखा	1534 ई
कमलकलश तपाशाखा	1534 ई
वृहदपोसाल तपाशाखा	1526 ई
लघु पोशाल तपाशाखा	1526 ई
सागर गच्छ तपाशाखा	1557 ई
विजयानन्द सूरि तपाशाखा	1600 ई
आगमीय तपाशाखा	1300 ई
ब्राह्मी तपाशाखा	1576 ई
नागौरी तपाशाखा	1526 ई

इस प्रकार श्वेताम्बर मन्दिर मार्गी परम्परा में अनेगिनत गच्छों ने जहाँ सम्प्रदायभेद को पल्लवित पोषित किया, वहीं मुनियों और आचार्यों ने ओसवंश के प्रवर्द्धन, विकास, प्रसार और उत्कर्ष में भी योग दिया।

वैचारिक क्रांति युग : लोंकाशाह काल (लोंकाशाह से आज तक)

जैनमत के इतिहास में लोंकाशाह के आविर्भाव को जैनमत के इतिहास में वैचारिक क्रांति का युग कह सकते हैं। लोंकाशाह ने समाज की रूढ़िवादिता और जड़ता को समाप्त करने के लिये अपने प्राणों के प्रदीप्त को प्रज्ज्वलित किया और जड़पूजा की जगह गुणपूजा की प्रतिष्ठा की।[1] लोंकाशाह को जैनमत का कबीर कहा जा सकता है। लोंकाशाह ने समाज की शिथिलताओं और कुमान्यताओं को जड़ से उखाड़ फेंका। महावीर के निर्वाण के ठीक 2000 वर्ष पश्चात् वीर संवत् 2001 में लोंकाशाह ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। क्रांति के अग्रदूत लोंकाशाह जीवन की असद् वृत्तियों के उच्छेदक थे। लोंकाशाह को जैनमत का मार्टिन लूथर भी कह सकते हैं।[2]

लोंकाशाह के जन्म वर्ष के सम्बन्ध में विवाद है

प्रथममत	:	मुनि श्री बीका वीर संवत 1945 अर्थात् वि.स. 1475
द्वितीय मत	:	लोकायति भानुचंद वि.सं. 1482
तृतीय मत	:	लोंकगच्छीय यति केशव वि.स. 1477
चतुर्थमत	:	क्षितिमोहनसेन वि.स. 1486

1. मुनि सुशीलकुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 262
2. वही, पृ 270

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पंचमत	:	लेखक 'हार्ट आफ जैनिज्म'
		ई सन् 1452
षष्टमत	:	तपागच्छीय यति कांतिविजय
		वि.स. 1482

सभी मानते हैं कि लोंकाशाह का जन्म कार्तिक पूर्णिमा को हुआ, किन्तु संवत् में मतभेद है। मुनि श्री बीका लोंकाशाह को लघु पोरवाल मानते हैं, किन्तु तपागच्छीय कांतिविजय (वि.स. 1636) इन्हें ओसवंशीय मानते हैं। कांतिविजय जी के अनुसार

''आ महात्मा नो जन्म अरहड़वाड़ा नी
ओसवाल गृहस्थ चौधरी अटकना रोठ
हेमाभाई नी पतिव्रतपारायण भार्या गंगाबाई नी कुक्षिनी हतो।
सं 1482 ना कार्तिक शुद पूनम ने दिवसो थयो।[1]

इनके पिता हेमाशाह ओसवाल थे। मुनि सुशीलकुमार के अनुसार इनका ओसवाल होना अधिक प्रामाणिक है।[2] इनके पिता जौहरी थे। माता केशरबाई धर्मपरायण और पतिपरायणा थी। इनका जन्म सिरोही से 8 मील दूर अरहट्टबाड़ा में हुआ।

लोंकापति भानुचंद्र के अनुसार इनका जन्म सौराष्ट्र के लिंवड़ी ग्राम में श्रीमाली परिवार में हुआ। दिगम्बर रत्ननंदी के 'भद्रबाहु चरित' के अनुसार पाटण के पोरवाल कुल में लोंकाशाह का जन्म हुआ।[3] लोंकायति केशवजी ने सौराष्ट्र के मागवेश ग्राम में सेठ हरिश्चन्द्र के यहाँ हुआ। इनकी माता मदगी बाई थी। नागचंद्रजी की पट्टावली और रूपचंद जी कृत चौपाई में इनका जन्म जालोर माना जाता है। इतिहासकारों के अनुसार सिरोही के पास अरहटवाड़ा ही इनका जन्म स्थान है।

लोंकाशाह ने दीक्षा ली या नहीं, यह भी विवादास्पद है। वे जन्म से तत्वशोधक थे। लोंकाशाह ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया। 'व्यवहारसूत्र' की चूलिका के अनुसार भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् मूर्तिपूजा की परम्परा चली। जिनदास महत्तर ने 'आवश्यक चूर्णि' में पूजा का विवेचन किया है -

इदाणिं पूयाकइं पुरस्तात पुज्जा पूजा, द्रव्य, पूया,
णिण्हगा दीणं भाव पूया पर लोगाट्ठिताण।[4]

हरिभद्रसूरि ने अष्टपुण्य पूजा का विधान किया। यह अष्टपुष्प पूजा- 'अहिंसा, सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यमरांगता गुरुभक्ति स्तपो ज्ञानार्जन सत्पुप्पाणि प्रचक्षते,' कहा है। इस तरह हरिभद्रसूरि के अनुसार - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, गुरूभक्ति, ज्ञानार्जन और

---

1. मुनि कांतिविजय, लोंकाशाह नुंजीवन प्रभुवीर पट्टावली, पृ 161
2. मुनि सुशील कुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 273
3. दिगम्बर रत्नंदी, भद्रबाहु चरित, पृ 90
4. आवश्यक चूर्णि, पृ 18

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तप-अनुष्ठान ही शाश्वत अष्ट पुष्प है।

उस समय चार संघपति- नागजी, दलीचंद, मोतीचंद और शंभुजी पूरी तरह लोंकाशाह से प्रभावित थे। उस समय लोंकाशाह ने अपने गच्छ का नाम लोंकागच्छ रखा।

जैसलमेर भण्डार में उपलब्ध ताड़पत्रों के आधार पर लोंकाशाह ने दीक्षा ग्रहण की। इसमें कहा गया है-

"समत पनरेने अड़तीस री साल मिगसर सुद पाचम ने दिन अहमदाबाद वाला लूंका जी दफ्तरी जिन दीक्षा ली। ज्ञान रिखब जी ना चेला सुमति सेन जी रे पास लूंका जी पाँच चेला लूंका ना हुआ। लूंका नाम थापियो, लूंका जी दीक्षा लीनी तिणसे परिवार घणो बधियो। लूंका जी गुजरात, मारवाड़ और दिल्ली तक पधारिया और दिल्ली माहे पातसाहे आगम चर्चा थई। श्री पूज्य जी से चर्चा हुई, चर्चा करी ने घणों मिथ्यात्व हाराइ ने घणा श्रावक ने प्रतिबोध दीवो। ऐसी शाख सूरत ना सेठ जी कल्याण जी भंसाला ना भण्डार मा संस्कृत मा छे। तेया लूंका जी नी दीक्षानी हकीकत छै तथा ज्ञानसागर जती नी जोड़ को ग्रंथ नाटक ते मां पण लूंका जीए दीक्षा लीधा ने लिरव्युं छे।"

लोंकाशाह के देहान्त के बारे में भी विवाद है। यतिवर भानुचंदजी (1578) के अनुसार इनका स्वर्गवास संवत् 1532 में हुआ, 'प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार' वि.स. 1532 में, लोकायत केशव जी के अनुसार संवत् 1533 में, वीर वंशावली के अनुसार वि.स. 1535 हुआ।

लोंकाशाह ने माना कि तप के बिना भी शास्त्र अभ्यास किया जा सकता है। जिन प्रतिमा की पूजा आगमों में नहीं है; साधु को दण्ड नहीं, पुस्तकें रखनी चाहिये; बिना उपवास के पौषध किया जा सकता है; उपवास कभी भी किया जा सकता है। जैनमत के इतिहास में लोंकाशाह की देन अभूतपूर्व रही। यही समय था जब यूरोप मं ईसाईमत में सुधारवाद का बोलबाला था। धर्मप्राण लोंकाशाह ने श्वेताम्बर परम्परा में सुधार और क्रांति के द्वारा युगान्तर उपस्थित किया। लोंकाशाह को आड़म्बर, जड़ उपासना, जड़ क्रिया से घृणा थी।

'हार्ट ऑफ जेनिज्म' के लेखक ने कहा कि 1452 ई में लोंकाशाह सम्प्रदाय के साथ ही स्थानकवासी परम्परा प्रारम्भ हुई। यही वह समय था जब यूरोप में लूथर का शुद्धतावादी आंदोलन शुरू हुआ था।[1]

"लोंकाशाह किसी सिद्धान्त, मान्यता, परम्परा अपना विश्वास के विरोधी नहीं और न ही किसी मत, सम्प्रदाय, धर्म अथवा मजहब के अनुरागी। वे सदैव तटस्थ रहकर सत्य का शोधन करते।[2] उनकी सत्यान्वेषी वृत्ति को लोकभाषा में ढूंढिया वृत्ति कहते हैं, इसलिये स्थानकवासी सम्प्रदाय को ढूंढिया सम्प्रदाय कहने लगे।'

---

1. Heart of Jainism.
   About A.D. 1452 the Lonka Shah arise was followed by Sthanakwasi Sect, dates of which coincide strikingly with the Lutheren puritant in Europe.
2. मुनि सुशील कुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 309

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस समय श्रमणवर्ग में शिथिलता थी, चैत्यावास में विकार थे और धर्म का रूढ़िगत रूप प्रशस्त हो रहा था। जिनवल्लभसूरि ने चित्तोड़ के महावीर मंदिर के 44 श्लोकों में कहा, "जाति, वेश, गुण, ज्ञान और किसी प्रकार की परीक्षा के लिये चैत्यावासी धड़ाधड़ चेले मूंडते फिरते हैं।"

निर्वाहार्थिन मुज्जिवं गुणलवैरज्ञानशिला न्वयं।
ताश्यवंश तद्गुणे न गुरुणा स्वार्थाय मुण्डीकृतम्॥

इसमें आगे कहा है कि ये चैत्यवासी श्रद्धा में फँसे हुए जैनों की तीर्थयात्रा, प्रतिमा स्नान आदि के नाम लेकर इस प्रकार छल से फंसाते हैं, जैसे मच्छीमार कांटें में आटा लगाकर मच्छियों को फंसाता है।

आकृष्टं मुग्धभीनान् बड़िश पिशिवद् बिम्बमादर्श्य जैंन,
तन्माइछ;ण रम्यरूपानपवर कमवम स्वेष्टसिद्धचै विछण्य।
यात्रा स्नात्रायु पार्य येसि तक निशाजाराद्ये श्वलैश्च,
श्रद्धालु नमि जैनेश्द्वलित इव शडैर्वच्यते हा जनोइयम।

आगे कहा है कि वे चैत्यवासी साधुवर्ग श्वेतवस्त्र पहनकर, देवद्रव्य के नाम से अर्थसंग्रह करके अपनी इच्छानुकूल अपने मठ बनवाते हैं और उनमें सदा आराम से रहते हैं। ये साधु सुविधाभोगी, परिग्रही, लौलुप, ईर्ष्यालु और लोभी हैं और सुखलंपट भी -

देवार्थं व्ययतो यथारुचिकृते सर्वतुरम्ये मठे।
नित्यस्थाः शुचि पट्टतूलिशयनाः सद्गाविद काद्यासनाः॥
सारंभाः सपरिग्रहः सविषयाः सेर्ष्याः साकांक्षाः सदा।
साधु व्याजावित अहो सितपराः कष्टं चरंति व्रतम॥

चैत्यावास के प्रारम्भ में ही 'सम्बोधि प्रकरण' में हरिभद्रसूरि ने कहा था, "भगवान महावीर के साधु आज सूर्य के उदय होते ही उदरपोषण करने लगते हैं। स्वादिष्ट मिष्ठानों का बार बार भक्षण करते हैं। शय्या जोड़ा, वाहन, शस्त्र और तांबा वगैरह धातु के पात्र अपने पास रखते हैं। इत्र फुलेल लगाते हैं। तेल मर्दन करते हैं। ग्राम, कुल और शिष्यों पर अपना अधिकार बताते हैं। प्रवचनों के स्थान पर निन्दा करते हैं। भिक्षा स्वयं न लाकर अपने उपाश्रम में ही मंगाकर खाते हैं। छोटी छोटी उम्र के बच्चों को क्रय करके दीक्षित करते हैं। यंत्र, डोरा, ताबीज आदि का आडम्बर करते हैं। पैसा, धन और परिग्रह पर गृद्ध दृष्टि रखते हैं।"

लोंकाशाह ने माना कि धर्म के उपकरण-रजोहरण, मुखपत्री, दण्ड आदि उपकरण मात्र हैं, धर्म नहीं। धर्म तो आत्मा की भूख है और है, आत्मा का स्वभाव। लोंकाशाह जैनमत में क्रांति के सूत्रधार बने।

उस समय लोंकाशाह पर आरोपों की बौछार हुई। उन पर आरोप लगाए कि लोंकाशाह चैत्यवाद के विरोधी हैं, गुरु को अस्वीकार करते हैं, केवल मूल आगमों को प्रामाणिक मानते हैं, टीका और इतर ग्रंथों को नहीं, दान की अपेक्षा दया को धर्म मानते हैं, ये यति परम्परा नहीं मानते,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्तिपूजा का विरोध करते हैं, श्रमणवर्ग की शिथिलता के कट्टरविरोधी हैं, चारित्र्य की कठोर साधना को संयम मानते हैं और इन्होंने यथास्थिति को तोड़कर नया पथ चलाया है। ये आरोप ही लोंकाशाह की उपलब्धियाँ है।

लोंकाशाह की चलाई हुई संयमक्रांति की ज्योति 100 वर्षों तक दीपशिखा की तरह जलती रही।[1]

'तपागच्छ पट्टावली' के अनुसार लोंकाशाह का प्रथम शिष्य भाणा नामक व्यक्ति हुआ। बहुत से लोंकागच्छाधिपतियों की परम्परा- केशव जी, रतन जी, जगमलजी, रायपाल जी, धन्न जी, मोहन जी, गोरधन जी और सोनजी तक चलती रही है।

लोंकागच्छ के 100 वर्ष के भीतर तीन सम्प्रदाय बने- 1. गुजराती लोंकागच्छ 2. नागौरी लोंकागच्छ और 3. उत्तरार्द्ध लोंकागच्छ।

लोंकाशाह के 100 वर्ष के पश्चात् जब पुनः शिथिलता का दौर चला, तब सोलहवीं शताब्दी और सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लोंकाशाह की अमर क्रांति को पांच महापुरुषों ने पुनरुज्जीवित किया-

1. जीवराज जी महाराज
2. धर्मसिंह जी महाराज
3. लबखी ऋषिजी महाराज
4. हरजी ऋषिजी महाराज
5. धर्मदास जी महाराज।

स्थानकवासी परम्परा

पूज्य श्री जीवराजजी, लवजी ऋषि जी, धर्मसिंहजी, धर्मदास जी और हाजीऋषि जी महाराज की परम्पराओं में सर्वप्रथम जीवराज जी हुए। जीवराज जी महाराज का जन्म संवत् 1581 में हुआ, जबकि लवजी ऋषि ने संवत् 1692 अथवा 1705 में यति दीक्षा त्यागकर साधु दीक्षा ली। श्री आनन्दऋषि जी महाराज के सूचनानुसार लवजी ऋषि ने 1692 में यति दीक्षा और 1694 संवत् में साधु दीक्षा ली। ये पांचों महापुरुष त्याग और वैराग्य की विभूति थे।[2]

(1) जीवराज जी महाराज

इनका जन्म सूरत में वि.स. 1500 में श्रावण शुक्ल 14 को हुआ। ये जन्मना वैरागी थे। आप सं. 1575 में जगाजी यति के पास दीक्षित हुए। ये विश्व के वैभव, माँ के ममत्व और पत्नी के प्यार को ठुकराकर साधु हुए। इन्होंने संवत् 1566 में पांच साधुओं के साथ आर्हती दीक्षा ग्रहण की। जीवराज जी महाराज को स्थानकवासी परम्परा का संस्थापक कह सकते हैं। ये स्थानकवासी सम्प्रदाय की व्यवस्थित क्रांति के मूल प्रणेताओं में प्रथम पद के अधिकारी बने।

---

1. मुनि सुशील कुमार, जैनधर्म का इतिहास, पृ 330
2. वही, पृ 352

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आज भी कोटा सम्प्रदाय, अमरसिंह जी का सम्प्रदाय, नानकराम जी का सम्प्रदाय, स्वामीदास जी का सम्प्रदाय और नाथूरामजी का सम्प्रदाय- सब इन्हीं महापुरुष की शिष्य सन्तति है।

(2) धर्मसिंह जी

सरस्वती के वरद पुत्र धर्मसिंह जी में विद्वत्ता के साथ चारित्र्य था। इन्होंने 27 शास्त्रों पर टब्बे (टिप्पणियाँ) लिखी। इनकी अगाध बुद्धि, विलक्षण प्रतिभा और दिव्यमूर्ति जिनशासन के लिये वरदान स्वरूप बनी। धर्म की यह तेजस्विनी मूर्ति सं 1725 में 43 वर्ष की शुद्ध दीक्षा पालकर ओझल हो गई। जीवराजजी महाराज ने संयम से स्थानकवासी सम्प्रदाय की जो बाड़ी लगाई थी, उसका साहित्य से सिंचन धर्मसिंह जी महाराज ने किया। इनका प्रचार क्षेत्र सारा गुजरात और सौराष्ट्र था।

(3) लवजी ऋषि

श्रीमाली वणिक परिवार मे जन्में लवजी पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की कृपा थी। सं 1692 में आपकी यति दीक्षा हुई और संवत् 1694 में शुद्ध दीक्षा। आज भी लवजी ऋषि से अनुप्राणित सम्प्रदाय बड़ी संख्या में है। लवजी ऋषि के अनन्तर सोमजी ऋषि हुए। इन्होंने एकता के लिये प्रयत्न किये, किन्तु सामूहिक भावना को न पनपा सके।

(4) धर्मदासजी महाराज

आपका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज गाँव में 1701 चैत्र शुक्ल एकादशी को हुआ। धर्मदास जी महाराज ने अपनी दिव्यवाणी से कच्छ, काठियावाड़, खानदेश, बागर, सौराष्ट्र, पंजाब, मेवाड़, मालवा, हाडौती और ढुंढार आदि स्थानों को आलोकित किया। धर्मदास जी ने क्रांति की अपेक्षा प्रचार को महत्व दिया। तीनों महापुरुषों की विरासत स्थानकवासी समाज को मिली, जिसे इन्होंने इस अत्यंत व्यवस्थित तथा अनुशासित बनाए रखने का प्रयत्न किया। इनकी शिष्य परम्परा में 99 शिष्य हुए जिसमें 35 तो संस्कृत और प्राकृत के पण्डित थे।

इन्होंने समस्त शिष्यों के समक्ष एकत्रित करने की योजना प्रस्तुत की किन्तु सं 1772 में चैत्र शुक्ल 13 को महावीर जयन्ती के दिन 22 शिष्यों के नाम से 22 सम्प्रदाय की स्थापना हुई। धर्मदास जी महाराज का स्वर्गवास 1769 में हुआ।

आज भी 22 सम्प्रदायों की निरन्तर और अविरल परम्परा पाई जाती है-

1. पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज के श्री मिश्रीमल जी महाराज।
2. पूज्य श्री जयमल जी म. के श्री हजारीमल जी महाराज।
3. पूज्य श्री रत्नचंद जी म. के श्री हस्तीमल जी म. और अब आचार्य श्री हीराचंद जी महाराज।
4. लिम्बड़ी सम्प्रदाय में श्री नानकचंदजी महाराज।
5. सत्यला में श्री केशु मुनि जी महाराज।
6. गौडल में मुनि श्री पुरुषोत्तम जी महाराज।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. बोटाद में मुनि श्री माणकचंद जी महाराज।
8. आठकोटी मोटी पक्ष में श्री छोटेलालजी महाराज।
9. नृसिंहदास जी के मुनि श्री मोतीलालजी महाराज।
10. मनोहरदास जी के सम्प्रदाय में पूज्य श्री पृथ्वीचंद जी महाराज।
11. पूज्य श्री रामरतनजी के सम्प्रदाय में श्री सौभाग्यमल जी महाराज।
12. ज्ञानचंदजी के सम्प्रदाय में श्री समरथमलजी महाराज।

(5) हरजी ऋषिजी महाराज

लोंकाशाह के पश्चात् जिन पांच आचार्यों ने वैचारिक क्रांति को आगे बढ़ाया, उनके सम्प्रदाय लगातार जन जन को उपदेशामृत प्रदान करते रहे हैं।

(1) जीवराजजी महाराज का सम्प्रदाय

आचार्य धन जी - बीकानेर में आपने ओसवालों के आद्य गोत्र तोतेड़ों की गवाड़ में प्रवचन दिया। बीकानेर में महारानी ने आपके प्रवेश की अगवानी की।

आचार्य विष्णु और आचार्य मन जी स्वामी - धन जी के पश्चात् आचार्य विष्णु आचार्य बने। आचार्य विष्णु के पश्चात् मनजी स्वामी आचार्य हुए। साधुमार्गी सम्प्रदाय में आपकी आचार निष्ठा प्रतिष्ठित थी।

आचार्य नाथूरामजी स्वामी - खण्डेलवाल जैन परिवार में जन्में नाथूरामजी स्वामी ने अपने बीसों शिष्यों को सूत्र कंठस्थ कराए। आपने आचार्य कृष्ण जैसे विद्वानों को दीक्षित किया, जो पंजाब में रामचन्द्र के नाम से विख्यात हुए।

आचार्य लालचंद जी महाराज - इन्होंने आगमों को लोकवाणी राजस्थानी भाषा में पद्यबद्ध किया।

आचार्य छजमल जी - दर्शनशास्त्र के पण्डित छजमल जी ने सामान्य जनों को अनेकान्त के सिद्धान्त का बोध कराया।

आचार्य राजाराम जी - मिथ्यादर्शन के कट्टर शत्रु आचार्य राजाराम जी के अनुशासन काल में आत्मनिष्ठा दृढ़ हुई।

आचार्य उत्तमचंद जी - आप और आपके गुरुभ्राता रामचंद्र षटशास्त्रों के पारंगत विद्वान थे।

आचार्य भज्जूलालजी - पल्लीवाल कुलभूषण भज्जूलालजी अनेक भाषाओं के विद्वान थे। बहुश्रुत विद्वान होने के कारण अलवर नरेश ने आपको राज्य पण्डित की उपाधि से विभूषित किया। 'शांतिप्रकाश' ग्रंथ आपकी विद्वत्ता का प्रमाण है।

पन्नालालजी - आप आचार्य भग्गूस्वामी के शिष्य थे। आपका समाधिकरण संवत् 1952 में ज्येष्ठ शुक्ल 3 को हुआ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री रामलाल जी महाराज - संवत् 1870 में आपका विहार ब्यावर में हुआ। मारवाड़ में आपका विहार 9 बार हुआ। 1950 संवत् में आपका समाधिमरण हुआ।

मुनि श्री फकीरचंद जी महाराज - आपका जन्म सूरत में संवत् 1916 जेठ सुदी 15 को हुआ। विवाह होते हुए भी आप वैरागी थे। आपका झरिया (बंगाल) में चार्तुमास सन् 1936 में हुआ। आपका समाधिमरण सं 1996 जेठ सुदी 15 को हुआ।

स्वामीदास जी महाराज और उनका सम्प्रदाय - आप जीवराज महाराज के चौथे पाट पर आचार्य रूप में विराजे। स्वामी फतहलाल जी स्वामी छगनलाल और स्वामी कन्हैयालाल जी आदि आपके सम्प्रदाय में विद्वान साधु थे।

अमरसिंह जी महाराज - आपका जन्म दिल्ली में संवत् 1719 में हुआ। मुनि लालचंद जी महाराज ने आपको दीक्षा दी। वि.स. 1761 में आपने आचार्य पद प्राप्त किया। आप समर्थ विद्वान और उदार प्रवचनकार थे। औरंगजेब का पुत्र बहादुरशाह और जोधपुर का दीवान खींवसिंह जी भण्डारी आपके शिष्य थे। आपका मारवाड़ में बहुत प्रभाव था। आपका स्वर्गवास वि.स. 1812 में हुआ। आपके पश्चात् तुलसीदास जी महाराज, पूज्य सुजानमलजी और पूज्य जीतमल जी आदि प्रतिभाशाली विद्वान हुए।

पूज्य जीतमल जी महाराज - आपका जन्म रामपुरा में सं 1826 में हुआ। संवत् 1834 में सुजानमल जी महाराज ने आपको दीक्षा दी। आप विद्वान और युक्तिवादी विचारक थे। संवत् 1992 में आपका स्वर्गवास हुआ तब ऐसा लगा मानो विज्ञान का आलोक अस्त हो गया। आपकी शिष्य परम्परा में पू. ज्ञानमलजी, पूज्य पूनमचंद जी, पू. जेठमल जी और पूज्य पूनमचंद जी हुए।

जेठमलजी महाराज - आपका जन्म सादड़ी में संवत् 1914 को हुआ। आपकी दीक्षा संवत् 1931 में हुई। आप तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी थे। आपकी प्रतिष्ठा सिद्ध मुनि के रूप में हुई। संवत् 1979 में यह ज्ञान का प्रदीप बुझ गया।

मुनि ताराचंद जी महाराज - आपकी जन्मभूमि (बंबोरा) थी। आपका गृहस्थ नाम हजारीमल था। आपका स्वर्गवास जयपुर में हुआ।

पूज्य शीतलदास जी महाराज का सम्प्रदाय - आपने आगरा शहर में सं 1763 ई में चैत्र कृष्णा 2 को बालचंद जी महाराज की सेवा में दीक्षा ली। आप अग्रवालवंशीय महेश जी के सुपुत्र थे। आपका जन्म वि.स. 1747 में हुआ। साहित्य शिक्षण में आप बेजोड़ थे। आपका समाधिमरण वि.स. 1836 को पौष सुद 12 को हुआ।

तपस्वी वेणीचंद जी - आपका जन्म संवत् 1998 को हुआ। आपने पन्नालाल जी महाराज की सेवा में संवत् 1920 की असाढ, सुदी 5 को दीक्षा ग्रहण की। आपका समाधिमरण

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संवत् 1995 को पौष सुदी 14 को हुआ। आप अभय के ज्वलंत प्रतिमान थे।

तपस्वी कजोड़ीमल जी - आजन्म ब्रह्मचारी कजोड़ीमल जी का जन्म बेगूशहर में से 1939 को माघ शुक्ला 15 को हुआ।

मुनि छोगलाल जी - प्रभावशाली प्रवचनकार मुनि छोगलालजी ने वि.स. 1958 में 9 वर्ष की आयु में दीक्षा ली। आपने जीव हिंसा के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन चलाया।

नानकरामजी महाराज का सम्प्रदाय - नानकराम जी के पंचम पट्ट पर नानकरामजी विराजे। आपकी विद्वत्ता और आचारपरायणता विशिष्ट थी।

पूज्य रायचंद जी महाराज - आप नाथूराम जी महाराज के प्रख्यात् शिष्य थे। आप समर्थ योगी थे। आपके शिष्य कविराज नंदलाल जी महाराज साधुमार्गी समाज के बहुश्रुत पण्डित थे। आपके बाद जीवराज जी महाराज का सम्प्रदाय दो भागों में बँट गया।

कविराज नंदलाल जी - कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में जन्में नन्दलालजी ने अनेक ग्रंथों की रचना की। आपने 'रामायण', 'ज्ञान प्रकाश', 'रूकमणी रास' आदि ग्रंथों की रचना की। आप होशियारपुर में संवत् 1907 में स्वर्गवासी हुए। आपके तीन प्रभावशाली शिष्य हुए 1. मुनि किशनचंदजी, 2. मुनि रूपचंद जी 3. मुनि जौकीराम जी। मुनि किशनचंद जी ज्योतिष शास्त्र के पण्डित थे, मुनि रूपचंद जी वचनसिंद्ध तपस्वी मुनि थे। किशनचंद जी की परम्परा में बिहारीलालजी, महेशचंद जी, वृषभानु जी, मुनि शाहीलाल जी आदि हुए। जौकीलाल जी के शिष्य अग्रवाल वंशीय चेतरामजी दीक्षित हुए। चेतरामजी के शिष्य घासीलाल जी और घासीलाल जी के शिष्य जीवनरामजी, गोविन्द रामजी और कुन्दनलाल जी महाराज हुए।

रूपचंद जी महाराज - रूपचंद जी महाराज का जन्म लुधियाना में संवत् 1868 माघ सुद 3 में हुआ। आपकी दीक्षा संवत् 1894 को फाल्गुन सुदी 3 को हुई। मुनि सुशीलकुमार पर आपके त्याग और ज्ञान का प्रभाव पड़ा।

गोविन्दराम जी - आपका जन्म देहरादून में संवत् 1998 को हुआ और आप प्रतिभाशाली पद्यकार थे। चरित्र और स्वाध्याय आपके आभूषण थे।

मुनि कुन्दनलाल जी महाराज - आप संवत् 1957 के कार्तिक सुदी 2 को भटिण्डा में घासीलाल महाराज की सेवा में दीक्षा ली। आप तपस्वी और वचनसिंद्ध सन्तपुरुष थे। संवत् 2008 में अहमदनगर में आपका समाधिमरण हुआ।

पूज्य जीवणराम जी - समस्त पंजाब में आपका वर्चस्व था। प्रसिद्ध विजयानन्दसूरि जी ने आत्माराम जी महाराज के नाम से आपके ही पास दीक्षा ली थी।

श्री चंदजी महाराज - ज्योतिष के आप समर्थ और शास्त्र निष्णात पण्डित थे।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवराज जी महाराज की आचार्य परम्परा

1	2	3	4	5
अमर सिंहजी का सम्प्रदाय	नानकरामजी का सम्प्रदाय	स्वामीदास का सम्प्रदाय	शीतलदासजी का सम्प्रदाय	नाथूरामजी का सम्प्रदाय

(1) अमरसिंह जी का सम्प्रदाय

1. जीवराज जी
2. लालचंद जी
3. अमरसिंह जी
4. तुलसीदास जी
5. सुजानमल जी
6. जीतमलजी
7. ज्ञानमलजी
8. पूनमचंद जी
9. ज्येष्ठमल जी
10. नैनमल जी
11. दयालचंद जी
12. नारायणदास जी
13. मुनि ताराचंदजी (वर्तमान पुष्कर मुनि जीवनरामजी लालचंद जी के शिष्य)

(2) नानकराम जी का सम्प्रदाय

1. जीवराज जी
2. लालचंद जी
3. दीपचंद
4. मानकचंदजी
5. नानकराम जी
   (1) नानकराम जी
   (2) निहालचंद जी
   (3) सुखलाल जी
   (4) हरकचंदजी
   (5) दयालचंदजी
   (6) लक्ष्मीचंद जी
6. वीरमणि जी
7. लामणदासजी
8. मगनमल जी
9. गजमलजी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

10. धूलचंदजी
11. पन्नालाल जी
12. छोटेलाल जी

(3) स्वामीदास का सम्प्रदाय

1. जीवराज जी
2. लालचंद जी
3. दीपचंद जी
4. स्वामीदास जी
5. उग्रसेन जी
6. मुनि घासीराम जी
7. कनीराम जी
8. ऋषिराम जी
9. रंगलाल जी
10. फतहलाल जी (वर्तमान में कन्हैयालालजी 1971 में)

(4) शीतलदास जी का सम्प्रदाय

1. जीवराज जी
2. धना जी
3. लालचंद जी
4. शीतलदास जी
5. देवीचंद जी
6. हीराचंद जी
7. लक्ष्मीचंद जी
8. भैंरूदास जी
9. उदयचंदजी
10. पन्नालाल जी
11. नेमीचंद जी
12. वेणीचंद जी
13. परतापचंद जी
14. कजोड़ीमल जी (1971, मोहन मुनि विद्यमान)

(5) नाथूरामजी का सम्प्रदाय

1. जीवराज जी
2. लालचंद जी
3. मनजी ऋषि
4. नाथूरामजी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

5. लक्ष्मीचंद जी
6. छीतरमल जी
7. रामलाल जी
8. फतहलालजी
9. फूलचंद जी (1971 वर्तमान)

(2) धर्मसिंह जी महाराज की परम्परा

धर्मसिंह जी महाराज का सम्प्रदाय वृक्ष निम्नानुसार है

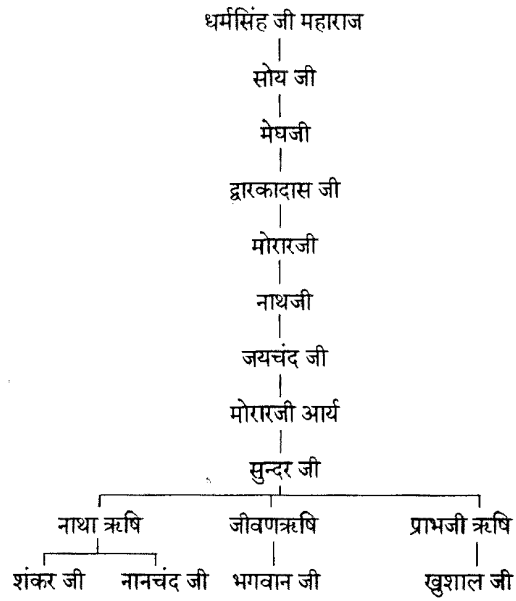

प्रागजी ऋषि - धर्मसिंह जी के 12वें पाट पर प्रागजी ऋषि विराजमान हुए। आप वीरमगांव के भावसार रणछोड़दास के पुत्र थे। आपकी दीक्षा सं 1830 में हुई। आपके 15 शिष्य थे।

थोमण जी महाराज - थोमणजी कच्छ के प्रधान कार्यकर्त्ता थे। सोमचंद जी महाराज का उपदेश सुनकर आपने पंच महाव्रत स्वीकार किया। वि.स. 1846 में कृष्ण जी ने आपके पास दीक्षा ली। पूज्य कृष्ण जी के दशवें पट पर धर्मसिंह जी महाराज आचार्य हुए।

कर्मसिंह जी महाराज - आपका जन्म बांकी (कच्छ) में सेठ हेमराज जी के यहाँ वि.सं 1886 में हुआ। आपकी दीक्षा पूज्य पानचंद जी के पास हुई और आप संवत् 1959 में आचार्य बने। आपका स्वर्गवास वि.सं. 1969 को हुआ। आपके बाद क्रमशः ब्रजलाल जी, पूज्य कानजी स्वामी और पूज्य नागचंद जी आचार्य हुए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नागचंद जी महाराज - कच्छ के भोजाय गांव में आपका जन्म शाहलाल जी जेवत के यहाँ हुआ। आप संवत् 1947 में 3 वर्ष की आयु में पूज्य कर्मसिंह जी महाराज से दीक्षित हुए। आप संवत् 1958 में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपने गुजराती में अनेक रास रचे।

देवचंद जी महाराज - आपका जन्म 1940 में हुआ और दीक्षा संवत् 1957 में हुई। आप न्याय साहित्य और व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपने 'स्थानांग सूत्र' का भाषांतर किया। आपका संवत् 2000 में पोरबंदर में स्वर्गवास हुआ।

पूज्य रत्नचंद जी महाराज - आपने पूज्य नागचंद जी के पास संवत् 1975 में दीक्षा ली। आपने संस्कृत में तीन चरित ग्रंथों की रचना की।

जयमलजी महाराज - आप लानिया निवासी मोहनदासजी समदड़िया मूथा के सुपुत्र थे। मेड़ता में आपने भूधर जी का प्रवचन सुना वैराग्य हुआ और दीक्षित हो गये। संवत् 1887 मार्गशीर्ष 2 को आपने पंच महाव्रत धारण कर लिया। आपका समाधिकरण संवत् 1853 की वैसाख सुदी 14 को हुआ। आपके सम्प्रदाय में जोरावरमल जी महाराज दीक्षित हुए, जिनका स्वर्गवास संवत् 1986 में हुआ। जोरावरमल जी विद्वान और कुरीतियों के निषेधक थे।

धर्मसिंह जी महाराज की दरियापुरी समुदाय परम्परा प्रस्तुत है -

1. धर्मसिंह जी महाराज
2. सोमजी
3. मेघजी
4. द्वारिकादास जी
5. गोरासी
6. नाथाजी ऋषि
7. जयचंद जी ऋषि
8. मोरारजी ऋषि
9. नाथाजी ऋशि
10. प्रागजी ऋषि
11. शंकरजी ऋषि
12. खुशालजी महाराज
13. हरखचंद जी महाराज
14. मोरारजी महाराज
15. झवेरचंद जी महाराज
16. पूंजा जी महाराज
17. नाना भगवान जी
18. मलूकचंद जी महाराज
19. हीराचंद जी महाराज
20. रघुनाथ जी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

21. हाधोजी महाराज
22. उत्तमचंद जी महाराज
23. ईश्वरलाल महाराज
24. चुन्नीलाल जी महाराज

(3) लवजी महाराज का सम्प्रदाय

कान्हजी ऋषि - लवजी ऋषि की परम्परा कान्ह जी ऋषि के सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस सम्प्रदाय के सन्त दक्षिण, बराट, खानदेश और कर्नाटक में विचरते हैं। आपके शिष्यों में मंगलजी ऋषि गुजरात में खम्भात में पधारे।

तिलोक ऋषि जी - आपका जन्म वि.सं 1904 में सेठ दुलीचंद जी सुराणा की सहधर्मिणी नानूबाई की कुक्षि से रतलाम हुआ। आपने दक्षिण में जैन धर्म का प्रचार प्रसार किया। आप 70 हजार श्लोकों की रचना की। आव 'उत्तराध्ययन सूत्र' का सम्पूर्ण स्वाध्याय ध्यान में कर लेते थे। अहमदनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

रत्नऋषि जी महाराज - मारवाड़ में बोता में जन्में रत्नऋषि जी ने त्रिलोक महाराज की सेवा में 12 वर्ष की आयु में दीक्षित हुए। अलीपुर (बंगाल) में 1884 के ज्येष्ठ कृष्ण 8 को आपका स्वर्गवास हुआ।

अमिऋषिजी महाराज - दलोट (मालवा) में संवत् 1930 में आपका जन्म हुआ। 13 आगमग्रंथ आपको मौखिक याद थे। संवत् 1988 में शुजालपुर में वैसाख शुक्ला 14 को आपका स्वर्गवास हुआ।

अमोलक ऋषि जी महाराज - वि.सं. 1944 में आप दीक्षित हुए। आपने कर्नाटक में धर्मप्रचार किया। स्थानकवासी समाज में आगमों का हिन्दी में अनुवाद कार्य सर्वप्रथम आपने ही किया। संवत् 1982 में आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। संवत् 1993 भाद्रपद कृष्ण 14 को धुलिया में आप स्वर्ग सिधारे।

देवऋषि जी महाराज - कच्छ के पुकड़ी के निवासी सेठ जेठानी सिंघवी के यहाँ संवत् 1929 की दीपावली को श्वेताम्बर जैन कुटुम्ब में आपका जन्म हुआ। संवत् 1993 में माघकृष्ण 6 को आपको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया गया। आपका स्वर्गवास संवत् 1999 मार्गशीर्ष 9 को नागपुर में हुआ।

ताराचंद जी महाराज - आप लवजी ऋषि के चतुर्थपद पर आचार्य हुए। आप प्रतिभाशाली प्रवचनकार थे।

छगनलाल जी महाराज - निर्भय वक्ता और शुभ्र हृदय के संत पुरुष छगनलाल जी महाराज की दीक्षा वि.सं 1945 में हुई।

अमरसिंह जी महाराज - लवजी ऋषि के दशवें पट्ट पर आप आचार्य रूप में विराजे। अमृतसर में जन्में अमरसिंह जी महाराज की दीक्षा संवत् 1898 को वैसाख कृष्ण द्वितीय को हुई। आप तातेड़ गोत्रीय ओसवाल थे। आपका स्वर्गवास अमृतसर में वि.स. 1913 में

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ। आपके शिष्यों में प्रमुख शिष्य थे- लोढा गोत्रीय रामवक्ष जी अलवर निवासी थे। मालेरकोटला में आप आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। इनके चार मुख्य परिवार निकले —

1. काशीराम जी महाराज
2. मोतीराम जी महाराज - आप संवत् 1939 में आचार्य बने।
3. मयाराम जी महाराज- आपका प्रभाव मारवाड़ से अम्बाला तक था।
4. लालचंद जी महाराज- सर्वाधिक प्रभाव पश्चिमी पंजाब में था।

रामस्वरूप जी महाराज - लालजी महाराज के शिष्य लक्ष्मीचंद जी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में चले गये, किन्तु इन लक्ष्मीचंदजी के शिष्य रामस्वरूप जी स्थानकवासी समाज में ही रहे। इनके शिष्य अमरमुनि समाज विभूति थे। वे अहिंसा के प्रचारक, शांति के प्रकाशक, आत्मा के उजारक और हृदय के धनी महात्मा थे।

सोहनलाल जी महाराज - अमरसिंह जी महाराज के चरणों में आपने संवत् 1933 में दीक्षा ली। आपकी संगठन शक्ति असाधारण थी। आपकी प्रेरणा से काशी में उच्चस्तरीय जैन शिक्षण के लिये पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना हुई। आपको पंजाब केशरी कहा जाता है।

उदयचंद जी महाराज - ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए और फिर जैनागमों का गम्भीर अध्ययन किया। अजमेर सम्मेलन में आप शांतिरक्षक थे।

काशीरामजी महाराज - आपका जन्म पसरूर (स्यालकोट) में हुआ। आपका जन्म संवत् 1960 में हुआ। आपकी आवाज बुलंद थी।

(3) लवजी ऋषि महाराज का सम्प्रदाय

1	2	3	4
अमर सिंहजी का सम्प्रदाय	कानजी ऋषि का सम्प्रदाय	ताराऋषि का सम्प्रदाय	रामरतनजी का सम्प्रदाय

(1) अमरसिंह जी का सम्प्रदाय

1. लवजी ऋषि
2. सोमजी ऋषि
3. हरिदास जी
4. वृन्दावन जी स्वामी
5. भगवानदास जी
6. मलूकचंद जी
7. महासिंहजी
8. कुशलचंदजी
9. छजमल जी
10. रामलालजी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

11. अमरसिंह जी
12. रामबक्स जी
13. मोतीराम जी
14. सोहन लाल जी
15. काशीराम जी
16. आत्माराम जी

(2) कानजी ऋषि का सम्प्रदाय

1. लवजी
2. सोमजी
3. कानजी
4. ताराचंद जी
5. कालाऋषि जी
6. बक्सु ऋषि जी
7. धन्ना (पृथ्वी) ऋषि जी
8. तिलोक ऋषि जी
9. श्री दौलत, अभिऋषि जी आदि
10. श्री अमोलक जी
11. देवजी ऋषि
12. आनन्द ऋषि जी (वर्तमान में श्रमण संघ के आचार्य, 1971)

(3) तारा ऋषि का सम्प्रदाय

1. लवजी
2. सोमजी
3. कानजी
4. तारा ऋषि जी
5. मंगलऋषि जी
6. रणछोड़जी
7. नाथाजी
8. बेचरदास जी
9. बड़े माणकचंदजी
10. हरखचंद जी
11. माणजी
12. गिरधर जी
13. छगनलाल जी

(4) रामरतन जी का सम्प्रदाय

इनकी परम्परा प्राप्त नहीं है

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(4) हरजी ऋषि का सम्प्रदाय

हुक्मीचंदजी महाराज और उनका सम्प्रदाय - पंचम मुनि हरजी ऋषि की सम्प्रदाय परम्परा में कोटा सम्प्रदाय में 26 पंडित रत्न और एक साध्वी कुल 27 थे। इनमें पूज्य हुक्मीचंद जी एक आचारनिष्ठ विद्वान थे। आपका जन्म ढूंढाड़ (जयपुर राज्य) के टोडा नामक ग्राम में हुआ। संवत् 1877 में आप लालचंद जी महाराज के पास दीक्षित हुए। आपका स्वर्गवास जावर (मध्यभारत) में संवत् 1918 में हुआ।

शिवलाल जी महाराज - हुक्मीचंदजी के पश्चात् शिवलाल जी महाराज आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। संवत् 1934 में आपका स्वर्गवास हुआ। घाणिया (मालवा) आपकी जन्मभूमि थी।

हरजी ऋषि की दो शाखाएं प्रसिद्ध हैं।

1. कोटा सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा - दो
2. हुक्मीचंद जी महाराज की आचार्य परम्परा

(अ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

1. पूज्य हरजी ऋषि
2. गोदाजी ऋषि
3. परसराम जी महाराज
4. लोकमल जी महाराज
5. मायाराम जी महाराज
6. दौलतराम जी महाराज
7. गोविन्दराम जी महाराज
8. फतहचंद जी महाराज
9. ज्ञानचंद जी महाराज
10. छगनलाल जी महाराज
11. रोडमल जी महाराज
12. प्रेमराज जी
13. गणेशमलजी

(आ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

1. हरदास जी महाराज
2. गोदाजी
3. परसरामजी
4. खेमसी जी
5. खेतसी जी
6. फतहचंद जी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. अनोपमचंद जी
8. देवजी
9. चम्पालाल जी
10. चुन्नीलाल जी
11. किशनलाल जी
12. बलदेव जी
13. हरकचंद जी

हुक्मीचंद जी महाराज की आचार्य परम्परा- दो

(अ)
1. हरजी ऋषि
2. गोदाजी
3. परसराम जी
4. लोकमल जी
5. मायाराम जी
6. दौलतराम जी
7. लालचंद जी
8. हुक्मीचंद जी
9. शिवलाल जी
10. उदयसागर जी
11. चौथमल जी
12. श्रीलाल जी
13. जवाहरलाल जी
14. गणेश लाल जी (श्रमण संघ के उपाचार्य थे, अब उनके पट्ट पर नानालाल जी विद्यमान हैं, 1971)

(ब)
1. लालजी महाराज
2. मन्नालाल जी
3. खूबचंद जी
4. छगनलाल जी (किस्तूरचंदजी विद्यमान है, 1971)

(5) धर्मदास जी महाराज के सम्प्रदाय

धर्मदास जी महाराज का शिष्य समुदाय विशाल था। आपके निन्यानवे शिष्यों के नाम भी कहीं कहीं मिलते हैं। 'मरूधर पट्टावली' में पूज्य श्री के साथ दीक्षित होने वाले इक्कीस शिष्यों के नाम दिये हैं, इनमें से कई नाम ऐसे हैं- उस समय शायद जन्म भी हुआ होगा या नहीं, इसमें भी संदेह है।[1] पूज्य श्री का परिवार बाईस भागों में विभाजित होकर विचरण करता था। ये बाईस

1. सूर्यमुनिः श्रीमद् धर्मदास जी महाराज और उनकी मालव शिष्य परम्पराएं, पृ 83

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संघाड़े या बाईस सम्प्रदाय या बाईस टोला के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आचार्य हस्तीमल जी म.सा. ने बाईस समुदाय के नायक मुनि निम्नानुसार माने हैं।

1. पूज्य श्री मूलचंद जी महाराज
2. पूज्य श्री धन्ना जी महाराज
3. पूज्य श्री लालचंद जी महाराज
4. पूज्य श्री मन्नाजी महाराज
5. पूज्य श्री मोटा पृथ्वीचंद जी महाराज
6. पूज्य श्री छोटा पृथ्वीचंद जी महाराज
7. पूज्य श्री बालचंद जी महाराज
8. पूज्य श्री ताराचंद जी महाराज
9. पूज्य श्री प्रेमचंद जी महाराज
10. पूज्य श्री रेवतसी जी महाराज
11. पूज्य श्री पदार्थ जी महाराज
12. पूज्य श्री लोकमल जी महाराज
13. पूज्य श्री भवानीदास जी महाराज
14. पूज्य श्री मलूकचंद जी महाराज
15. पूज्य श्री पुरुषोत्तमजी महाराज
16. पूज्य श्री मुकुटराम जी महाराज
17. पूज्य श्री मनोहरदास जी महाराज
18. पूज्य श्री रामचंद्र जी महाराज
19. पूज्य श्री गुरुसदा साहिबजी महाराज
20. पूज्य श्री बाघजी महाराज
21. पूज्य श्री रामरतन जी महाराज
22. पूज्य श्री मूलचंद जी महाराज

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने स्वीकार किया कि हस्तलिखित पट्टावली में 4 नामों का उल्लेख कुछ भिन्न तरह से मिलता है। उसमें पहले श्री धर्मदास जी महाराज और इक्कीसवें समरथ जी का उल्लेख है। रामरतन जी का नाम नहीं मिलता, मूलचंद जी का नाम दो बार भ्रांति से लिखा मालूम होता है। इन 4 नामों में 1,2,6,17 और 18 के समुदाय आज भी वर्तमान है।[1]

धर्मदासजी मलराज के शिष्य श्री मूलचंद जी महाराज के 7 शिष्यों में से 6 शाखाएं अभी भी विद्यमान है

1. लीमडी 2. गोंडल 3. बखाला 4. वोटाद 5. सायला 6. कच्छ

---

1. आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज, आचार्य चरितावली, पृ. 147-148

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मदास जी महाराज के 22 शिष्यों में मूलचंदजी महाराज 7 शिष्यों में से 6 समुदाय विद्यमान है। इनकी परम्पराएं दी जा रही है।

धर्मदास जी महाराज की आचार्य परम्परा

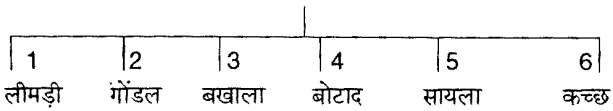

लीमड़ी

1. धर्मदास जी
2. मूलचंद जी
3. पंचाण जी
4. इच्छा जी
5. हीरा जी
6. कानजी
7. अजरामरजी
8. देवराज जी
9. गुलाबचंद जी

द्वितीय सम्प्रदाय

1. अजराम जी
2. देवराज जी
3. अविचतादास जी
4. हिमचंद जी
5. गौपाल जी
6. मोहनलाल जी
7. मणिलाल जी
   (विद्यमान 1947)

गोंडल

(क)

1. मूलचंद जी
2. पंचाण जी
3. रतन जी
4. डूंगरशी जी

(ख) कोई साधु विद्यमान नहीं

बखाला

1. धर्मदास जी

For Private and Personal Use Only

2. मूलचंद जी
3. बनाजी
4. पुरुषोत्तमजी
5. बनारसी जी
6. कानजी
7. रामरखा जी
8. चुन्नीलाल जी
9. उम्मेद चंद जी
10. मोहनलाल जी
(विद्यमान सन् 1971)

बार्टोद

1. धर्मदास जी
2. मूलचंद जी
3. विट्ठल जी
4. हरखजी
5. भूषणजी
6. रूपचंदजी
7. बसराम जी
8. जरसा जी
9. अमरसिंह जी

सायला

1. धर्मदास जी
2. मूलचंद जी
3. गुलाबचंद जी
4. बालजी
5. नागजी
6. मूलचंदजी
7. देवधर जी
8. मेघराज जी
9. संघजी
10. हरजीवन जी
11. मगनलाल जी
12. कान जी
14. कर्मचंद जी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कच्छ

(क) आठ कोठी मोटी पक्ष

1. धर्मदासजी
2. मूलचंद जी
3. इन्द्रचंद जी
4. सोनचंदजी
5. भगवती जी
6. धीमण जी
7. करसणजी
8. देवकरण जी
9. जहया जी
10. देव जी
11. रंग जी
12. केशव जी
13. करमचंद जी
14. देवराज जी
15. मौण जी
16. कममसी जी
17. प्रजपाल जी
18. कानमल जी

(ख) आठ कोटि नानीपक्ष

1. करसन जी
2. डाह्याजी
3. जसराज जी
4. बस्ता जी
5. हंसराज जी
6. ब्रजपाल जी
7. डूंगरशी जी
8. साम जी

धन्ना जी महाराज का परिवार

धर्मदास जी महाराज के परिवार में धन्ना जी महाराज हुए। आपने संवत् 1727 में धर्मदास जी महाराज के पास दीक्षा ली। आपका जन्म सांचोर में मूथा बाघाशाह के यहाँ हुआ। आपके बड़े शिष्य भूधर जी महाराज हुए, इनकी शिष्य परम्पराएं आज भी विद्यमान है। भूधर जी का जन्म मारवाड़ के ग्राम सोजत में हुआ। आपने संवत् 1773 में धन्ना जी के पास दीक्षा ली और 1804 में स्वर्गवासी हुए।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूधर जी महाराज की परम्पराएं

श्री रघुनाथ जी महाराज की समुदाय परम्परा

1. श्री धन्ना जी
2. श्री भूधरजी
3. श्री रघुनाथ जी
4. श्री टोडरमल जी
5. श्री दीपचंद जी
6. श्री भैंरोदास जी
7. श्री जैतसी जी
8. श्री फैजमल जी
9. श्री संतोषचंद जी
10. श्री मोतीलाल जी
11. श्री रूपचंद जी

उपशाखाएं

धन्ना जी के चौथे पाट पर टोडरमलजी के शिष्य इन्द्रमल जी के बाद दूसरे पाट से दो शाखाएं निकली, जिनमें महान् तपस्वी श्री भानमल जी और बुधमलजी हुए। बुधमल जी महाराज के शिष्य मरुधर केशरी मिश्रीलाल जी सा. विद्यमान हैं।[1]

भैरोंदास जी से चौथमल जी अलग हुए और चौथमल जी की शाखा अलग कही जाने लगी।

जैतसी महाराज की आचार्य परम्परा

धन्नाजी के सातवें पाट पर श्री जैतसी जी महाराज की परम्परा में श्री उम्मेदमल जी, श्री सुल्तानमलजी, श्री चतुर्भुज जी हुए। आगे साधु परम्परा नहीं रही।

जयमल जी महाराज की आचार्य परम्परा

1. श्री जयमल जी
2. श्री रायचंद जी
3. श्री आसकरणजी
4. श्री सबलदास जी
5. श्री हीराचंद जी
6. श्री कस्तूरचंद जी
7. श्री भीकम जी
8. श्री कानमल जी

---

1. आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज, आचार्य चरितावली, पृ 147-148

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वि.सं. 2009 के सादड़ी सम्मेलन में इस परम्परा के जसवंतमलजी ने अपने समुदाय को श्रमणसंघ में विलीन कर दिया।

पूज्य श्री कुशल जी महाराज और श्री रत्नचंदजी

1. श्री कुशल जी महाराज
2. श्री गुमानचंद जी महाराज
3. श्री दुर्गादास जी महाराज
4. श्री रत्नचंदजी महाराज
5. श्री हमीरमल जी महाराज
6. श्री कजोड़ीमल जी महाराज
7. श्री विनयचंद जी महाराज
8. श्री शोभाचंदजी महाराज
9. श्री हस्तीमल जी महाराज
10. श्री हीराचंद जी महाराज

पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की आचार्य परम्परा

1. श्री रघुनाथ जी महाराज
2. श्री टोडरमलजी
3. श्री दीपचंद जी
4. श्री भैरूंदास जी
5. श्री चौथमल जी महाराज

छोटा पृथ्वीराज जी महाराज की आचार्य परम्परा

1. श्री धर्मदास जी
2. श्री छोटा पृथ्वीराज जी
3. श्री दुर्गादास जी
4. श्री हरिदास जी
5. श्री गंगाराम जी
6. श्री रामचंद जी
7. श्री नारायणदास जी
8. श्री पूरामल जी
9. श्री रोड़मलजी
10. श्री नरसिंह दास जी
11. श्री एकलिंगदास जी
12. श्री मोतीलाल जी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनोहरदास जी महाराज का समुदाय परम्परा

1. श्री धर्मदास जी
2. मनोहरलाल जी
3. भागचंद जी
4. सीताराम जी
5. रामदयाल जी
6. लूणकरण जी
7. श्री रामसुखदास जी
8. श्री खयालीराम जी
9. श्री मंगल सेन जी
10. श्री मोतीराम जी
11. पृथ्वीचंदजी (उपाध्याय अमरमुनि विद्यमान है, सन् 1971)

श्री रामचंद जी महाराज का समुदाय

1. श्री धर्मदास जी
2. श्री रामचंद्र जी
3. श्री माणकचंद जी
4. श्री जसराज जी
5. श्री पृथ्वीचंद जी
6. श्री अमरचंद जी
7. श्री केशवजी
8. श्री मोखमासिंह जी
9. श्री नन्दलाल जी
10. श्री माधव मुनि जी
11. श्री चम्पालाल जी
12. श्री ताराचंद जी
13. श्री किशनलाल जी (मधुर व्याख्यानी सोभागमल जी महाराज विद्यमान है, 1971)

सन् 1971)

छठा समुदाय

धर्मदास जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। इसके दो विभाग हुए

(1) रामरतन जी महाराज का समुदाय

(2) ज्ञानचंद जी महाराज का समुदाय (समरथमल जी महाराज आज भी विद्यमान है, सन् 1971)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मसिंह जी महाराज के विविध सम्प्रदायों के अनेक आचार्यों और साधुओं के उपलब्ध परिचय दिये जा रहे हैं।

बोटाद सम्प्रदाय

जसराज जी महाराज - आप धर्मदासजी महाराज के पंचम पट्टधर आचार्य हुए। आपने विक्रम संवत् 1867 ई में दशरथमलजी महाराज सा. के पास दीक्षा ली। आप बोटाद में स्थिरवास के लिये आए, तब से इस सम्प्रदाय का नाम बोटाद सम्प्रदाय पड़ा। आपका स्वर्गवास 1929 में हुआ।

अमरशीजी महाराज - आपका जन्म क्षत्रिय वंश में वि.सं 1886 में हुआ। आप सं 1909 में पूज्य जसराज जी महाराज के पास दीक्षित हुए।

हीराचंद जी महाराज - आपका जन्म विक्रम संवत् 1928 में खेड़ा (मारवाड़) में हुआ। आप 1928 में रणछोड़दास जी महाराज के पास दीक्षित हुए।

मूलचंद जी स्वामी - वि.सं 1920 में नागभेद गांव में आपका जन्म हुआ और वि.सं 1948 में आप हीराचंद जी महाराज के पास दीक्षित हुए।

माणकचंद जी महाराज - आप बोटाद के पास तुरखा गांव में वि.स. 1938 में जन्मे और वि.स. 1903 में अमरशीजी महाराज के पास दीक्षित हुए।

शिवलाल जी महाराज - आप भावसार जाति कुल में उत्पन्न हुए और वि.सं 1974 में माणकचंद जी महाराज के पास दीक्षित हुए। आपकी प्रवचन शैली सरस और सुबोध थी।

धर्मदास जी महाराज का सम्प्रदाय

आचार्य भीखण जी - मरुभूमि में कंटालिया ग्राम में वि.सं 1787 में आपका जन्म हुआ। आप रघुनाथजी महाराज के शिष्य थे। आचार्य भीखण जी पूज्य रघुनाथ जी महाराज से सहमत नहीं थे, इसलिये आपने तेरापंथ नाम से अलग संघ बगड़ी में स्थापित किया।

चौथमल जी महाराज का सम्प्रदाय

रघुनाथ जी महाराज की शिष्य परम्परा से पूज्य धर्मदासजी महाराज के आठवें पट्ट पर आप विराजे। आप पूज्य भैरूमल जेी महाराज के शिष्य थे। आपके सम्प्रदाय में शार्दूलसिंह जी महाराज वि.सं. 1937 में जन्मे।

पूज्य रत्नचंद जी महाराज का सम्प्रदाय

पूज्य धन्ना जी के शिष्य पूज्य भूधरजी के शिष्य आचार्य कुशल जी हुए। कुशलजी के शिष्य गुमानचंद जी प्रभावशाली हुए। इनके शिष्यों में रत्नचंद जी महाराज से इस सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ।

रत्नचंद जी महाराज का जन्म राजस्थान में कुड़गांव में हुआ। नागौर के श्रीमंत सेठ ने

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपको गोद लिया। वि.सं 1948 में गुमानचंद जी महाराज के पास आप दीक्षित हुए। आपने आगमों का गम्भीर अध्ययन किया। आपने हजारों जैनेत्तरों को जैनधर्म की दीक्षा दी।1 सं 1902 में आप स्वर्ग प्रयाण कर गये।

आचार्य हमीरमत जी - ओसवंशीय गांधी गोत्रीय श्रेष्ठि नगराज जी के यहां नागौर में जन्मे। सं. 1863 में आचार्य रत्नचंद जी को भगवती दीक्षा दी। वे अपने युग के आदर्श संत माने जाते थे। संवत् 1902 में आप आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। 61 वर्ष की आयु में आपका समाधिमरण हुआ।

आचार्य कजोडीमल जी - आचार्य रतन्चंद जी की परम्परा के तृतीय पट्टधर थे। आपका जन्म किशनगढ़ के ओसवंशीय श्रेष्ठि शकुनलाल के घर हुआ। दीक्षा के समय विराधे के कारण से 1887 में न्यायाधीश की अनुमति से भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप संवत् 1910 में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आपके शासनकाल में 13 मुनि दीक्षाएं और 49 चातुर्मास हुए।

आचार्य विनयचंद जी का फलौदी के ओसवंशीय पूंगलिया गोत्रीय श्रेष्ठि प्रतापमल के यहाँ संवत् 1897 में जन्म हुआ। संवत् 1912 में आपने कजोड़ीमल जी भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप सवंत् 1937 में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आपकी आगम मर्यद्ता एवं सम्रण शक्ति विलक्षण की। आपका स्वर्गवास संवत् 1772 को हुआ।

शोभाचंद जी महाराज - पूज्य रत्नचंद जी महाराज के चौथे पट्ट पर आप आचार्य रूप में विराजे। आपका जन्म वि.सं 1914 में जोधपुर में हुआ। 13 वर्ष की अवस्था में कजोड़ीमल जी महाराज के श्रीचरणों में आप दीक्षित हुए। सं 1972 में चतुर्विध श्रीसघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। आप संवत् 1983 में समाधिमरण को प्राप्त हुए।

आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. - श्री रत्नचंद जी महाराज की आचार्य परम्परा श्री कुशल जी महाराज से प्रारम्भ हुई थी, किन्तु सम्प्रदाय का नामकरण रत्नचंद्र जी महाराज के नाम पर रत्नवंश पड़ा। इस वंश में नवें पाट पर शोभाचंद जी महाराज के शिष्य हस्तीमल जी म.सा. वि.सं 1967 पौष शुक्ल चतुर्दशी को पीपाड़ सिटी में ओसवंशीय केवलचंद जी बोहरा के यहाँ श्रीमती रूपकुंवर की कुक्षि से जन्मे। वि.सं 1977 माघ शुक्ला द्वितीय के अजमेर में आचार्य श्री शोभाचंद जी महाराज ने दीक्षा दी और वि.स. 1987 को आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आपने देश के विविध क्षेत्रों- राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में जैनमत की अलख जगाई। आपने 31 संत और 54 साधुओं को दीक्षित किया। आपका समाधिमरण वि.स. 2048 को प्रथम वैसाख शुक्ला अष्टमी को हुआ।

आचार्य हस्तीमलजी महाराज ने नन्दीसूत्र, वृहतकल्पसूत्र, अन्त:कृद्दशासूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र की टीकाएं लिखी। आपकी 'तत्वार्थसूत्र' पर लिखी टीका

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अप्रकाशित है। आपने 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' (चारखण्ड) लिखकर जैन इतिहास के लेखन में कीर्तिमान स्थापित किया। इसके अतिरिक्त 'ऐतिहासिक काल के तीन तीर्थंकर' और 'जैन आचार्य चरितावली' जैन इतिहास को अमूल्यसामग्री प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त आपके प्रवचन, पद, भजन, कथा-कहानियां आदि भी प्रकाशित हुए हैं। अनेक धार्मिक और शिक्षण संस्थाओं के आप प्रेरकसूत्र रहे।

आचार्य हस्तीमल जी के उत्तराधिकारी आचार्य हीराचंद जी म.सा. ने आचार्य हस्तीमलजी को जैन जगत की आलोकमय भास्कर कहा।[1] उपाध्याय मानचंद जी ने महाकल्प वृक्ष[2]; श्री ज्ञानमुनि ने इनके जीवन को जाज्ज्वल्यमान माना।[3] डा. सम्पतसिंह भाण्डावत ने संयम साधन, शुद्ध सात्विक साधु मर्यादा, विशिष्ट ज्ञान और ध्यान के श्रृंग, रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यचारित्र्य- आराधना में लीन समाधिस्थ योगी और आध्यात्मिकता के गौरव शिखर कहा।[4] प्रो. कल्याणमल लोढा में आचार्य श्री को श्रमण संस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक कहा। प्रो. लोढा के अनुसार उनका जीवन जिन सत्संकल्पों और आदर्शों से परिपूर्ण रहा, जिसमें कोमलता, करुणा का अजस्र प्रवाह बहता रहा- साधना के उच्चतम सोपान आते रहे-गुणों और लेश्याओं का तेज स्वतः खुलता रहा और लोक जीवन की नैतिक मर्यादाओं से हमें निस्तारण करने की अनवरत समीक्षा रही- वही तो सच्चा गुरु और आचार्य था।[5]

किसी ने प्रज्ञापुरुष कहा[6], किसी ने फक्कड़ संत[7], किसी ने धैर्य और भव्यता की मूर्ति[8], किसी ने युगान्तकारी विरल विभूति[9], किसी ने सरस्वती पुत्र[10], किसी ने ज्ञान का शिखर और साधना का श्रृंग[11], किसी ने जैनमत का दैदीप्यमान नक्षत्र[12], किसी ने इतिहास मनीषी[13] और किसी ने श्रमणसंस्कृति का गौरव कहा।

वस्तुतः आचार्य प्रवर का सम्पूर्ण जीवन मानव संस्कृति और समाज की मूल्यात्मक चेतना को, उसकी नैतिक अर्थवत्ता को, स्वस्थ मानसिकता को जागृत करने के लिये समर्पित था।[14]

---

1. जिनवाणी, आचार्य श्री हस्तीमल म.सा. श्रद्धांजलि विशेषांक, पृ 17
2. वही, पृ 19
3. वही, पृ 4
4. जिनवाणी, आचार्य हस्तीमलजी म.सा. व्यक्तित्व एवं कृतित्व विशेषांक, पृ 16
5. वही, पृ 29-30
6. जिनवाणी, श्रद्धांजलि विशेषांक, अपनी बात,
7. वही, पृ 30
8. वही, पृ 66
9. वही, पृ 67
10. वही, पृ 131
11. वही, पृ 135
12. वही, पृ 149
13. वही, पृ 164
14. प्रो. कल्याणमल लोढा, जिनवाणी, श्रद्धांजलि विशेषांक, मई, जून, जुलाई 91, पृ 46

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वस्तुत: आध्यात्मिकता के गौरव शिखर आचार्य हस्तीमल जी महाराज ने बीसवीं शताब्दी में श्रमण संस्कृति के इतिहास में नया अध्याय जोड़ा। नये सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के कारण आपके ओसवंशीय श्रावकों ने यह सिद्ध कर दिया कि ओसवंश श्रमण संस्कृति की सांस्कृतिक प्रयोगशाला है और ओसवंश केवल जैनमत का प्रतिरूप ही नहीं, किन्तु श्रेयस्कर अहिंसामूलक सांस्कृतिक मूल्यों का आदर्शात्मक और प्रतीकात्मक रूप है।

धर्मदास जी महाराज के सम्प्रदाय के कतिपय आचार्यों/मुनियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

मोतीरामजी महाराज - सं. 1925 में जयपुर राज्य के सिधोर ग्राम में आपका जन्म हुआ। संवत् 1941 में आप मंगलसेन जी महाराज की सेवा में दीक्षित हुए और संवत् 1988 में आचार्य पद प्राप्त किया। आपको आगमों का गम्भीर ज्ञान था और ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। संवत् 1992 में आपका स्वर्गवास हुआ।

रामचंद्रजी महाराज - पूज्य धर्मदास जी के दूसरे पट्ट पर आप आचार्य रूप में विराजे। आप धारा नगरी के गोस्वामी गुरु और वेद वेदांगों के पण्डित थे। आप सनातनी से जैन साधु हुए और प्रतिभाशाली बुद्धि वैभव से सम्मानीय आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

कविराज माधव मुनि - प्रवचन कला में निष्णात माधव मुनि प्रभावशाली आचार्य हुए हैं।

ताराचंद जी महाराज - आप वि.स. 1946 में दीक्षित हुए। आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में आपने जैनमत का प्रचार किया।

लिम्बड़ी का बड़ा सम्प्रदाय

पू अजरामरजी की परम्परा - धर्मदास जी के 4 शिष्यों में 21 तो पंजाब-राजस्थान में फैले और एक सौराष्ट्र में। सौराष्ट्र के मुनि का नाम मूलचंद जी महाराज था। आपके सात शिष्यों में विशाल संघ के संस्थापक थे - अजरामर जी। जामनगर के पास पड़ावा गांव में वि.सं. 1801 में आपका जन्म हुआ। वि.सं 1845 में आप आचार्य पद पर आसीन हुए।

इसके पाट पर कई आचार्य हुए
सं 1562 में नानक जी के पाटे रूप जी
1587 जीवराज जी के पाटे बड़वीर जी
1605 जसवंत जी
1616 रूपजी स्वामी
1656 धनराज जी स्वामी
1678 चिन्तामणि स्वामी
1693 खेमकरणजी स्वामी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लाघाजी स्वामी - कच्छ गुंदाले ग्राम में जन्मे, सं 1903 में बीकानेर में दीक्षित हुए और संवत् 1963 में आचार्य पद पर विराजे। प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रज्ञ छोटेलालजी आपके शिष्य रहे।

देवचंदजी स्वामी - सं 1902 में आप कच्छ के समाणिया गांव में जन्में, दंगजी स्वामी से 3 वर्ष की आयु में दीक्षित हुए और संवत् 1977 में स्वर्गवासी हुए।

गुलाबचंद जी महाराज - सं 1921 में मारोला ग्राम में जन्म सं 1988 में आचार्य पद प्राप्त किया। संस्कृत और प्राकृत के आप प्रकाण्ड पण्डित थे।

नागजी स्वामी - नागजी स्वामी विद्वत्ता, गाम्भीर्य और आचार विचार के प्रतिमान थे। लिम्बड़ी में आप दीक्षित हुए और वहीं स्वर्गवासी भी।

रत्नचंदजी महाराज - संवत् 1936 में मारोला कच्छ में जन्में, गुलाबचन्द महाराज के चरणों में अध्ययन किया, 'अर्धमागधी कोश' बनाकर आगमों के अध्ययन का मार्ग सरल और सुगम बनाया, 'जैन सिद्धान्त कोमुदी' के नाम से प्राकृत व्याकरण तैयार किया और जयपुर में आपको 'भारतरत्न' की उपाधि दी गई।

लिंबड़ी छोटे सम्प्रदाय की परम्परा

हीमचंद जी महाराज - आप मुनि अविचलदास जी के चरणों में दीक्षित हुए। आपका जन्म वणिक श्रीमाली के घर हुआ। वि.सं 1875 में आपने पंच महाव्रत धारण किये। आपका स्वर्गवास वि.सं 1929 को हुआ और आपके पट्ट पर गोपालजी स्वामी नाम के आचार्य हुए।

गोपालजी स्वामी - ब्रह्मक्षत्रिय वंशी घर में आप वि.सं 1886 में जन्में, 10 वर्ष की अवस्था में दीक्षित हुए, सूत्रों का गहन अध्ययन किया और वि.सं 1940 में स्वर्गवासी हुए।

मोहनलाल जी स्वामी - ओसवाल कोठारी परिवार में आप घोलेटा में जन्मे, वि.सं 1938 में दीक्षित हुए और आपकी लेखन शक्ति प्रबल थी।

मणिलाल जी स्वामी - वि.सं 1946 में आप धोलेरा में दीक्षित हुए, 'प्रभुवीर पट्टावली' जैसा ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की, अजमेर के साधु सम्मेलन में शांतिरक्षक बने और वि.सं 1886 में स्वर्गवासी हुए। आपके सम्प्रदाय में उत्तमचंद जी महाराज और केशवलाल जी महाराज हुए।

गोंडल सम्प्रदाय

पूज्य डूंगरशी स्वामी - आप गोंडल सम्प्रदाय के आद्य संत थे। आपका जन्म सौराष्ट्र के मेंदाराण्डा ग्राम में हुआ। 25 वर्ष की आयु में पंचमहाव्रत धारण किया, वि.सं 1845 में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और प्रख्यात सेठ सौभागचंद्र जी आपके शिष्य थे। आपका स्वर्गवास गोंडल में संवत् 1877 में हुआ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गणेशजी स्वामी - राजकोट के पास खेरड़ी ग्राम आपकी जन्मभूमि थी और आपका समाधिकरण वि.सं 1866 में हुआ।

खोड़ाजी स्वामी - मूलजी स्वामी के शिष्य पूज्य डोलाजी स्वामी के चरणों में आप संवत् 1908 में दीक्षित हुए। आप सुकवि और गायक थे।

पूज्य जसाजी महाराज - आप राजस्थान में जन्में, किन्तु गुजरात-सौराष्ट्र में प्रसिद्ध हुए। आप वि.सं. 1907 में दीक्षित हुए। आपके गुरुभाई हीराचंद जी स्वामी के शिष्य देवजी स्वामी हुए। इनकी सेवा में अंबा जी स्वामी हुए। अंबाजी स्वामी के शिष्य भीमजी स्वामी हुए। इनके शिष्य क्रमश: नेणजी स्वामी, देवजी स्वामी, जयचंदजी स्वामी और मणिकचंद जी स्वामी हुए।

जयचंदजी स्वामी - श्रीमाली सेठ प्रेमजी भाई के घर में जैतपुर में आपका जन्म संवत् 1906 में हुआ। मेंढणा ग्राम में आप 32 वर्ष की आयु में दीक्षित हुए। अनेक शिक्षण संस्थाओं के जन्मदाता मुनि प्राणलाल जी जैसे मुनिराज आपने ही स्थानकवासी समाज को भेंट दिये।

माणकचंद जी महाराज - आपका आगम ज्ञान विस्तृत था। योग में प्रवीण माणकचंद जी अनेक शिक्षण संस्थाओं के प्रेरणा स्रोत बने। सौराष्ट्र के मुनियों में आप अग्रगण्य माने जाते हैं।

नागजी स्वामी की परम्परा

बालजी स्वामी के शिष्य नागजी स्वामी ने वि.सं 1872 में इस परिवार की स्थापना की। ज्योतिष शास्त्रज्ञ मेघराज जी और लोकप्रिय प्रवचनकर्त्ता पूज्य संघजी आपके ही परिवार में हुए।

उदयसागर जी महाराज - जोधपुर में उदयसागर जी का जन्म हुआ। आपने संवत् 1897 में भगवती दीक्षा ग्रहण की। आप जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न, शरीर सम्पन्न, वचनसम्पन्न और वाचनासम्पन्न प्रभावशाली आचार्य हुए। मुनि चौथमल जी को आचार्त्व प्रदान कर संवत् 1954 में रतलाम शहर में आपका स्वर्गवास हुआ।

चौथमल जी महाराज - आपका जन्म पाली (राजस्थान) में हुआ। आप शिथिलाचारिता के घोर विरोधी थे।

श्रीलाल जी महाराज - आपका जन्म टोंक (राजस्थान) में हुआ। आपके आचार्यत्व में सम्प्रदाय की कीर्ति में अभिवृद्धि होने लगी। 51 वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ।

शास्त्रविशारद मुन्नालाल जी महाराज - लालजी महाराज के पश्चात् यह सम्प्रदाय दो भागों में बँट गया। आप आचार्य मुन्नालाल प्रकृति से नम्र और शास्त्रों के परम मर्मज्ञ थे। अधिकांश सूत्र आपको कंठस्थ थे। आप ब्यावर में स्वर्ग सिधारे।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नंदलाल जी महाराज - नंदलाल जी महाराज का पूरा घर दीक्षित था। कविवर हीरालाल जी आपके भ्राता थे। आप तपस्वी, निर्मल और तीव्र बुद्धिशाली थे। आपका समाधिमरण रतलाम में 1993 में हुआ।

जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज - बालब्रह्मचारी जवाहरलाल जी महाराज का जन्म संवत् 1932 में हुआ। पूज्य लाल जी महाराज के पश्चात् आप ही इस सम्प्रदाय के आचार्य बने। 'सूत्रकृतांग' आपने विस्तृत टीका लिखी। 'लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, वल्लभभाई पटेल, पं. मदनमोहन मालवीय और कविवर नानालाल जी ने आपके प्रवचनों का लाभ प्राप्त किया।'[1] 23 वर्ष तक आचार्य पद का निर्वहन कर आप संवत् 2000 में स्वर्ग सिधारे।

पू. श्री खूबचंद जी महाराज - आपका जन्म निम्बाहेड़ा (राजस्थान) में संवत् 1930 की कार्तिक शुक्ला 8 को हुआ। पूज्य मुन्ना लाल जी के पश्चात् आपको आचार्य पद पर अभिषिक्त किया गया। आपकी दीक्षा मुनि नंदलाल जी के करकमलों से 4 वर्ष की अवस्था में नीमच में हुई। ब्यावर में संवत् 2002 के चैत्र शुक्ला 3 को आपका समाधिमरण हुआ।

वक्ता मुनि श्री चौथमल जी महाराज - जगत वल्लभ जैन दिवाकर चौथमल जी महाराज हीरालाल जी महाराज के पास दीक्षित हुए। आपकी व्याख्यान शैली से प्रभावित होकर बड़े बड़े राजाओं-महाराजाओं ने मद्यमांस और जीवहिंसा का त्याग किया। आप जैन और जैनेतर सभी सम्प्रदायों में परमप्रिय थे। आपका स्वर्गवास कोटा में हुआ।

दौलतराम जी महाराज - संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित दौलतराम जी महाराज हरती ऋषि के बड़े पाट पर विराजे। आपकी ही सेवा में रहकर अजरामर जी महाराज ने शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

स्थानकवासी अधिवेशन

स्थानकवासी परम्परा के श्रमणवर्ग ने विभिन्न सम्प्रदायों में एकता के लिये कई अधिवंश किये जिसमें निम्नांकित मुख्य हैं

प्रथम अधिवेशन	-	मोरवी
द्वितीय अधिवेशन	-	रतलाम
तृतीय अधिवेशन	-	अजमेर
चतुर्थ अधिवेशन	-	जालंधर
पंचम अधिवेशन	-	सिकन्दराबाद
षष्ट अधिवेशन	-	मलकापुर
सप्तम अधिवेशन	-	बम्बई
अष्टम अधिवेशन	-	बीकानेर
नवम् अधिवेशन	-	अजमेर
दशम् अधिवेशन	-	घाटकोपर, बम्बई

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्यारहवां अधिवेशन - मद्रास में

प्रथम अधिवेशन 26, 27, 28 फरवरी, 1906 को मोरवी में हुआ। दुर्लभजी झवेरी, फादर ऑफ दी कांफ्रेंस थे। अजमेर के रायसाहब सेठ चांदमल जी को प्रमुख बनाया गया। इस अधिवेशन से साधु संस्था और श्रावक संघ का विशाल परिचय प्राप्त हुआ।

द्वितीय अधिवेशन, रतलाम में 27, 28, 29 मार्च 1908 को हुआ। इसके प्रमुख सेठ केवलचंदजी त्रिभुवनदास जी थे। इसमें स्पष्ट कहा गया कि जैन कोई जाति न थी, जैन कोई बाड़ा न थी, जैन कोई देश न थी, जैन सघली जाति मा छै।

तृतीय अधिवेशन 10, 3, 12 मार्च 1909 को हुआ। इसके प्रमुख बाल मुकुन्दजी सतारा वाले थे।

चतुर्थ अधिवेशन जालंधर में 27, 28, 29 मार्च 1910 को हुआ। इसके प्रमुख उम्मेदमलजी लोढ़ा थे।

पंचम अधिवेशन सिकन्दराबाद में 12, 13, 14 अप्रेल 1913 को हुआ। इसके प्रमुख बलगांव के लछमनदास मुलतानमल थे।

षष्ट अधिवेशन मलकापुर में 7, 8, 9 जून 1924 को हुआ। इसके प्रमुख दानवीर सेठ मेघजी थोमण थे।

सातवें आठवें अधिवेशन में क्रमशः अगरचंद भैरूदान सेठिया और वा. मो शाह सभापति पद पर विराजे।

अजमेर का साधु सम्मेलन स्थानकवासी साधु समाज की महत्वपूर्ण घटना है। यह सम्मेलन 5 अप्रेल 1933 से प्रारम्भ होकर 19 अप्रेल, 1933 को समाप्त हुआ। इसमें स्थानकवासी समुदाय के 30 में से 26 सम्प्रदायों ने भाग लिया। इसमें 463 साधु 332 साध्वियों ने भाग लिये।

दसवां अधिवेशन घाटकोपर में हुआ। इसके प्रमुख सेठ वीर चंद्र भाई मेघजी थोमण थे।

ग्यारहवां अधिवेशन मद्रास में हुआ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया इसके प्रमुख थे।

बारहवां अधिवेशन सादड़ी में हुआ। जो बीज अजमेर सम्मेलन में बोया गया था, अब उसका फल सादड़ी में प्राप्त हुआ। इस सम्मेलन में जैनधर्म दिवाकर आचार्य आत्माराम जी महाराज को आचार्य मान लिया गया। श्री गणेशीलाल जी महाराज के लिये उपाचार्य का पद नियत किया गया। उस समय 16 मंत्री बनाए गये, किन्तु 13 ने ही दायित्व संभाला।

1. प्रायश्चित श्री आनन्द ऋषि जी महाराज- प्रधानमंत्री

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

	श्री हस्तीमल जी महाराज- सहमंत्री
2. दीक्षा	श्री सहस्रमलजी महाराज
3. सेवा	श्री शुक्लचंदजी महाराज
	श्री किशनलाल जी महाराज
4. चातुर्मास	श्री प्यारचंद जी महाराज- सहमंत्री
	श्री पन्नालाल जी महाराज
5. विहार	श्री मोतीलालजी महाराज
	श्री मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी महाराज
6. आक्षेप निवारक	श्री पृथ्वीचंद जी महाराज
	श्री पुष्करमुनि जी महाराज
7. प्रचारक	श्री प्रेमचंदजी महाराज
	श्री फूलचंद जी महाराज

इस सम्मेलन में फूट और विद्वेष के स्थान पर प्रेम और एकता स्थापित हो गई। और इस तरह वर्धमान स्थानकवासी जैन समाज अस्तित्व में आया।

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस का प्रथम अधिवेशन सादड़ी में और दूसरा 17 फरवरी 1953 को सोजत में हुआ। इस सम्मेलन में प्रधानमंत्री आनन्दऋषिजी महाराज, उपाचार्य गणेशीलाल जी महाराज, कविवर अमर मुनि जी महाराज, सहमंत्री हस्तीमलजी महाराज, शांतिरक्षक मदनलाल जी महराज- इस पांच संतों के एकत्रित चातुर्मास का निर्णय हुआ और जोधपुर संघ की विनती मान ली गई।

परमपूज्यपाद श्री अमोलक ऋषि जी महाराज ने 32 आगमों को हिन्दी भाषा में अनूदित करके, महावीर की वाणी को सर्वजनहिताय बताया।[1] शतावधानी रत्नचंद जी महाराज का साहित्य और 'अर्धमागधी कोश' साहित्य क्षेत्र की अमूल्य निधि है।[2] आचार्य हस्तीमलजी महाराज ने जैनधर्म का मौलिक इतिहास- चार खण्ड में लिखकर जैनमत के इतिहास में एक युगान्तर उपस्थित किया।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी समाज का अजमेर साधु सम्मेलन भी वलभी वाचना के बाद की महत्वपूर्ण घटना है। इसमें निम्नांकित सम्प्रदाय के साधु, साध्वियां सम्मिलित हुए।

इस प्रकार अधिवेशन लगातार होते रहे- राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर। अंतिम क्षेत्रीय साधु सम्मेलन नासिक में 16-17 जनवरी 99 को आचार्य प्रवर देवेन्द्र मुनि जी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें युवाचार्य डॉ. शिवमुनि, उपाध्याय श्री विशाल मुनि, महामंत्री श्री सौभाग्य मुनि, श्री

---

1. मुनि सुशील कुमार, जैन धर्म का इतिहास, पृ 533
2. वही, पृ 535

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रशांत ऋषि जी और श्री राजेन्द्र मुनि के अतिरिक्त विदुषी महासती श्री दिलीपकुंवरजी, महासती श्री चंदनाजी, महासती श्री अर्चनाजी, महासती श्री किरणसुधाजी और महासती श्री चरित्र प्रभाजी ने भाग लिया।[1]

अजमेर सम्मेलन में सम्मिलित विभिन्न स्थानकवासी सम्प्रदायों के आचार्यों और मुनिराज की सूची

(1) पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज का सम्प्रदाय (दरियापुरी)

मुनि 20, आर्याजी 59, कुल 79

1. मुनि श्री पुरुषोत्तजी महाराज — प्रतिनिधि
2. मुनि श्री पंडित हर्षचंद्रजी महाराज — प्रतिनिधि
3. मुनि श्री सुन्दरजी महाराज — प्रतिनिधि
4. मुनि श्री भाग्यचन्द्रजी महाराज — प्रतिनिधि
5. मुनि श्री चुन्नीलालजी महाराज
6. मुनि श्री नानचन्द्रजी महाराज
7. मुनि श्री छोटालालजी महाराज

गुजरात

(2) श्री खंभात सम्प्रदाय

मुनि 8, आर्याजी 10, कुल 18

1. पूज्य श्री छगनलालजी महाराज — प्रतिनिधि
2. मुनि श्री रतनचन्द्रजी महाराज — प्रतिनिधि
3. मुनि श्री गुलाबचन्द्रजी महाराज
4. मुनि श्री बेचरलालजी महाराज
5. मुनि श्री खोडाजी महाराज

काठियावाड़

(3) श्री लींबडी मोटो सम्प्रदाय

मुनि 29, आर्याजी 66, कुल 95

1. तपस्वी मुनि श्री शामजी महाराज, — प्रतिनिधि
2. शता. पं. मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म. — प्रतिनिधि
3. कवि पं. मुनि श्री नानचन्द्रजी म. — प्रतिनिधि
4. मुनि श्री अनूपचन्द्रजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

5. मुनि श्री लालचन्द्रजी महाराज
6. मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज
7. मुनि श्री चुन्नीलालजी महाराज
8. मुनि श्री कपूरचन्दजी महाराज
9. मुनि श्री सौभाग्यचन्द्रजी म. प्रतिनिधि
10. मुनि श्री पूनमचन्द्रजी महाराज
11. मुनि डुंगरशी महाराज

काठियावाड़

(4) श्री लींबडी नानो सम्प्रदाय

मुनि 7, आर्याजी 19, कुल 26

1. मुनि श्री पं. मणिलालजी महाराज, प्रतिनिधि
2. मुनि श्री मेघराजजी महाराज
3. मुनि श्री त्रिभुवनजी महाराज
   मुनि श्री पूनमचन्द्रजी महाराज प्रतिनिधि

(लींबडी मोटा सम्प्रदाय)

काठियावाड़

(5) श्री गोंडल सम्प्रदाय

मुनि 20, आर्याजी 66, कुल 86

*1. मुनिश्री पुरुषोत्तमजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनिश्री छगनलालजी महाराज

काठियावाड़

(6) श्री बोटाद सम्प्रदाय

मुनि 10, आर्याजी 0, कुल 10

1. प्र. मुनिश्री माणकचन्द्रजी महाराज, प्रतिनिधि
2. मुनि श्री कानजी महाराज
*3. मुनि श्री शिवलालजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

*प्रतिनिधि श्री सायला सम्प्रदाय

काठियावाड़

(7) श्री सायला सम्प्रदाय

मुनि 4, आर्याजी 0, कुल 4

मुनि श्री शिवलालजी महाराज, प्रतिनिधि
(बोटाद सम्प्रदायना)

कच्छ

(8) श्री कच्छ आठ कोटी मोटी पक्ष

मुनि 4, आर्याजी 36, कुल 58

1. युवाचार्य्य श्री नागचन्द्रजी महाराज, प्रतिनिधि
2. मुनि श्री चतुरलालजी महाराज, प्रतिनिधि
3. मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज, प्रतिनिधि

मालवा-मारवाड़

(9) पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज नी सम्प्रदाय

मुनि 65, आर्याजी 30, कुल 175

1. पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज, प्रतिनिधि
2. मुनि श्री मोडीलालजी महाराज
3. मुनि श्री (बड़े) गब्बूलालजी महाराज
4. मुनि श्री हर्षचन्द्रजी महाराज कोटा
5. मुनि श्री भूरालालजी महाराज सम्प्रदाय
6. मुनि श्री मांगीलाल महाराज
7. युवाचार्य मुनि श्री गणेशीलालजी महाराज
8. मुनि श्री शांतिलालजी महाराज
9. मुनि श्री बख्तावरमलजी महाराज
10. मुनि श्री श्रीचन्दजी महाराज
11. मुनि श्री (छोटे) गब्बूलालजी महाराज
12. मुनि श्री मनोहरलालजी महाराज
13. मुनि श्री पन्नालालजी महाराज
14. मुनि श्री चौथमलजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

15. मुनि श्री मानमलजी महाराज
16. मुनि श्री सागरमलजी महाराज
17. मुनि श्री सिरदारमलजी महाराज
18. मुनि श्री सिरहमलजी महाराज
19. मुनि श्री जेठमलजी महाराज
20. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
21. तपस्वी मुनि श्री केसरीमलजी महाराज
22. तपस्वी मुनि श्री सुन्दरलालजी महाराज
23. मुनि श्री मोहनलालजी महाराज
24. मुनि श्री जीवणलालजी महाराज
25. मुनि श्री सुगालचंदजी महाराज
26. मुनि श्री जवरीलालजी महाराज
27. मुनि श्री धनराजजी महाराज
28. मुनि श्री चुन्निलालजी महाराज
29. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
30. मुनि श्री अम्बालालजी महाराज
31. मुनि श्री मंगलचंदजी महाराज
32. मुनि श्री नन्दलालजी महाराज
33. मुनि श्री परतापमलजी महाराज
34. मुनि श्री श्रेमलजी महाराज
35. मुनि श्री चाँदमलजी महाराज
36. मुनि श्री छोटे घासीलालजी महाराज
37. मुनि श्री किसनचंदजी महाराज
38. मुनि श्री गुलाबचंदजी महाराज
39. मुनि श्री हेमचंदजी महाराज
40. मुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज
41. मुनि श्री सूरजमलजी महाराज

राजपूताना-मालवा

(10) पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 44, आर्याजी 31, कुल 75

1. पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज प्रतिनिधि
2. उपा. मुनि श्री खूबचंदजी महाराज प्रतिनिधि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

3. प्रसिद्ध वक्ता मुनि श्री चौथमलजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री शंकरलालजी महाराज
5. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
6. मुनि श्री केसरीमलजी महाराज
7. मुनि श्री हर्षचन्दजी महाराज
8. मुनि श्री हजारीमलजी महाराज
9. पण्डित मुनि श्री छगनलालजी महाराज
10. मुनि श्री नाथुलालजी महाराज
11. मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज
12. मुनि श्री मयाचन्दजी महाराज
13. मुनि श्री सेसमलमी महाराज प्रतिनिधि
14. मुनि श्री वृद्धिचन्दजी महाराज
15. मुनि श्री सोभालालजी महाराज
16. मुनि श्री छबालालजी महाराज
17. मुनि श्री नाथुलालजी महाराज
18. मुनि श्री रामलालजी महाराज
19. मुनि श्री मगनलालजी महाराज
20. मुनि श्री परतापमलजी महाराज
21. मुनि श्री हीरालालजी महाराज
22. मुनि श्री चम्पालालजी महाराज
23. मुनि श्री केवलचन्दजी महाराज
24. मुनि श्री वकतावरमलजी महाराज
25. मुनि श्री राजमलजी महाराज
26. मुनि श्री विजयराजजी महाराज
27. मुनि श्री मोहनलालजी महाराज
28. मुनि श्री सोहनलालजी महाराज
29. मुनि श्री हुकमीचन्दजी महाराज
30. मुनि श्री भैरूंलालजी महाराज
31. मुनि श्री जवाहिरलालजी महाराज
32. मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज
33. मुनि श्री किसनलालजी महाराज
34. मुनि श्री श्रीचन्दजी महाराज
35. मुनि श्री शांतिलालजी महाराज
36. मुनि श्री सुखलालजी महाराज
37. मुनि श्री कालुलालजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अजमेर-मेरवाड़ा

(11) पूज्य श्री नानकरामजी महाराज नी सम्प्रदाय

मुनि 5, आर्याजी 10, कुल 15

1. प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री हगामीलालजी महाराज प्रतिनिधि
3. मुनि श्री छोटूमलजी महाराज
4. मुनि श्री देवीलालजी महाराज

मेरवाड़ा-मारवाड़

(12) पूज्य श्री स्वामीदासजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 5, आर्याजी 12, कुल 17

1. प्रवर्तक मुनि श्री फतहलालजी म. प्रतिनिधि
2. मुनि श्री छगनलालजी महाराज प्रतिनिधि
3. मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज
4. मुनि श्री गणेशमलजी महाराज
5. मुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज

मारवाड़

(13) पूज्य श्री रतनचंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 9, आर्याजी 38, कुल 47

1. पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री सुजानमलजी महाराज
3. मुनि श्री भोजराजजी महाराज
4. मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज
5. मुनि श्री लाभचन्द्रजी महाराज
6. मुनि श्री चौथमलजी महाराज प्रतिनिधि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज बड़े
8. मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज छोटे

मारवाड़

(14) पूज्य श्री ज्ञानचंदजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 13, आर्याजी 105, कुल 38

1. मुनि श्री पूरणमलजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री इन्द्रमलजी महाराज प्रतिनिधि
3. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री सिरेमलजी महाराज प्रतिनिधि
5. मुनि श्री समरथमलजी महाराज प्रतिनिधि
6. मुनि श्री सिरदारमलजी महाराज
7. मुनि श्री चाँदमलजी महाराज
8. मुनि श्री रतनलालजी महाराज
9. मुनि श्री सूरजमलजी महाराज
10. मुनि श्री रामलालजी महाराज

मारवाड़

(15) पूज्य श्री मारवाड़ी चौथमलजी महाराज नी सम्प्रदाय

मुनि 3, आर्याजी 15, कुल 18

मुनि श्री चाँदमलजी महाराज प्रतिनिधि
(पू. जयमलजी म. नी सम्प्रदाय ना)

1. मुनि श्री रूपचन्दजी महाराज प्रतिनिधि

मारवाड़

(16) पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 9, आर्याजी 81, कुल 90

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. प्रवर्तक मुनि श्री दयालचन्द्रजी म. प्रतिनिधि
2. मुनि श्री मंत्री ताराचन्दजी म. प्रतिनिधि
3. मुनि श्री हेमराजजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री हंसराजजी महाराज
5. मुनि श्री नारायणदासजी म. प्रतिनिधि
6. मुनि श्री प्रतापमलजी महाराज
7. मुनि श्री पुखराजजी महाराज

मारवाड़

(17) पूज्य श्री रुघनाथजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 4, आर्याजी 15, कुल 19

1. प्रवर्तक मुनि श्री धीरजमलजी म. प्रतिनिधि
2. मन्त्री मुनि श्री मिश्रीमलजी म. प्रतिनिधि
3. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
4. मुनि श्री पुखराजजी महाराज

मारवाड़

(18) पूज्य श्री जयमलजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 13, आर्याजी 90, कुल 103

1. प्रवर्तक मुनि श्री हजारीमलजी म. प्रतिनिधि
2. मुनि श्री गणेशमलजी महाराज प्रतिनिधि
3. मंत्री मुनि श्री चौथमलजी म. प्रतिनिधि
4. मुनि श्री वक्तावरमलजी महाराज प्रतिनिधि
5. मुनि श्री चांदमलजी महाराज प्रतिनिधि
6. मुनि श्री ब्रजलालजी महाराज
7. मुनि श्री चैनमलजी महाराज
8. मुनि श्री धनराजमलजी महाराज
9. मुनि श्री जीतमलजी महाराज
10. मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

11. मुनि श्री लालचन्द्रजी महाराज

मेवाड़

(19) पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 8, आर्याजी 35, कुल 43

1. मुनि श्री जोधराजजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज
3. मुनि श्री विरदीचन्द्रजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री भेरूलालजी महाराज

मेवाड़

(20) पूज्य श्री शीतलदासजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 5, आर्याजी 3, कुल 16

1. मुनि श्री कजोड़ीमलजी महाराज
2. मुनि श्री भूरालालजी महाराज प्रतिनिधि
3. मुनि श्री छोगालालजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री गोकलचन्दजी महाराज
5. मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज

मालवा अने दक्षिण

(21) पूज्य श्री अमोलखऋषिजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 24, आर्याजी 81, कुल 105

1. पूज्य श्री अमोलखऋषिजी महाराज, प्रतिनिधि
2. तपस्वी मुनि श्री देवजीऋषिजी महाराज, प्रतिनिधि
3. पं. रत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म., प्रतिनिधि
4. मुनि श्री माणकऋषिजी महाराज
5. आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी म. प्रतिनिधि
6. मुनि श्री लक्ष्मीऋषिजी महाराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. मुनि श्री विनयऋषिजी महाराज प्रतिनिधि
8. मुनि श्री मनसुखऋषिजी महाराज
9. मुनि श्री उत्तमऋषिजी महाराज
10. मुनि श्री तुलाऋषिजी महाराज
11. मुनि श्री कल्याणऋषिजी महाराज
12. मुनि श्री वृद्धिऋषिजी महाराज
13. मुनि श्री मुल्तानऋषिजी महाराज
14. मुनि श्री समर्थऋषिजी महाराज
15. मुनि श्री शांतिऋषिजी महाराज
16. मुनि श्री फतहऋषिजी महाराज

1. मुनि श्री कल्याणजी महाराज ऋषि सम्प्रदाय
2. मुनि श्री चुन्नीलालजी माहराज नी नेश्राय मां

मालवा

(22) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 15, आर्याजी 74, कुल 89

1. प्रवर्त्तक मुनि श्री ताराचन्दजी म. प्रतिनिधि
2. मुनि श्री किशनलालजी महाराज प्रतिनिधि
3. पं. मुनि श्री सौभागमलजी महाराज प्रतिनिधि
4. मुनि श्री बच्छराजजी महाराज
5. मुनि श्री सूरजमलजी महाराज
6. मुनि श्री कुन्दनमुनि महाराज
7. मुनि श्री रूपचन्द्रजी महाराज
8. मुनि श्री नगीन मुनि महाराज
9. मुनि श्री माणक मुनि महाराज
10. मुनि श्री हीरा मुनि महाराज
11. मुनि श्री विनय मुनि महाराज

मालवा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(23) श्री रामरतनजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 3, आर्याजी 2, कुल 5

1. मुनि श्री मोतीलालजी महाराज
2. मुनि श्री धनसुखजी महाराज, प्रतिनिधि

कोटा (हाड़ौती)

(24) पूज्य श्री दोलतरामजी म. (कोटा) नी सम्प्रदाय

मुनि 13, आर्याजी 26, कुल 39

1. पं. मुनि श्री रामकुमारजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री विरदीचन्द्रजी महाराज प्रतिनिधि
3. मुनि श्री रामनिवासजी महाराज
4. मुनि श्री तपस्वी हजारीमलजी महाराज
5. मुनि श्री जवाहरलालजी महाराज
6. मुनि श्री तपस्वी देवीलालजी म. प्रतिनिधि
7. मुनि श्री जीवराजजी महाराज

पंजाब

(25) पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज नी सम्प्रदाय

मुनि 73, आर्याजी 60, कुल 133

1. गणि मुनि श्री उदयचन्दजी म.	प्रतिनिधि
2. उपाध्याय मुनि श्री आत्मारामजी महाराज	प्रतिनिधि
3. मुनि श्री कुन्दन लालजी महाराज	
4. युवाचार्य मुनि श्री काशीरामजी म.	प्रति.
5. मुनि श्री भागमलजी महाराज	
6. मुनि श्री हर्षचन्दजी महाराज	
7. मुनि श्री मदनलालजी महाराज	प्रतिनिधि
8. मुनि श्री रामजीलालजी महाराज	प्रतिनिधि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

9. मुनि श्री निहालचन्दजी महाराज
10. मुनि श्री कस्तूरचन्दजी महाराज
11. मुनि श्री कपूरचन्दजी महाराज
12. मुनि श्री रघुवरदयालजी महाराज
13. मुनि श्री हेमचन्द्रजी महाराज
14. मुनि श्री तिलोकचन्दजी महाराज
15. मुनि श्री दुर्गादासजी महाराज
16. मुनि श्री माणकचन्दजी महाराज
17. मुनि श्री निरंजनमलजी महाराज
18. मुनि श्री टेकचन्दजी महाराज
19. मुनि श्री प्रेमचन्दजी महाराज
20. मुनि श्री पार्श्वचन्दजी महाराज
21. मुनि श्री रामसिंहजी महाराज
22. मुनि श्री नौबतरायजी महाराज
23. मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज
24. मुनि श्री मनोहरलालजी महाराज
25. मुनि श्री महावीरप्रसादजी महाराज

पञ्जाब

(26) पूज्य श्री नाथुरामजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 7, आर्याजी 10, कुल 17

1. मुनि श्री फूलचन्दजी महाराज प्रतिनिधि
2. मुनि श्री कुन्दनलालजी महाराज प्रतिनिधि

यू.पी. जमनापार

(27) पूज्य श्री मोतीरामजी महाराज का सम्प्रदाय

मुनि 7, आर्याजी 0, कुल 7

1. मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज प्रतिनिधि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

2. मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज
3. मुनि श्री अमोलकचन्दजी महाराज
4. मुनि श्री श्रीचन्दजी महाराज

निम्नांकित सम्प्रदाय के साधुओं ने भाग नहीं लिया

1. गोंडल मोटो संप्रदाय-
2. गोंडल संघाणी संप्रदाय-
3. बरवाला संप्रदाय-
4. कच्छ आठ कोटी नानी पक्ष-

तेरापंथी परम्परा

धर्मदास जी की आचार्य परम्परा में श्री रघुनाथ जी के श्रीचरणों में आचार्य श्री भीषण जी ने संवत् 1808 में दीक्षित हुए। आचार्य भीषणजी कुछ मान्यताओं पूज्य रघुनाथजी से सहमत न हो सके। ये देखकर उन्होंने भीषणजी को संघ से पृथक् कर दिया। भीषणजी ने अन्य 12 साधुओं (कुल तेरह) के पास बगड़ी (मारवाड़) में अलग परम्परा खड़ी कर दी।[2] आचार्य भीषण ही आचार्य भिक्षु कहलाए। 'पाँच महाव्रत, पांच समिति और तीन मुनि ही' तेरापंथ के साध्वाचार हैं।'[3] आचार्य भिक्षु का उद्देश्य था- साधु-साध्वियां परस्पर सौहार्द व स्नेह में रहे, आचार्यनिष्ठ रहे, संघ में अनुशासन और मर्यादा रहे। इस संघ की विशेषता है कि इसमें एक ही आचार्य है।

आचार्य श्री भिक्षु - आप संवत् 1783 में कंठालिया (मारवाड़) में जन्मे। ओसवाल संखलेचा गोत्र में जन्मे भीषणजी ने संवत् 1816 में तेरापंथ की स्थापना की। आपका स्वर्गवास सं 1860 में हुआ। विपरीत परिस्थितियों में आचार्य भिक्षु डटे रहे। आपने 38000 श्लोक प्रमाण साहित्य का सृजन किया।

---

1. जैन धर्म का इतिहास, पृ 496
2. जैन धर्म का इतिहास, पृ 469
3. ओसवाल, दर्शन, दिग्दर्शन, पृ 173

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य श्री भारमल - श्रेष्ठ साधु के प्रतिमान आचार्य श्री भारमल आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी हुए। आपका जन्म मूंहा राजस्थान में किसनो जी लोढा के यहाँ संवत् 1804 में हुआ। संवत् 1813 में बागोर में दीक्षा ली, सं 1817 में दीक्षा और संवत् 1860 में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए और स्वर्गवास वि.सं 1878 को हुआ।

आचार्य श्री रायचंद जी (ऋषि राय) - आपका जन्म वि.सं 1847 और दीक्षा सं 1857 में हुई। 'आवश्यक चूर्णि', 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन' और 'वृहतकल्प' आपको कंठस्थ थे। आप चतरोजी बम के पुत्र थे। आप स्वर्गवास वि.सं 1908 में हुआ।

जयाचार्य - तेरापंथ की मर्यादा महोत्सव के जनक जयाचार्य थे। आपने लगभग 3,50,000 पद्यों की रचना की। आप गोलछा परिवार के आईदान जी के पुत्र थे। सं 1860 में जोधपुर के रोहट ग्राम में आपका जन्म हुआ। 9 वर्ष की आयु में दीक्षा और सं 1908 में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आपका स्वर्गवास जयपुर में सं 1938 में हुआ।

आचार्य श्री मगराज - मगराज जी पूरणमल बैंगानी के यहाँ सं. 1897 में बीदासर (बीकानेर) में जन्में। दीक्षा लाडनू में संवत् 1908 और आचार्य सं 1938 में हुए और स्वर्गवास सरदारशहर में सं 1945 में हुआ। आप संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे, किन्तु संवाद की भाषा राजस्थानी ही रही।

आचार्य श्री माणकचंद - संवत् 1912 में हुकमचंदजी श्रीमाली के यहाँ आप जन्में, 16 वर्ष की आयु में दीक्षित हुए, संवत् 1949 में आचार्य हुए और स्वर्गवास सरदारशहर में सं 1954 में हुआ। आप आचार्य माणक गणि के नाम से प्रसिद्ध थे।

आचार्य श्री डालचंद - आप समस्त जैन संघों को एक सूत्र में बांधने के लिये प्रयत्नशील रहे। उज्जैन के कन्नीराम पीपाड़ा के यहाँ आपने संवत् 1909 में जन्म लिया, 14 वर्ष की आयु में दीक्षा ली, संवत् 1954 में आचार्य बने और सं 1966 में स्वर्गस्थ हुए।

आचार्य कालूराम (कालूगणि) - आप छापर में मूलचंद जी कोठारी के यहाँ संवत् 1933 में जन्मे, 11 वर्ष की आयु में बीदासर में दीक्षा ली, 33 वर्ष की आयु में आचार्य बने और 60 वर्ष की आयु में गंगापुर में स्वर्गवास हुआ। आप एक महान् अध्येता थे।

आचार्य श्री तुलसी - आचार्य श्री तुलसी ने अपने आचार्यकाल में तेरापंथ की ही नहीं, जैनमत को प्रतिष्ठा दिलाई। आप 11 वर्ष की अवस्था में दीक्षित हुए और 22 वर्ष की अल्प अवस्था में आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आपके नेतृत्व में तेरापंथ ने आशातीत उन्नति की। आपकी प्रेरणा से ही जैन विश्वभारती, लाडनू ने जैनमत से सम्बन्धित विश्वविद्यालय स्तरीय अध्ययन-अध्यापन के नये द्वार खोले। इस देश का बुद्धिजीवी आचार्य तुलसी को इस शताब्दी का महत्वपूर्ण सन्त और विचारक मानता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य महाप्रज्ञ - वर्तमान में तेरापंथ के आचार्य महाप्रज्ञ है। आचार्य महाप्रज्ञ ही एक समय मुनि नथमल, फिर युवाचार्य महाप्रज्ञ और अब इस परम्परा के आचार्य हैं। आपकी बौद्धिक चेतना प्रखर है। एक विचारक के रूप में आपके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'मैं, मेरा मन, मेरी शांति' में धार्मिक उदारता है। 'तुम अनन्त शक्ति के स्त्रोत हो' में जैनमत के साधना प्रकारों की चर्चा है। 'नैतिकता का गुरुत्वाकर्षण' में आज के परिप्रेक्ष्य में नैतिकता का विश्लेषण है। "अतीत का अनावरण' में ऐतिहासिक दृष्टि के द्वार-बुद्ध और महावीरकाल भारत के अनधुए ऐतिहासिक पृष्ठों को अनावृत करने का प्रयत्न किया गया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा

अनेक श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संतों और आचार्यों ने जैनमत के प्रचार-प्रसार में योग दिया है।

यशोविजय - उपध्याय यशोविजय को आचार्य हेमचंद्र का आधुनिक संस्करण कहा जा सकता है। पं सुखलाल के शब्दों में 'इनके समान समन्वय शक्ति रखने वाला, जैन, जैनेतर ग्रंथों का दोहन करने वाला, शास्त्रीय और लौकिक भाषा में विविध साहित्य की रचना कर अपने सरल और कठिन विचारों को सब जिज्ञासुओं तक पहुँचाने वाला और सम्प्रदाय में रहकर भी सम्प्रदाय के बंधन की परवाह न कर जो उचित मालूम हो, उस पर निर्भयतापूर्वक लिखने वाला, केवल श्वेताम्बर दिगम्बर समाज में ही नहीं, बल्कि जैनेत्तर समाज में भी उनके जैसा कोई विशिष्ट विद्वान हमारे देखने में अब तक नहीं आया। केवल हमारी दृष्टि में ही नहीं, परन्तु प्रत्येक तटस्थ विद्वान की दृष्टि में जैन सम्प्रदाय में इन उपाध्याय का स्थान शंकराचार्य के समान है।'[1] उन्होंने अनेक अध्याता और दर्शन ग्रंथों के साथ आगम ग्रंथों की टीकाएं लिखी, योग सम्बन्धी दर्शन ग्रंथों की टीकाएं लिखी। ज्ञान के इस महासागर और अध्यात्म योगी का स्वर्गवास संवत् 1743 को हुआ।

आचार्य हीराविजय सूरि - इस तेजस्वी और चमत्कारी संत को सं 1640 में जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया।[2] आपका जन्म पालनपुर में 1583 में हुआ, संवत् 1596 में आचार्य विजयदान सूरि के पास दीक्षा ली और संवत् 1610 में आचार्य पद पर आरूढ हुए। आपका प्रभाव अकबर पर पड़ा और आपकी ही प्रेरणा से अकबर ने हिंसा की मनाही करवा दी, कई कैदियों को मुक्त कर दिया और स्वयं अकबर ने आपके वचनामृत सुने।

उपाध्याय विनय विजय और मेघविजय - आप दोनों ने अनेक आगमिक, दार्शनिक और वैयाकरणिक ग्रंथों की रचना की। मेघविजय जी ने ज्योतिष विषयक ग्रंथ और 'शांतिनाथ चरितकाव्य' लिखा।

आचार्य विजयानंद सूरि - पंजाब प्रांत में लटत में संवत् 1893 में आपका जन्म हुआ। 1946 में जोधपुर में आपको 'न्याय महोदधि' की उपाधि से विभूषित किया। आपका

---

1. ओसवाल दर्शन : दिग्दर्शन, पृ 161
2. वही, पृ 160

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गृहस्थ नाम आत्मानंद था। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के पहले आप स्थानकवासी परम्परा में थे। 'जैनतत्वदर्शन', 'तत्वनिर्णय प्रसाद', 'अज्ञान तिमिर भास्कर', 'सम्यकत्व शल्योद्धार', 'जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर', 'नवरत्न', 'जैनमत वृक्ष' और 'जैन धर्म का स्वरूप' आदि आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। पंजाब का श्वेताम्बर समाज आपका भक्त है।

विजयशांति सूरीपूवर - आपने 16 वर्ष की अवस्था में संवत् 1961 में आचार्य तीर्थ विजय से दीक्षा ग्रहण की। आप 16 वर्षों तक मालवा के बीहड़ जंगलों में घूम-घूमकर जैनमत की अलख जगाते रहे। संवत् 1990 में वामनवाड़ी में पोरवाल समाज ने आपको जीव दया प्रतिपादक राज राजेश्वर की उपाधि प्रदान की। आपको आचार्य सूरि सम्राट के पद पर अभिषिक्त कर जगद्गुरू से सम्मान से सम्मानित किया। नेपाल के डेपुटेशन ने आपको नेपाल राजगुरु की संज्ञा से विभूषित किया।[1]

आचार्य विजयवल्लभ सूरि - आचार्य विजयवल्लभ सूरि ने जैनमत की एकता के लिए दिगम्बर-श्वेताम्बर विशेषणों को त्यागने के लिये बीड़ा उठाया। देश के कौने कौने में आत्मानन्द जी के नाम से अनेक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने के लिये प्रेरणा दी। आपका स्वर्गवास बम्बई में हुआ। आपकी शवयात्रा में और धर्म की सीमाएं टूट गई।

खरतरगच्छीय परम्परा के आचार्य और सूरि- आधुनिक काल में खरतरगच्छीय आचार्यों और मुनियों में सर्वश्री धर्मसागर, विजयसमुद्र, यशोविजय, जनकविजय, कांतिसागर, कल्याणविजय, भद्रंकरविजय, भानुविजय, विशाल विजय आदि प्रमुख आचार्य और मुनि हैं।

मुनि कांतिसागर - मुनि कांतिसागर जैनमत के महान् अध्येता और शेधार्थी हैं। पुस्तकें इनके लिये अमूल्य निधि रही है। उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी 'खोज की पगडंडियां' चर्चित रही है। इनके विचारपूर्ण और शोधपूर्ण लेख पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

साध्वी श्री विचक्षणजी - साध्वी श्री विचक्षण जी ने जैन सम्प्रदायों को एकता के सूत्रों में बाँधने का प्रयत्न किया। आप एक प्रभावशाली उपदेशिका हैं।

श्री अंचलगच्छ श्री खरतरगच्छ कऔर श्री तपागच्छ की आचार्य परम्पराएँ प्रस्तुत की जा रही है।

अंचल गच्छ की आचार्य परम्परा

आर्यरक्षित सूरि (वि.स. 1236 में स्वर्गस्थ)

जयसिंह सूरि (वि.स. 1258 में स्वर्गस्थ)

धर्मघोष सूरि (वि.स. 1268 में स्वर्गस्थ)

महेन्द्रसिंह सूरि (वि.स. 1309 में स्वर्गस्थ)

सिंहप्रभसूरि (वि.स. 1313 में स्वर्गस्थ)

1. ओसवाल, दर्शन, दिग्दर्शन, पृ 162

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अजितसिंह सूरि (वि.स. 1339 में स्वर्गस्थ)

देवेन्द्रसिंह सूरि (वि.स. 1371 में स्वर्गस्थ)

धर्मप्रभसूरि (वि.स. 1393 में स्वर्गस्थ)

सिंहतिलक सूरि (वि.स. 1395 में स्वर्गस्थ)

महेन्द्रप्रभ सूरि (वि.स. 1444 में स्वर्गस्थ)

मेरुतुंग सूरि (वि.स. 1471 में स्वर्गस्थ)

जयकीर्ति सूरि (वि.स. 1500 में स्वर्गस्थ)

जयकेशरी सूरि (वि.स. 1541 में स्वर्गस्थ)

सिद्धान्त सूरि (वि.स. 1583 में स्वर्गस्थ)

भावसागर सूरि (वि.स. 1583 में स्वर्गस्थ)

गुणनिधग्रसूरि (वि.स. 1602 में स्वर्गस्थ)

धर्मभूति सूरि (वि.स. 1670 में स्वर्गस्थ)

कल्याणसागर सूरि (वि.स. 1718 में स्वर्गस्थ)

अमरसागर सूरि (वि.स. 1762 में स्वर्गस्थ)

विद्यासागर सूरि (वि.स. 1797 में स्वर्गस्थ)

उदयसागर सूरि (वि.स. 1826 में स्वर्गस्थ)

कीर्तिसागर सूरि (वि.स. 1843 में स्वर्गस्थ)

पुण्यसागर सूरि (वि.स. 1870 में स्वर्गस्थ)

राजेन्द्रसागर सूरि (वि.स. 1892 में स्वर्गस्थ)

मुक्तिसागर सूरि (वि.स. 1914 में स्वर्गस्थ)

रत्नसागर सूरि (वि.स. 1928 में स्वर्गस्थ)

विवेकसागर सूरि (वि.स. 1948 में स्वर्गस्थ)

जितेन्द्रसागर सूरि (वि.स. 2004 में स्वर्गस्थ)

गौतमसागर सूरि (वि.स. 2009 में स्वर्गस्थ)

गुणसागर सूरि .....

गुणोदयसागर सूरि (वर्तमान गच्छाधिपति)

---

1. श्रमण, (अप्रेल-जून) स्वर्ण जयन्ती वर्ष, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. 115-116

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खरतरगच्छ आचार्यों की आचार्य परम्परा

1.	आचार्य वर्धमान सूरि	वि.स. 1050
2.	जिनेश्वर सूरि	वि.स. 1066-1078
3.	जिनचन्द्रसूरि	
4.	अभयदेव सूरि- नावांग टीकाकार	स्वर्गवास 339
5.	जिनवल्लभसूरि आचार्य पद	367 -
6.	युगप्रधान दादा जिनदत्त सूरि आचार्य	369.....
7.	मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	1205
8.	युगप्रवरागम जिनपति सूरि	वि.स. आचार्य पद 143
9.	जिनेश्वरसूरि	आचार्य पद सं 1278
10.	जिनप्रबोध सूरि	आचार्य पद सं 1331
11.	कलिकाल केवली जिनचन्द्रसूरि	आचार्य पद सं 1341
12.	दादा श्री जिनकुशल सूरि	आचार्य पद सं 1377
13.	जिनपद्मसूरि	आचार्य सं 1390
14.	जिनलब्धि सूरि	स्वर्गवास 1406
15.	जिनचन्द्रसूरि	1406
16.	जिनोदयसूरि	1451
17.	जिनराजसूरि	1433
18.	जिनभद्रसूरि	1475
19.	जिनचंद्रसूरि	1515
20.	जिनसमुद्र सूरि	1533
21.	जिनहंससूरि	1555
22.	जिनमाणिक्य सूरि	1582
23.	अकबर प्रतिबोधक युगप्रधपन जिनचन्द्रसूरि	1612
24.	जिनसिंह सूरि	1649
25.	जिनराजसूरि	1674
26.	जिनरत्न सूरि	1700
27.	जिनचन्द्रसूरि	173
28.	जिनसुख सूरि	1763
29.	जिनभक्ति सूरि	1780
30.	जिनलाभ सूरि	1804

इसके पश्चात् यति परम्परा चली।

---

1. साध्वी श्री शशिप्रभा श्रमणी - अभिनन्दन ग्रंथ, सज्जन श्री जी महाराज पृ. 5
(खतरगच्छ का संक्षिप्त परिचय, म. विनयसागर)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खरतरगच्छ की संविग्न साधु परम्परा (सुखसागर जी का समुदाय)

1. उपाध्याय प्रीतिसागर गणि
2. वाचक अमृतधर्मगणि
3. उपाध्याय क्षमाश्रमण
4. धर्मविशाल धर्मानन्द
5. राजसागर जी
6. ऋद्धिसागर जी
7. गणाधीश सुखसागरजी
8. गणाधीश भगवान सागर जी
9. तपस्वी छगनसागरजी
10. त्रैलोक्य सागरजी
11. जिनहरि सागर सूरिजी
12. जिनानन्द सागर सूरि
13. जिनकवीन्द्र सागर सूरि
14. जिन उदय सागर सूरि- जिनकांति सागर सूरि
15. महोदय सागर सूरि वर्तमान गच्छाधिपति

तपागच्छ की आचार्य परम्परा

1.	श्री जिनचन्द्र सूरि	44वें पट्टधर
2.	श्री देवेन्द्रसूरि	45वें पट्टधर
3.	श्री धर्मघोष सूरि	46वें पट्टधर
4.	श्री सोमप्रभ सूरि	47वें पट्टधर
5.	श्री सोयतिलक सूरि	48वें पट्टधर
6.	श्री देवसुन्दर सूरि	49वें पट्टधर
7.	श्री सामसुन्दर सूरि	50वें पट्टधर
8.	श्री मुनि सुन्दर सूरि	51वें पट्टधर
9.	श्री रत्नशेखर सूरि	52वें पट्टधर
10.	श्री लक्ष्मीसागर सूरि	53वें पट्टधर
11.	श्री सुमति सागर सूरि	54वें पट्टधर
12.	श्री हेमविमल सूरि	55वें पट्टधर
13.	श्री आनन्दविमल सूरि	56वें पट्टधर
14.	श्री विजयदान सूरि	57वें पट्टधर
15.	श्री हीरविजय सूरि	58वें पट्टधर
16.	श्री विजयसेन सूरि	59वें पट्टधर

1. जयन्तीलाल छोटे लाल शाह - श्री तपागच्छ श्रमण वंश वृक्ष

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

17. श्री विजयदेव सूरि 60वें पट्टधर
18. श्री विजयसिंह सूरि 61वें पट्टधर

इसके पश्चात् साधु परम्परा सत्यविजयगणी से प्रारम्भ हो गई।

जैनमत- प्रवर्तनकाल से प्रसारकाल तक

इस प्रकार जैनमत को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह कह सकते हैं कि 'पूर्व महावीर युग' में भगवान ऋषभदेव से जैनमत का प्रवर्तन हुआ, दूसरे तीर्थंकर से लेकर तेबीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के युग को हम जैनमत का प्रवर्द्धन काल कह सकते हैं। भगवान महावीर ने जैनमत के इतिहास में अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से एक युगान्तर उपस्थित किया, इसलिये महावीर के आविर्भाव से लेकर श्रुतकेवलि भद्रबाहु के काल को 'महावीर युग' की संज्ञा दे सकते हैं। महावीर युग को जैनमत का विकासकाल कह सकते हैं। भगवान महावीर के पश्चात् 'महावीरोत्तर युग' को हम 'जैनमत के इतिहास का प्रसारकाल' कह सकते हैं। जैनमत के इस प्रसारयुग ने जैनमत ने कितने ही उतार चढ़ाव देखे। दो हजार वर्षों के इस लम्बे अन्तराल में 3 वाचनाएं हुई, आगमों की रचना हुई और आगमों की रचना के साथ ही संघभेद का बीज पड़ा और फिर संघभेद स्थायी हो गया। इस युग में जैनमत का उत्कर्ष भी हुआ और अपकर्ष भी। चैत्यावास की परम्परा में जैनमत का अपकर्ष था। चैत्यावास के विरुद्ध विरोध का बीज बोया हरिभद्र सूरि ने और क्रांतिका शंखनाद किया खरतरगच्छ के आचार्यों ने। सोलहवीं शताब्दी में लोंकाशाह के आविर्भाव ने जैनमत के इतिहास में वैचारिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। लोंकाशाह के पश्चात् श्वेताम्बर जैन परम्परा- तीन स्वतंत्र परम्पराओं- स्थानकवासी, तेरापंथी और मंदिर मार्गी धाराओं में बहती रही। तेरापंथी परम्परा के अतिरिक्त स्थानकवासी परम्परा और श्वेताम्बर मंदिर मार्गी परम्पराओं ने कितने ही सम्प्रदायों/गच्छों को जन्म दिया, इसलिये हरिभद्रबाहु के पश्चात् श्वेताम्बर जैन परम्परा को हम विविध सम्प्रदायों और गच्छों का काल भी कह सकते हैं।

ओसवंश: बीजारोपण से उत्कर्ष तक

ओसवंश का स्रोत जैनमत और इसके सूत्रधार जैनाचार्य रहे हैं। भगवान महावीर के युग को हम ओसवंश की दृष्टि से बीज वपन काल, किन्तु महावीरोत्तर युग में ओसवंश का क्रमश: प्रवर्तन, प्रवर्द्धन, विकास और प्रसार देख सकते हैं।

जैनाचार्यों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में ओसवंश के प्रवर्त्तन, प्रवर्द्धन, विकास, प्रसार और उत्कर्ष में योग दिया। इस जातिविहीन धर्म ने एक नयी संस्कृति की रचना करने के लिये कभी प्रत्यक्ष रूप में और कभी परोक्ष रूप में ऐसी जैन जातियों का निर्माण किया, जो जैन दर्शन के अनुरूप एक नयी अहिंसामूलक और मूल्य परक जीवन शैली को आत्मसात कर नयी संस्कृति की रचना कर सके।

महावीरयुग में उपकेशगच्छ के सप्तम आचार्य रत्नप्रभु ने महाजनवंश के रूप में ओसवंश का बीज डाला और फिर महावीरोत्तर युग के अनेक आचार्यों और मुनियों ने प्रत्यक्ष रूप से भी अनेक गोत्रों की प्रतिष्ठापना करके ओसवंश के प्रवर्त्तन, प्रवर्द्धन और विकास में योग दिया।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित ओसवंश के गोत्र

जैनमत के प्रवर्त्तन, प्रवर्द्धन, विकास और प्रसारकाल के लम्बे इतिहास में जैनाचार्यों ने श्रावकों की एक लम्बी कतार खड़ी कर जैनजातियों के उद्गम में योग दिया है। महावीर के निर्वाण के पश्चात् वीर संवत् 70 में पार्श्वनाथ परम्परा के सातवें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसियां में क्षत्रियों को प्रतिबोधित कर महाजन वंश के उद्भव के साथ 18 गोत्रों की स्थापना की। ये गोत्र हैं- तातेहड़, कर्णाट, बधनाग (बाकण्ण) बलाहा (बलहारा) मारोक्ष, कुलहट, विरहट, श्रीमाल, श्रेष्ठि, सहचिती या संचेती, आदित्यनाग, भाद्र, चींचट, कुमट, डीडू, कन्नोज और लघु श्रेष्ठी।

यह सूची रामलाल जी के 'महाजनवंश मुक्तावली', ज्ञानसुन्दर जी के 'जैन जाति महोदय' और 'जैनजाति निर्णय' में मिलती है, जिसका स्रोत 'उपकेशगच्छ चरित्र' है। इन 18 गोत्रों से निसृत 498 शाखा गोत्रों की एक तालिका उपकेशगच्छीय ज्ञानसुन्दर जी ने 'पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास' में दी है। उपकेशगच्छ को कालांतर में कमला गच्छ कहा गया। इन गोत्रों के आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्रों की सूची निम्नानुसार है -

(1) मूलगौत्र तातेड़ - तातेड, तोडियाणि, चौमोला, कौसीया, धावडा, चैनावत, तलोवडा, नरवरा, संघवी, डुंगरीया, चौधरी, रावत, मालावत, सुरती, जोखेला, पांचावत, बिनायका, साढेरावा, नागडा, पाका, हरसोत, केलाणीं।

(2) मूलगौत्र बाफणा- बाफणा, (बहुफूणा) नाहटा, (नाहाटा नावटा) भोपाला, भूतिया, भाभू, नावसरा, मुंगडिया, ढागरेचा, चमकीया, चौधरी, जांघडा, कोटेचा, बाला, धातुरिया, तिहुयणा, कुरा, बेताला, सलगणा, बुचाणि, सावलिया, तोसटीया, गान्धी, कोटारी, खोखरा, पटवा, दफतरी, गोडावत, कूचेरीया, बालींया, संघवी, सोनावत, सेलोत, भावडा, लघुनाहटा, पंचवया, हुडिया, टाटीया, ठगा, लघुचमकीया, बोहरा, मीठडीया, मारू, रणधीरा, ब्रह्मेचा, पटलीया वानुणा, ताकलीया, योद्धा, धारोला, दुद्धिया, बादोला, शुकनीया।

(3) मूलगौत्र करणावट- करणावट, वागडिया, संघवी, रणसोत, आच्छा, दादलिया, हुना, काकेचा, थंभोरा, गुदेचा, जीतोत, लाभांणी, संखला, भीनमाला एवं करणावट।

(4) मूल गौत्र बलाहा- बलाहा, रांका, वांका, शेठ, शेठीया, छावत, चौधरी, लाला, बोहरा, भूतेडा, कोटारी, लघु रांका, देपारा, नेरा, सुखिया, पांटोत, पेपसरा, धारिया, जडिया, सालीपुरा, चितोड, हाका, संघवी, कागडा, कुशलोत, फलोदीया।

(5) मूलगौत्र मोरख- मोरख, पोकरणा, संघवी, तेजारा, लघुपोकरणा, वांदोलीया, चुंगा, लघुचंगा, गजा, चोधरी, गोरीवाल, केदारा, वातोकडा, करचु, कोलोरा, शीगाला, कोटारी।

(6) मूलगौत्र कुलहट- कुलहट, सुरवा, सुसाणी, पुकारा, मसांणीया, खोडींया, संघवी, लघुसुखा, बोरडा, चौधरी, सुराणीया, साखेचा, कटारा, हाकडा, जालोरी, मन्त्री,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पालखींया, खूमाणा।

(7) मूलगौत्र विरहट- विरहट, भुरंट, तुहाणा, ओसवाला, लघुभुरंट, गागा, नोपत्ता, संघवी, निबोलीया, हांसा, धारीया, राजसरां, मोतीया, चोधरी, पुनमिया सरा, उजोत।

(8) मूल गौत्र श्री श्रीमाल- श्री श्रीमाल, संघवी, लघुसंघवी, निलडिया, कोटडिया, झाबांणी नाहरलांणी, केसरिया, सोनी, खोपर, खजानची, दानेसरा, उद्धावत, अटकलीया, धाकडिया भीन्नमाजा, देवड, माडलीया, कोटीं, चंडालेचा, साचोरा, करवा।

(9) मूल गौत्र श्रेष्ठि- श्रेष्ठि, सिंहावत्, भाला, रावत, वैद, मुत्ता, पटवा, सेवडिया, चोधरी, थानावट, चीतोडा, जोधावत्, कोटारी, बोत्थाणी, संघवी, पोपावत, ठाकूरोत्, बाखेटा, विजोत्, देवराजोत्, गुंदीया, बालोटा, नागोरी, सेखांणी, लाखांणी, भुरा, गान्धी, मेडतिया, रणधीरा, पातावत्, शूरमा।

(10) मूलगौत्र संचेति- संचेति (सुचंति साचेती) ढेलडिया, धमाणि, मोतिया, बिंबा, मालोत्, लालोत्, चोधरी, पालाणि लघुसंचेति, मंत्रि, हुकमिया, कजारा, हीपा, गान्धी, बेगाणिया, कोठारी, मालखा, छाछा, चितोडिया, इसराणि, सोनी, मरुवा, घरघटा, उदेचा, लघुचोधरी, चोसरीया, बापावत्, संघवी, मुरगीपाल, कीलोला, लालोत्, खरभंडारी, भोजावत्, काटी जाटा, तेजाणी, सहजाणि सेणा मन्दिरवाला, मालतीया, भोपावत्, गुणीया।

(11) मूल गौत्र आदित्यनाग- आदित्यनाग, चोरडिया, सोढाणि, संघवी, उडक मसाणिया, मिणियार, कोटारी, पारख, "पारखों' से भावसरा, संघवी, ढेलडिया, जसाणि, मोल्हाणि, न्नडक, तेजाणि, रूपावत्, चोधरि, "गुलेच्छा'- गुलेच्छों से दोलताणी, सागाणि, संघवी, नापडा, काजाणि, हुला, सेहजावत्, नागडा, चित्तोडा, चोधरी, दातारा, मीनागरा, "सावसुखा' सावसुखों से मीनारा, लोला, बीजाणि, केसरिया, वला, कोटारी नांदेचा, "भटनेराचोधरी'- भटनेराचोधरियों से कुंपावत्, भंडारी, जीमणिया, चंदावत्, सांभरीया, कानुंगा, "गदईया' गदइयों से गेहलोत, लुगावत्, रणशोभा, बालोत्, संघवी, नोपत्ता, "बुचा' बुचों से सोनारा, भंडलीया, करमोत्, दालीया, रत्नपुरा, फिर चोरडियों से नाबरिया, सराफ, कामाणि, दुद्धोणि, सीपांणि, आसाणि, सहलोत्, लघु सोढाणी, देदाणि, रामपुरिया, लघुपारख, नागोरी, पाटणीया, छाडोत्, ममइया, बोहरा, खजानची, सोनी, हाडेरा, दफतरी, चोधरी, तोलावत्, राब, जौहरी, गलाणि।

(12) मूलगौत्र भूरि- भूरि, भटेवरा, उडक, सिंधि, चोधरी, हिरणा, मच्छा, बोकड़िया, बलोटा, बोसुदीया, पीतलीया, सिंहावत्, जालोत्, दोसाखा, लाडवा, इलदीया, नाचाणि, मुरदा, कोठारी, पाटोतीया।

(13) मूलगौत्र भद्र- भद्र, समदडिया, हिंगड, जोगड, गिंगा, खपाटीया, चवहेरा, बालडा, नामाणि, भमराणि, देलडिया, संघी, सादावत्, भांडावत्, चतुर, कोटारी, लघु समदडिया, लघु हिंगड, सांढा, चोधरी, भाटी, सुरपुरीया, पाटणिया नांनेचा, गोगड, कुलधरा, रामाणि, नाथावत्, फूलगग।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(14) मूलगौत्र चिंचट- चिंचट, देसरडा, सघवी, ठाकुरा, गोसलाणि, खीमसरा, लघुचिंचट, पाचोरा, पुर्विया, निसाणिया, नोपोला, कोठारी, तारावाल, लाडलखा, शाहा, आकतरा, पोसालिया, पूजारा, वनावत्।

(15) मूलगौत्र कुमट- कुमट काजलीया, धनंतरि, सुघा, जगावत्, संघवी पुगलीया, कठोरीया, कापुरीत, संभरिया चोक्खा, सोनीगरा, लाहोरा, लाखाणी, मरवाणि, मोरचीया, छालीया, मालोत्, लघुकुंमट, नागोरी।

(16) मूलगोत्र डिडू- डिंडू, राजोत् सोसलाणि, धापा धीरोत्, खंडिया, योद्धा, भाटिया, भंडारी, समदरिया, सिंघुडा, लालन, कोचर, दाखा, भीमावत्, पालणिया, सिखरिया, वांका, वडवडा बादलीया, कानुंगा।

(17) मूलगौत्र कन्नोजिया- कन्नोजिया, वडभटा, राकावाल, तोलीया, धाधलिया, घेवरीया, गुंगलेचा, करवा, गढवाणि, करेलीया, राडा, मीठा, भोपावत्, जालोरा, जमघोटा, पटवा, मुशलीया।

(18) मूलगोत्र लघुश्रेष्टि- लघुश्रेष्टि, वर्धमान, भोभलीया, लुणेचा, बोहरा, पटवा, सिंघी, चिंतोडा, खजानची, पुनोत्-गोधरा, हाडा, कुबडिया, लुणा, नालेरीया, गोरेचा।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने ओसियां के अलावा अन्य स्थानों पर ओसवाल गोत्रों को प्रतिबोधित किया[1] -

1. मूलगोत्र चरड	-	चरड, कांकरिया, सानी कीस्तुरिया, बोहरा, अछुपता, पारणिया, संघवी, वरसांणि।
2. मूलगोत्र सुघड़	-	सुघड़, संडासिया, करणा, तुला, लेरखा।
3. मूलगोत्र लुंग	-	लुंग, चंडालिया, भाखरिया, बोहरादि
4. मूलगोत्र गटिया	-	गटिया, टीवाणी, काजलिया, रांणोत

उपकेश गच्छीय आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित अन्य 18 गोत्र निम्नानुसार है।[2]

1. मूलगोत्र आर्य	-	लुणावत, संघवी, सिन्धुड़ा।
2. मूलगोत्र काम		
3. मूलगोत्र गरुड	-	घाड़ावल, चापड़।
4. मूलगोत्र सालेचा	-	बोहरा, जोधावत, बनावल, गांधी, कोटारी, पाटणिया, चौधरी।
5. मूलगोत्र बागरेचा	-	सोनी, संघि, जालोरा।
6. मूलगोत्र चोपड़ा	-	कुंकुमचोपड़ा, धूपिया, कुकड़ा, गणधरचोपड़ा, जावलिया, बलवरा।
7. मूलगोत्र सफला	-	बोहरा, सांडिया, जालोरा, कोटारी, भलभला।
8. मूलगोत्र नक्षत्र	-	घीया, संघवी, संजाची।
9. मूलगोत्र आमड़	-	कांकरेचा, कुबेरिया, पटवा, चौधरी, कोठारी, सांभरिया, संघिमेहता।
10. मूलगोत्र छावत	-	कोणेजा, गहीयाला, लेहेरिया, चोहान।
11. मूलगोत्र तुंड	-	बागमार, फलोदिया, हरसोरा, ताला, साचा-

1. श्री मांगीलाल भूतोड़िया, इतिहास की अमरबेल - ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 164
2. वही, पृ 164

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सांधि।

12. **मूलगोत्र पछोलिया** - बोहरा, रूपावत, नागौरी
13. **मूलगोत्र हथुडिया** - छपनिया, रातड़िया, गौड, राणावत।
14. **मूलगोत्र मंडोवरा** - रत्नपुत्र, बोहरा, कोटारी।
15. **मूलगोत्र गुदेवा** - गगोलिया, वागाणी।
16. **मूलगोत्र छाजेड़** - संघवी, नखा, चावा।
17. **मूलगोत्र राखेचा** - पुंगलिया, पावेचा, धामाणी।

इन गोत्रों का उद्भवकाल 7वीं से 12वीं शताब्दी के बीच माना गया। ये सभी क्षत्रिय/राजपूत थे। रत्नप्रभसूरि ने 18 क्षत्रिय जातियों को प्रतिबोध देकर जैन बनाया, किन्तु परवर्ती उपकेश गच्छ के आचार्यों ने विभिन्न राजपूत जातियों को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाकर गोत्र का नामकरण दिया।[1]

गोत्र	आदिपुरुष	पूर्वजाति	ग्राम	प्रतिबोधक आचार्य	वि.स.
1. **आर्य**	राव गौसल	भाटी	अटवड	देवगुप्तसूरि	684
2. **छाजेड़**	राव काजल	राठोड	शिवगढ़	सिद्धसूरि	942
3. **राखेचा**	रावराखेची	भाटी	कालेर	देवगुप्तसूरि	878
4. **काग**	पृथ्वीधर	चौहान	धामाग्राम	कक्कसूरि	1011
5. **गरुड़**	महाराय	चौहान	सत्यपुर	सिद्धसूरि	1043
6. **सालेचा**	सालमसिंह	सोलंकी	पाट्टण	सिद्धसूरि	912
7. **वागरेचा**	गजसिंह	चौहान	वागरा	कक्कसूरि	1009
8. **कुँकुम**	अडकमल	राठोड़	कन्नौज	देवगुप्तसूरि	885
9. **सफ्ला**	लांखणसि	चौहान	जालोर	सिद्धसूरि	144
10. **नक्षत्र**	मदनपाल	राठोड़	वटवाडाग्राम	कक्कसूरि	994
11. **आभड़**	रावआभड़	चौहान	सांभर	कक्कसूरि	1079
12. **छावत**	रावछाहड	पंवार	धारानगरी	सिद्धसूरि	1073
13. **तुँड**	सूर्यमल	चौहान	तुँडग्राम	सिद्धसूरि	933
14. **पीच्छोलिया**	वासुदेव	गौड	पाल्हणपुर	देवगुप्तसूरि	1204
15. **हाथुड़िया**	राउ अभय	राठोड	हथुडि	देवगुप्तसूरि	1191
16. **मंडोवरा**	देवराज	पडिहार	मंडोर	सिद्धसूरि	935
17. **मल**	मलवराव	राठोड	खेडग्राम	सिद्धसूरि	949
18. **गुँदेचा**	राव लाधी	पडिहार	पावागढ़	देवसूरि	1026

भगवान पार्श्वनाथ के 48वें पट्टधर आचार्य ननप्रभसूरि ओसवाल संवत् 1528-1574 ने हजारों अजैन क्षत्रियों को जैनधर्म में दीक्षित कर महाजन संघ की वृद्धि की। ये गौत्र हैं-

सुद्येचा	कोठत्री	कोडिया
कपूरिया	धाकड़	धूवगोला
नागगेला	नार	सेठिया
धाकट	मथुरा	सोनेचा
मकवाण	फितूरिया	खालिया

1. श्री मांगीलाल भूतोड़िया, इतिहास की अमरबेल, प्रथम खण्ड, पृ 165

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखिया	डागलिया	पाण्डुगोल
पोसालेचा	बाकीलिया	सहात्रेती
नागणा	खीमाणदिया	वडेरा
जोगणेचा	सोनाणां	आड़ेचा
चिंचड़ा	निबाटा।[1]	

आचार्य भावदेवसूरि ने वि.सं 912 में **बाठिया** जाति को आबु के पास परमा नाम के गांव के राव माधुदेवादि को प्रतिबोधित कर जैन बनाया।[2]

आचार्य कृष्णार्षि ने नागपुर में नारायण नामक सेठ जों ब्राह्मणधर्म पालता था, उसने जैन धर्म स्वीकार कर उसे **बरडिया** गोत्र दिया।[3]

संघी को मुनि श्री ज्ञानसुन्दर ने पंवार राजपूत माना है।[4] **ननवाणा बोहरा** का नामकरण नंदवाणा गांव के आधार पर हुआ।[5]

वि.सं 332 में आचार्य धर्मघोष सूरि विहार करते हुए अजयगढ़ के आस-पास ज्येष्टापुर में पधारे तब पंवार रायसूर को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। राव सूर की संतान होने के कारण ये सुराणा कहलाए।[6]

वि.सं 332 में आचार्य धर्मघोष सूरि बणथलि नगर में पधारे, वहाँ के चौहान राज पृथ्वीपालादि को प्रतिबोध देकर विधि विधान से जैन बनाया। ये **भणवट** जाति कहलाई।[7] मुनि श्री ज्ञानसुन्दर जी के अनुसार कई भारों ने भणवटों के लिये एक कथित ख्यात बना रही है कि संवत् 910 में पाट्टण के चौहान भूरसिंह ने राजा का रोग मिटाकर जैन बनाया, उस भूरसिंह की संतान भणवट कहलाई। यह कथन सर्वथा मिथ्या है, कारण अव्वल तो पारण में किसी समय चौहानों का राज ही नहीं रहा और न पारटण की राजधानी में भूरसिंह नाम का कोई राजा ही हुआ।[8]

यह उपकेशगच्छ कालांतर में कमलागच्छ कहा गया। इस गच्छ की पोशाले- राजस्थान के विविध स्थानों पर पाई जाती है।

अन्य गच्छों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र

कोरंट गच्छ के आचार्यों ने 34 ओसवाल गोत्रों को प्रतिबोधित किया[9]-

माण्डोत, सुन्धेचा, ध्रुवगोता, रातड़िया, बोथरा (बच्छावत), मुकीम, फोफलिया, कोठारी, कोटड़िया, धाड़िवाल, धाकड़, नागगोत्रा, नागसेठिया, धरकट, खींवसरा, सोनेचा,

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, उत्तरार्द्ध, पृ 1498
2. वही, पृ 1499
3. वही, पृ 1500
4. वही, पृ 1501
5. वही, पृ 1501
6. वही, पृ 102
7. वही, पृ 1502
8. वही, पृ 1502
9. जैन जाति महोदय, पृ 82

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मकवाणा, फीतुरिया, सबिया, सुखिया, संकलेचा, डागलिया, पांडुगोता, पोसालेचा, सहाचेती, नागण, खीमाणदिया, बडेरा, जोगणेचा, सोनाड़ा, जाड़ेचा, चिंचड़ा, कपुरिया, निवांडा और बाकुलिया।

श्री कोठारी ने माना है कि कोरंट गच्छाचार्य रत्नप्रभसूरि ने 1175 वि.सं में चौहान लखमजी को संखवाल स्थान पर प्रतिबोधित कर संकलेचा गोत्र की स्थापना की।

वृहत तपागच्छ/नागपुरिया तपागच्छ के आचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र

जैन जाति महोदय[1] के अनुसार निम्नांकित ओसवंश के गोत्र वृहद तपागच्छ/नागपुरिया तपागच्छ द्वारा प्रतिबोधित हुए-

1. मोटलोणि, नौलखा, भूतेड़िया।	2. पीपाड़ा, हीरण, गोगड़, शीशोदिया।
3. रूणबाल, बेगाणी।	4. हींगड़, लिंगा।
5. रायसोनी	6. झामड़, झाबक
7. छलाणी, छजलाणी, गोड़ावत	8. हीराड, केलाणि
9. गोखरू, चौधरी	10. राजबोहरा
11. छोरिया, सामड़ा	12. श्री श्रीमाल
13. दूगड़	14. लोढा
15. सुरियामण	16. जोगड़, नक्षत्र
17. नाहर	18. जड़िया।

इन 18 गोत्रों की वंशावली खराड़ी, बलुंदो और नागौर के तपागच्छीय साधु लिखते हैं। इसके अतिरिक्त

वरडिया	बरदिया	वरहुडिया
वांठीया	चामड़,	कवाड़
शाहा	लखावत	लालाणि
गांधी	राजगंधी	वेदगांधी
सराफ	लुंकड	बुरडा
सांर्द्र	मुनोत	गोलिया
आस्तेवाल	कछोला	मरडोचा
सीलरेचा	मादरेचा	लोलेचा
भाला	विनायकिया	कोटारी
मीन्नी	खटोल	चौधरी
सोलंकी	आंचलिया	गोठी
छत्रीया	डफरिया	गुजराणी

आदि जातियां तपागच्छ से जुड़ी है।

---

1. जैन जाति महोदय, पृ 83-84

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आंचल गच्छोपासक ओसवंश के गोत्र [1]

गाल्हा	आपागोत	बुहड
कटारिया	रतनपुरा	कोटेचा
सुभादा	बोहरा	नागड़
मीठड़िया	वडोरा	गंधी
देवनंदा	गोतमगोत्ता	दोस्ती (डोसी) सोनीगरा
कांटीया	हरिया	देडिया
बोरेचा	स्याला	और घरबेला

आदि गोत्र और इनसे निकले गोत्रों का गच्छ आंचलगच्छ है।

मलधार गच्छोपासक गोत्र [2]

पगरिया, कोटारी, बंब, भंग, गीरीया, गेहलड़ा, चंडालिया, खींवसरा।

पुनमिया गच्छोपासक गोत्र[3]

सांड, सीयाल, सालेचा और पुनमिवा।

नाणावाल गच्छोपासक गोत्र[3]

रणधीर, कटारी, ढढ्ढा, श्रीपति, तिलेरा, और कावड़िया।

सुराणा गच्छोपासक गोत्र[4]

सुराणा, सांखला, वणवर, भिटडिया सोनी, उस्तवाल, खटोड़, नाहर।

पल्लिवाल गच्छोपासक गोत्र[4]

धोरवा, बोहरा, डुंगरवाल, आदि गोत्र पल्लिवाल।

कंदसागर गच्छोपासक गोत्र[4]

खाबिया, गंग, बंब, दुधेड़िया और कटोतिया।

सांडेरा गच्छोपासक गोत्र[5]

गुगलिया, भण्डारी, चतुर, धारोला, कांकरेचा, बोहरा, दुधेड़िया, शिशोदिया।

---

1. जैन जाति महोदय, पृ 84
2. वही, पृ 84
2. वही, पृ 84
4. वही, पृ 85
5. वही, पृ 85

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंचल गच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

अंचल गच्छाचार्यों में आचार्य जयसिंह सूरि, धर्मघोष सूरि, महेन्द्रसूरि, सिंहप्रभसूरि, अजितदेवसूरि आदि प्रभाविक आचार्य हो गये हैं, उन्होंने भी हजारों अजैनों को जैन बनाकर महाजन संघ की खूब उन्नति की थी।[1] यह जातियां हैं-

1. गाल्ह	2. अथगोता	3. बुहड़
4. सुभद्रा	5. बोहरा	6. सियाल
7. कटारिया, कोरेचा, रत्नपुरा, बोहरा		8. नाडयोल
9. मिटडिया बोहरा	10. घरवेला	11. वडेर
12. गोधी	13. देवानंदा	14. गोतमगोत
15. डोसी	16. सोनीगरा	17. कोटिया
18. हरिया	19. देडिया	20. बोरेचा

इन जातियों का विवरण जामनगर के पण्डित हंसराज हीरालाल के पास है।

मलधार गच्छ

(1528 - 1574 ओसवाल संवत्)

इस गच्छ में पूर्णचंद सूरि, देवानंदसूरि, नारचंद्रसूरि, देवानन्दसूरि, नारचंद सूरि, तिलकसूरि आदि महान् प्रतायी आचार्य हुए। इन आचार्यों ने भूभ्रमण कर हजारों जैनेत्तरों को प्रतिबोध श्रावक बनाया।[2] यह गौत्र हैं -

1. पगारिया (गोलिया, कोठारी, संघी)		2. कोठारी
3. गीरिया	4. बम्ब	5. गंग
6. गेहलड़ा	7. खींवसरा	

पूर्णियागच्छ

(1528-1574) ओसवाल संवत्

इस गच्छ में महान् विद्वान एवं प्रभाविक आचार्य हुए, जिसमें चंद्रसूरि, धर्मघोषसूरि, मुनिरत्नसूरि, सोमतिलक सूरि आदि आचार्य हुए। उन्होंने भी हजारों जैनेत्तरों को उपदेश देकर जैन बनाकर महाजन संघ की खूब वृद्धि की।[3] गौत्र निम्नानुसार है-

1. साव	2. सियाल	3. सालेचा
4. पुनमिया	5. मेघाणी	6. घनेरा।

नाणावल गच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, उत्तरार्द्ध, पृ 1504
2. वही, पृ 1504
3. वही, पृ 1504

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस गच्छ में कई प्रभाविक आचार्य हुए जिसमें आचार्य शांतिसूरि सिद्धसूरि और देवप्रभसूरि आदि हुए। इन्होंने बिहार के दौरान अनेक अजैनों को जैन बनाकर नूतन जातियां बनाई।[1] ये गौत्र हैं-

1. रणधीरा 2. कावड़िया 3. ढड्ढा श्रीपति- तलेरा
4. कोठारी

सुराणा गच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में धर्मघोषसूरि आदि आचार्य हुए जिन्होंने अनेक अजैनों को जैन बनाया।[2]

1. सुराणा 2. सांखला 3. भणवट
4. मिढडिया 5. सोनी 6. उस्तवाल
7. खटोर 8. नाहर

सुराणा गच्छ के महात्मा नागौर के गोपीचंद जी हैं।

पल्लीवाल गच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में कई प्रभाविक आचार्य हुए जैसे, आचार्य यशोभद्रसूरि, प्रद्योभ्नसूरि, अभयदेवसूरि वगैरह।[3] इन्होंने कई अजैनों को जैन बनाया। ये गौत्र हैं

1. घोखा 2. बोहरा 3. डूंगरवाल

कंदरसागच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में आचार्य पुण्यवर्धन, महेन्द्रसूरि आदि कई प्रभाविक आचार्य हुए हैं। इन्होंने अनेक जैनेत्तरों को जैन बनाया[4], जैसे

1. खाबड़िया, 2. गंग 3. बम्ब बंग
4. दूधोडिया 5. कटोतिया।

साड़ेराव गच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में आचार्य ईश्वरसूरि, यशोभद्रसूरि, सुमतिसूरि, शांतिसूरि वगैरह महान् प्रतिभाशाली आचार्य हुए जिन्होंने बहुत से जैनेत्तरों को जैनधर्म की दीक्षा देकर महाजन संघ में शामिल किया[5]-

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, उत्तरार्द्ध, पृ 1504
2. वही, पृ 1504
3. वही, पृ 1505
4. वही, पृ 1505
5. वही, पृ 1505

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. गुंगलिया	2. भण्डारी	3. चतुर
4. दुधोडिया	5. घारोला	6. कांकरेच
7. बोहरा	8. शीशोदमा	

यह वंशावलिया खरतरगच्छ को दे दी गई। अब इनकी वंशावलिया आसोप के खरतरगच्छीय महात्मा भी लिखते हैं।

वृहदत्रपागच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में महान् प्रभाविक आचार्य हुए, जैसे जगच्चन्द्र सूरि, देवीचन्द्र सूरि, धर्मघोष सूरि, सोमप्रभसूरि, सोमातिलक सूरि, देवीदसुन्दर सूरि, मुनि सुन्दर सूरि, रत्नाशीरासूरि, आदि। इन्होंने अनेक अजैनों को जैन बनाकर महाजन संघ में शामिल किया[1], जैसे

1. वरडिया, वरदिया बहुदान	2. बंठिया, कवाड़शाह, हरखातर
3. छरिया	4. डफरिया
5. ललवाणी	6. गांधी, वैद्यगांधी, राजगांधी
7. खजांची	8. बुरड
9. संघवी	10. मुनोयत
11. पगारिय	12. चौधरी
13. सोलंकी	14. गुजराणी
15. कच्छोल	16. मोरड़ये
17. सोलेच	18. कोठारी
19. खरोल	20. विनायकिया
21. सराध	22. लोकड़
23. भिन्नी	24. आंचलिया
25. गोलिया	26. ओसवाल
27. गोरी	28. मादरेच
29. लोलेचा	30. माला।

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, उत्तरार्द्ध, पृ 1505

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नागपुरिया तपागच्छ

(ओसवाल संवत् 1528-1574)

इस गच्छ में चन्द्रसूरि, वादिदेवसूरि, पद्मसूरि, प्रसन्नचन्द्रसूरि, गुणसुन्दर सूरि, विजयशिखर सूरि आदि महाप्रभाविक आचार्य हुए। इन्होंने लाखों को जैनधर्मी बनाकर महाजन संघ की खूब वृद्धि की। इन श्रावकों की कई जातियां बन गई[1] - जैसे-

1. गोहलाणी, नवलखा, भूतेड़िया।
2. पीपाड़ा, हीरण, गोगड़, शिशोदिया
3. रूलीवाल, बेगाणी।
4. हिगड-लिंगा।
5. रामसोनी।
6. झाबक, झमड़।
7. छलाणी, छजलाणी, घोड़ावल।
8. हीराऊ केलाणी।
9. गोखरू, चौधरी।
10. जोगड़।
11. छोरिया, सामड़ा।
12. लोढा।
13. सूरिया, मीठा।

भावहड़ागच्छोपासक गोत्र

डागा, मालू, आघरिया।

चित्रवाल गच्छोपासक गोत्र

भंडशाली, अलंझड़ा, अरणोदा चित्रवाल।

चैत्यवासी गच्छोपासक गोत्र

खारा, खारीवाल, लूनिया, निबड़िया, मंत्री, सूरमा चैत्यवासी।

पीपलगच्छोपासक

पीपला, पीतलिया, सोनगरा।

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिबोध (अभिलेखों के आधार पर)

शिलालेखों द्वारा जैनाचार्यों के प्रतिबोधित गोत्रों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि सर्वाधिक प्रतिबोधन/उद्बोधन खरतरगच्छाचार्यों ने किया।

वर्द्धमान सूरि- खरतरगच्छ के जनक श्री जिनेश्वर सूरि के गुरु एवं प्राकृत ग्रंथ 'कुवलयमाला' के रचयिता उद्योतनसूरि के शिष्य वर्द्धमान सूरि ने वि.सं 1026 में संचेती गोत्र की, 1072 में लढा माहेश्वरी गोत्र को प्रतिबोधित कर लोढा गोत्र की, संवत् 1972-73 में पीपाड़ नगर में कर्मचंद गहलोत को प्रतिबोधित कर पीपाड़ा गोत्र के उद्भव में योग दिया।

जिनेश्वरसूरि- जिनेश्वरसूरि (वि.सं 1061-33) ने श्रीपति ढढा, तिलेरा, भाणसाली गोत्रों की स्थापना की। इन्होंने वि.सं 1076 में दिल्ली में सोनगरा चौहान राजा को प्रतिबोधित कर **सुचंती (सहचिन्ती)** गोत्र की स्थापना की। यति रामलाल जी के अनुसार सुचन्ती गोत्र की

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, उत्तरार्द्ध, पृ 1503

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्द्धमान सूरि द्वारा हुई।

जिनेश्वरसूरि के प्रतिबोध से लोद्रवा (जैसलमेर) के भाटी नरेश को प्रतिबोधित कर **भणसाली (भंसाली, भनसाली)** गोत्र की प्रस्थापना की। जोधपुर के मुनिसुव्रत स्वामी के मंदिर के तलघर में इस गोत्र की उत्पत्ति का पता चलता है। श्री पूर्णचंद नाहर ने 'जैन लेखसंग्रह' भाग 3 में एक पत्र (बीकानेर के उपाध्याय पं जयचंद्र गणी से प्राप्त) के अनुसार लोद्रवा के सागर राजा के दो पुत्र श्रीधर और राजधर जिनेश्वरसूरि से प्रतिबोध पाकर जैन हुए और भणसाली कहलाए।

जिनेश्वरसूरि ने 1101 वि.सं में सोलंकी राजपूत गोविन्द को नाणा ग्राम में प्रतिबोधित कर **श्रीपति** गोत्र की संस्थापना की।

अभयदेव सूरि - 1072-1135 वि.सं ने खेलसी पगारिया और मेड़तवाल गोत्रों की स्थापना की। ब्राह्मणगोत्रीय शंकरदास को संवत् 1111 में प्रतिबोधित कर पगारिया गोत्र की स्थापना की। इनके वंशजों की **पगारिया, मेड़तवाल और खेतसी** की तीन शाखाएं चली। **गोलिया** इसी **पगरिया** गोत्र की शाखा है।

हेमचंद्रसूरि - हेमचंद्रसूरि ने **सांखला, सुराणा, सियाल, सांड, सालेचा और पुनमिया** गोत्रों की स्थापना की। इन्होंने सिद्धपुर में मूरजी को प्रतिबोधित कर **सुराणा** गोत्र की स्थापना की। सूरजी के भाइयों में संखजी से **सांखला** गोत्र, सावल जी से सियाल गोत्र सांवलजी के पुत्र सुखा में **सुखाणी** और पूनम से **पुनमिया** गोत्र स्थापित हुए। सांवल जी के पुत्र ने सांड को पछाड़ा, इससे सांड गोत्र स्थापित हुआ।

जिनवल्लभसूरि- जिनवल्लभसूरि वि.सं 1156-1177 ने **चोपड़ा, गुणधर, बडेर, कुकड़, सांड, बौठिया, ललवाणी, बरमेचा, हरखावत, मल्लावत, साह, सोलंकी, कांकरिया, और सिंघी** आदि गोत्रों की स्थापना की। इन्होंने संवत् 1142 में क्षत्रिय भीमसिंह को कांकरोल में प्रतिबोध देकर कांकरिया गोत्र की स्थापना की। वि.सं 1156 में मण्डोर के परिहार शासन नाहरदेव को प्रतिबोधित कर **कुकड़ गोत्र** (पुत्र का नाम कुक्कड़ देव था) की स्थापना नवनीत चोपड़ने से हुआ, इसलिये **कुकड़ चोपड़ा** कहलाया। कायस्थ मंत्री गुणधर ने राजपूत के नवनीत चुपड़ा था इसलिये यह गोत्र गुणधर चोपड़ा कहलाया। गुणधर चोपड़ा के वंश में गांधी का व्यवसाय करने से **गांधी** हुए। ग्यारहवीं शताब्दी में ही वीसलपुर में चौहान राजपूत दूगड़ सूगड़ को प्रतिबोधित करने से **दूगड़ सूगड़** गोत्र की स्थापना हुई। 1177 वि.सं में पंवार क्षत्रिया पृथ्वीपाल धार नगरी में बहुफण शत्रुंजय का मंत्र प्राप्त करने से **बहुफणा** गोत्र की स्थापना की वि.सं 1167 में रणथम्भौर के परमार क्षत्रिय लालसिंह को प्रतिबोध देकर सब को जैन बनाया। बड़े पुत्र बयोद्धार से बंठ गोत्र, छोटे पुत्र लालणी से **ललवाणी** गोत्र, पुत्र उदयसिंह के वंश शाह उपाधि से शाह हुए और मल्ले पुत्र से **मल्लावत** हुए। पंवार लालसिंह के पुत्र ब्रह्मदेव के नाम से **ब्रह्मेचा (बरमेचा)** गोत्र की स्थापना हुई। श्री कोठारी के अनुसार यह विश्वसनीय है कि बांठिया गोत्र की स्थापना जिनवल्लभसूरि ने की।[1] इसी वंश में 1644 में हरखाजी से **हरखावल**

1. सोहनलाल कोठारी, ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 208

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोत्र हुआ, पंवार लालसिंह के पुत्र मल्ल के नाम से **मल्लावत गोत्र** की स्थापना हुई। इन्होंने वि.सं 364 में सिरोही में ननवाणा बोहरा विजयानंद को प्रतिबोधित कर सिंघी। सिंघवी गोत्र की स्थापना की। 1784 वि.सं में शत्रुंजय का बड़ा संघ निकाला इसलिये **सिंघवी** कहलाए। रवीमसर में चौहान दबीमसी को प्रतिबोधित कर रवीमजी गोत्र की स्थापना की। यह भी माना जाता है कि जिनवल्लभसूरि द्वारा ही सोलंकी राजपूत भंडसाल को प्रतिबोधित कर **भंसाली** गोत्र की स्थापना की।

जिनदत्तसूरि- जिनदत्तसूरि वि.सं 1130-1211 **खण्डवा, पाटेवा, टौंटिया, कोठारी, बोरेड़, खीमसरा, समदारिया, कठोतिया, रत्नपुरा, कटारिया, लानवाणी,** डागा, **माला, मोमू, सेठी, सेठिया, रंक, बोकशंका, बांका, सालेचा, पूगलिया, चोरडिया, सावणसुखा, गोलेच्छा, लूनिया, चण्डालिया, आतेड़ा, खटोल, गड़वाणी, मेड़गतिया,** और **पोकरणा** आदि गोत्रों की स्थापना की।

1152 वि.सं में अणहिलपुर के गोठी (व्यक्ति) को प्रबोधित कर **गोठी गोत्र** की स्थापना की।

1156 वि.सं में कायस्थ मंत्री गुणधर की वंशी परम्परा में ही मण्डोर आचार्य श्री जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिबोधित जालोर के **मोदी** हैं। जोधपुर के महाराज अजीतसिंह ने इन्हें मोदी की उपाधि दी। 1156 वि.सं में परिहार कूकड़देव मण्डोर में प्रतिबोधित होकर कूकड़ चौपड़ चोपड़ा कहलाए।

1169 वि.सं में डेडूजी क्षत्रिय को प्रतिबोधित कर धाड़ा (डाका) डालने के कारण **धाड़ीवाल** कहलाए। डेडूजी की छठी पीढ़ी में साँवलजी हुए, इसस टाटिया शाखा निकली।

1175 वि.सं में अंबागढ़ में परमार बोरड को आचार्य श्री जिनदत्तसूरि ने प्रतिबोधित कर **बोरड गोत्र** की स्थापना की।

1177 वि.सं में धार में **बहुफणा/बाफणा** गोत्र के ही पंवार जयपाल प्रतिबोधित होकर **नाहटा** कहलाए। युद्ध में ना हटने के कारण **नाहटा** कहलाए।

वि.सं 1176 में कच्छ में परमार गदाधर को प्रतिबोधित कर **गदा गोत्र** की स्थापना की और यहीं से आगे चलकर **करणिया** (केनिया) गोत्र बना। यह गोत्र कच्छ प्रदेश में फैल गया। कठौती ग्राम के एक ब्राह्मण को प्रतिबोधित कर आचार्य जिनदत्तसूरि जी ने वि.सं 1176 में **कठोतिया** गोत्र की स्थापना की। कठोती ग्राम से कठोतिया गोत्र बना।

वि.सं 1182 में रतनपुर के चौहान धनपाल को प्रतिबोधित कर आचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी ने रतंनपुरा **कटारिया** गोत्र की स्थापना की।

वि.सं 1185 में पाली के निकट एक ग्राम में गौड़ क्षत्रिय **रांका बांका** को प्रतिबोधित कर रांका बांका गोत्र की स्थापना की। बाद में पाटन नरेश दान देने के कारण ने रांका को सेठ और छोटे भाई बांका को सेठिया की पदवी से सम्मानित किया।

वि.सं 1187 में लोद्रवा (जैसलमेर) में भाटी कल्हण को प्रतिबोधित कर आचार्य जिनदत्तसूरि ने **राखेचा** गोत्र की स्थापना की। कर्नल टाड के अनुसार भाटी राजा के हट के वंश

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में आलन हुआ। आलन के चार पुत्रों- देवसी, त्रिपाल, भवानी और राखेचा हुए, राखेचा के नाम से राखेचा गोत्र की स्थापना तर्क संगत लगती है। राखेचा के पुत्र पुंगल में बसे, उससे **पुंगलिया** गोत्र की स्थापना हुई।

1192 वि.सं में राठौड़ खरहत्थ चोरडिया गांव में आचार्य श्री जिनदत्तसूरि ने प्रतिबोधित कर **चोरडिया** गोत्र की स्थापना की। चोरडिया गांव जोधपुर-जैसलमेर (तहसील शेरगढ़) मार्ग में स्थित है। वि.सं 1192 में ही बच्छराज राठौड़ को प्रतिबोधित कर **गोलेच्छा** गोत्र की स्थापना की। खरहत्थ के दूसरे पुत्र भैंसाशाह और फिर भैंसाशाह के दूसरे पुत्र गेलोजी और गेलोजी के बच्छराज को गेलबच्छा कहते थे, उसी से गोलेछा गोत्र का नामकरण पड़ा। भैंसाशाह के बड़े पुत्र कुंवर जी राठौड़ को प्रतिबोधित कर चित्तौड़ में **सावणसुखा** गोत्र की स्थापना की। उसने एक बार भविष्यवाणी की कि सावन सूखा है, भादो हरा है, उसी से सावणसुखा गोत्र बना।

खरहत्थसिंह के पौत्र सेनहत्थ (प्यार से गद्दाशाह) से खरतरगच्छाचार्य श्री जिनदत्तसूरि ने प्रतिबोधित कर **गधैया** (गद्दाहिया) गोत्र की स्थापना। वि.सं 1192 में आहड़ में राठौड़ पाशुजी को प्रतिबोधित कर **पारख** गोत्र की स्थापना की। पाशु भैंसाशाह का चौथा पुत्र था। पाशु हीरों का पारखी था, इसका गोत्र **पारख** कहलाया। मुलतान में मूंधड़ा माहेश्वरी धींगड़मल को प्रतिबोधित कर वि.सं 1192 में प्रतिबोधित कर **लूनिया** गोत्र की स्थापना की। धींगड़मल के पुत्र लूणा को प्रतिबोधित करने के कारण यह गोत्र लूणिया कहलाया।

वि.सं 1196 में भण्साल में भादोजी भाटी को प्रतिबोधित कर **भंसाली** गोत्र की स्थापना की। भाटों और कुलगुरुओं की प्राचीन बहियों के अनुसार तो जिनेश्वरसूरि जी ने **भंसाली** गोत्र की स्थापना की, किन्तु जोधपुर के मुनि सुव्रत स्वामी के जैन मंदिर के तलघर में संरक्षित शास्त्रभण्डार के एक प्राचीनपत्र के अनुसार जिनदत्तसूरि ने भण्सोल नगरी के भाटी भादोजी को प्रतिबोधित कर भंसाली गोत्र की स्थापना की। इसमें कहा गया है:-

''श्री पूज्यजी श्री जिनदत्त सूरिजी प्रतिबोध्या भाटी भादोजी गांव भणसोल नगरी से राज करता था।'' इसमें विस्तार से अंकित है कि कौन कहाँ बसा।

वि.सं 1197 में विक्रमपुर में सोनगरा राजपूत हीरसेन को प्रतिबोधित कर **डोसी** गोत्र की और विक्रमपुर में ही चौहान राजपूत पीउला को प्रतिबोधित कर पीथलिया गोत्र की स्थापना की। ठाकुर ने अपना दोष स्वीकार करने के कारण दोसी गोत्र पड़ा और पीउला नाम से **पीथलिया** गोत्र की स्थापना हुई। इन्होंने देलवाड़ा में क्षत्रिय बोहित्थ को प्रतिबोधित कर **बोथरा (बोहित्थरा)** गोत्र की स्थापना हुआ। बोथरा गोत्र में ही बच्छाजी से बच्छावत गोत्र हुआ।

वि.सं 1198 में सिंध में भाटी अभयसिंह को प्रतिबोधित कर **आयरिया** गोत्र की स्थापना की। नदी में पानी आ रहा था, राजा ने कहा, "आयरिया है।' इसी से आचार्य ने आयरिया गोत्र की संज्ञा दे दी। इसी के वंश में सत्रहवीं पीढ़ी में लूणाशाह से **लूणावत** गोत्र का नाम पड़ा।

वि.सं 1201 में खाटू में बुद्धविंह चौहान को प्रतिबोधित कर खाटू के नाम से **खाटेड़** गोत्र की स्थापना की।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वि.सं 1201 में आचार्य जिनदत्तसूरि जी ने ही रूण गांव में सोढा क्षत्रिय वेगा को प्रतिबोधित कर रूण गांव के नाम से **रूणवाल** गोत्र की स्थापना की।

राठी माहेश्वरी भाभू को रतनपुर में प्रतिबोध देकर खरतरगच्छाचार्य जिनदत्तसूरि ने **भाभू गोत्र** की स्थापना की। रतनपुर में ही राठी माहेश्वरी माल्हदे को प्रतिबोधित कर जिनदत्तसूरि ने **मालू गोत्र** की स्थापना की।

आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी ने भाखरी (अजमेर के पास) गांव में गड़वा नामक राठौड़ को प्रतिबोधित कर **गड़वाणी** गोत्र की। जिनदत्तसूरि जी ने ही पुष्कर में सकलसिंह राठौड़ को प्रतिबोधित कर **पोकरणा** गोत्र की स्थापना की। पुष्करजी के नाम से यह गोत्र पोकरणा कहलाया।

जिनचंद्रसूरि - श्री जिनचंद्रसूरि (वि.सं 397-143) ने **आछरिया, छाजेड़, मिन्नी, खजांची, भूगंडी, श्रीमाल, सालेचा, दूगड़-सूगड़, शेखाणी, कोठारी, आलावत, पोलावत** आदि गोत्रों की स्थापना की।

वि.सं 1215 में सिवाना में राठौड़ जाति के **वागन** को प्रतिबोधित कर **छाजेड़ गोत्र** की स्थापना की। आचार्य श्री द्वारा मंत्रित वासक्षेप करने से छज्जे स्वर्णमय दिखाई दिये, जिससे छाजेड़ गोत्र का नामकरण पड़ा। काजल से **काजलोत छाजेड़** कहलाए।

वि.सं 1216 में मणिधारी श्री जिनचंद्र सूरि ने देवीकोट में कांधल (पूर्वजाति अज्ञात) को प्रतिबोधित कर खजांची मिन्नी गोत्र की स्थापना की। ये बोहरे का व्यापार करते थे इसलिये **कांधल बोहरा** कहलाए। इस परिवार के पुरुष जांजणजी के पुत्र रामसिंह जी को बीकानेर महाराजा ने खजांची का का सौंपा, इसलिये ये **खजांची** कहलाए। इस व्यक्ति के एक व्यक्ति ने सिंध ने मूंगड़ी का व्यापार किये, इसलिये **मूंगड़ी** भी कहलाए।

वि.सं 1217 में आचार्य श्री जिनचंद्रजी ने सियालकोट में दड्या सालमसिंह को प्रतिबोधित कर सालेचा **बोहरा** गोत्र की स्थापना की।

श्री जिनचंद्रसूरि ने मोहिपुर में गंगसिंह परमार को प्रतिबोधित कर **गांग** गोत्र की स्थापना की। नारायणसिंह के 16 पुत्र थे। 16 पुत्रों से 16 गोत्र हुए। गंगा के पुत्र **गांग**, मोहिवाल के वंशज **मोहिवाल**, गडिया के पुत्र **गडिया** हुए। ये 16 गोत्र हैं- **गांग, पालावत, दुधेरिया, मोहीवाल, गिड़िया (गड़िया), बांभ, गोढवाड़, थरावता, खुरधा, पटवा, गोप, टोडरवाल, भाटिया, आलावत और वीरावत हुए।**

जिनचंद्रसूरि जी के प्रतिबोध से रतनपुर के माहेश्वरी राठी माहेश्वरी और खेतासर गांव के राठी माहेश्वरियों से रीहड़ गोत्र स्थापित हुआ।

जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) - जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) ने वि.सं 1313 में ने संखवाल ग्राम में चौहान कोचरशाह को प्रतिबोधित कर **संखलेचा गोत्र** की स्थापना की। इन्होंने ही सोलंकी कुमारपाल को प्रतिबोधित कर **तिलेरा गोत्र** की स्थापना की।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिनकुशलसूरि - श्री जिनकुशलसूरि जी (वि.सं 1330-1389) ने **बावेला, संघवी, जड़िया** और **डागा** आदि गोत्रों की स्थापना की। वि.सं 1371 में बावेला ग्राम में चौहान रणधीर को प्रतिबोधित कर बावेला गोत्र की, वि.सं 1381 में नाडौल में चौहान डूंगा जी को प्रतिबोधित कर डागा गोत्र की स्थापना की।

जिनभद्रसूरि - श्री जिनभद्रसूरि ने वि.सं 1475 में झाबुआ में राठौड़ झंवरे को प्रतिबोधित कर **भावक गोत्र** की स्थापना की और श्री मांगीलाल भूतेड़िया के अनुसार वि.सं 1478 में इन्होंने **भण्डारी** गोत्र की स्थापना की।[1]

जिनहंससूरि - श्री जिनहंससूरि ने वि.सं 1552 में खजवाणा में खींची गिरधारी को प्रतिबोधित कर **गेलड़ा** (गेहलड़ा) गोत्र की स्थापना की। गिरधारी जी के पुत्र का नाम गेलाजी था, इसलिये इस गोत्र का नाम गेलड़ा पड़ा।

रविप्रभसूरि - रूद्रपल्ली खरतरगच्छाचार्य श्री रविप्रभसूरिजी ने देवड़ा चौहान लाखन को बड़नगर में वि.सं 1172 में प्रतिबोधित कर **लोढा गोत्र** की स्थापना की। लोंदे जैसा पुत्र होने के कारण यह लोढा कहलाए।

मानदेवसूरि - खरतरगच्छ मानदेवसूरि ने महानगर में पंवार राजपूत आसधीर को प्रतिबोधित कर **नाहर गोत्र** की स्थापना की। आसधीर को खोया पुत्र नाहर के पास मिला, इसलिये गोत्र का नाम नाहर रखा।

जयप्रभसूरि - इसी गच्छ के जयप्रभसूरि ने **छजलानी और घोड़ावत** गोत्रों की स्थापना की।

संडेरगच्छ-यशोभद्रसूरि

खरतरगच्छ के अतिरिक्त अन्यगच्छ के आचार्यों में संडेरगच्छ के यशोभद्रसूरि ने 11वीं शताब्दी में नाडोल में दूदाराब को प्रतिबोधित कर **भण्डारी** गोत्र की स्थापना की। दूदाराब खजाने का भण्डागारिक था, इसलिये यह गोत्र भण्डारी कहलाया।

गुहणोतों की ख्यात के अनुसार खेड़ में तपागच्छ के यति श्री शिवसेन से प्रतिबोधित मोहन को प्रतिबोधित कर **मोहनोत (मुहणौत, मुणोत)** गोत्र की स्थापना की। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा के अनुसार मुहणोत गोत्र वाले अपनी वंश परम्परा राठौड़ रावसिंह जी से मिलाते हैं। सीहाजी का पुत्र आसपाल था, उसका पुत्र धुहड, तत्पुत्र रायपाल हुआ और रायपाल का दूसरा पुत्र मोहन था। इसी की बीसवीं पीढ़ी में प्रसिद्ध इतिहासकार नैणसी हुए।

कोरटगच्छाचार्य-रत्नप्रभसूरि

कोरंटगच्छाचार्य रत्नप्रभसूरि ने संखवाल ने चौहान लखमसी को वि.सं 1175 में प्रतिबोधित कर **संखवाल गोत्र** की स्थापना की।

बाप्पभट्टसूरि - श्री मीजीलाल भूतेड़िया के अनुसार आचार्य बाणभट्टसूरि (वि.सं

1. श्री मांगीलाल भूतेड़िया, इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम, पृ 168

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

800-895) ने आमराजा को प्रतिबोधित किया। इसमें एक रानी के पुत्र कोष्टागारी थे, उससे **कोठारी** गोत्र चला।[1]

नेमिचंद्रसूरि - आचार्य नेमिचंद्र सूरि ने संवत् 954 में वरडिया गोत्र की स्थापना की।[2] किन्तु श्री सोहनलाल कोठारी के अनुसार 954 वि.सं में पंवार राजपूत लखनजी को प्रतिबोधित कर **वरडिया दरड़ा** गोत्र की स्थापना की। उद्योतन सूरि ने वर दिया था, इसलिये यह **बर्डिया** गोत्र कहलाया।

1369 ई के एक शिलालेख से पता चलता है कि महावीर स्वयं अर्बुदाचल पधारे और 1276 ई के शिलालेख से पता चलता है कि गौतम ने काश्मीर से लौटकर वैश्यों को जैनमत में दीक्षित किया, इसलिये महावीर युग में महाजनवंश के रूप में ओसवंश का बीजारोपण हो चुका था।

इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा के विभिन्न गच्छों के विभिन्न आचार्यों ने अनवरत् मुख्यरूप से क्षत्रियों-राजपूतों और आंशिक रूप से अन्य गोत्रों-कायस्थ, माहेश्वरी और ब्राह्मणों आदि को प्रतिबोधित कर ओसवंशी बनाया।

जैनमत का सांस्कृतिक संदर्भ ओसवंश के रूप में प्रस्फुटित हुआ। महावीर युग में ही वीरात् संवत् 70 में महाजन वंश के रूप में ओसवंश का बीजारोपण हुआ और महावीरोत्तर युग में विक्रम संवत् 222 में ओसवंश का अंकुरण फूटा और फिर आज तक ओसवंश का प्रवर्द्धन, विकास और प्रसार देख सकते हैं। जैनाचार्यों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अजैनों को जैन बनाकर ओसवंश के प्रस्फुटन में योग दिया। जैनमत का सांस्कृतिक संदर्भ ओसवंश के श्रमणों और श्रावकों में देख सकते हैं। जैनमत द्वारा प्रतिपादित श्रेयस्कर जीवनशैली और जीवनमूल्यों को आत्मसात कर ओसवंशीय महापुरुषों और महिलाओं ने जैनमत की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि की।

ओसवंश के उद्भव और विकास को निस्संदेह जैनमत के इतिहास के परिपार्श्व और परिप्रेक्ष्य में रखकर सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। ओसवंश का इतिहास और जैनमत का इतिहास एक दूसरे से पूरी तरह घुले मिले हैं। जैनधर्म यदि एक निबंर्ध झरना है, तो उसके मध्य बहने वाली सरिता ओसवंश है। ओसवंश की निर्झरिणी जैनमत से ही प्रवाहित हुई है।

• • •

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 167
2. वही, पृ 165

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तृतीय अध्याय

ओसवंश : उद्भव

ओसवालों का प्राचीन नाम उपकेश वंश है। उपकेश वंश के उऐश, उकेश, उकेशी, उकेशीय, उकोसिय और उपकेश आदि नाम मिलते हैं।[1] ओसवाली भूमि पर जो नगर आबाद हुआ, उसे ऊस-ओस-उऐश कहा गया। उऐश का रूपान्तर प्राकृत में उकेस कर दिया गया है। उकेश और उऐस ही संस्कृत में उपकेश हुआ है। 'उपकेशगच्छ पट्टावली' में उपकेशपुर के लिये उएशपुरे समायती, उपकेशगच्छ चरित्र में 'उपकेशपुरे वास्तव्य' और 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' में भी 'मत्युपकेशपुरे' कहागया है। चण्डालिया गोत्र के शिलालेख व 1285 में 'उएशवंश चण्डालिया गोत्र', पूर्णचन्दजी शिलालेख व 480 में 'उकेशवंश जांघड़ा गोत्र' और संख्या 1256 में उपकेशवंश श्रेष्ठिगोत्रे कहा गया। बुद्धिसागर सूरि के लेखांक 558 में 'उएशगच्छे श्री सिद्धि सूरिभि', क्रमांक 1044 में 'उपकेश गच्छे कक्कसूरि सन्तानें' और क्रमांक 195 में 'उपकेश गच्छे कुकुन्दाचार्य' सन्तानें कहा गया है।[2]

उपकेशवंश: व्युत्पत्ति

खरतरगच्छीय वल्लभगणि ने वि.सं. 1655 में 'उपकेशवंश' शब्द की व्युत्पत्ति पर गहराई से प्रकाश डाला है।

1. मूल शब्द ओकेशा[3] माना जा सकता है। इसमें इशिक धातु ऐश्वर्यवाची है और ओक का अर्थ घर है। ओकेशा सत्यका नाम से प्रसिद्ध है।[3] इसका अर्थ है ऐश्वर्यमान लोगों का घर।

2. ईशन याने ईश- ऐश्वर्य तथा ओके- अर्थात् महाधनिक श्रावक आदि मनुष्यों के घरों से युक्त है, ऐश्वर्य जिसमें ऐसी ओकेशा "ओसिका' नामक नगरी और उस नगरी में पैदा हुए गच्छ का नाम ओकेश।[4]

3. ओइक[5] का अभिप्राय है- अ:= कृष्ण, उ:= शंकर, क:= ब्रह्मा। अब ये तीनों देव जिन मनुष्यों द्वारा ईशते यानि देवस्वरूप से पूज्यमान होते हुए ऐश्वर्य को प्राप्त हों, उन मनुष्यों को ओकेश कहते हैं।

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 129
2. वही, पृ 129
3. वही, पृ 131

   इशिक ऐश्वर्ये ओकेषु गृहेषु इष्टे पूज्य माना
   सती या सा ओकेश, सत्यका नाम्नी गोत्र देवता।

4. वही, पृ 131

   ईशनमीश: ऐश्वर्य ओकैर्म ह्वद्धिक श्राद्ध प्रमुख लोकानागृ हैरी शो
   यस्यासा ओकेशा ओसिका नगरी। तत्र भव: ओकेश:।

5. वही, पृ 132

   अ: कृष्णा, इ: शंकर, को, ब्रह्मा। एषां द्वन्द्वसमासे ओकास्ते
   ईशते पूज्य माना: संतो देवत्वेन मन्यमाना संतश्च
   येभ्यस्ते ओकेशा:।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

4. कृष्ण, ब्रह्मा और शंकर से जो देवाधिदेव अर्थात् श्री वर्धमान स्वामी स्तुत्य किया। यह शब्द ओमि:[1] से बना है। यहां अर्थ है कृष्णादि से स्तुत्य देवाधिदेव का घर।

5. ओकेश में अ: का अभिप्राय अर्हत और सिद्ध है। यहाँ अभिप्राय है, महावीर स्वामी का ओक- गृह। तत्पुरुष समास परक अर्थ हुआ महावीर स्वामी का चैत्य। बाद में इसका अर्थ हुआ उस वर्धमान स्वामी के चैत्य से है ईश= ऐश्वर्य जिसका। ओकेशगण महावीर स्वामी के सान्निध्य से ही वृद्धि को प्राप्त हुआ।[2]

इसके अतिरिक्त भी अनेक अर्थ सम्भव है।

1. श्री केशरीकुमारऽनगार जिस गुरुगण में है, उस गण का नाम भी उपकेश हुआ।[3]

2. जहाँ केश छोड़े जाते हैं, मुण्डन संस्कार होता है।[4]

3. क: ब्रह्मा, अ: कृष्ण, अ: शंकर। इनका द्वन्द्व करने पर का बना। जिसने छोड़ दिया ब्रह्मा, कृष्ण और शंभु से केश याने पारतीर्थक धर्म और जो तीर्थकारों ने कहा।[5]

4. क: सुख, ई= लक्ष्मी, ये दोनों जिस धर्म में या जिस धर्म में तद्धर्मी मनुष्यों के स्वाधीन है, उस धर्म का नाम हुआ केश अर्थात् स्वाधीन सुख सम्पत्ति वाला धर्म और वह धर्म (जैन धर्म) जिस गच्छ से उप= समीप में हो या जिससे अधिक प्राप्त हो, उस गच्छ का नाम भी उपकेशगच्छ है।[6]

5. केश का अर्थ है क, अ और ई, जिसका अर्थ है ब्रह्मा, विष्णु और महेश। तथा

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 133
मूल अ: कृष्ण, आ ब्रह्मा, उ शंकर, एषे द्वन्द्वे आवस्तत:
ओमि: कृष्ण: ब्रह्मा शंकर देवै: कायते देवाधिदेवत्वादिति ओक:
प्रस्तावत् श्री वर्धमान स्वामी।

2. वही, पृ 133
अ: अर्हन "अ: स्यादर्हति सिद्धे च" प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्री वर्द्धमान स्वामी प्रोच्यते। तत: अस्य ओका गृहं चैत्यमिति यावत। ओक: श्री वर्द्धमान स्वामी चैत्य मित्यर्थ:। तस्मादीश: ऐश्वर्य यस्य ओकेश:। यतोऽप गण: श्रीमहावीरतीर्थंकर सान्निध्यत: स्फाति मवापोति पंचमोऽर्थ।

3. वही, पृ 133
उप समीपे केशा: शिरोरुहा: सन्त्यस्येति उपकेश: श्री पार्श्वापत्यीय केशीकुमाराऽगार:।

4. वही, पृ 134
उपवर्णि तात्स्यक्ता: केशा: स उपकेश: 'ओसिका नगरी' तरचां हि सत्यका देव्याश्चैत्यमस्ति।

5. वही, पृ 134
को ब्रह्मा, अ: कृष्ण:, अ: शंकर: ततो द्वन्द्वे का:। तैरीष्टेऐश्वर्य मनुभवति य: स: केश:। कानां ईश: ऐश्वर्यंमाद्वा केश: पारतीर्थिक धर्म: स: उपवर्ज्जित्स्यक्तो यस्मात् स उपकेश कृदुक्त विशुद्ध धर्म: स: विद्यते यस्मिन गच्छे स उपकेश:

6. वही, पृ 135
कं च सुख ई च लक्ष्मी: कयौ ते ईशे स्वायत्ते यत्र यस्माद्वा स: केश: अर्थात् जैनोधर्म:। स: उपसमीपे अधिको वाऽस्माद्गच्छात् स उपकेश इति चतुर्थोर्थ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उनके ब्रह्मा, विष्णु महेश के धर्म का निराकरण करने के कारण उपद्रवता- दूर किये गये, वह हुआ उपकेश।[1]

प्रथम मत: परम्परागत धार्मिक मत

ओसवंश का उद्भवकाल एक अत्यधिक विवादास्पद प्रश्न है। 'उपकेशगच्छ पट्टावली'आदि के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 70 में आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशनगर (ओसियां) में चातुर्मास किये जाने और वहाँ के क्षत्रियों को ओसवाल बनाने का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्य स्वयंप्रभसूरि के पास विद्याधर राजा 'मणिरत्न' भिन्नमाल में वन्दन करने आया और उनका उपदेश सुनकर अपने पुत्र को राज्य सम्हला आचार्य श्री के पास दीक्षित हो गया। उस समय विद्याधर राज मणिरत्न के साथ अन्य 500 विद्याधर भी दीक्षित हो गये। दीक्षा के पश्चात् आचार्य स्वयंप्रभ ने उनका नाम रत्नप्रभ रखा।

वीर निर्वाण संवत् 52 में मुनि रत्नप्रभ को आचार्य पद प्रदान किया गया। आचार्य रत्नप्रभ अनेक क्षेत्रों में विचरण करते हुए एक समय उपकेशनगर पधारे।

उपकेशनगर के सम्बन्ध में 'उपकेशगच्छ पट्टावली' में उल्लेख मिलता है कि भिन्नमाल के राजा भीमसेन के पुत्र पुंज का राजकुमार उत्पलकुमार किसी कारणवश अपने पिता से रुष्ट होकर क्षत्रिय मंत्री के पुत्र उहड़ के साथ भिन्नमाल से निकल पड़ा। राजकुमार और मंत्री पुत्र ने एक नवीन नगर बसाने का विचार किया और अन्ततोगत्वा 12 योजन लम्बे चौड़े क्षेत्र में उपकेशनगर बसाया। नये बसाये गये उपकेशनगर में भिन्नमाल के 1800 व्यापारी 900 ब्राह्मण तथा अनेक अन्य लोग भी आकर बस गये।

'आचार्य रत्नप्रभसूरि' जिस समय अपने शिष्य समूह के साथ उपकेशनगर में पधारे, उस समय सारे नगर में भी जैन धर्मावलम्बी गृहस्थ के न होने के कारण उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। भिक्षा न मिलने के कारण उन्हें और उनके शिष्यों को उपवास पर उपवास करने पड़े, फिर भी उन्होंने 35 साधुओं के साथ उपकेशनगर में चातुर्मास करने का निश्चय किया और अपने शेष सब शिष्यों को कोरंटा आदि अन्य नगरों और ग्रामों में चातुर्मास करने के लिये उपकेश नगर से विहार करवा दिया।'

'उपकेशनगर में चातुर्मास करने के पश्चात् रत्नप्रभसूरि आहार पानी को समभाव से सहते हुए आत्मसाधना में तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार चातुर्मास का कुछ समय निकलने के पश्चात् एक दिन उपकेशनगर के राजा उत्पल के दामाद त्रैलोक्यसिंह को, जो मंत्री अहड़ का पुत्र था, एक भयंकर विषधर ने डस लिया। उपचार के रूप में किये गये सभी प्रयत्न निष्फल रहे और कुमार को मृत समझकर दाह संस्कार के लिये श्मशान की ओर चले। वहाँ आचार्य रत्नप्रभसूरि का चरणोदक सींचने पर कुमार का जहर उतर गया और उसने नवीन जीवन प्राप्त किया। शोक में

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 135
कश्च, अश्च, ईशश्च= केशा:, ब्रह्मा, विष्णु, महेशा:।
तद्धर्म निराकरणाति उपहता: येन स उपकेश: ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डूबा हुआ राजपरिवार और समस्त उपकेशनगर आनन्दित हो उठा।'

'इस अद्भुत घटना से प्रभावित होकर राजा, मंत्री, उनके परिजनों और पौरजनों आदि ने एक बहुत बड़ी संख्या में जैनधर्म स्वीकार किया और उन सबके ओसिया निवासी होने के कारण नये जैन बने लोगों की 'ओसवाल' से प्रसिद्धि हुई।

'यह भी कहा जाता है कि इस अद्भुत घटना से प्रभावित होकर राज्य की अधिष्ठायिका चामुण्डा देवी को भी- जिसे कि बलि दी जाती थी, आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सम्यक्त्वधारिणी बनाया और सच्चिका नाम देकर उसे ओसवालों की कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित किया। देवी ने केवल पशुओं की बलि लेना ही नहीं छोड़ा अपितु लाल रंग के फूल भी वह पसन्द नहीं करती थी।'

'उपकेशगच्छ पट्टावली में आचार्य रत्नप्रभसूरि के इस प्रकार के अनेक चमत्कारों की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। कहा जाता है कि आपने 1,80,000 अजैनों को जैन धर्मावलम्बी बनाया और वीर निर्वाण सं. 84 में स्वर्ग प्राप्त किया।'

'रत्नप्रभसूरि के पश्चात् यक्ष देवसूरि आदि के क्रम से उपकेशगच्छ की आचार्य परम्परा अद्यावधि अविच्छिन्न रूप से चलती हुई बताई गई है।'[1]

'माहेश्वर कल्पद्रुम ग्रंथ में ओसवालों के होने इस तरह लिखा है,

'श्री वर्द्धमान जिन पछै वर्ष बावन पद लीधो रत्नप्रभसूरि नाम तस गुरुव्रत दीधो, भीनमाल सूं उठिया जाय ओसियां बसाणां क्षत्री हुआ शाख अठार उठै ओसवाल कहाणां, एक लाख चौरासी सहस्रधर, राजपूत प्रति बोधिया, रतनप्रभू ओस्या नगर ओसवाल जिण दिन किया।'[2]

रत्नप्रभसूरीश्वर: ऐसा माना जाता है कि रत्नप्रभसूरीश्वर जी का रधनुपुर नगर के राजा महेन्द्रचूड़ की महादेवी लक्ष्मी की रत्नकुक्ष से आपका जन्म हुआ। आपका नाम रत्नचूड़ रखा गया था। राजा रत्नचूड़ ने अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप कर 500 विद्याधरों के साथ आचार्य स्वयंप्रभसूरि के चरणकमलों में दीक्षा धारण कर ली। आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने उन मोक्षार्थियों को दीक्षा देकर राजा रत्नचूड़ का नाम रत्नप्रभ, शेष पांच सौ मुनियों को रत्नप्रभ का शिष्य बना दिया। तदनन्तर मुनि रत्नप्रभ गुरुचरणों की सेवा आराधना करते हुए क्रमश: 12 वर्ष निरन्तर ज्ञानाभ्यास कर द्वादशांग अर्थात् सकलागमों के पूर्णत: ज्ञाता बन गये। इतना ही क्यों,आचार्य पद योग्य सर्वगुण भी प्राप्त कर लिये, अत: आपका भाग्य रवि मध्यान्ह के सदृश चमकने लग गया। आचार्य स्वयंप्रभसूरि ने अपनी अंतिमावस्था और मुनिप्रभ की सुयोग्यता देखकर वीरात् 52वें वर्ष में मुनिरत्नप्रभ को आचार्य पद से विभूषित कर अपना सर्वाधिकार उनको सौंप दिया।'[3]

---

1. आचार्य हस्तीमल जी म.सा., जैनधर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय भाग, पृ 379-380
2. उपाध्याय श्री रामलालजी, महाजनवंश मुक्तावली, पृ 13
3. मुनि श्री ज्ञानसुन्दर जी महाराज, भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, पूर्वार्द्ध, पृ 62

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार-

"क्रमेण द्वादशांग चतुर्दशपूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापित:
श्रीमद वीर जिनेश्वरात् द्वि पंचाशत वर्षे आचार्य पदे स्थापित:
पंचाशत साधुमि: सहधरां विचरति।"[1]

तदनन्तर आचार्य रत्नप्रभसूरि शासनतंत्र सुचारू रूप से चलते हुए भूतल पर धर्मप्रचार करते हुए विहार करने लगे। तीर्थाधिराज शत्रुंजय तीर्थ से अर्बुदकाल पधारे और अधिष्टात्री चक्रेश्वरी देवी की प्रार्थना पर मरुभूमि की ओर प्रयाण किया। आप अनेक कठिनाइयों और बाधाओं को झेलते हुए उपकेशपुर नगर पहुँच गये।

श्रीमाल नगर के राजा भीमसेन के दो पुत्रों- पुंज और सुरसुन्दर में पुंज का पुत्र उत्पलदेव था। एक समय का जिक्र है उत्पलदेवकुमार आपसी ताना के कारण अपमानित हो नगर से निकल गया। उसकी इच्छा एक नया नगर बसा कर स्वयं राज करने की थी। इधर तो राजकुमार अपमानित होकर निकल रहा था, उधर प्रधान का पुत्र उहड़ कुमार भी संयोगवश अपमानित होकर राजपुत्र के साथ हो गया।

उत्पलदेव ने ढेलीपुर (दिल्ली) नगर के राजा साधु से आज्ञा लेकर मण्डोर के आगे पानी की सुविधा देखकर एक नगर का नाम उस वाली भूमि होने से 'उएस' रख दिया। स्वल्प समय में ही यह नगर 9 योजना लम्बा और 12 योजना लम्बा बस गया। राजा भीमसेन से दुखी जनता इस नूतन नगर में आ बसी। यहाँ इस नूतन नगर में चामुण्डा देवी की स्थापना कर दी।

कई प्राचीन वंशावलियों में इस नूतन नगरी के सम्बन्ध में कवित्त मिलते हैं।

गाड़ी सहसगुण तीस, यता रथ सहस्र ग्यारे,
अट्ठारह सहस्र असवार पाला पावक नहीं कोई पारे।
उट्ठी सहस अट्ठार, तीस हस्ती मद जरता,
दस सहस्र विप्र भिन्नमाल से मणिधर साथे मांडिया,
एव उपलदे मंत्री ऊहड़, घर बार साथे छाडिया।

इस नगरी में व्यापारियों के साथ ब्राह्मण भी आ गये। दो दो व्यापारी एक एक ब्राह्मण का निर्वाह भी कर देते थे और नूतन नगर की अधिष्ठात्री चामुण्डा देवी की स्थापना कर दी।[2]

आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर पधार तो गये पर किसी एक भी आदमी ने उनका स्वागत सत्कार नहीं किया, इतना ही क्यों किसी ने ठहरने के लिये स्थान तक भी नहीं बतलाया। इस हालत में आचार्य श्री ने साधुओं के साथ लुणाद्रि पहाड़ी पर जाकर ध्यान लगा दिया। नगर के

1. उपकेशगच्छ पट्टावली, पृ 184
2. उपकेशगच्छ चरित्र

द्वाभ्या वणिग्भ्यां तत्रेक विप्रवृति: प्रकल्पिता
पाद्रदेवी च चामुंडा तत्स्थ लोक कुलेश्वरी:
पिता पुत्रश्च यत्रौभौ वणिजौ व्यवहारिणौ
षण्मासी तस्थुषौ जातु मिलितौ न मिथ क्वचित।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तमाम लोग मांसाहारी थे, इसलिये साधुओं को भिक्षा नहीं मिली। आचार्य श्री ने आदेश किया कि जो विकट तपश्चर्या करने वाले हैं, वे चातुर्मास के लिये रुक जायें और शेष विहार करें।

राजा उत्पलदेव की पुत्री सौभाग्यसुन्दरी का विवाह मंत्री पुत्र त्रैलोक्यसिंह के साथ हुआ। एक समय राजकन्या अपने पतिदेव के साथ शैया पर सो रही थी, तब एक सर्प ने कुमार को डस लिया। कुमार मृतावस्था को प्राप्त हो गये।

नगर में शोक के काले बादल छा गये। राजा, मंत्री और नगर के लोग रुदन करते हुए राजमाता की श्मशान यात्रा के लिये जा रहे थे। सब लोग सूरि जी के पास आये और राजा तथा मंत्री दीन स्वर से प्रार्थना करने लगे, हे दयासिंधो ! आप हमारे पर दुर्दैव का कोप होने से हमारा राज्य शून्य हो गया है। हमारे पुत्र रूपी धन को मृत्यु रूपी चोर ने हरण कर लिया है। हे करुणावतार! आप हमारे दुख का पार नहीं है, अत: आप कृपा कर हमारे संकट को दूर कर पुत्र रूपी भिक्षा प्रदान करें। आचार्य श्री ने गरम जल मंगवाया। उस गर्म जल से सूरि जी के चरणांगुष्ठ का प्रक्षालन कर इस जल को मंत्री पुत्र पर डाला।[1] बस, फिर तो क्या था, मंत्री पुत्र के शरीर से विष चोरों की तरह भाग गया और मंत्रीपुत्र खड़े होकर इधर उधर देखने लगा। सब लोग आश्चर्यचकित हो गये।

उस समय चारों ओर हर्ष और नाद के बाजे बजने लगे। सबके मुँह से यही शब्द निकलने लगे कि इन महात्मा की कृपा से मंत्रीपुत्र ने नया जीवन प्राप्त किया है।[2]

उस समय राजा ने खजांचियों ने मणिमुक्ताएं मुनि श्री को भेंट स्वरूप ले गये। किन्तु ग्रहण करने से मना कर दिया।[3]

उस समय सूरि जी ने कहा कि हम केवल जनकल्याणार्थ भ्रमण करते हैं। यदि आप लोगों की इच्छा हो तो जैनधर्म को स्वीकार कर लो, ताकि इस लोक और परलोक में आपका

---

1. उपकेशगच्छ चरित्र, पृ. 185

वादित्रान् आर्कण्य लघुशिष्य: तत्रागत झंपाणों हृष्टवा एवं कथापयति भो ! जीवितं कथं ज्वालायत: ते श्रेष्ठिने कथितं एषं मुनिवरं एवं कथयति। श्रेष्ठिना झंपाणो वालित: क्षुल्लक: प्ररष्ट् गुरु पृष्ठे स्थित: मृतकामानीय गुरु अग्रे मुचति श्रेष्ठि चरणों शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु ! ममदेवी रूष्ठ ममगृहो शून्यो भवति तेन कारणेन मम पुत्र भिक्षां देहि ? गुरुणा प्रासुक जलमानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितं। कारणे सज्जे हर्ष वादित्राणि वभूव। लोकै: कथितं श्रेष्ठि पुत्र नूतन जन्मो आगत:।

2. वही

मुने सालित चरणेन जलेन परिषेचनम्।
कृतं मृतो परितदा सहसा जीवितोत्थित॥
उवाच जनता तत्र हर्ष वादित्र निस्वनै।
अद्य त्वया मंत्रिपुत्र। लब्ध जन्म द्वितीयकम॥

3. उपकेशगच्छ पट्टावली

श्रेष्ठिता गुरुणां अग्रे अनेक मणिमुक्ता फल
सुवर्ण वस्त्रादि भगवान गुह्यता ? गुरुणां
कथितं मम न कार्य परं भवद्भि जैनधर्म गृह्यतां।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कल्याण हो।[1]

आचार्य श्री ने उच्च स्वर और मधुर भाषा से धर्मदेशना देना प्रारम्भ किया। राजा ने कहा कि आपने अज्ञानरूपी पर्दे को चीर डाला है, सूर्य का प्रकाश कर सदमार्ग दिखलाया है। आपने हमारे पुत्र को जीवन दान ही नहीं दिया, मिथ्या के समुद्र से निकालकर हमारा उद्धार किया है। उस समय आचार्य श्री के आदेश से गले के जनेऊ और कंठियें तोड़ तोड़कर सूरीश्वरजी के चरणों में डाल दिये।

यह कहा जाता है कि राजा-प्रजा को धर्मदेशना देकर उन सबको श्रावण कृष्ण 14 को जैनधर्म की दीक्षा दी। उन राजा, मंत्री और क्षत्रियों की संख्या पट्टावलीकारों ने सवालक्ष की लिखी है।[2]

उस समय शास्त्रार्थ के पश्चात् नूतन जैन समूह के लिये 'महाजनसंघ' नामक संस्था की स्थापना करवा दी।[3]

ऐसा माना जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपकेश वासियों को ही नहीं चामुण्डादेवी को भी अहिंसा का प्रतिबोध दिया। उपकेशगच्छ चरित्र[4] के अनुसार-

---

1. उपकेशगच्छ चरित्र

ततोऽवरत् स सचिवं, श्रुत्वावै धर्मरूपकम।
गृहयताम् जैनधर्मश्च, कल्याणं लभ्यतां त्वया॥
अर्पितं तद्धनं तेन, नांगीकृत मलोभिना।
पूज्यन्ते मुनियश्चैव, त्यक्त सर्व परिग्रहा॥

2. भगवान पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास, पूर्वार्द्ध, पृ 90

3. वही, पृ 95

4. उपकेशगच्छ चरित्र

अन्यदोपसकाः पूज्यैः प्रोक्ताः माचण्डिकाऽर्चनम्।
कुरुध्वंयदियं सत्व घात पातकिनी सदा॥
स प्रभावा प्रभो! देवी, नार्च्यते यदि तद् ध्रुवम।
हन्ति नः स कुटुम्बेन, ्येवं प्राहुरुपासकाः॥
अहं रक्षां करिष्यामि, त्युक्ते सूरिभिरर्चनात्।
निवृताः श्रावकाः सर्वे, कुप्यतिस्माथ सा गुरौ॥
छलं विलोकयन्त्यस्थात्सा गुरुणा महर्निशम्।
सायं ध्यान विहोनानां, नेत्र पीड़ाय कल्पयत्॥
अज्ञान भाव विहितोऽपराधः क्षम्यतां मम।
न विधास्ये पुनः स्वामि, न्नेवं जातु प्रसीद नः॥
सूरि रूचे कथं रोषः? सऽऽहमत्सेवकान् भवान्।
अरक्षयन्मदभीष्टं, मदुक्तंचेत्करिष्यसि॥
लब्धेऽभीष्टं प्रभो, वश्याते ऽन्वयिनामपि।
भवित्रीति वदन्ती ताँ, जगुराचार्य पुंगवाः॥
निज प्रतिज्ञा वचने, स्थिरी भाण्यं त्वया सदा।
कड़ड़ा मड़ड़ा देवि दास्ये तत्र रतिं कृथाः॥
प्रतिज्ञाय गुरूक्तंतद्, देवि सद्यस्तिरोदधे।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"एक दिन पूज्य आचार्य श्री ने देवी के उपासक भक्तों को उपदेश दिया कि तुम चण्डिका का पूजन मत करो, क्योंकि इसके मन्दिर में हमेशा प्राणी मारे जाते हैं, अतः देवी पापिनी है। लोगों

प्रातः सर्वानपि श्राद्धान, गुरुवः पर्यमीलयन् ॥
मिलितानां श्रावकाणां पुरुतः सूरयोऽवदन ।
पक्वान्नानि विद्याप्यन्तां सुहाली प्रभृतीनि भोः ॥
प्रतिगेहं धनसाराऽगुरु कस्तूरिकाऽदिक ।
भोगः संमील्यतों भव्यो गृहचतां कुसुमानि च ॥
कृत्वैनं पौषधागारै, शीघ्र मागम्यतां यथा ।
चामुण्डाऽऽयतनं यामः, सद्येम सहिता वयम् ॥
पूजोपस्कर मादाय, श्रावका पौषधोकसि ।
अभ्ययुः सूरयः, संधि तैर्देवी सदेन ययुः ॥
अयू पूजन सूरी श्राद्धैः, सूरयो द्वार संस्थिता ।
अवदंश्च निजाभीष्टं, लाहिदेवि ! ददाभ्यहम् ॥
इत्युक्तोभय पार्श्वस्थे, पक्वान्नमृत सुण्डके ।
पाणिभ्यौं चूर्णयित्वोचुः, स्वाभीष्टं देवि गृह्यातांम् ॥
अथ प्रत्यक्ष रूपेण, सूरिणा पुरतः स्थिता ।
प्राह प्रभो मद भीष्ट, कड़ड़ा मड़डा ऽपरा ॥
गुरु रूचे न सा युक्ता, लातुं दातु च ते मम ।
पालदा राक्षसा एव, देवा देवि ! सुधाऽशना ॥
पूर्व दर्शन विख्यातं, स्वनामार्थं विदन्त्यपि ।
पलादानौं सगाचारं, चरन्ती किं न लज्जसे ॥
लोक श्चोपानन पशून, विनिहत्य पुरस्तव ।
तानत्ति नीत्वा स्वगृहे, त्वमश्नासि न किंचन ॥
स्वी कुर्वाण मुधा हिंसा, पातकान्न विषिभेकिम् ।
देवानां मानवानौंच, नरकः पाप क्रमर्णा ॥
पाप नातः परं किंचित, सर्व दर्शन विश्रुतम ।
तस्मीज्जीव दयाधर्म, सारमेकं समाश्रय ॥
इत्यादिभिरुपदेशैः प्रबुद्धा प्राह हे प्रभो ।
भव कूपे पतयाली, हंस्तालम्ब मदा मम ॥
इतः प्रभृति दासत्वं, करिष्येऽस्मि तव प्रभो ।
आ चन्द्रार्कं त्वद्गणेऽपि संनिध्यं व्रतिनामपि ॥
परमस्मि स्मरणीयः! स्मर्तव्या समय सदा ।
धर्मलाभः प्रदातव्यो, देवताऽवसरे कृते ॥
तथा कुंकुम नैवैद्य, कुसुमादि भिरुद्यते ।
श्रावकैः पूजययध्वं मौं, यूयं साधमिकीमिव ॥
दीर्घदर्शिभिरालोच्य, श्री रत्नप्रभ सूरि भिः ।
तद्वाक्य मुररी चक्रे, यतसन्तो गुण कंक्षिण ॥
सत्य प्रतिज्ञा जातेति, चण्डिका पाप खण्डिका ।
सत्यकेति ततो नाम विदितं भुवनेऽभवत ॥
एवं प्रबोध्यतों देवी, सर्वम विहरन प्रभुः ।
सपादलक्ष श्राद्धाना, मधिकं प्रत्यबोधयत् ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने कहा कि हे प्रभो ! यदि हम लोग इसकी पूजा न करें तो यह सकुटुम्ब हमारा संहार कर देगी। सूरीश्वरजी ने कहा, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। सूरीश्वर जी के कथन से श्रावकगण देवी की पूजा से विरत हो गये। इस पर देवी सूरीश्वरजी पर बहुत कुपित हुई। वह रातदिन गुरु के छलछिद्र देखने लगी। एक दिन जब गुरुजी सांयकाल के समय बिना ध्यान के बँटे एवं सोये हुए थे, तो देवी ने उनके नेत्रों में पीड़ा उत्पन्न कर दी। पूज्य सूरिजी योग बल से नेत्र पीड़ा का कारण जान गये, देवी स्वयं लज्जित हो गई। वह सूरि जी से प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामी ! मैंने अज्ञान भाव से प्रेरित होकर यह अपराध किया है, आप क्षमा करें। मैं अब कभी ऐसा अपराध नहीं करूंगी। हे विभो, आप मुझ पर प्रसन्न हों। सूरिजी बोले, देवी इतना रोष क्यों ? देवी ने कहा, आपने मेरे भक्तों को मेरी पूजा से मना किया है। यदि आप मेरा अभीष्ट मुझे पिला दो तो हे प्रभो! आपके और आपके वंशजों के अवश्य आधीन हो जाऊंगी। आचार्यवर ने कहा कि मैं आपको आपका अभीष्ट कड्डा मड्डा दिलाऊंगी। प्रातःकाल गुरुजी के पास सब श्रद्धालु श्रावक एकत्रित हुए। उन्होंने कहा, हे श्रावकों! तुम सब पक्वाल आदि प्रत्येक घर से लेकर पौषधागार में एकत्र मिलो, बाद में संघ को लेकर मंदिर चलेंगे। यह सुनकर सब सामग्री एकत्रित कर पौषशाला में एकत्रित हुए और सूरिजी उन्हें साथ लेकर चामुण्डा के मंदिर में गये। वहाँ पहुँच कर श्रावकों ने देवी का पूजन किया और सूरिजी ने कहा कि हे देवी ! तुम अपना अभीष्ट ले लो। ऐसा कहकर दोनों तरफ के पक्वान्न पूर्ण सुण्डकों को दोनों हाथों से चूर्ण कर बोले कि हे देवि, अपना अभीष्ट ग्रहण करो। देवी बोली, हे प्रभो! मेरी अभीष्ट वस्तु कड़डा मडडा है। गुरु बोले हे देवि! यह वस्तु तुम्हें लेना और मुझे देना योग्य नहीं, क्योंकि मांसाहारी तो केवल राक्षस ही होते हैं, देवता तो अमृत पान करने वाले होते हैं। हे देवि! तू देवताओं के आचरण को छोड़कर राक्षसों के आचरण को करती हुई क्यों नहीं लजाती हो ? हे देवि! तेरे भक्त लोग तेरी भेंट में लाए हुए पशुओं को तेरे सामने मारकर तुझको इस घोर पाप में शामिल कर उस मांस को वे स्वयं खाते हैं, तू तो कुछ नहीं खाती, अतः तू व्यर्थ हिंसात्मक कार्य को अंगीकार करती हुई पाप से नहीं डरती है ? यह तो निर्विवाद है कि चाहे देवता हो, चाहे मनुष्य हो, पाप करने वाले को मन्वन्तर में नरक अवश्य मिलता है। इस जीव हिंसा के समान भयंकर और कोई पाप नहीं है। तू जगत की माता है तो तेरा कर्तव्य है कि सब जीवों पर दया भाव रखना और तू इसी 'अहिंसा परमोधर्म' का आश्रय ले। इस प्रकार सूरिजी कथित उपदेश से प्रतिबुद्ध हुई देवी सूरि जी को कहने लगी हे प्रभो ! आपने मुझे संसार कूप में पड़ी हुई को बचाया है। हे प्रभो ! आज मैं आपकी अधीनता स्वीकार करूंगी और आपके गण में भी व्रताधारियों का सानिध्य करूंगी तथा यावचन्द्र दिवाकर आपका दासत्व ग्रहण करूंगी। हे प्रात स्वमरणीय सूरिपुंगव! आप यथासम्भव मुझे स्मरण रखना और मुझे भी धर्मलाभ देना। अपने श्रावकों से कुंकुम नैवैद्य पुष्प आदि सामग्री से धार्मिक की तरह मेरी पूजा करवाना। दीर्घदर्शी रत्नप्रभसूरि ने भविष्य का विचार करके देवी के कथन को स्वीकार कर लिया। पापों के खण्डित करने वाली वह चण्डिका सत्यप्रतिज्ञा वाली हुई। उस दिन से देवि का नाम सत्यका प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार रत्नप्रभसूरि ने देवि को प्रतिबोध देकर विहार करते हुए सवालाख से भी अधिक श्रावकों को प्रतिबोध दिया।

उपकेशनगर के मंत्री ऊहड़ ने एक नया मंदिर बनाया, पर दिन को जितना मंदिर बनता, वह रात को गिर जाता। इस स्थिति में जब उसने आचार्य रत्नप्रभसूरि जी से आकर यही सवाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूछा तो सूरिजी ने कहा, आप किसका मंदिर बनाते हैं। मंत्री ने उत्तर दिया, मैं नारायण का मंदिर बनाता हूं। सूरिजी ने कहा, यदि आप महावीर के नाम से मंदिर बनाओ तो एक भी उपद्रव नहीं होगा।[1]

यह माना जाता है कि वीर निर्वाण सं 70 माघ शुक्ल पंचमी के दिन आचार्य रत्नप्रभसूरि के करकमलों से उपकेशपुर और कोरंटपुर नगर में महावीर मंदिर की प्रतिष्ठा की गई। कोरंटपुर में आचार्य श्री के मायावी रूप ने प्रतिष्ठा की। वीर निर्वाण संवत् 70 में ही आचार्य रत्नप्रभसूरि 500 मुनियों के साथ उपकेशपुर पधारे, इसी वर्ष उपकेशपुर के सूर्यवंशी राजा उत्पलदेव और चंद्रवंशी मंत्री ऊहड़ को जैनधर्म में दीक्षित किया। इसी वर्ष श्रावण शुक्ल प्रतिप्रदा के दिन नूतन जैनों की 'महाजनसंघ' संस्था स्थापित की और इसी वर्ष कोरंटपुर के श्री संघ ने कनकप्रभजी आचार्य पद पर आसीन हुए। वीर निर्वाण 77 में महाराजा उत्पलदेव द्वारा पहाड़ी पर बनाए पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा आचार्य रत्नप्रभसूरि और कनकप्रभसूरि के करकमलों द्वारा हुई। वीर निर्वाण संवत् 82 में आचार्य रत्नप्रभसूरिजी ने अपने एक योग्य शिष्य को यक्षदेवसूरि नाम से विभूषित कर आचार्य पद सौंप दिया। वीर निर्वाण 84 की माघ शुक्ल पूर्णिमा के दिन रत्नप्रभसूरि का स्वर्गवास हुआ।

ऐसा माना जाता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने इस भूमि पर जन्म लेकर अपने कल्याण के साथ अनेक भव्यों का कल्याण किया। इतना ही क्यों महाजन संघ रूपी एक कल्पवृक्ष लगाकर उनकी वंश परम्परा हजारों वर्षों तक चिरस्थायी बना दी। आपने अपने जीवन में 1500 साधु, 3000 साध्वियां और 1400000 घर वाले क्षत्रियों को जैन बनाकर जैनशासन की खूब उन्नति की और मारवाड़ जैसे प्रान्त में जैन मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाकर जैनधर्म की नींव सुदृढ़ बनाकर धर्म को चिरस्थायी बना दिया।[2] मुनिश्री ज्ञानसुन्दर जी महाराज ने ओसवाल समाज का उद्‌बोधन किया है कि प्रतिवर्ष श्रावण कृष्ण चतुर्दशी के दिन ओसवाल जाति का जन्म दिन का

---

1. उपकेशगच्छ चरित्र

इतश्च श्रेष्ठी तत्राऽऽस्ते, ऊहड़ कृष्ण मंदिरम्।
कारयन्नतुलं नव्यं, पुण्यवान पुण्य हेतवे ॥
दिवा बिरचितं देवं, मंदिर राज मंत्रिणा।
भिन्नत्वं प्राप्ननुयाद्रात्रौ, ततो विस्मयता गतः ॥
अप्राक्षीद्दा शिंकान मंत्री, कथ्यतामस्य कारणम्।
न कश्चिद्वचे तत्वज्ञः, सत्य सत्य वचस्तदा ॥
ततोऽपृच्छन्मुनिं मन्त्री, कारण च कृतांजलिः।
प्रत्युवाचततः सूरि, मन्दिम् कस्य निर्मितम् ॥
नाराणस्य यन्त्रीति, प्रो वाचाचार्य मक्षम्।
तच्छ्रुत्वा मुनि शार्दूलः, प्रोवाच गिर मुत्तमाम् ॥
उपद्रव नेच्छ सिचेन महावीरस्य मन्दिरम्।
कारयत्वं हे मन्त्रिन ! मदाज्ञाँ च गृहाणत्वम् ॥
मन्त्रिणैवं कृते चैव, नाभूत पुनरूपद्रव।
एव मालोक्य लोकास्य, सर्वे वित्मयातां गतः ॥
तन्मूल नायक कृते, वीर प्रतिमां नवाम्।
तस्यैव श्रेष्टिनो धेनोः, वयसा कत्रुर्यामाहणात् ॥

2. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 120

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महोत्सव और माघ शुक्ल पूर्णिमा के दिन बड़ी बड़ी सभाएं करके आचार्य रत्नप्रभसूरि जी की जयन्ती मनाकर यह शुभ संदेश प्रत्येक प्राणी के हृदय तक पहुंचा कर कृतार्थ बने।[1]

श्री भण्डारी की मान्यता है कि विक्रम संवत् 1393 का लिखा हुआ एक हस्तलिखित ग्रंथ 'उपकेशगच्छ चरित्र' मिलता है। उसमें तथा और भी जैन ग्रंथों में ओसवाल जाति और ओसिया नगरी की उत्पत्ति के विषय में जो कथा लिखी हुई है, वह इस प्रकार है —

विक्रम संवत् से करीब चार सौ वर्ष पूर्व भीनमाल नगरी में भीमसेन नामक राजा राज्य करता था, जिसके दो पुत्र थे, जिनके नाम क्रमशः श्रीपुंज और उपलदेव था। इस विषय में दो मत और पाये जाते हैं, पहला यह कि पट्टावली न. 3 में भीमसेन के एक पुत्र श्रीपुंज था, जिसके सुर सुन्दर और उपलदेव नामक दो पुत्र हुए।[2] दूसरा यह कि भीमसेन के तीन पुत्र थे, जिनके नाम क्रमशः उपलदेव, आसपाल और आसल थे। जिनमें से उपलदेव ने ओसिया तथा आसल ने भीनमाल बसाया। प्रथम मतानुसार एक समय युवराज श्रीपुंज और उपलदेव के बीच किसी कारणवश कहासुनी हो गई, जिस पर श्रीपुंज ने ताना मारते हुए कहा कि इस प्रकार के हुक्म तो वही चला सकता है, जो अपनी भुजाओं के बल से राज्य की स्थापना करे। यह ताना उपलदेव को सहन नहीं हुआ और वह उसी समय नवीन राज्य स्थापना की प्रतिज्ञा करके अपने मंत्री ऊहड़ और उधरण को साथ ले वहाँ से चल पड़ा। उसने ढेलीपुरी (दिल्ली) के राजा साधु की आज्ञा लेकर मण्डोर के पास उपकेशपुर का ओसिया पट्टण नामक नगर बसा कर अपना राज्य स्थापित किया। उस समय ओसियां नगरी का क्षेत्रफल बहुत लम्बा चौड़ा था। ऐसा कहते हैं कि वर्तमान ओसियां नगरी से 12 मील दूर पर जो तिवरी गांव है, वह पहले ओसियां का तेलीवाड़ा था तथा जो इस समय खेतार नामक ग्राम है, वह पहले यहाँ का क्षत्रीपुरा था।

राजा उपलदेव वाममार्गी था और उसकी खास कुलदेवी चामुण्डा माता थी। इसी समय जैनाचार्यों में भगवान पार्श्वनाथ के सातवें पट्टधर आचार्य रत्नप्रभसूरि अपने उपदेशों के द्वारा प्रचार करते हुए आबू पहाड़ से होते हुए उपकेशपट्टण में पधारे और पास ही लुणाद्रि नामक छोटी सी पहाड़ी पर एक एक मास की तपश्चर्या कर ध्यानावस्थित हो गये। इस समय 500 मुनियों का संघ उनके साथ था। कई दिन होने पर भी जब उन मुनियों के शुद्ध भिक्षा की व्यवस्था उस नगरी में न हो सकी तब लोगों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की कि भगवान, यहाँ पर साधुओं के लिये भिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसी स्थिति में मुनियों का इस स्थान पर निर्वाह होना कठिन है। आचार्य श्री ने जब विहार का निश्चय किया, तब वहाँ की अधिष्ठायिका चामुण्डा देवी ने प्रकट होकर कहा कि महात्मन्, इस प्रकार से आपका यहाँ से चले जाना अच्छा नहीं होगा, यदि आप यहाँ पर अपना चातुर्मास नहीं करेंगे तो संघ और शासन का बड़ा लाभ होगा। इस पर आचार्य ने मुनियों के संघ को कहा कि जो साधु विकट तपस्या करने वाले हों, वे यहाँ रह जायं, शेष सब यहाँ से विहार कर जाये। इस पर 465 मुनि तो आचार्य की आज्ञा से विहार कर गये। शेष 35 मुनि तथा आचार्य चार चार मास की विकट तपस्या स्वीकार कर समाधि में लीन हो गये। इसी

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 120
2. श्री सुखसम्पतराज भण्डारी, ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 5

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिन देवयोग से राजा के जामात्र त्रैत्रोलसिंह को रात्रि में भयंकर सर्प ने डस लिया। इस समाचार से सारे शहर में हाहाकार मच गया। बहुत से मंत्र तंत्र शास्त्री इलाज करने के लिए आए, मगर परिणाम न हुआ। अंत में जब उसे श्मशान यात्रा के लिए ले जाने लगे तब किसी ने आचार्य श्री का इलाज करवाने की भी सलाह दी। जब राजकुमार की रथी आचार्य श्री के स्थान पर लाई गई, तो आचार्य श्री के शिष्य वीर धवल ने गुरुमहाराज के चरणों का प्रक्षालन कर राजकुमार पर छिड़क दिया। ऐसा करते ही वह जीवित हो उठा। इससे सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और राजा ने आचार्य श्री से प्रसन्न होकर अनेकों थाल बहुमूल्य जवाहरातों से भरकर आचार्य श्री के चरणों में रख दिये। इस पर आचार्य श्री ने कहा कि राजन ! हम त्यागियों को इस द्रव्य और वैभव से कोई प्रयोजन नहीं है। हमारी इच्छा तो यह है कि आप लोग मिथ्यात्व को छोड़कर परमपवित्र जैनधर्म को श्रद्धा सहित स्वीकार करें, जिससे आपका कल्याण हो, इस पर सब लोगों ने प्रसन्न होकर आचार्य श्री का उपदेश स्वीकार किया और 12 व्रतों को श्रवणकर जैनधर्म को स्वीकार किया। तभी से ओसियां नगरी के नाम से इन लोगों की गणना ओसवाल वंश में की गई। कुछ ग्रंथों में इस कथा में थोड़ा हेरफेर है। इनमें राजा के जामात्र के स्थान पर राजा के पुत्र का उल्लेख है। कहीं कहीं पर ऐसा भी उल्लेख है कि देवी के कहने पर आचार्य रत्नप्रभ सूरि ने रूई की पूणी का सर्प बनाकर भरी सभा में राजा के पुत्र को काटने के लिये भेजा था।

इसके पूर्व चामुण्डा माता के मंदिर में नवरात्रि के अवसर पर भैंसों और बकरों का बलिदान हुआ करता था। आचार्य श्री ने उसको रोककर उसके स्थान पर लड्डू, चूरमा, लापसी, खोया नारियल इत्यादि सुगंधित पदार्थों से देवी की पूजा करने का आदेश दिया। इससे चामुण्डा देवी बड़ी नाराज हुई और उसने आचार्य श्री की आंख में तकलीफ पैदा कर दी। आचार्यश्री ने बड़ी शांति से इस तकलीफ को सहन किया। चामुण्डा ने जब आचार्य को विचलित होते न देखा तब वह बड़ी लज्जित हुई और आचार्य श्री से क्षमा मांगकर सम्यक्त्व को ग्रहण किया। उसी समय से उसने प्रतिज्ञा की कि आज से मांस और मदिरा तो क्या लालरंग का फूल भी मुझ पर नहीं चढ़ेगा और मेरे भक्त जो ओसियां में स्वयंभू महावीर की पूजा करते रहेंगे, उनके संकट को मैं दूर करूंगी। तभी से चामुण्डादेवी का नाम सच्चिया देवी पड़ गया और आज भी यह मंदिर सच्चिया माता के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर अभी भी बहुत से ओसवालों के बालकों का मुण्डन संस्कार होता है।

ऐसा कहा जाता है कि उसी समय उहड़ मंत्री ने महावीर प्रभु का मंदिर तैयार करवाया और उसकी मूर्ति स्वयं चामुण्डा देवी ने बालूरेत और गाय के दूध में तैयार की, जिसकी प्रतिष्ठा स्वयं रत्नप्रभसूरि ने मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी गुरुवार को अपने हाथों से की। ऐसा कहा जाता है कि ठीक इसी समय कोरंटपुर नामक स्थान में भी वहाँ के श्रावकों ने श्री वीरप्रभु के मंदिर की स्थापना की, जिसकी प्रतिष्ठा का मुहूर्त भी ठीक वही था जो कि उपकेशपट्टण के मंदिर की प्रतिष्ठा का था। दोनों स्थानों पर अपनी विद्या के प्रभाव से आचार्य श्री ने स्वयं उपस्थित होकर प्रतिष्ठा करवाई।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वीर निर्वाण संवत् 70 में ओसिया नगरी में ओसवंश का उद्भव हुआ, यह उपकेश वंश पट्टावलियों और 'उपकेशचरित्र' पर आधारित है। "इतिहास और काव्यों के अतिरिक्त वंशावलियों की कई पुस्तकें मिलती है। तथा जैनों की कई पट्टावलियां मिलती है। ये भी इतिहास के साधन है।"[1] प्रत्यक्ष प्रमाणों की दृष्टि से उस समय के शिलालेख, ताम्रपत्र और अन्य लेख प्राप्त नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाणों की तुलना में उस युग के इतिहास को जानने के लिये परोक्ष और प्रत्यक्ष प्रमाणों पर ही निर्भर होना पड़ता है। पट्टावलियां त्याज्य नहीं है। टाडकृत 'राजपूताने का इतिहास' केवल चारणी साहित्य पर आधारित है, किन्तु इतिहासकारों की दृष्टि में यह मान्य है। 'पृथ्वीराज रासो', 'मुहणौत नैणसीरी ख्यात' और टाडकृत 'राजपूताने के इतिहास' में अनेक त्रुटियां हैं, किन्तु उस समय के अनुपलब्ध इतिहास का यह अद्भुत खजाना है। इतिहास तथ्य नहीं सत्य है। तथ्य प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित होता है और सत्य में यथार्थ और अनुमान का मणिकांचन योग होता है। इन पट्टावलियों में गुरु परम्परा द्वारा कंठस्थ ज्ञान मिलता है। जैन शिलालेखों का समय प्राय: विक्रम संवत् 10वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और उसमें भी इस जाति के उद्भव का उल्लेख नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं कि महाजन शब्द अत्यधिक प्राचीन है और ओसवंश/ ओसवाल वंश अर्वाचीन ?

भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा- प्रथम जिन्द में इस जाति की प्राचीनता के विषय में गहराई से विचार किया गया है। इसके अनुसार 'जैन पट्टावलियों' में 'हिमवंत पट्टावली' सबसे प्राचीन पट्टावली है। इसके रचयिता आचार्य हिमवंतसूरि हैं। आप श्री का नामोल्लेख 'श्री नंदी सूत्र की स्थविरावली' में मिलता है। आचार्य हिमवंत आर्य स्किन्दल के पट्टधर थे। अत: इतिहास के लिये प्रस्तुत पट्टावली बड़ी उपयोगी है। इसमें वर्णित घटनाओं में किसी प्रकार की शंका नहीं है। इस गाथा में जो वर्णन मिलता है, वह हस्तीगुफा से प्राप्त महामेघवाहन चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेख ठीक मिलता है।

कुछ परोक्ष प्रमाणों से यह पता चलता है कि पूर्व जमाने में गंधहस्ती आचार्य ने जैनागमों का विवरण जरूर लिखा था, जिसको ओसवंश शिरोमणि श्रावक पोलक ने लिखवाकर जैन श्रमणों को स्वाध्याय के लिये समर्पण किया था।[2] उस समय मथुरा में इस वंश की संख्या विशेष थी तब ही तो पोलक को ओसवंश शिरोमणि कहा है। जब हम ओसवंश की वंशावलियों को देखते हैं तो पता मिलता है कि उस समय मथुरा में जैनमंदिर बनाने एवं जैनाचार्यों की आग्रहपूर्वक विनती करके चातुर्मास करवाने वाले बहुत श्रावक बसते थे।[3]

उपकेशगच्छ के अन्दर विक्रम की दूसरी शताब्दी में बड़े बड़े विद्वान मुनि और यक्षदेव सरीखे पूर्वधर आचार्य विद्यमान थे। उस समय दशपूर्वधर आचार्य वज्रसूरि के सदृश अनेक गुणनिधि आचार्य यक्षदेवसूरि भूमिमण्डल पर विहार करते थे, उस समय भीषण जनसंहार करने वाला बारहवर्षीय भीषण दुष्काल पड़ा था। जब धनिक लोगों के लिये मोतियों के बराबर ज्वार के

---

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 10
2. भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा, प्रथम जिल्द, पृ 149
3. वही, पृ 139

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दाने मिलने मुश्किल हो गये थे, तो साधुओं के लिये भिक्षा का कहना ही क्या ? यदि कहीं मिल जाय तो सुख से खाने ही कौन देता ? उस भयंकर दुष्काल में यदि कोई व्यक्ति अपने घर से भोजन कर तत्काल निकल जावे तो भिक्षुक उदर चीरकर अन्दर का भोजन निकाल कर खा जाते थे। उस हालत में कितने ही जैनमुनि अनशनपूर्वक स्वर्ग को चले गये। शेष रहे मुनियों ने ज्यों त्यों कर दुष्काल रूपी अटवी का उल्लंघन किया। जब अकाल के बाद सुकाल हुआ तो आचार्य यक्षदेवसूरि (चन्द्रादि चार मुनियों को पढ़ाने वाले) ने रहे हुए साधुओं को एकचित किये तो 500 साधु, 700 साध्वियां, 7 उपाध्याय, 12 वाचनाचार्य, 4 गुरु (आचार्य), 2 प्रवर्तक, 2 महत्तर (पदविशेष), 12 प्रवर्तनी, 2 महत्तारिक इत्यादि सब को शामिल कर गच्छ मर्यादा बांध दी।[1]

कोरंटपुर को हस्तलिखित पट्टावली में भी अंकित है कि वीर निर्वाण संवत् 70 वर्ष में आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशपुर पधारे, तब कनकप्रभादि 465 साधु विहार कर कोरंटपुर में चौमासा किया और वहां उनके प्रेरणा से एक महावीर जी का मंदिर निर्मित किया गया। जब रत्नप्रभसूरि जी ने उपकेशपुर के उपलदेव और मंत्री ऊहड़ और सवालाख क्षत्रियों को जैनधर्म के श्रावक बनाया तब उस वक्त कोरंटपुर का संघ रत्नप्रभसूरि जी से विनती करने आया कि आप महावीर स्वामी के नवनिर्मित मंदिर की प्रतिष्ठा करें। उस समय माघ सुदि पंचमी को रत्नप्रभसूरि जी ने एक ही दिन उपकेशपुर और दूसरी कोरंटपुर में प्रतिष्ठा कराई।

'प्रभावक चरित्र' एक प्राचीनग्रंथ है, जिसमें कोरंटपुर का उल्लेख है।[2] इसमें उपाध्याय

---

1. उपकेशगच्छ चरित्र

तदन्वये यक्षदेव सूरि रासीद्धियां निधिः ।
दशपूर्वधरो वज्र स्वामी भुव्यभवद्यदा ॥
दुर्भिक्षे द्वादशाब्दीये, जनसंहारकारिणी ।
वर्तमानेऽनाशकेन, स्वर्गेऽगुबहुसाधवः ॥
ततो व्यतीते दुर्भिक्षेऽवशिष्टान् मिलितान् मुनीन् ।
अमेलयन्यक्षदेवा, चार्याचन्द्रगणे तथा ॥
तदादि चन्द्रगच्छस्य, शिष्य प्रव्राजन नाविधौ ।
श्राद्धानां वास निक्षेपे, चन्द्रगच्छः प्रकीर्त्यते ॥
गणः कोटिक नामापि, वज्रशाखाऽपिसंमता ।
चान्द्रकुलं च गच्छेऽस्मिन, साम्प्रतं कथ्यते ततः ॥
शतानि पंच साधूनां, पुनगच्छेऽपिमिलन्त्रिह ।
शतानि सप्त साध्वीनां, तथोपाध्याय सप्तकम ॥
दशद्वौवाचनाचार्या श्चत्वारो गुरु वस्तथा ।
प्रवर्तकौ द्वावभूतां, तथैवोभे महत्तरे ॥
द्वादशस्युः प्रवत्तिन्यः:, सुमीति द्वौ महत्तरौ,
मिलितौचन्द्र गच्छान्तं सखयेयं कथ्यते गणे ॥

2. प्रभावक चरित्र, पृ 191

तत्र कोरंटकं नाम पुर मस्त्युन्नता श्रयम् ।
द्विजिह्व विमुखायत्र विनता नन्दना जनाः ॥
तत्राऽस्ति श्री महावीर चैत्यं चैत्यं दधद् दृढम ।
कैलाश शैलवद्भाति सर्वाश्रय तयाऽनया ।
उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्री देवचन्द्र इति श्रतः ।
विद्वद्वृन्द शिरोरत्न तमस्ततिहारो जनैः ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देवचंद्र का उल्लेख है। उपाध्याय देवचंद्र का समय पहली या दूसरी शताब्दी का माना जाता है। कोरंटपुर का महावीर मंदिर उसके पूर्व का बना हुआ है। 'कल्पसूत्र' की 'कल्पदुमकलिका टीका की स्थिरावली' में कोरंटपुर की प्राचीनता का उल्लेख है।[1] कोरंटाजी तीर्थ के इतिहास में यह बताया गया कि यह मंदिर लगभग 2400 वर्ष पुराना है।[2]

इसी तरह 'तपागच्छ पट्टावली' और 'आंचलगच्छ पट्टावली' के अनुसार रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवंश की उत्पत्ति मानी गई है। आंचलगच्छ पट्टावली के अनुसार उपकेशपुर विक्रम की आठवीं शताब्दी में उपकेशवंशियों से फलाफूला था। इन पट्टावली आदि के प्रमाणों से ओसवाल जाति की उत्पत्ति का समय वि.पू. 400 वर्ष मानना न्यायसंग और युक्तियुक्त है।[3]

ओसवंश के अनेक गोत्रों की वंशावलियां उपलब्ध है, उनसे भो इस जाति की प्राचीनता सिद्ध होती है। यह माना गया है कि उपकेशपुर में श्रेष्ठि गोत्रीय राव जगदेव ने वि.स. 119 में चन्द्रप्रभजी का मंदिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य यक्षदेव सूरि ने की; खतरीपुर में तप्तभट्ट गोत्रीय का विराट संघ निकाला, जिसमें आचार्य यक्षदेव आदि बहुत से साधु साध्वियां थे; विजयपट्टन में बाघनाग गोत्रीय मंत्री सज्जन ने वि.स. 39 में भगवान महावीर का मंदिर बनाया, जिसकी प्रतिष्ठा यक्षदेव सूरि ने की, जिसमें मंत्रीश्वर ने सवा लाख रूपये खर्च किये; धेनपुर में भाद्रगोत्रीय मंत्री मेहकरण ने वि.सं 309 में आचार्य रत्नप्रभसूरि की अध्यक्षता में तीर्थों की यात्रा के लिये एक संघ निकाला गया, जिसमें यात्रियों की संख्या एक लाख थी; उपकेशपुर में श्रेष्ठिगोत्रीय राव जन्हणदेव ने वि.सं 208 में आचार्य रत्नप्रभसूरि के उपदेश से महावीर मंदिर में अट्ठाई महोत्सव किया; भिन्नमाल नगर में सुचंति गोत्रीय शाह पेथड़ हरराज ने वि.सं 358 में आचार्य श्री देवगुप्तसूरि के उपदेश से भगवान ऋषभदेव का मंदिर बनाया, जिसकी प्रतिष्ठा देवगुप्तसूरि ने की; मांडव्यपुर में कुलभद्रा गोत्रीय शाह नाथा खेमा ने आचार्य सिद्धसूरि के उपदेश से वि.सं 377 में ऋषभदेव के मंदिर का जीर्णोद्धार आचार्य सिद्धसूरि द्वारा करवाया; सालणपुर में श्रेष्ठिगोत्रीय ऊहड़ ने महावीर का मंदिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं 393 में आचार्य सिद्धसूरि ने की; वि.सं 247 माघसुदि 5 में उपकेशवंशी दूधड़ समरथकाना ने रत्नपुर में महावीर का मंदिर बनवाया; वि.सं 521 में गठिया गोत्रीय शाह देवराज ने आचार्य श्री आदिनाथ का मंदिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सिद्धसूरि जी ने की; वि.सं 531 में कुमट गोत्रे शाह दुर्जनशाल ने आचार्य सिद्धसूरि का पट्टमहोत्सव किया। वि.सं 513 में आदित्यनागगोत्रे चोरडिया शाखा में शाह धरमण साधु मलखनादि ने नागपुर (नागौर) में पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया; वि.स. 589 में बाप्पनागगोत्र शाह वीरमदेव तोला जागरूपादिने शत्रुंनादि तीर्थों का संघ निकाला; वि.स. 53 में तप्तभट्ट (तातेड) ने नागपुर (नागौर) में शाह रघुवीर हरचंद ने आचार्य देवगुप्त सूरि ने उपदेश से शत्रुंजयादि तीर्थ

---

1. कल्पसूत्र की कल्पद्रुमकलिका टीका की स्थिरावली
   उपकेशगच्छे श्री रत्नप्रभसूरिः येन उसियानगरे
   कोरंटनगर च समकालं प्रतिष्ठाकृता रूपद्वयएणेन
   चमत्कारश्च दर्शित।
2. भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 146
3. वही, पृ 150

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकाला; वि.स. 578 में चंद्रावली नगरी में वीरहरगोत्र सारंग के पुत्र सायर ने माघशुक्ल 5 को आचार्य कनकसूरि के पट्ट महोत्सव में सवालक्ष द्रव्य व्यय किया; वि.सं 595 में लघुश्रेष्ठि गोत्रीय शाह देवाल धनदेव ने आचार्य कनकसूरि के उपदेश से भीनमाल नगर में श्री शत्रुंजय का संघ निकाला जिसमें सातलक्ष द्रव्य व्यय किया गया और चिंचट गोत्रे शाह वीरदेव ने वि.सं 599 में शत्रुंजय संघ पर 7 लक्ष द्रव्य खर्च किये।[1] इसी तरह कनोजिया गोत्र, (वि.से 908) मोरखगोत्र (वि.स. 658) भूरिगोत्र (वि.स 497) प्राग्वटवंश (वि.स. 302) के उल्लेख मिलते हैं। इन प्रमाणों से वंशावलियां भरी पड़ी है। वि.सं 33 में उपकेशवंशीय बलाह गोत्र के शाह वीरमदेव ने एक माहेश्वरी रामपाल की पुत्री से विवाह कर लिया, जिसका विरोध हुआ किन्तु आचार्य रत्नप्रभसूरि ने इस विवाह का शमन किया।[2]

इन वंशावलियों से पता चलता है कि किस किस समय जैनेतर क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर किस किस जैनाचार्य ने जैन बनाए और जातियों के नाम संस्करण किये।[3] वंशावलियां अधिक प्राचीन तो नहीं है, किन्तु वंश परम्परा के ज्ञान को इनमें संचित किया गया है। 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' एक ऐतिहासिक ग्रंथ है। इससे पता चलता है कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उपकेशपुर, उपकेशगच्छ और उपकेशवंश किस तरह थे।[4] इसके अनुसार मरुभूमि का भूषण रूप उपकेशपुर नाम का एक श्रेष्ठनगर है, जो पृथ्वी पर स्वस्तिक की तरह अतिसुन्दर और षटऋतु के फलफूलों सहित बाग बगीचे से शोभायात्रा है। वहां रहने वाले मुनिजन कनक कामिनी के सम्बन्ध से बिल्कुल मुक्त है, परन्तु नागरिक लोगों में ऐसा कोई दृष्टिकोगोचर नहीं होता है, जिसके पास पुष्कल द्रव्य और विनीत सुन्दर रमणी न हो। उस नगर में हंसों की चाल रमणियों की चाल हंस बिना ही उपदेश के शिक्षा पा रहे हैं। मकानों पर लगी मणियों की कांति से अंधकार का नाश होता है और तालाबों के अन्दर कमल सदा प्रफुल्लित रहते हैं। रात्रि के समय मकान की जालियों के अंदर चंद्र की किरणों का प्रकाश विरहणी औरतों को कामदेव के बाण की भांति संतप्त करता है। व्यापार का तो एक ऐसा केन्द्र है कि पितापुत्र अलग अलग व्यापार करने वाले छ छ मास में भी मिल नहीं सकते। उस नगर में वीर निर्वाण से 70वें वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि ने भगवान महावीर के मंदिर की हुई मूर्ति आज पर्यन्त विद्यमान है। उस नगर में विशाल एवं उन्नत धन धान्य सम्पन्न एक संगठन में संगठित उपकेश नाम का एक उन्नत वंश है और जैसे वंश पत्तों से एक बड़ शाखाओं से शोभायात्रा है, वैसे यह उपकेशवंश 18 गोत्र से शोभायमान है।[4]

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा, प्रथम जिल्द, पृ 151-153
2. वही, पृ 156
3. वही, पृ 156
4. नाभिनन्दन जिनोद्धार, 17-48

अस्ति स्वस्तिचव्व द भूमेर्भरु देशस्य भूषणम्।
निसर्ग सर्ग सुभगमुपके शपुरं वरम् ॥
सागा यन सदारामा अदारा मुनि सत्तमाः।
विद्यन्ते न पुनः कोऽपि तादृक पौरेषु दृश्यते॥
यत्र रामागति हंसा रामा वीक्ष्य च लज्जतिम।
विनोपदेश मन्योन्यं तौं कुर्वन्ति सुशिक्षिताम्॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' में श्रेष्टि वेसट का वंशवृक्ष दिया है।

उपकेशवंशीय
वेसट
|
वरदेव
|
जिनदेव
|
नागेन्द्र
|
सलक्षण
|
(पालेनपुरगया)
|
ओजड
|
गोसल
|
देसल
|
(पाटन गया)
|
समासिह
|
शाल्हाशाह

वि.सं 800 के पूर्व ओसवंशीय लोग भारत में चारों ओर फैल गये थे। मुनि श्री रत्नविजय जी महाराज की शोध खोज से ओसिया के एक भग्न मंदिर के खण्डहरों में एक टूटी हुई चन्द्रप्रभजी की मूर्ति के नीचे खण्डित पत्थर के टुकड़े पर वि.सं 602 आदित्यनाग गोत्रे अंकित है। इससे यह पता चलता है कि संवत् 602 के पूर्व उपकेशपुर ओसवंशियों से फलाफूला और आबाद था।[1]

विक्रम की छठी शताब्दी में तोरमाण के बाद मेहिरकुल के अत्याचारों से मारवाड़ में विशाल संख्या में ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल मिलते हैं। वि.स. 802 में आचार्य शीलगुण सूरि से प्रेरणा पाकर जैन शासक वनराज चावड़ा ने अणहल्लपुर नामक नया पाटनशहर बसाया। उस समय चंद्रावली भिन्नमालादि मारवाड़ के ओसवालादि जैनों को पाटण ले गये।[2]

ओसिया मंदिर की प्रशस्ति के शिलालेख में उपकेशपुर के परिहार राजाओं में वत्सराज

सरषीषु सरोमानि विकचानि सदाऽभवन।
यत्र दी प्रगणिज्योतिहर्वस्त रात्रि तमस्तवतः॥
निशासु गत भर्तृणां गृहजालेषु सुभ्रुवाम्।
प्राप्त श्चनंद्रकराः कामक्षिप्ता रूण्या शरा इव॥
यत्रास्ति वीर निर्वाण सप्तत्या वत्स रैर्ग तैः।
श्रीमद्रत्नप्रभाचार्यैः स्थापितः वीर मंदिरम्॥
तदादि निश्चतासीनो यत्रा ख्याति जिनेश्वरः।
श्री रत्नप्रभसूरीणां प्रतिष्ठाऽतिशयं जने॥

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 162
2. वही, पृ 163

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की प्रशस्ति है, जिसका समय विक्रम संवत् 783-84 है।[1]

वि.सं 508 का एक शिलालेख कोटा राज्य के अटारू नामक ग्राम के एक जैन मंदिर में मिला है, जिसकी समालोचना पुरातत्वज्ञ मुंशी देवीप्रसाद ने 'राजपूता की शोध खोज' में की है। इस शिलालेख में भैंसाशाह का नाम अंकित है। भैंसाशाह के नामसे ही मेवाड़ का भैंसरोड़ा बसाया गया।[2]

महावीर निर्वाण से 84 वर्ष का एक शिलालेख व गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा जी को शोधखोज में वर्ली ग्राम से मिला है, जो अजमेर के अजायबघर में सुरक्षित है।[3]

मध्यकाल में भारतीय इतिहास के स्रोतों को नष्ट किया गया, पुस्तक भण्डार जला दिये गये, भारतीय मंदिरों और मूर्तियों को खण्डित किया गया, कीर्ति स्तम्भ और असंख्य शिलालेख नष्ट किये गये और हमारे ऐतिहासिक धरोहर को लुप्त प्राय: कर दिया गया। अत: जो कुछ उपलब्ध होता है, उसी के आधार पर इतिहास का भवन निर्मित होता है।

आज भारतीय इतिहासकार भगवान महावीर को ही नहीं, पार्श्वनाथ और कृष्ण के चचेरे भाई नेमिनाथजी को भी इतिहासपुरुष स्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों से मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त हो चुके हैं। नागेन्द्र वसु ने यह सिद्ध कर दिया है कि जो शिलालेख, स्तम्भलेख, आज्ञापत्र अशोक के माने जाते हैं, वे उनके पौत्र जैन सम्राट सम्प्राति के हैं।[4] कलिंगपति चक्रवर्ती महाराजा खारवेल जैनधर्म के उपासक ही नहीं, अपितु कट्टर प्रचारक थे, यह उड़ीसा की हस्तीगुफा के लेख से स्पष्ट है।[5]

'उपकेशनगर बसाने वाले उपलदेव को इतिहास से अनभिज्ञ कई व्यक्ति परमार कहते हैं। वस्तुत: वे परमार नहीं थे। भाट भोजकों की दंत कथाओं के अतिरिक्त किन्हीं प्राचीन ग्रंथों और पट्टावलियों में उत्पलदेव राजा को परमार लिखा नहीं मिलता है। हमारे उत्पलदेव का समय विक्रम से 400 वर्ष पूर्व का है, उस समय परमारों का अस्तित्व ही नहीं था। परमारों के आदिपुरूष धूम्रराज थे। उनके बाद उत्पलदेव नाम के एक राजा अवश्य हुए, जिनका कि समय वि.सं. की दसवीं शताब्दी का है। इन्हीं परमार जाति के उत्पलदेव को हमारे श्रीमाल नगर के राजवंश में उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी उत्पलदेव को एक ही समझ लेना, यह एक अक्षम्य भूल है।'[6]

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार भीमसेन के पुत्र उत्पलदेव हुए जो परमार नहीं थे।[7] गोरीशंकर हीराचंद ओझा जी के ने 'कुवलयमाला' कथा को आधार बनाकर यह स्वीकार

1. पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 164
2. वही, पृ 165
3. वही, पृ 165
4. वही, पृ 175
5. वही, पृ 175
6. वही, पृ 177-178
7. उपकेशगच्छ पट्टावली

तत्र श्री राजा भीमसेन: तत्पुत्र उत्पलदेव कुमार अपर नाम श्री कुमार: तस्य बांधव: श्री सुरसुन्दरो युवराजो राज्य भारे धुरन्धर: ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया है कि वि.सं. 400 वर्ष पूर्व और इसके पूर्व भिन्नमाल पर गुर्जरों का राज्य था। विक्रम की छठी शताब्दी में हूण तोरमाण पंजाब की ओर से मारवाड़ में आया, उस समय भी भिन्नमाल पर गुर्जरों का ही राज्य था। तोरमाण ने गुर्जरों को पराजित कर दिया, अत: वे गुर्जर लाट प्रान्त की ओर चले गये। उन गुर्जर लोगों के नामानुसार ही उस प्रान्त का नाम गुर्जर पड़ गया। हूण तोरमाण आया था, उस समय मारवाड़ में नागपुर (नागौर), उपकेशपुर, जाबलीपुर (जालौर) माडव्यपुर एवं भिन्नमालादि आदि अनेक प्रसिद्ध नगर थे। इन प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भिन्नमाल नगर अच्छा आबाद नगर होगा। जिस समय तोरमाण ने भिन्नमाल में अपनी राजधानी स्थापित की, उस समय वहाँ पर जैनाचार्यों हरिदत्त एवं देवगुप्त विराजते थे। उन्होंने तोरमाण को जैनधर्म का उपदेश देकर जैन धर्मानुयायी बनाया।[1]

ओसिया के महावीर मंदिर में वि.सं 1013 का शिलालेख लगा हुआ है। इस शिलालेख में उपकेशपुर में प्रतिहार वत्सराज का राज्य होना लिखा है। वत्सराज परिहार का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी का है, अत: आठवीं शताब्दी में उपकेशपुर अच्छा आबाद था।[2]

कुछ विद्वानों ने यह अटकल लगाई कि ओसवंश के संस्थापक रत्नप्रभसूरि (प्रथम) न होकर अंतिम रत्नप्रभसूरि है। आद्य रत्नप्रभसूरि और अंतिम रत्नप्रभसूरि के बीच 900 वर्षों का अन्तर है। अंतिम रत्नप्रभसूरि समय के तो अनेकों ग्रंथ आज मिलते हैं, किन्तु किसी भी ग्रंथ या शिलालेख से यह पता नहीं चलता कि विक्रम की पाचवीं शताब्दी में अंतिम रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल वंश की स्थापना की हो, क्योंकि उस समय का इतिहास इतने अंधेरे में नहीं है।[3]

विद्वानों ने यह भी अटकल बाजी लगाई कि ओसिया के महावीर मंदिर में वि.स. 1013 का शिलालेख प्राप्त हुआ है, इसलिये यह अनुमान लगा लिया कि ओसवंश की उत्पत्ति दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी में हुई हो। यँह शिलालेख[4] अत्यंत खण्डित है और इसका लेख न

---

1. श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 56
2. ओसिया के महावीर मंदिर का शिलालेख

तस्या काषत्किल प्रेम्णालक्ष्मण: प्रतिहारताम् ततोऽभवद्व
प्रतिहार वंशोराम समुद्रव: ॥ दद्वंशे सबशी बशीकृत रिपु:
श्री वत्सराजोऽभवत्कीर्तिर्य्य तुषार हार विमला
ज्योत्स्नास्तिरस्कारिणी नस्मि न्मामि सुखेन विश्व
विवरे नत्वेव तस्माद्वहिन्निर्गन्तु रिगिभेन्द्र दन्त
मुसल व्याजाद कार्ष्यीम्मनु: ॥

3. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ 182
4. ओसिया का महावीरमंदिर का शिलालेख

प्रकट महिमा मण्डप: कारितोऽत्र भूमण्डलो मण्डप:
पूर्वस्यां ककुमि त्रिभारा विकलासन् गोष्ठिकानु
तेन जिनदेवद्याम तत्कारितं पुनरमुण भूषणं संवत्सर
दशत्यामार्णकाया वत्सरैस्त्रयो दशमि फाल्गुन
शुक्ल तृतीय

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओसवालों की उत्पत्ति का है, न महावीर के मंदिर की मूल प्रतिष्ठा का। इस शिलालेख में ओसिया में प्रतिहारों का राज्य होना लिखा है, जिसमें वत्सराज प्रतिहार की प्रशंसा की गई है। यह मंदिर वि.सं 1013 में नहीं बना, इसके पहले आचार्य कनकसूरि ने महावीर मंदिर में शांतिपूजन पढ़ाकर भगवान शांतिनाथ की मूर्ति संवत् 1011 चैत्र सुदी 6 को कराई, जिसका शिलालेख[1] उपलब्ध है।

इस प्रकार 'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार महावीर के निर्वाण के 70 वर्ष पश्चात् अर्थात् विक्रमसंवत् 400 वर्ष पूर्व ओसियां में पार्श्वनाथ परम्परा के आचार्य रत्नप्रभ सूरि जी ने महाजन वंश की स्थापना की। महाजन वंश का ही नामान्तर तदनन्तर में उपकेशवंश हुआ।

संवत् 1393 में विरचित 'उपकेशगच्छ पट्टावली' में ओसिया में महावीर मंदिर के निर्माण प्रसंग में नगर के उद्भव की कथा भी दी है। 'जैन शास्त्रों के प्राचीन ग्रंथ भण्डार में इस ग्रंथ की विशिष्टता और प्रामाणिकता असंदिग्ध है। जैनाचार्य आत्मरामजी (आनन्दविजय जी) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिमिर भास्कर' के दूसरे भाग में सम्पूर्ण पट्टावली प्रकाशित की है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान इतिहासकार प्रो. ए.एफ. होर्नले ने 'इण्डियन एंटीक्वेरी' (189) में इस अविकल आंग्ल भाषा अनुवाद टिप्पणियों के साथ प्रकाशित करवाया था।'[2]

श्री कनकसूरि कृत 'नाभिनन्दन जिनोद्धार' ग्रंथ में भी उपकेशपुर की समृद्धि और विस्तार का वर्णन है। दोनों ग्रंथ विक्रम की 14वीं शताब्दी में लिखे हुए हैं।[3]

(2) भाटों और भोजकों का मत: 24 विक्रम संवत्

ओसवंश के उद्भव का द्वितीय मत भाटो और भोजकों का मत है। जितने भी भाटों और भोजकों के गुटके उपलब्ध हैं, वे सभी ओसवंश के उद्भव का समय 222 विक्रम संवत् मानते हैं।

इसमें संग्रहकर्त्ताओं को निम्नांकित स्थानों से गुटके उपलब्ध हुए हैं:-

1. पूर्णचन्द्र नाहर ग्रंथागार
2. एशियाइटिक सोसाइटी का हस्तलिखित ग्रंथभण्डार
3. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर
4. केशरिया नाथ मंदिर ग्रंथागार
5. स्व. मोहनलाल दलीचंद देसाई संग्रह
6. अभय जैन ग्रंथालयय (अगरचंदजी भंवरलालजी नाहटा), बीकानेर

---

1. ओसिया के महावीर मंदिर का शिलालेख

ओइम संवत् 1011 चैत्र सुदी 6 श्री कक्काचार्य
शिष्य देवदत्ता गुरुणा उपकेशीय चैत्यगृह
अस्वयुज चैत्र षष्ठयं शांति प्रतिमा स्थापनिय
गंदोदकान् दिवातिकामा सुलप्रतिमा इति॥

2. मांगीलाल भूतोड़िया, इतिहास की अमरबेल (प्रथम भाग), पृ 62-63
3. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम भाग, पृ 63

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. केलड़ी मंदिर ग्रंथागार

8. गुर्रा सा गणपतरायजी का गुटका (अधूरा)

1. पूर्णचंद्र नाहर ग्रंथागार -

प्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्ववेता और जैन लेखसंग्रह के प्रसिद्ध लेखक भी पूरणचंद्र नाहर के कलकत्ता स्थित ग्रंथागार में एक अनाथ भाट का गुटका मिला है। यह ओसवालों की उत्पत्ति कथा और कीर्ति का व्याख्याता है।[1] इसमें स्पष्ट कहा है 'उत्पत्ति कहुं उसवाल।' इसके अनुसार भीनमाल में भीम राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे- सुरसुन्दर और उपल। मंत्री के भी दो पुत्र थे - धरण और उहड़। धरण की पत्नी ने देवर को उपालम्भ दिया। ऊहड़ को भावज की बात लग गई और दोनों ने नया दुर्ग बनाने की योजना बनाई -

कवित्त

श्री सुरसती देज्यो मुदा आसै बहुत विशाल
नासै सब संकट परो, उत्पत्ति कहुँ उसवाल ॥1॥
देश किसै किण नगर में, जात हुई छै एह
सुगुरु धरम सिखावियो, कहिस्यु अब ससनेह ॥2॥
पुर सुन्दर धाम बसै सकलं, किरन्यावत पावस होय भलं
चऊटा चउराशि विराज खरै, पगभेलय जोर सुग्यान धरै ॥1॥
भिनमाल करै नित राजपरं, भल भीम नरेन्द्र उपंति वरं
पटराणी के दोय सुतन्न भरं, सुर सुन्दर ऊपल मत्त धरं ॥2॥
अलका नगरी जिह रीत खरी, अठबीस बबाकरी सोभ धरी
तस नारी बसै बहु सुख कही, दुख जाब न पासै सुदूर टरी ॥3॥
त्रिय सुन्दर ओपम फूल कली, कनआ मयसुँ उतरी बिजली
मुगताम्बर जेम चले पधरम, बहुरूप भलो मनु कामहरं ॥4॥
सुर सुन्दर जेठ सहोदर छै, लघु ऊपल राव जोधार अछै
सुर लोक में भी गया पधरा, भिनमील को राज बड़ी जुकरा ॥5॥
पुन दोय सहोदर मित्र भला, सम रूप मयंक सुधार कला
नलराल मनमथ रूप जिसा, महिरांण अथग सोभाय इसा ॥6॥
किरणाल तपै पुन भाग भलं, अरिदूर भजै इक आप बलं
अंगराग उदार दीपंति खरा, किल छाता पंवारमुगट्ट खरा ॥7॥
दुरग मांहि मंत्री तणा बेटा दोय सरूप
बड़ो दुरग मांहि रहै रुपिया कोड अनूप ॥1॥
सहर मांहि छोटो बसै लाख घाट छै कोड
बडै भ्रात नै इस कहै करू कोड री जोड़ ॥2॥

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 80-81

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक लाख देवे खरा दुरग बसूं हुं आय
बलती भोजाई कहै बचन सुनो चित लाय ।।3।।
देवर जी सुण ज्यों तुम्हें किसो कोट छै सून
या विण आया ही मरै राखो ये अब मून ।।4।।
बड़ऊ धरण बखाणीयै छोटो ऊहड़ जांण
उठीयो बचन सुणीकरी लघु बंधव हरिराण ।।5।।
कोप अंग तिण बेल घण नयो बसाउ द्रंग
एम कही आयो सहर बहुलो पोरस अंग ।।6।।
उपल नै पासै जइ वदे पाछली बात
भोजाई मोसो दियो सुवालो मुज तात ।।7।।

नाहरजी के ग्रंथागार में कुछ और छन्द मिले हैं जिसमें भोजकों के दफ्तर से ओसवालों की उत्पत्ति बताई गई है। इसके अनुसार श्रीमाल नगर में ऊहड़ रूहड़ दो भाई थे। दोनों श्रेष्ठिपुत्र थे। ऊहड़ को उसकी भाभी ने उपालम्भ दिया। एक दिन ऊहड़ राजपुत्र ऊपल के पास आया और दोनों ने नया नगर बसाने की ठानी। यह दोनों मण्डोवर आए। इन्होंने ओसिया नगर बसाया। वहाँ रतनसूरि आचार्य पधारे। वे जैनधर्म नहीं, शिवधर्म जानते थे। साधु ने पूनी से सर्प बनाया और श्रेष्ठिपुत्र सुखसेन सोया था, उस समय पीणिया सर्प ने विष पिला दिया। उस समय राजा उनका शिष्य हुआ। इस कथा में संवत् 'वीये बाइसे' में राजपूत कौमों से ओसवालों के 18 गोत्र बनने के साथ भोजकों की उत्पत्ति कथा भी है -

भोजकों के दफ्तर से ओसवालों की उत्पत्ति

श्रीमाल बसै दोय सेठ भले निधि उहड़ रूहड़ भाई ।
निनानु रूहड़ सो लाख उहड़ सवाई ।।
उहड़ इच्छा उपनी कोट में बास करीजै ।
बिनती करी बीरकु दाम लख उधारा दीजै ।।
बसै कोट थाहीं बिना भोजाई मुख भाखियो ।
मरण भलो ध्रग मांगणों हृदय में गूसो राखियो ।।1।।
सहर बसै श्रीमाल गांव चोबीस गिरी दे ।
राज करै पौंवार दूठ राजा देशल दे ।।
देशल सुत दस दोय उपल ओमादिख दाखीजै ।
बिजो पढ़ा दिये दूण उपल दो सेर जवार दीरीजै ।।
एक दिन कंवर उपल कनेए कर जोड़ रूहड़ कहैं ।
पुर सूँ अलग पड़ पगल तो राव तुम मो पासे रहैं ।।2।।
सूरज उगै सासता कवर नित गोट करावे ।
रूड़े चित रावतां आवतां आवध बनावे ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बांण बंका अनभंग ठाठ घोड़ां गज ठठ्ठां ।ह
आठ पोर उदमाद बनावे निज गुण ठठ्ठां ।।
राज रे काज मारे रखै ओ तो दाणव ऊटियो ।
कवर प्रधान एको करे दुष्ट जान देसाटो दियो ।।3।।
गाड़ी सहस गुणतीष रथ बल सेष इग्यार ।
अश्व सहस अठार प्रगट पाय गाण पाले ।।
उँच सहस पचीस तीस हाथी मध झरंता ।
दस सहस दुकान कुंवर व्योपार करंता ।।
पान से शेष विप्र मघामिलकर साते मंडीया ।
सेट तो उहड़ उपर छन्तों एता छंडीया ।।4।।
सकल ओचालो सहित ऊपल मंजोवर आवे ।
मंजोवर रो धनी देश पुर मैल देखावे ।।
नाय बसे नव तेरी बडम आप बसावो ।
इस मंडोवर अके कंवर जी राज करावो ।।
मंगा विप्र तरे कयो एक अर्ज सुनीजिये ।
बस जाय सहर उपल बसे कोई उपाय करीजिये ।।5।।
मगा विप्र तिन समय एक मन सक्त अराधे ।
सुप्रसन्न हुई सक्त आराकेन अराधे ।।
जद कयो कर जोड़ तवे एक राकस चावो ।
माजी जिनने मार बस्तियां सहर वसावो ।।
मारियो तबे मरता मुखां करुणाकर वोसेकयो ।
मोय नाव नग्र बसै देवी केता वर दियो ।।6।।
पिंडत जोशी पूछ तुर्त वसी नव तेरी ।
बस्ती बसत कर विच करे सेवा सिव केरी ।।
देवी रे बरदान पुत्र राजस फल पायो ।
जिनरो नाम जैचंद्र वर्ष पंदरे परनायो ।।
निकट राज ओस्यां नगर कै भूप उपल करें रतन सूर ।
प्रभु आयो ओसियां नगर अया ईनीज अवसर ।।7।।
नरशा सहर विचार प्रम गुरु शिष्य पठायो ।
शिष्य फिर आयो पुर सकल आहर किणी न पायो ।।
अति हुये उदास परम मन में पिछतायो ।
बदे मधुर सुबैन विप्र भोजन बैरायो ।।
सिव धर्म रहा जाने सको जाने न धर्म जैन रो ।
सिष्य कयो रतनसूर प्रभु ने कोई उपाव धर्म रो करो ।।8।।
सिष्य तनी कथ सुने केदर गुरु को पज कीनो ।
आनो पुनी एक दुये शिष्य जेठो दीनो ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जेठे चेले जाय लोग कर पुणी लायो ।
कर माया कारणी विष पिलो बनायो ।।
सेठ सुत कवर सुतां सुख सेज में मज देवारों मालीये ।
पी गयो सास पिलो पनंग धरती ताते जालीये ।।9।।
दोवड़ी रती दिराय आण जिराण उतारी ।
बड़ा जेठ जेठव पति उपर जदों अधिकारी ।।
गुरु पठायो शिष्य शिष्य किरत कई सारी ।
क्युँ जलावो जीव ने जिवावे जड़ी हमारी ।।
आनीयाकवर गुरु आगले कवरा ने जीवत किया ।
एक एक सारे नगर देशल सुत गुरु ने दिया ।।10।।
प्रथम साख पवार साख गेलोत श्रृंगार ।
रिन थम्बर राठोड़ बसु चौवान बड़ाला ।।
भाटि दैयाबुर्ल कावा पडियाला ।
वोडौव हाडा जादव गोड़ मोयल गोयल मकराणा ।।
तुअर भूप खरबर तनो लेता पटा लाखरा ।
एक दिन इतरा ओसवाल हु इतनी साखरा ।।3।।
सावण पख सुतात संवत् विये न बाईसे ।
अर्क वार अठम ओसवाल हुआ उपदेशे ।।
इष्ट चावंड अराधे जड़ी मात कवर जिवायो ।
देवी जिनरो दिवस नाम जद साचल पायो ।।
चार सहस राजस कुली श्रावग ज्ञानी समापिया ।
रतन सूर प्रभु ओसियां नगर ओसवाल थिर थापिया ।।12।।
विप्रां कियो विचार एरा शिव धर्म उथापे ।
सिताब जांदीया किन करे जुअर के तांई ।।
ऊपर करवा आप चढ़ साचल आई ।
सिची आई बिचै मुनिवर सबे प्रगट सच प्रीतपाल का ।
जे कदे विरचे ओसवंस तो करसी गट को कालका ।।13।।
विप्रा कीनी विनती श्रवण चावंड सुनीजै ।
कोप कियो जी कृपा दयावर दानज दीजै ।।
साचो मुज शराप बचन किम चवे, हमारो बदसी ।
माल बेलों बदे होसी विप्र थोरा कयो ।
ओसियां तज जासी अलग देवी करता वर दियो ।।14।।
गांवेटा गुनीया सुपे जिन करि सेवा ।
देवें विवा दान लाखा तीरी जस लेवा ।।
बडम सुतारथ व्याव वला आशीश बनावे ।
अवसर दूत अपार विधे घर कुँवर बधावे ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपल देव ओसीया नगर शेण माल समापिया ।
भाव सु मधाकर भोजक थीर कुल प्रोहित थापिया ॥15॥

एशियाइटिक सोसाइटी में उपलब्ध गुटके

कलकत्ता स्थित एशियाइटिक सोसाइटी में एक हस्तलिखित गुटका उपलब्ध है, इसका शीर्षक है 'ओसवालां री उत्पत रा कवित्त।' नाहर जी के गुटके और इस गुटके में 15 कवित्तों के कथानक तो समान है, किन्तु दो गुटके भिन्न हैं। इसमें पहले कवित्त में स्पष्ट कथन है कि भगवान महावीर के निर्वाण के 52 वर्ष पीछे रत्नप्रभसूरि आचार्य पद पर पदासीन हुए और वे ओसिया पधारे। इन्होंने एक लाख अस्सी हजार राजकुलों को प्रतिबोधित किया और इस प्रकार ओसिया नगरी में ओसवाल वंश की स्थापना की। इससे स्पष्ट कथन है कि श्रावण पक्ष में 222 संवत् में ओसवंश की स्थापना का उपदेश दिया। तब परमार ऊपल के अतिरिक्त गहलोत, चौहान, राठौड़ और राजपूतों कौमों के ओसवाल होने का उल्लेख नहीं है, किन्तु परमार ऊपल कहकर इनके भी ओसवाल होने का संकेत दे दिया हैं -

श्री वर्धमान जिन पछे पाट बावने पद लीधो
सतगुर आके संसार नामं गुरदा ओथो दीधो
तात आठ दस बरस नगर ओयसीया आए
प्रतबोधे चामुंड नाम तीहां साचल पाए
एक लाख अस्सी हजार राजकुल प्रतिबोधिया
श्री बिजै रत्नप्रभसूर ओईसीया नगर ओसवाल थिर थापिया ॥
श्रावण पख सितात संवत बीए नै बावीसे
अरक वार आठम ओस वंस हुआ उपदेशे
प्रतिबोध परमार उपल जैन धरम में आयो
प्रथम गोत सो पाँच बावन सहत बंधायो
नव मण जनोई ब्राह्मण अवसधरी उतारीया
भोजन जीमाय थापिया भोजग कीधा तस आरंभ करीयः ॥

एशियाइटिक सोसाइटी में ऐसे और भी गुटके हैं, जिसमें दो मुख्य हैं -

(1) बिलाड़ा परगना के ओलवी ग्राम के ठाकुर दौलतसिंह भाटी के यहाँ से उपलब्ध हुआ है, जो विक्रम संवत् 1917 का है।

(2) सेवग सुखराम लोडावत का है।

इन दोनों के नागरी रूपान्तर दिये जा रहे हैं।

एशियाटिक सोसायटी के एक और गुटके में ओसवाल वंश की उत्पति के कथानक पर प्रकाश पड़ता है।[1]

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 86

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुटका नं. 1 - ग्राम ओलवी परगना बिलाड़ा के ठाकुर दौलतसिंह भाटी (राजपूत) की पुस्तक में साधु बालाराम का विक्रम संवत् १९७१ में लिखे छन्द का नागरी रूपान्तर :

कवित्त

श्रीमील बसै दोय सेठ रोहड ने उहड़ भाई
निनाणूँ उहड़ रे लाख रोहड सो लाख सवाइ
उहड़ ईउडा उपनी कोट मै मेहल करी .जै
विनती करे वीर सों लाख दान उधार दीज
बसै कोट थाहीं बिगर एम भोजाई मुख भाखीयो
मरण भलो धृग मांगणो हृदय में गोसो राखीयो ॥1॥
शहर बसे श्रीमाल गाज चोबीस गरद है
राज करे परमार ऊठ राजा देशलदे तिहाँ
देशल पुत्र दत्रा दोय उपल अणमीनीत आबीजे
पटाइजा पर धेल दोय सेर जुवार उपल न दीजै
दिवस एक उपल ने देखने कुँवैर ने ऊहड़ कहे
पुर सूरज क कपड़ों उ छल रावत इणिविध गोंढ़ रहै ॥2॥
सूरज उगे सासती कुवर नित गोठ कराडै
रूडे काज रावताँ अस आवधि अणाडै
मड बांका अण जंगा धोडां गज घटां
आटो पोहर उनमाद भणा उगडा गुज भटां
राज रे काज मारै रबै ओतो दाणव उठीयो
कुंवरा राव उखी नएको करे दुष्ट जाणि देसो दीयो ॥3॥
आठ सहस असवार रत सहस इग्यारह
गामी सहत्र गुणतीत पायकपाला नहीं पार है
उठीसह सहस अठारह तीस हाथी मद झरंता
दस सहस दूकान कुलह व्यापार करतां
पोकरणराव प्रमार रे मेल घरेवार साथे मंदीया
उहड़ पर श्रीमाल लखां बदंता ए ताव दीया ॥4॥
सेहस उछालां सहित उपल मंडोवर आयो
मंडोवर रा धणी करी महिर देश पूर महिल दिखायो
पंडित जोशी पूब उरत बसाई नव तोरी
वेद खत्री यां धर बचे करो सेवा शिव के री
शिव रो राह जाणे सको जाणे नहीं राह जैन रो
शिष्य कहै रत्मप्रभ सूर ने कोईक वीचार धरण रो करो ॥5॥
शिष्य तणीकथा सुणै कह कह उर कोप ज कीधो
आणो पूणी एक कयो-शिष्य ने जठे दीप तठे चलै जाय

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोभ कज पूणी ल्यायो कीनी माया कारमी
विषहर पीणोज बणायौ सेठ
सेठ सुत सुतो सहज मकबपारे मालीये
पी गयो सर्व वीणो प जंग जीरवांण लेजाये जालीये ॥6॥
बदी रथी बणाय आंण जाखाण उतारी
वड जांन भूप तो उपल सरीखा अहंकारी
जालण वार जतीये आणं दीधी उपल री
जालो क्यूँ ओ जीव जीवाण जड़ी बैजेरी
आँणियो कुंवर गुरु आगला कुवर ने जीवतो कियो
नर एकम थारे नगर देशल सत गुर नै दियो ॥7॥
वर्धमान जिन थकी पाट बावने पद लीधो
श्री रत्न प्रभ सूरि नाम ता सदगुर दीधो
तिण सू अठ दस बरस नगर ओसीया आए
प्रतिबोध बाधाद नांमति हांसा चल पाए
च्यार लाख चौरासी सहसवर राजकुमार प्रतिबोधिया
श्री रत्न प्रभ सूर उईसा नगर थिर उसवाल थरपिया ॥8॥
श्रावण पख सितात् संवत वीये बावीसे
अर्कवार आठम उसवंश हुवो
उपदेसे प्रतिबोध्या पमार उपल जिन धर्म में आवो
अथ मगो तसै पांच बोल सहित बँधायों
नव मण जनोउ ब्राह्मण अंसवतर उतारियो
भोजन जीमाय ब्रह्मा भोजगां किया थित आरम्भ का रीया ॥9॥

इति श्री उसवाल उपतपन्ति: । लिखितं जोधपुर मध्ये साधु बालारामेण विक्रम संवत् 1971 फाल्गुन सुदि 12 शुक दिने । ईसवी सन् 1915 फरवरी ता. 26 । गांव ओलवी परगना बिलाड़ा के ठाकुर भाटी दौलत सिंह जी की पुस्तक से लिखी ।[1]

गुटका नं. 2 - सेवग सुखराम लोडावत के छन्द का नागरी रूपान्तर:

एथ ओसवालों री उतपत लीखते ।

श्रीमाल बसे दोय सेठ, भली रीद्ध उहड़ न रूहड़ भाई ।
नीनाणू उहड़ रे लाख, रूहड़ सौ लाख सवाई ।
ऊहड़ इच्छता उपनी, कोट में महल करीजे ।
विनती कीधी वीर सूँ, दाम लाख उधारा दीजे ।
बसे कोट थाई बिगर, भोजाई मुख भाखीयो ।
मरण भलो धृग मांगीयो, हरिदे में गोसे राखीयो ॥1॥
सहर बसो श्रीमाल, गाउ चौबीस गरद् है ।

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राज करे प्रमार, दुठ राजा देशल है ।
देशल पुत्र दस दोय, उपल अणमाने तो अखीजे ।
दुजा पटा दुणा, उवाने दोय सेर ज्वार है दीजे ।
एक दिवस उपल ने देखीने, कवर ने उहड़ कहै ।
पुर सुरी ज कन्हैं कपड़ा प्रगल रावत मो गैडे रहे ॥2॥
सुरज उठो सासती, कँवर नित गोठ कराड़े ।
रूड़े हित रावतौं, इसे आवधी अनाड़े ।
भड़ बंगा अण भंग ठाट घोड़ा गज थटां ।
आठ पोहर उद्‌माद भणाडे पमाड़ गुण भटां ।
राज रे काज मारे रखे, ओ तो दानव उठीयो ।
कवर परधान ऐको करे, दुष्ट जाण देसोटो दीयो ॥3॥
अठ सहस असवार, रथ सहज इग्यारह ।
गाड़ी सहस गुण तीस, पाला पाईक नहीं पार है ।
ओठी सहस अठार, तीस हाथी मद झरंत ।
दस सहस दुकान कोड व्यापार करंत ।
पाकरण राव जुवार रे, मेल घर बार साथ मंडीया ।
सेठ उहड़ ने उपलि सहत छड़तां साते छंड़ीया ॥4॥
सहस उचाला साथ, उपल मंडोवर आयो ।
मंडोवर रे धणी, दिसपुर मेहल दीखावो ।
पंडित जोशी पूछ तुरत वसाई नव तेरी ।
वेद घर खत्रीया बाचीजै, करे सेठ सेवा विप्र केरी ।
शिव री राह जाणें शको, नहीं जाणें धर्म जैन रो ।
शिष्य कहे रत्न प्रभु सूर ने, कोई क विचार धर्म रो करो ॥5॥
वर्धमान जिन तकीं, पाट बावने पद लीधो ।
श्री रतन प्रभु सुर, नाम वाझ गुरु दीधो ।
ताते आठ दस बरस, नगर ओयसां आयै ।
प्रतिबोधे चामंड नाम, तसाचल पाए ।
चार लाख चौरासी हजार घर राजकुली प्रभ बांधीया ।
श्री रत्न प्रभु सुर ओयसा नगर ओसवाल थीर थंपीया ॥6॥
सावण पख श्री तातु संवत बीये बाबीसे ।
अरकवार (सूर्यवार) आठम ओस वंस हुआ पदेसे ।
प्रतबोधे पवार, उपल ज्यानें धरम आये ।
अथ गोत पाँच सौ, बायल भो न्यात बँधाये ।
मण नव जनोई ब्राह्मणां, अशंक मल उतारीया ।
भोजन जीमाय थापीया, भोजग कर थीत आरंभ काकीया ॥7॥
प्रथम गोत तातेड़ बिये बाफणा बाहदर ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुहरतीया करणावट, वले मोदक सहोदर ।
कुरहद बिरहद सीखर श्रीमाल सुजाण है ।
डीडू लघु कंडेलवाल वेद पारक बखाण है ।
आदह कन्हा भूर जद्रक कुंभट चींकच कनोजीया ।
श्री वीरधमान सुरपाट अविचल सही ओसवाल थीर थापिया ॥8॥

उक्त दोनों कवित्तों में श्रीमाल नगर के राजा देशल के राजकुँवर ऊपल एवं रोहण और ऊहड दो भ्रात श्रेष्ठियों का उल्लेख हैं। ऊहड़ और ऊपल द्वारा मंडोर के पास ओसिया बसाने, रत्नप्रभसूरि के ओसिया पधरने, ऊपल सहित ४ लाख ८४ हजार क्षत्रियों को 'बीये बाईसे' में ओसवाल बनाने एवं भोजकों की उत्पत्ति का भी उल्लेख है। किन्तु दोनों कवित्तों में कुछ भिन्नताएँ भी हैं और वे बडी सार्थक हैं। सेवग सुखाराम के छन्द में जिन प्रथम १८ गोत्रों का उल्लेख है, वे ओसवालों के आदि गोत्र हैं, परन्तु साधु बालाराम के छन्द में बाद के १८ राजपूत गोत्रों का नामोल्लोख है।

नाहर जी के संग्रह में उपलब्ध गुटकों से उक्त छन्दों का मिलान करने पर एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगोचर होता है। एशियाटिक सोसायटीमें उपलब्ध कवित्तों में ओसवंश प्रतिष्ठापक रत्नप्रभ सूरि का स्पष्टत: भगवान् महावीर के निवार्ण के ४२ वर्ष बाद आचार्य पद पर आसीन होना एवं उसके १८ वर्ष अनन्तर ओसिया पधारने का उल्लेख है। इस दृष्टि से ये पद ओसवालों की उत्पत्ति के काल-निर्णय में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।[1]

इन दोनों गुटकों में श्रेष्ठि भ्राता- रोहड़ और ऊहड़ हैं। श्रीमाल नगर का राजा देशलदे है। प्रथम जैन राजा को परमार ही माना है। ऊपल और उहड़ मण्डोवर आए। ऊपल ने ओसियां नगरी बसाई। वहाँ रत्नप्रभसूरि पधारे। वहाँ उन्होंने चार लाख चौरासी हजार राजकुमारों को प्रतिबोध दिया। 'वीये वाइसे' के श्रावण के शुक्ल पक्ष में ओसवंश की प्रस्थापना की। प्रथम कवित्त का सेवक जोधपुर का बालादभेण है, जिसने विक्रम संवत 1971 की फाल्गुन सुदि 12 शुक्रवार, ईस्वी सन् 1915 फरवरी की 26 तारीख को ओलवी परगना बिलाड़ा के ठाकुर भाटी दौलत सिंह जी की पुस्तक मिली।

द्वितीय कवित्त में स्पष्ट लिखा है 'लीखतु सेवग सुखराम लोड़ावत। इसमें भी कहा है कि 'श्रीमाल नगर में दो श्रेष्ठि पुत्र थे- उहड़ और रूहड़। ऊहड़ को भाभी ने उपालम्भ दिया, वह राजकुमार ऊपल के पास आया और नया नगर बसाने की योजना बनाई। देशल के भी दो ही पुत्र

---

1. इतिहास की अमरवेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 86
राजस्थान राज्य के राजकीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में निम्नांकित गुटके उपलब्ध हैं-
1. ओसवाल री जाति विगत (क्रमांक 655)
2. ओसवाल जात्युपात्ति कवित्त (क्रमांक 3334)
3. कवि भाईदास रचित कूकड चोपड़ा री उत्पत्ति (क्रमांक 3340)
4. ओसवाल जाति उत्पत्ति वर्णन (क्रमांक 3978)
5. इतिहास ओसवंश (क्रमांक 27033)
6. उसवाल वंश उत्पत्ति रा कवित्त (क्रमांक 655)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थे। यहाँ भी पमाड़ गोत्र ही माना है। दोनों मण्डोवर आए। वर्धमान के पाट पर विक्रम संवत् 52 में रत्नप्रभसूरि पाट पर विराजे। वे ओयसा नगर पधारे। इन्होंने चार लाख चौरासी हजार राजकुलों में प्रतिबोध दिया और इस तरह श्री रत्नप्रभसूरि ने ओयसा नगर में ओसवाल जाति की स्थापना की।' श्रावण पक्ष के 24 संवत में सूर्यवार अष्टम को ओसवंश की स्थापना हुई। इस कवित्त में 18 गोत्रों की स्थापना का भी वर्णन है।

(3) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर में उपलब्ध गुटके इन कवित्तों में ओसवाल की जाति की उत्पत्ति सम्बन्धी छन्द एशियाइटिक सोसाइटी के गुटकों छन्दों के लगभग समान है। अंतिम गुटका वेलानुत्तरदास द्वारा लिखित है। इस गुटके और साधु-बेलाराम और सुखराम के गुटके में छन्द साम्य निम्ननुसार है।

वर्धमाण जिण थका पीढ़ी बारमी पद लीधो
श्री रतन प्रभ सूर नाम ते सत गुर दीधो ।
तेसुं अठ दस बरस नगर ओईसा आए
प्रतिबोधी चामुंड नाम ते साचल पाए ।।
चार लाख चौरासी सहस थिर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभसूरि ओईसा आवीया ओसवाल थिरपंथपीया।
सावण पख सितात, संवत् बीये बाईसे
अरकवार आठम ओईस वंश हुयो ।
उपदेशे प्रतिबोध्या प्रमार उपल जिण धरमां आयो

प्रथम गौत सौ पांच नांवल सहित बंधराईयो ।
मण नव जनोई ब्राह्मणां असंयन रे उतारीया
भोजन जीमाकु भोजगां कीया थित आरिमकीरीया ।।
प्रथम गोत तातेड़ बीया बाफणी बहादुर ।।
कहं तीया कर्णाट बल मोरक सहोदर ।
कुरहद विरहट सघन श्री श्रीमाल सुजाणां
डीडुलघु खंडेलवाल वेद पारख बखाणां ।।
आदित्यनाथ मूरज कहै कूंभट चींचट कनोजीया
श्री रतन प्रभ जग में अचल, उसवाल थिथंपीया ।।

गुटका संख्या 2 क्रमांक 3334 में दो ही पद्य है, इसके अनुसार भी रत्नप्रभसूरि ओसिया पधारे। इन्होंने चार लाख चौरासी हजार राजकुलों को प्रतिबोधित किया और इस तरह ओसवाल जाति की स्थापना की। यह उन्होंने 24 संवत् के श्रावण के शुक्ल पक्ष में किया। इस दिन रविवार था और अष्टमी थी। यह गुटका 1828 विक्रम संवत् का लिखा प्रतीत होता है।

उसवाल गोत्रां रो

श्री वर्धमान जिन थंकी पीढ़ी बारह पद लियो
श्री रतन प्रभ सूरि नाम दाउल गुरु दियो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तासे आठ दस बरस नगर उसीया आए
प्रतिबोधे चामुंड नाम तिहां साच्चुल पाए
चार लाख चौरासी सहस राजकुली प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभु सूरि उस्या नगर उसवाल थिरथपिया
सावण पख सितात संवत बीयै बावीसे
अर्कवार आठम्म उस वंस छवो उपदेसै
प्रतिबोध पमार उपल जिन ध्रम ह आए
प्रथम गोत पाँच सै बावल भय बोत बंधाए
मण नव जनो उ ब्राह्मणां असंक मेली उतारीया
भोजन जिमाइ थाका भोजग करिथिति आरम्भ का किया ॥2॥

4. केशरिया नाथ मंदिर ग्रंथागार के गुटके

इस ग्रंथागार में दो गुटके उपलब्ध हैं

(1) गुटका नं. 4, 'कवित्त उसवालां री उत्पत्ति रो'

(2) गुटका नं. 29

प्रथम गुटका अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस पर संवत् 1801 अंकित है। यह सम्भवत: प्राचीनतम गुटका है। इसमें उपल देशल सुत है। उहड़-उपल दोनों श्रीमालनगर से मण्डोर आए, ओसिया बसाया और रत्नप्रभसूरि ने 24 वि.सं. में प्रतिबोधित कर ओसवाल वंश की स्थापना की। द्वितीय गुटके में भी कथानक समान है। गुटका संख्या 4 के दो छन्द उद्धृत है। ये दोनों छन्द राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, बीकानेर के क्रमांक 655 के गुटके के छन्दों के समान है। यहाँ भी संवत् 'वीये वाइये' ही कहा है।[1]

वर्द्धमाण जिण थकी पीढ़ी बारमी पद लीधो
श्री रतन प्रभ सुर नाम तेस गुरु दीधो
तेसुं अठ दस बरस नगर ओईसा आए
प्रतीबोधी चामुंड नाम तै साचल पाए
चार लाख चौरासी सहस थिर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रतन प्रभ सूर ओईसा नगर ओसवाल थिरथपीया ॥8॥
सावण पख सितात सम्वत् वीयै बाईसे
अरक वार आठम ओइस वंश हुयो उपदेस
प्रतिबोध्या पमार ओपल जिन धर्म में आयो
प्रथम गोत सो पांच बाबल सहित बँधायो
मण नव जिनोई ब्राह्मण असंख नरे उतारीया
भोजन जीमावन भोजगां कीया थित आरिमकारीया ॥9॥

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 91-92

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

5. स्व. मोहनलाल दलीचंद देसाई संग्रह

इनके संग्रह में कवि उदयरत्न 'पांच पाट रास' नामक एक गुटका उपलब्ध है। इसमें तीनों जैन जातियों- श्रीमाल, ओसवाल और पोरवाल जातियों की स्थापना का उल्लेख है। श्रीमालियों की कुलदेवी महालक्ष्मी है, पोरवालों की अम्बिका और ओसवालों की संचिया देवी -[1]

सीध पुरीई पोहता स्वामी वीर जी अन्तरजामी।
गौतम आदे गहू गाट बीच माहे बही गया पाट ।।
त्रेवीस उपरे आठ बाँधा धर्मनो बांट श्री रहपि।
रत्न प्रभू सूरिश्वर राजे आचारज पद छाजे ।।
श्री रत्न प्रभ सूरि राय केशीना केड़वाय ।
सात सौ सेका ने समये रे श्रीमील नगर सनूर ।।
श्री श्रीमली थापिया रे महालक्ष्मी हजूर ।
नेऊ हजार घर नातीना रे श्री रत्न प्रभ सूर ।।
थिर सुहरत करी थापना रे उल्लट घरी ने उर ।
बड़ा क्षत्री ते भामा रे नहीं कार दियो कोय ।।
पहलो तिलक श्रीमाल ने रे सिगली नाते होय।
महालक्ष्मी कुल देवता रे श्रीमाल संस्थान ।।
श्री श्रीमालीनाती ना रे जाने बिस्वा बीस ।
पूरब दिस थाप्या ते रे पोरवाड़ कहेवाय ।।
ते राजा ते समये रे लघु बंधव इक जाय ।
उवस वासी रहयो रे तिणे उवेशापुर होय ।।
ओसवाल तिंहा थापिया रे सवा लाख घर जाय।
पोरवाड़ कुल अम्बिका रे ओसवाल संचियाय ।।

6. अभयग्रंथालय, बीकानेर

राजस्थानी साहित्य और जैनसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान अनुसंधित्सु श्री अगरचंदनाहटा और श्री भंवरलाल नाहटा के अभय ग्रंथालय, बीकानेर में निम्नांकित गुटके उपलब्ध हैं -

1. हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 648 ओसवंश थापनकवित्त (शोभकवि रचित)
2. हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 7765 ओसवाल उत्पत्ति कवित्त
3. हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 501 (संवत् 1835 में लिखित)

''अथ उसवालां रा कवित्त''

प्रथम गुटका वीरात् 70 वर्ष में ओसवंश की स्थापना की पुष्टि करता है। इसमें कहा

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 92-93

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गया है कि श्रीरत्नप्रभ वर्धमान के निर्वाण के 52वें वर्ष में आचार्य पद ग्रहण किया और उसके आठ दस वर्ष पश्चात् ओसिया (उएस्या) पधारे। वहाँ तीन लाख चौरासी हजार राजपुत्रों को प्रतिबोध दिया। इस प्रकार रत्नप्रभसूरि ने उएसनगर में ओसवालों की स्थापना की। फिर सभी 18 गोत्रों की स्थापना की।

द्वितीय गुटका क्रमांक 7765- ओसवालां उत्पत्ति कवित्त में कुल 16 छप्पय है, जिसमें ओयसा नरेश उपलदेव के जैनधर्म अंगीकार करने की कथा विस्तार से कही गई है। इसमें कहा गया है कि नरेश उपलदेव पंवार संचिया माता ने पुत्र हेतु वरदान दिया। उस समय रत्नप्रभु मासखामण कर रहे थे। उस समय पीवणा सर्प के कारण कुंवर को चेतना नहीं आई। कुंवर का बहुत उपचार किया, किन्तु कोई फल नहीं मिला। उस समय आचार्य रत्नप्रभु ने कुंवर को जीवनदान दिया। उन्होंने जैनधर्म अंगीकार कर लिया। इन्होंने तीन लाख चौरासी हजार राजपुत्रों को प्रतिबोध दिया। इस प्रकार ओसियां के ओसवालों की स्थापना की इसमें सभी राजपूत जातियों के ओसवाल होने की बात कही गई है। यह गुटका वीरात् 70 वर्ष में ओसवंश स्थापना से काफी मेल खाता है।

तृतीय गुटका (क्रमांक 501) के अनुसार- एके उगणीश संवत् 39 के श्रावण के शुक्ल पक्ष में परमार उपलदेव ने जैनधर्म अंगीकार किया। साधुओं को ओसिया में घर घर घूमने पर भी आहार नहीं मिला। इन्होंने पीवणा सांप को प्रकट कर राजकुमार को चेतना शून्य कर दिया। इस प्रकार इस पद में संवत् 'एकै उगणीसे' में ओसवंश की स्थापना का स्पष्ट उल्लेख है। यह गुटका सं. 1835 का लिखा हुआ है। यह कवित्त अधूरा है।[1]

ओश वंस थापन कवित्त
श्रीमदिष्ट देवाय नमः

श्री वर्धमान जिन थकी बरस वावन पद लिधो,
श्री रत्न प्रभ सूरनाम तिहांस गुर दिधो ।
ताऊ अठ दस बरस नय उएस्या आया,
प्रतिबोधे चामुंड नाम तिहांसा वलणाया ।
तीन लाख चउरासी सगस्र राजपुत्र प्रतिबोधिया,
श्री रत्न प्रभ सूरि उएसनगर उसवाल थिरथपीया ।
प्रथम गोत तातेड़ बीय बाफणा बाहदर,
कह तीजो करणावट रांका बुलह मोराक्ष पोहकरणो ।
सुहंकर उलहट नै विरहट अखर श्री श्रीमाल बखाणु,
नवम वैद मुता भणीजे श्रेष्ठ दसम सुचंती जाणु ।
आदित्य नाग चोरड़िया स भूरि भटेवरा भाई,
लघु चिंचट भाई गोत्र लीगा समदड़ीया ।
लघु श्रेष्ठि कुंभट कोचर मीमु कनोजीया,
श्री रत्न प्रभ सूरी उएसनगर उसवाल थीरथपीया ।।

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 93-98

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(2) अथ ओसवालां री उतपत्त रा छप्पय लिख्यते

उपलदेव पवार नगर ओयसा नरेश रा
राज रीत भोगवै सकल सचियाय दियो वर
नव लख चरू निधान दियो सोनहियां देवी
इतव उपर अरिगंज कियो सह पाय न केवी
इम करे राज भुगते अदल के इक वर सब दिविया
नहिं राजपुत्र, चिता निपट सकत प्रगट कहकत्थिया ॥1॥

हो राजा, किण काज करै चिंता मन मांहि
थारै उदर सुतन्न वेह अंक लिखिया नांहो
जद नृप छै दलगीर दीना वाय क इम दाखै
राज बिना सुत राय, राज म्हारो कुण राखै
जा नृपत पुत्र होसी हमें घणां नरां पण घटसी
होवसी वणं संकर जुवा पुव सांध राव लहसी ॥2॥

दियो वरदान पुत्र राजा फल पाये
नाम दियो जयचन्द बरस पनरां परणाये
पिता पुत्र भडया महल सहलां सुक माणै
दिन दिन गढ़ मं छाख का निसाण बजाणै
उण समौ आये प्रभु रतन ऋषि मास खमण करतो मुरा
सिष मेल बहरावा सहर मे धरम लाभ करतो धुरा ॥3॥

घर घर सिष फिरगयो पर त आहार नहिं पायो
बिपर हेक पिण बार वचन रसड़ो बतलायो
हो सिख, झोली हात मेल, कर काम हमारो
करदयो न संत रोकीयो वले जग साद बिहारो
बहु बहर खांड भोजन घिरत ले आये गुरु अगल
गुरु कहओ बार लागी घणी कह चेला वृतांत सकल ॥4॥
सिष मुख सुणे वृतांत सहर स्यूँ रि, रिसायो
पिवण सरप कर प्रगट महल कवँरा मिलवायो
पिवण सरप पीबातां कवँर चेतना न काई
सास नहीं बेसास सोग यणप डसँ ताई
हाहाकार हुय देस मे दाग दियण सब चल दीना
पड़ पंच करे पूछ्यो उहम मगे आय उभो मुनी ॥5॥
सिख मुख सुणे वयाण भवँर राजा भूलाणो
कवण नाम गुरु कठे थए सो दास ठिकाणो
ओ खेजड़लो अठे कवँर ने लेय पधारो
आहु दीन री अरज स मो काज सुधारो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रिष कह्यो विप्र घणा राजरे अधिकारी गुरबुध अनम
जो कै कँवर ने जीवचो तो पूछो प्रुहतांप नम ॥6॥

नृपत पूछे गुरु विप्र कवँर जीवै किण कारण
ओखद मंत्र उपचार वेद बड़ा कियो विचारण
पण गुण लग न लगार रिष कहियौ सुण राजा
हूँ जीबाऊ कवँर कहुँ सो करसओ काजा
तिणबार नृपत इम उच्चरे कहो राज सो मेह करां
जो कवँर काज चूकां वचन मोत अफूटी सह मरां ॥7॥

तद कहियो रिषराज कवँर महलां पदरावा
मंत्र फेर मंत्रीया जाय पोढ़ाय जगावो
खमा खमा कर ख्वास गीत मंगल चा गाया
बाजा सुभ बाजिया उठ गुरु चरणां आया
मंगलीक कुंकुंभ कर गोहली चोक मोतियाँ पूरतदू
पालज्यों दया रिष राज भणव सुधा सिरजिण धरमबद ॥8॥

जैन धरम जिण दीह अभंग षरधा आदरियो
मिटी आद मरजात ध्यांन हिय रिषब सुं धारियो
विषां हंत बदल्ल मूल अज्ञान ह मानिनी
ऊ आंको आविया राज विग्रह रचानी
नृप विर्र लाग देवी नहीं कर घरणो तागो कियो
तद हुयो मरण केतांतणो विरलो विप्र जु जोवियो ॥9॥

तिण हि त्यां कारणे प्रजा राजा पीड़ावे
सा का बंध सहैर मिनक चालता मर जावे
कोई ताप विरोद सत्र पण केय केय संधारौ
केय सरप ले सीह जलण पर के ताजारे
तिण परै सहर खाली हुयो बसेजाय भिनमाल लग
अनरथ हुयो गुरु कहे अनम भूख मरे भूखा जिनग ॥10॥

तद कहियो रिखराज याद गुर मेट किया किम
तिण तीतागो कियो तिका सह पाप लगो तुम
अबे हुवे वा बंस जिकां मन्नोज दिवाड़ो
बै देवे आशीष उदोतद होय तुमारा
आणियां विप्र वोहो कर अरज पगे लाग परचानिया
आविदा के क गुरु आगलाके नह चैन ह आनिया ॥11॥
आविया गुरु अगल नृपत कर जोर कह्यो बल
थे म्हारा पुजनीक आद नमत णीर चौ इल
होणहार आ हुई लीह भवतणी लुपाणी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हमैं पलट सीध्यांह तिकौं सह पाप लगाणी
दै वचन बीच सचियाय देब्रम भोजन मन भावीया
ओयसां हूँत भिनमाल में महपत विप्र मनाविया ॥12॥
दीध गुरां गोंहली दीद देवां ची सेवा
दिये लाग व्याहरा पुत्र पुत्र परणेवा
उत्तम दान आचार तार दाता रे तरणां
इण विध सूंई सवर किया सेवग पोकरणां
उपलदे राव अवसर तणें साख अठारे सहत सख
ओयेसा थी उँटले बसे जाय भिनमाल बख ॥13॥
विरधमान जिण पछे बरस बावन पद लीधो
सिरी रतन प्रभु सूर नाम सत गुर भो दीधो
संवत इक उगणीस नगर ओयसां आये
प्रतभोधे चामंड नाम साचलता पाये
सहस चोरासी तीन लाक राजपुत्र परबोदीया
इम भीनमाल पुर ओयसां ओसवाल थिर थप्पिया ॥14॥
भिन्नमाल थी उचल जाय ओयेसां बसाणां
छत्री आ रै बंस उठे उसवाल कहाणां
गयो राज धर गई प्थी पलटी पम्मारां
उपल दे हुय असत सत साचल सु पियारां
गुर हुवे रतन प्रभु अकल गमभड कै भूपत भूविनां
पोकरणां सेबग तद हुबा ओसवाल तद अपनां ॥15॥
प्रथम साख पम्मार सीक सीसोद सिंघाला
रणथंभ रा गेड़वसू चहुआण बडाला
सोलंकी सांखला बरल पडियारं बोराण
दस्या भाटी सोट मोयला गोयल मकवाणा
कछवाह गोरम कडबड किता लहता पटा जु लाखरा
हेक दिन इता मीलन हुआ सूर बड़ा भड़ साखरा ॥16॥

(3) अथ उसवालां री उतपत रा कवित्त

श्रावण पष्प (पख) सितात संवत एकै उगणीसै
अरकवार आविम्म उस वंस लओ उदेसै
प्रतिबोधियो परमार उपल जैन धर्म में आयो
प्रथम गौत सौ पांच बावन जिणेसर बंधायो
मणत्रि जनोई असग मिले उतारीयां
भोजन जिमामें थिपे भोजगां करथित आरंभकारीयां ॥1॥
घरि घरि रिष फिर गयो पवित्र आहार न पायो

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विप्र एक तिण वार वचन इसै बतलायो
हो रिष झोली हाथ मेल कर काम हमारो कहीय
उण ईण कीयो विप्र पात श्राध दिहा यो, बेहराय
भोजन खीर खांड लायो सीक गुरु ले अगल
गुरुकहीयो बार लागी घणी सीख कहीयो कारण सकल ॥2॥

सीष मुख व्रितान्त सुणि रिषि सहैरं सुंरीसाए
पीयण साप करे प्रगट मेहेल कुँअर रे मेलाए
पीयण सास पीयंते कुँअर चेतना न काई
नहीं सास बेशास सांग हुए राय चिंताई
हाहाकार सैहैर कुँअर मोत हुई सुनी दागदी
अणमिल सब सनी परपंच कर पोरवछंडै मारग रहै ऊ भोसुनो ॥3॥

सीष मुख व्रितंत सुणी भरम राजा भलाणौ
कवण नाम गुरं कठे थैसो वाण ठिकाणौ
उठो डांड गुर उठै कुँअर ले पारो
आय वांदे की अरज शांह मो कारज सारो
सीष कहै विप्र राज रै ईधकारी बैगुर अन्तम
जे करे कुँवर ने जीवते पोह पु बै तिहाने प्रणाम ॥4॥

नृप हर वैगुर विप्रां कुँवरजी वैं को कारणे
उषध मन्त्र उपचार विप्रे बोह कीआ विचारण
पिण गुण न होई ली गार रिष कहीयो सुण राजा
कुँ जीवाऊ कुँअर कऊँ सो करसो काजा
रिष कहे राज ईम अनुष्ठै कहो राज सो म्हे कहां
नृप या पुत्र काजनृका वचन मोत अधवी सौ हमरां ॥5॥

7. केलड़ी मंदिर ग्रंथागार का गुटका

इस ग्रंथागार में 'ओसवंश की उत्पत्ति' ग्रंथ क्रमांक 1275 में दी है। इससे 'संवत एकै उगणीसे' में ओसवंश के उद्भव की पुष्टि होती है। अभयग्रंथालय के गुटके 7765 के 13 पद इसके समान है। पांच कवित्तों में परमार उपल के भगवान महावीर के निर्वाण के 52 वर्ष पश्चात् रत्नप्रभ सूरिका आचार्य पट्ट पर आसीन होना, 18 वर्ष पश्चात् अर्थात् वीर निर्वाण 70 में जैनमत अंगीकार करना और ओसवंश की स्थापना होना वर्णित है। उस समय ओसवाल के 18 गोत्र बने। उस समय एक लाख चौरासी हजार राजपुत्रों को प्रतिबोध दिया और ओसवाल जाति की स्थापना की। 'एकै उगणीस' में श्रावण के शुक्ल पक्ष के रविवार अष्टमी को ओसवंश की स्थापना हुई। सभी राजपूतों को इसमें ओसवाल होना वर्णित है।[1]

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 98-99

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खत्री साख अठार तिके ओसवाल कहवाणां
गयो राज धरती गई पृथ्वी पलटी परमारां
साची आई सचीयाय रायमन सोचे विचारां
एक लाख चौरासी सहस घर राज सुली प्रतीबोधिया
श्री रत्न प्रभ सूर भनमाल में ओसवाल थिरथपीया ॥19॥

श्रावण पख सितात संवत ऐके उगणीसे
अर्कवार आठम ओस वंस हुवा उपदेसे
प्रतिबोध्या परमार उपल जिण धरम में आयो
प्रथम गोत्र सो पांच बावन जिनेसर बँधायो
मण त्रण जनोई ब्राह्मणां असंग मिली ने उतारीया
भोजन जिमाय ने भोजगां धर करकथ आरम्भकीया
प्रथम गोत्र सो पांच प्रथम साखां परमारां
साख सीसोदिया सांखला रिणथंभनेरा बोद ॥20॥

बसी चहुआण वडाला सोलंकी ने सांखला
बुरबकीयार बोरांणा दईया भाटी सोढ़
मोहल गोहल मकहवाणा कछवाहा ने गोद खरपद
कथा लेता पटा जलाखरा
एक दिन इतरा महाजन हुआ सूरा पूरा खत्री सुधसाखरा ॥21॥

वरधमान जिन थकी बरस बावन पद लिधो
श्री श्री रतन प्रभ सूर नाम श्री सद्गुरुजी दीधो
ताहु अठ दस बरस नगर ओसीया आया
प्रतिवोध्या मात चामुंड नाम साचल दे पाया
त्रण लाख चौरासी सहस घर राजपुत्र प्रतिबोधिया
श्री रत्न प्रभ सूर ओसीया नगर ओसवाल तिहाँथापिया ॥22॥

प्रथम गोत्र तातेड़ प्रगट, बुबकीया बापणा बहादुर
कहे तीजा करणाट बलही ते रीया खांप सुहखर
कुलहट भीरहट सिखा श्री श्री माल बखाणा
सासह सचेता सबघर प्रत्यरु सचियाय पुरांणी
आदितयनाग गोत्र भर भाई वलचचेटी
कुंभट ने कनोजीया डीडू लघु श्रेष्ठ
ओसीया नगर ओसवाल तिहाँ थापीया ॥23॥

8. गुर्रा सा. गणपतराय जी का गुटका

पूज्य महाराज श्री दर्शनाविजय जी महाराज को नारायणगढ़ के श्री गणपतराय जी से एक गुटका मिला, जो 'ओसवाल अखबार' में प्रकाशित हो चुका है। इसके अनुसार उपलदेव

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पमार ने जैनमत स्वीकार किया। उस समय शिष्यों को गोचरी नहीं मिलने पर पीवणा सर्प बनाकर महल में भेजा। राजा उत्पल का पुत्र चेतनाहीन हो गया। उस समय श्री रत्नप्रभसूरि ने राजपुत्र को विषमुक्त कर दिया। यह कवित्त अधूरा है।[1]

राजा उपलदेव पंवार नगर ओसियो नरेश्वर ।
राज रीत भोगवे सक्ता (देवी) सचिया दीनहुवर ।।
नव सौ चरू निधान दिया सोनइया देवी ।
इंला उपरी अंगज किया सुपा नामा केवी ।।
इमकरी राज भोगवे अदल बहुत खलक वदीत होय ।
नहीं राजपूत चिंतानिपट सगत प्रगट कही कथा सोय ।।
हे राज । किण काज करो चिंता मन माहीं ।
सुत न उदरत य लिख्यो देउ किम अंक बनाई ।।
नृपत होय दीलगीर दीन वायक इम मुख भाखै ।
पुत्र विना सुर राय राज मारो कुण राखें ।।
देवी दया विचार वचन दिनो निरदोशी ।
रहो रहो रायनिशंक पुत्र निश्चय एक होसी ।।
जुग जाहिर जस पुर सुख घणा नरोपण हलटसी ।
उदुवाणा भाणा फिरसी अहे पँवारा गढ़ पलटसी ।।
देवी के वरदान पुन्य राजा फल पायो ।
नाम दियो जयचन्द वरस पन्नरो परणायो ।।
पुत्र पिता भीड़ पास महल सहलां सुख माणे ।
तीण अवसर ऋषीराज रत्नप्रभु मास खामणे ।।
शिष्य चौरासी साथ व्रत संयम तप साधे ।
धरे ध्यान एकतार देव जिनराज आराधे ।
शहर में गये शिष्यवहरवा धर्म लाभ करता फिरे ।।
इण नगर माहि दात्ता न को वसे सुम सारा शीरे ।
घर घर सब फिर गये पवित्र आहार न पायो ।।
विप्र एक तीणवार वचन ऐसो बतलायो ।।
हम गृह पावन करो धन धनभाग हमारो ।
आज हुओ आवणो मुनि ये देश तुमारो ।।
सुझतो आहार दोषण बिनो खीर खाँड बहेरावियां ।
उजले चित दोऊ जण ते गुरू के पास आविया ।।
देख गुरू गोचरी ध्यान धर ने आरोहण किया ।
सबद तणो पाषण तोय ब्राह्मण घर लिया ।।
नगर मही नव लाख बसे घर एक सरीखा ।

1. पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ 1318-20

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शक्त पन्थ मत्त बाद शीस संदूरी टीका ।।
समझ हुआ थिर मन ध्यान अन्तर सू खोले ।
शिष्य प्रति महाराज मुसक पुख वायक बोले ।।
गुरू कहे वार लागी गणीत कहो शिष्य कीण कारणे ।
शिष्य कहे आहार मिल्यो नहीं मैं फिरीयो घर 2 बारणे ।।
शिष्य मुख से सुन वैण आहार परथवी परठायो ।
पीवण सर्प हुअ गयो महल नृप सुत के आयो ।।
पीवण साप पी गयो कुंवर ने चैन न ताई ।
नहीं आशा विश्वास सोग हुगयो सताई ।।
हाहाकार हुओ शहर में दाग देणे चली दुनि ।
रतनप्रभ सांवल रुदन दया देख बोले मुनि ।।
मुनि वाथक सुणी वैन भ्रम राजन टांणों ।
कौन नाम गुरू कहे सांच देखावे ठीकाणो ।।
नृपत वचन जो सुन कहे मुनि उत्तर इस धारो ।
उस खेजड़े प्रस्थान कुँवर ने लेइ पधारो ।।
साधो सरणे आय नृपत विनती करावे ।
निश्चय हे त्रास हरो मुकट ऋषि चरण धारावे ।।
माफ करो तकसीर अब आप चूक बक्साई ।
ये मौ वृद्ध काल की लाज है गुरु कुँवरजीवाइये ।।
करुणासिन्धु दयाल नृपत कँ हसी वर दियो ।
गयो रोस तत्काल मृतक सुत ततखीण जियो ।।
धरियो खास दिसवास नैन खुलिया मुख वाचा ।
रोग सोग सब दूर शब्द सतगुरु का साचा ।।
आलस मोड उहियों कहे निंद आइ भलो ।
किस काज मनें ख्याया अठे दूरस कहो साची गलो ।।
खमा खमा सब कहे उठ गुरु चरणे लागा ।
मंगल धवल अपार बधावा आर्णदवागा ।।
तोरणछत्र निशाण कलस सौवन वधावा ।
भर मोतियन का थाल सखियन मिल मंगल गावे ।।
ओछांडिया महल बजार घर रतनो चोक पुराविया ।
जदी खीन खाप पग पातिया रतनप्रभ पधराविया ।।
नृपत करे विनती जोड़ कर हाजर ठाडो ।
कृपा करो महाराज धरममें रह सु गाडो ।।
पटा परवाना गाम खजाना खास खुलावुं ।
कबहु न लोपु कार हुकम श्रवण सुन पाउ ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुरु कियो त्याग धन वैकार एक वचन मोय दीजिये ।
मिथ्या त्याग जैनधर्म ग्रहो दान शील तप कीजिये ।।
तहत वचन उर धार नृपत श्रावक व्रत लिया ।
पुर डुडिं फरवाय नार नर भेला किया ।।
भिन्न भिन्न वख्यान सुणे गुरु के वायक ।
खट काया प्रति पाल शील संयम सुख दायक ।।
कर मनसो थों सकल मिल मौड कर जोडिया ।
सिद्धान्त जान जिन धर्म को शक्त पन्थ मुख मोडिया ।।
शील धर दृढ़ साच करे पौषाद पडीक्रमा ।
सामायिक संम भाव समझ वै दिन दिन दुणा ।।
हिंसा कहु नहीं लेस देश में आण फीराई ।।
धर्म तण फल ष्टि सबे सांभल जो भाई ।।
इह भांत जैन धर्म धारियो शक्त पंथ मुख मोड़के
गुरां वचन शिरधरी नृप मान मोड़ कर जोड़के
इष्ट मिलियौ मन मिल गयो, मिल मिल मिल्यो मेल
फूल वास धृत दुध जिय, ज्यो, तिलयन मांही तेल
सहस चौरासी एक लख घर गणती पुर मांह
एकण थाल अरोगिया, भिन्न भाव कुच्छ नाह
ओटां जगड़ा छोढिया, गढ़ गढ़ शस्त्र सीपाह ।

इन गुटकों के छन्दों से यह पता चलता है ओसवंश के आदिपुरुष भिन्नमाल के क्षत्रिय राजकुमार उपलदेव थे। इनके पिता का नाम कहीं भीमसेन दिया है और कहीं देशलदे। इनके मित्र का नाम सब स्थानों पर ऊहड़ ही है। परमार शब्द प्रक्षिप्त जान पड़ता है। यह कवित्त 17वीं 18वीं शताब्दी के है। श्री भूतोड़िया की भ्रामक धारणा है कि विक्रम संवत् 24 में आभा नगरी का देशल सुत्त जग्गा शाह बहुत बड़ा धनपति हुआ जिसकी दानवीरता जग प्रसिद्ध थी। भाटों/चारणों ने उसकी जग प्रसिद्धि में सैंकड़ों छन्द बनाए।[1] इसी कारण 222 संवत् में ओसवालों की स्थापना का कारण बताना उचित नहीं जान पड़ता।

'आठवीं/नवीं शताब्दी के बाद परमार राजपूत कुल के अनेक सामन्तों/शासकों को जैनाचार्यों ने प्रतिबोध देकर जैन धर्म अंगीकार कराया एवं ओसवाल महाजन जाति में सम्मिलित करके उनके वंशजों के विभिन्न गोत्र स्थापित किये। कालांतर में हो सकता है इस भ्रमवश 17वीं से बीसवीं सदी के बीच रचे या लिखे गये कवित्त और छन्दों में ये शब्द स्थान पा गये।'[2] 9वीं 10वीं शताब्दी के पश्चात् सभी राजपूत जातियों के राजपुत्रों ने जैनमत अंगीकार किया और ओसवालों के विभिन्न गोत्र स्थापित किये, किन्तु उपलदेव परमार था, यह भ्रम सबसे पहले

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 100
2. वही, पृ 100

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुहणौत नैणसी ने ओसवालों का संस्थापक परमार उपलदेव को मानकर इसका बीजारोपण कर दिया और फिर सभी लेखक इसी पूर्वाग्रह से भ्रम को आगे बढ़ाते रहे और उपलदेव को परमार मान कर तिल का ताड़ कर दिया। इसी ग्रंथ के कारण भाटों और भोजकों ने 18वीं और 19वीं शताब्दी में अपने कविता, पद्यों में उपलदेव को परमार ही मान लिया।

ओसवाल जाति को राजपूतों की विरासत मिली। राजपूतों ने सदैव भाटों/चारणों को प्रश्रय दिया है। इसी कारण राजस्थान के प्रत्येक क्षेत्र में भाटों ने अपने बहियों में ओसवाल जाति के विभिन्न गोत्रों की वंशावलियों को समय समय पर अंकित करने का कार्य किया है। इन भाटों ने दानदाताओं की प्रशस्ति में छन्दों की रचना की है। इस पेशेवर जाति का यही पीढ़ियों से पेश रहा है। धनाढ्य श्रेष्ठियों के आश्रय में भाटों और भोजकों ने अपना जीवनयापन किया है। इन बहियों में भाटों ने ओसवंश की उद्‌भव कथा अंकित की है।[1]

आबू पर्वत पर अग्निकुंड में चार क्षत्रिय वीर प्रकट हुए, उनसे क्रमशः चौहान, परमार, परिहार और सोलंकी राजकुलों का प्रवर्तन हुआ। परमार के वंशज धांधूजी जूनागढ़ (बाड़मेर के पास) के शासक थे। उनके दो रानियाँ थीं। एक सोलंकी कन्या (जोगीदास की पुत्री) दूसरी रानी के दो संतानें थी, जिसमें एक उपलदेव। उसका विवाह कछवाहा कुल की कन्या से हुआ।

एक दिन युवराज उपलदेव ने पनिहारिनों से चुटलबाजी की। पनिहारिनों के घड़े फोड़ दिये। राजकुंवर की शिकायत हुई। उपलदेव ने दूसरे दिन यह चुटलबाजी राजपुरोहित की कन्या से की। उसका भी मिट्टी का घड़ा फोड़ दिया। राजपुरोहित की शिकायत पर राजकुमार को देशनिकाला दिया गया। राजकुवंर को 12 वर्ष का देशनिकाला दिया गया। कुंवरानी भी उनके साथ गई। उनकी तीन सौ गाड़ियों का काफिला ओसिया पहुँचा। उनकी कुलदेवी सचिया माता ने सपने में परचा दिया- 'यह जगह मत छोड़ना। यहीं नगर बसाओ। 60 कदम उत्तर में माया से भरे 99 चरू (धातु के बर्तन) बर्तन मिलेंगे।' सुबह ही राजकुमार के ललाट पर कुंकुम का तिलक देखा। पलंग के नीचे कुआ खोदा तो खारा पानी मिला। कुलदेवी ने परचा दिया 'देवी का चढ़ावा नहीं किया, इसलिये पानी खारा निकला। अब चढ़ावा कर देना, पानी मीठा हो जाएगा। पांच दस सरदारों के साथ घोड़ी के साथ दिन भर में जितना गांव को घेर सको, वहाँ तक तुम्हारा राज्य होगा। पहले कुलदेवी का मंदिर बनाना, फिर महल।' उसने सबसे पहले मंदिर बनाया। देवी ने सच्चा 'परचा' दिया, इसलिये 'सचिया माता' कहलाई।

भाट के अनुसार उपलदेव ने संवत् 184 में सचिया माता के मंदिर की नींव रखी।

12 वर्ष बीतने पर उपलदेव माता पिता के दर्शनार्थ गये। एक और विवाह ओसिया में किया था। दोनों कुवराण्या ससुराल गई। राज्य में प्रवेश के पहले संदेश भिजवाया। छोटी रानी मा ने सोचा कि उपलदेव ही अब जूनागढ़ और ओसिया का शासक होगा, मेरे पुत्र को कुछ नहीं मिलेगा। छोटी रानी ने 'मिनखमारों' को बुलाकर आदेश दिया कि उपलदेव को खत्म कर दो। मंदिर में घुसते ही भिनखमारों ने उपलदेव का सिर काट लिया।

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 101-103

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस समय कुवराण्या का सत जागा। उसने श्राप दिया "धांधूजी री दूसरी राणी रो वंश मत चालज्यो, राज मत रहीजो।' वही हुआ। राठौड़ों ने राज्य छीन लिया।

दोनों ने सती होने का निश्चय किया। छोटो गर्भवती थी, इसलिये सती नहीं हुई। ओसिया आकर उसने एक बच्चे का जन्म दिया। उसका नाम भगवान सिंह रखा गया।

कुछ वर्ष पश्चात् रत्नसूरि जी महाराज ओसिया पधारे। उनके शिष्यों को गोचरी नहीं मिली। अंत में एक सुथार के यहाँ पहुँचे। सुथार ने जंगल से लकड़ियां लाने के लिये कुल्हाड़ी पकड़ा दी। इस तरह किसी तरह चार मास बीते। गुरुजी को क्रोध आ गया। धर्म की प्रभावना के लिये दूसरा रास्ता अपनाया। रुई की पूणी की मंत्रबल से सर्प बनाकर राजा पर छोड़ दिया। राजा ने नाबालिग भगवान सिंह को डस लिया। लोग उन्हें श्मशान ले जा रहे थे। शिष्य ने उनका रास्ता रोक लिया और गुरुजी के पास ले गये। बारह सामन्तों ने गुरुजी से प्रार्थना की। गुरुजी ने पुनर्जीवित कर दिया। सामन्तों और भगवानसिंह ने तत्काल शैवधर्म छोड़कर जैनधर्म अंगीकार कर दिया।

भाटों की इस कथा के अनुसार यह घटना संवत् 'बीये बाइसे' श्रावण सुदी 8 गुरुवार को हुई। उन तेरह व्यक्तियों के तेरह गोत्र हुए- तातेड़, बाफणा, सामसुखा, वेद, बोरड, बांठिया, मिनी, संकलेचा, सुरेश गोला, आरा, झावक, देशवाल, लूकड़।

सामंतों और भगवान सिंह ने हिंसा का त्याग कर दिया। देवी को महाभोग नहीं मिलने पर देवी क्रुद्ध हुई। गुरुजी ने बकरों की बली के स्थान पर कहा- 'खाजा रो खड़को, खोपरा रो भड़को और मीठी लायसी रो डेरो।' देवी के आदेश पर भगवानसिंह को गांव छोड़ना पड़ा।

भगवानसिंह का बेटा लाभराज सोजत जाकर बसा। वह नवाब की बेगम सलमा का धर्मभाई बना। सलमा के आंख में पीड़ा हुई। पूजा में बैठे लाभराज ने कहा- आंख में आक का दूध और बालू रेत डाल दो। आंखें फूट जानी चाहिये, पर ठीक हो गई। इसी से उसके वंशजों का वेद गोत्र हुआ।

इस कथा से पता चलता है कि रत्नप्रभसूरि से प्रतिबोध उपलदेव ने नहीं, भगवान सिंह ने लिया। इसके अनुसार ओसिया संवत् 184 में बसाई और सं 222 में जैनधर्म अंगीकार किया।

अधिकांश भाट, भोजक और सेवग आदि के अनुसार ओसवालों का उद्भव संवत् 222 में हुआ। अभयग्रंथालय के दो गुटकों (संख्या 7765, 501) और केलड़ी मंदिर के एक गुटके (संख्या 1275) में ओसवाल जाति का उद्भव संवत् 119 माना है। भाटों और भोजकों ने उपलदेव को ही ओसवालों का आदि पुरुष माना है। सब में जैनाचार्य रत्नप्रभ सूरि ही नाम है। किसी भी गुटके में "बीये वाइसे' के पहले विक्रम नहीं है।

यति रामलाल जी ने महाजन वंश मुक्तावली में माना है, "भाटों का 'बीये बाइसे' विक्रम संवत् नहीं, नंदिवर्धन का संवत्सर है।" नंदिरसंवत्सर माने तो भी वीरात् संवत् वाली बात सिद्ध नहीं होती। महावीर के भ्राता नंदिवर्धन ने भगवान महावीर के दीक्षा के समय एक संवत् प्रवर्तित किया था। यह नंदि संवत् माने तो 47+70= 112 नंदि संवत्सर आता है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'बीये बाइसे' में जग्गा शाह हुआ था। ओसवाल भूषण जग्गाशाह की प्रशस्ति में कवियों ने स्पष्ट कहा

रूपा नो नहीं पार सहस करहा कर माला।
बीये बावीसे भल जागियो यो ओसवाल भूपाला।।

आभानगरी के जग्गाशाह ने संवत् 222 में संघ निकाल कर तीर्थयात्रा की। श्री मांगीलाल भूतोड़िया की भ्रामक धारणा है इससे दो बातें सिद्ध जग्गाशाह ओसंवाल था और वह 222 में प्रसिद्धि के शिखर पर था। संवत् वीये बाइसे में हुए जग्गाशाह को ओसवाल जाति का प्रतीक स्तम्भ मान कर जाति की उत्पत्ति के छन्दों के साथ 'बीये बाईसे' का प्रयोग हुआ है- यह संभव है।[1]

यह बात अधिक उचित लगती है, कहते हैं कि संवत् 222 में खण्डेला ग्राम में समस्त वणिज पेशा जातियों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें 12 प्रमुख बस्तियों (प्रदेशों) से लोग आए, जैसे पाली से आने वालों को पालीवाल, ओसिया से आने वालों को ओसवाल, खंडेला के लोगों को खण्डेलवाल, श्रीमाल नगर से आने वालों को श्रीमाली, अग्रोहा के अग्रवाल, पोरवा के पोरवाल नाम से जाने गये।[2]

इसके पहले ओसवालों को महाजन कहते थे, किन्तु 'वीये बाइसे' में ओसवालों का नामकरण हो गया। ओसवंश का बीजारोपण या प्रवर्तन वीरात् 70 में हो गया, किन्तु नामकरण 'वीये बाईसे' में हुआ, यही उचित जान पड़ता है।

तृतीय मत: तथाकथित ऐतिहासिक मत

ओसवाल जाति के उद्भव को वैज्ञानिक और तार्किक आधार देने के लिये अनेक इतिहासकारों ने तृतीय मत की अवधारणा प्रस्तुत कर, उसे तथाकथित ऐतिहासिक मत की संज्ञा प्रदान की।

श्री सुखसम्पतराज भण्डारी के अनुसार यह बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि ओसिया नगरी की स्थापना उपलदेव परमार ने की जोकि किसी कारणवश देश छोड़कर मण्डोवर के पड़िहार राजा की शरण में आया। यह उपलदेव कहाँ से आया, इसके विषय में कई मत है। ऊपर हमने जिन मतों का उल्लेख किया है, उसमें इसका आना भीनमाल से सिद्ध होता है और कुछ लोगों के मत से इसक आना किराडू नामक स्थान से पाया जाता है। मगर ये दोनों बातें गलत मालूम होती है। क्योंकि भीनमाल के पुराने मन्दिरों में जो शिलालेख खुदे हुए मिले हैं, उनमें से दो लेख कृष्णराज परमार के हैं। एक संवत् 1113 का है और दूसरा संवत 1123 का है। पिछले लेख में कृष्णराज के बाप का नाम धंधुक लिखा है। यह धंधुक आबू का राजा था। एक पूर्णपाल और दूसरा कृष्णराज। पूर्णपाल के समय का एक लेख संवत 1098 का सिरोही जिले के एक वीरान गांव बसंतगढ में मिला है और दूसरा संवत 1102 का लिखा हुआ मारवाड़ के भंडूद नामक एक गांव में मिला है। इन दोनों लेखों से यह बात पायी जाती है कि धंधुक का बड़ा पुत्र पूर्णपाल अपने पिता की गद्दी पर बैठा और कृष्णराज को भीनमाल का राज मिला।[3]

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 109
2. वही, पृ 112
3. श्री सुखसम्पतराज भण्डारी, ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 9

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृष्णराज के पीछे भीनमाल का राज्य 150 वर्षों तक उसके वंश में रहा, जिसका उल्लेख संवत् 1239 के लेख में पाया जाता है, जिसमें 'महाराज पुत्र जैतसिंह' नाम आया है। नाम के साथ यद्यपि जाति नहीं लिखी हुई है, पर ऐसा सम्भव है कि यह भीनमाल का अंतिम राजा या युवराज रहा होगा। क्योंकि इसके पीछे संवत् 1262 के लेख में चौहान राजा उदयसिंह का नाम आता है और उसके पश्चात् संवत् 1362 तक के लेखों में चौहान राजाओं के ही नाम आते हैं, जिनका मूल पुरुष नाडोल के राजा अल्हणदेव का पुत्र कीतू था और जिसने पंवारों से जालोर लेकर अपना अलग राज्य जमाया था।[1]

उपरोक्त दलीलों से यह बात सहज ही मालूम हो जाती है कि भीनमाल का पहला पंवार राजा कृष्णराज संवत् 1100 के पश्चात् हुआ। उपलदेव का इन लेखों में पता नहीं है।[2]

दूसरा मत किराडू के सम्बन्ध में है। यहाँ पर एक लेख संवत् 1218 का मिला है, जो पंवारों से सम्बन्ध रखता है। इस लेख से यह पता चलता है कि मारवाड़ का पहला राजा सिंधुराज था। उसका राज्य पहाड़ों में था। उसके वंश में क्रमशः सूरजराज, देवराज, सोभराज और उदयराज हुए। उदयराज संवत् 1218 में मौजूद था। यहाँ भी उपलदेव का पता नहीं चलता।[3]

श्री पूरनचंद नाहर के अनुसार पंवारों का जन्म स्थान आबू है। वहाँ के एक लेख में धंधुक के पांच पुश्त ऊपर उत्पलराज का नाम मिलता है। इन लेखों में यद्यपि पंवारों का मूल पुरुष धूमराज को माना है, मगर वंशवृक्ष उत्पलराज से ही शुरू किया गया है। इससे पता चलता है कि सम्भव है, धूमराज के पीछे और उत्पलराज के पहले कुछ राजनीतिक गड़बड़ हुई हो और उत्पलराज से फिर राज्य कायम हुआ हो। क्या आश्चर्य है, इसी कारण उत्पलराज को मण्डोवर के पड़िहार राजा की शरण में आना पड़ा हो। इससे जहाँ तक हमारी समझ है ओसिया का बसाने वाला आबू का उत्पलराज हो।[4]

मुहणोत नेणसी ने अपनी ख्यात में उपलदेव का कोई साल संवत तो नहीं बताया मगर उपलदेव को धारा नगरी के राजा भोज की सातवीं पुश्त में माना है- 1. राज जगदेव, 2. राजा विद 3. राजा उदयचंद 4. राजा जगदेव 5. राजा डाबरिख 6. राजा घमरिख 7. राजा उपलदेव।[5]

भण्डारी ने मालवा और आबू के पंवार राजाओं की वंशावली दी है-

1. मालवा
2. उपेन्द्र
3. बैरिसिंह
4. सीयक
5. वाकूपतिराज

---

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 9-10
2. वही, पृ 10
3. वही, पृ 10
4. वही, पृ 10
5. वही, पृ 11

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

6. बैरिसिंह
7. सीयक हर्ष
8. वाक्पति भुंजराज सं. 1031
9. सिंधुराज (न 6 का भाई)
10. भोजराज (राजा भोज सं 1078)
11. उदयादित्य 1116
12. नरवर्मा सं 1161
13. यशोवर्मा सं 1192-93
14. अजय वर्मा
15. विंध्यवर्मा सं 1200
16. सुमरवर्मा सं 1235
17. अर्जुन वर्मा सं 1256

आबू

1. उत्पलराज
2. अरण्यराज
3. कृष्णराज
4. अरण्यराज
5. महिपाल
6. धन्धुक
7. पूर्णपाल सं 1099-302
8. ध्रुवभट
9. रामदेव
10. यशोधवल
11. धारावर्ष 1236-1256
12. सोमसिंह
13. कृष्णराज
14. प्रतापसिंह
15. जैतकरण सं 1345

भण्डारी जी का कथन है कि उपरोक्त वंशावलियों और उनके संवतों पर विचार करने से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि उपेन्द्र और उपल दोनों नाम शायद एक ही राजा के हो। ऊपर लिखी हुई दोनों वंशावलियों में पूर्णपाल का समय करीब संवत् 1100 के निश्चित होता है और उत्पल राज्य इसके 7 पुश्त पूर्व हुआ है। हर पुश्त का समय करीब 25 वर्ष मान लिया जाय, तो इस हिसाब से उत्पलराज का समय करीब विक्रम संवत् 950 ठहरता है। यही समय वाक्पतिराज और महाराज भोज के शिलालेखों से उपेन्द्र का आता है। यह वह समय है जब मण्डोवर में परिहार राजा बाहुक था। इस का एक संवत 940 का जोधपुर के कोट में मिला है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यही समय ओसिया के बसने का मालूम होता है। पड़िहार राजा बाहुक और भाई कुक्कुक के शिलालेखों (घटियाल ग्राम में प्राप्त) संवत 918 और संवत् 940 की लिपि से भी उक्त प्रशस्ति की लिपि मिलती हुई है। इससे पुरानी लिपि ओसियां में किसी और पुराने लेख की नहीं है।[1]

ऊपलदेव ने मण्डोवर के जिस राजा के यहाँ आश्रय लिया था, उसे सब लोगों ने पड़िहार लिखा था, लेकिन पड़िहारों की जाति विक्रम की सातवीं सदी में पैदा हुई, ऐसा पाया जाता है। इसका प्रमाण बाहुक राजा के उस शिलालेख में मिलता है, जिसमें लिखा है कि ब्राह्मण हरिश्चन्द्र की राजपूत पत्नी से पड़िहार उत्पन्न हुए। पड़िहार जाति की उत्पत्ति राजा बाहुक से 12 पुश्त पहले यानि हरिश्चन्द्र ब्राह्मण से हुई है। और बारह पुश्तों के लिये ज्यादा से ज्यादा समय 300 वर्ष का निश्चित किया जा सकता है। राजा बाहुक का समय संवत् 894 का था। इस हिसाब से हरिश्चन्द्र का पुत्र राजुल जो मण्डोवर के पड़िहार राजाओं का मूल पुरुष था, वह संवत् 600 के करीब हुआ हो।[2]

आचार्य रत्नप्रभसूरि जी के उपदेश से जो अट्ठारह कौमे एक दिन में सम्यक्त्व ग्रहण करके ओसवाल जाति में प्रविष्ट हुई थी, उन सब के नाम करीब ऐसे हैं, जो संवत् 222 में दुनिया के पर्दे पर ही मौजूद नहीं थी।[3]

यह अट्ठारह जातियां निम्नानुसार हैं-

1. परमार	7. पड़िहार	13. मकवाणा
2. सिसोदिया	8. बोड़ा	14. कछवाला
3. राठौड	9. दहिया	15. गौड़
4. सोलंकी	10. भाटी	16. खरवद
5. चौहान	11. मोयल	17. बेरद
6. सांखला	12. गोयल	18. सौरव

परमार जाति वि.सं 900 के पश्चात् दृष्टिगोचर होती है। 222 वि.सं में परमारों का अस्तित्व नहीं था।

सिसोदिया गहलोतों की शाखा है। रावल समरसिंह के समय का एक शिलालेख संवत् 1342 का खुदा हुआ आबू पहाड़ पर है।

राठौड़ों के विषय में कहा जाता है कि संवत् 1000 के करीब मारवाड़ हथकुण्डिया नामक स्थान में ये लोग बसते थे। बीजापुर के संवत् 996 और संवत् 1153 के लेख में इन्हें राष्ट्र कूट और हस्तकुण्डी नगरी का मालिक लिखा है। इसका कोई लेख वि.सं 900 के पूर्व का नहीं है।

सोलंकी दक्षिण में रहते थे और चालुक्यवंश के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके कोई

---

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 3-12
2. वही, पृ 12-13
3. वही, पृ 13

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिलालेख संवत् 681 के पूर्व का नहीं है।

चौहानों के लेख भी संवत् 1000 के पूर्व के नहीं मिले हैं।

सांखला परमारों की शाखा है। मुहणोत नैणसी ने धरणी वराह के पुत्र बाघ की औलाद से इसकी उत्पत्ति मानी है। बीजापुर के लेख में धरणीवराह का संवत् 1050 के करीब है। सोलंकियों का राज्य संवत् 1200 के करीब किराडू में होना पाया जाता है।

परिहार जाति भी वि.सं 222 में नहीं थी।

भाटी जाति का प्रामाणिक इतिहास 1200 के करीब प्रकाश में आता है। जैसलमेर के दीवान मेहता अजीतवीर जी ने अपने भट्टी नामें में इसकी उत्पत्ति का समय संवत् 336 के पश्चात् लाहोर के राजा भट्टी की संतानों से होना लिखा है।

मोयल जाति चौहानों की एक शाखा है। इसका संवत 1500 तक लाडनू नामक स्थान पर राज्य करना पाया जाता है।

रोयल गहलोतों की एक शाखा है। इसकी उत्पत्ति बाप्पा रावल से हुई है। यह इतिहास प्रसिद्ध है कि बाप्पा रावल ने संवत् 770 के पश्चात् मानराज मोरी से चित्तोड़ का राज्य लिया था। इनका राज्य मारवाड़ के इलाके में था, जिसे राठौड़ों ने छीन लिया था।

दहिया जाति का राज्य चौहानों से पूर्व संवत् 1200 के करीब जालोर में था, पर ये परमारों के आश्रित या नौकर थे।

मकवाना जाति परमारों की शाखा कही जाती है। इनकी छोटी शाखा 'झाला' है।

कछवाहा जाति का संवत 1100 के पश्चात् ग्वालियर में पाया गया है। एक शिलालेख संवत् 1150 का है। इसमें राजा महिपाल के पूर्व आठ पुश्तें लिखी हुई है। प्रत्येक पुश्त यदि 25 वर्ष की मान ली जाय तो 200 वर्ष पूर्व अर्थात् संवत् 850 तक उनका वहाँ रहना सम्भव हो सकता है।

गौड़ जाति बंगाल से पृथ्वीराज चौहान के समय राजपूताने में आई, पूर्व में नहीं।[1]

इस प्रस्तुतीकरण के पश्चात् भण्डारी जी ने यह निष्कर्ष निकाला, प्राचीन जैनाचार्यों के मत की पुष्टि में - जो कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति को भगवान महावीर से 70 वर्ष के पश्चात् मानते हैं, अभी तक कोई ऐसा मजबूत और दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता, जिसके बल पर इस मत की सत्यता को स्वीकार किया जा सके।[2]

कुछ और प्रमाण देकर इन्होंने सिद्ध किया है कि विक्रम की छठवीं शताब्दी तक तो इस जाति की उत्पत्ति की खोज में किसी प्रकार खींचतानी से पहुँचा जा सकता है, मगर उसके पूर्व तो कोई भी प्रमाण हमें नहीं मिलता, जिसमें ओसवाल जाति, उपकेश जाति, या उकेश जाति का नाम आता हो। उसके पहले इस जाति का इतिहास ऐसे अंधकार में है कि उस पर कुछ भी

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 13-16
2. वही, पृ 18

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छानबीन नहीं की जा सकती। दूसरे उस समय इस जाति के न होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ओसवाल के मूल 18 गोत्रों की उत्पत्ति क्षत्रियों के जिन अट्ठारह शाखाओं से होना जैनाचार्यों ने लिखा है, उन शाखाओं का अस्तित्व भी उस समय नहीं था, तब कोई भी जिम्मेदार इतिहासकार उन शाखाओं से 18 गोत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार मान सकता है। विक्रम के 400 वर्ष पूर्व से लेकर विक्रम की सातवीं शताब्दी तक अर्थात् लगातार 300 वर्षों में इस जाति के सम्बन्ध में किसी भी प्रामाणिक विवेचन का न मिलना, इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न कर सकता है।[1]

श्री पूरणचंद्र नाहर की मान्यता है, जहाँ तक मैं समझता हूँ प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले श्री पार्श्वनाथ संतानीय श्री रत्नप्रभसूरि जैनाचार्य थे। उक्त घटना को प्रथम श्री पार्श्वनाथ स्वामी की इस परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी न था। क्योंकि श्री वीर निर्वाण के 980 वर्ष पश्चात् श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने जिस समय जैनागमों को पुस्तकारूढ किये थे, उस समय के जैन सिद्धान्तों में और 'श्री कल्पसूत्र की स्थिरावली' आदि प्राचीन ग्रंथों में उपकेशगच्छ का उल्लेख नहीं है। उपरोक्त कारणों से सम्भव है कि संवत् 500 के पश्चात् और संवत् 1000 के पूर्व किसी समय उपकेश या ओसवाल जाति की उत्पत्ति हुई होगी और उसी समय से उपकेशगच्छ का नामकरण भी हुआ होगा।[2]

'ओसवाल वंश: अनुसंधान के आलोक में' के लेखक श्री सोहनराज भंसाली ने भी भण्डारी जी के पदचिह्नों का अनुगमन कर कहा कि इतिहास और पुरातत्व जैन-अजैन विद्वान ओसवाल जाति की उत्पत्ति 8वीं से 10वीं शताब्दी के बीच होना मानते हैं।[3]

श्री भंसाली ने अनेक लेखकों- श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझा, डॉ.डी. आर. भण्डारकर, मुनि दर्शनविजय, मुहणोत नैणसी, श्री अगरचंद नाहटा, श्री जगदीशसिंह गहलोत और श्री पूर्णचंद नाहर आदि के विचार उद्धृत किये।

ओझा जी के अनुसार ओसवालों की उत्पत्ति का समय वीर निर्वाण से 70 वर्ष पश्चात् (विक्रम संवत 400 वर्ष पूर्व) और भाटों का 222 संवत् कल्पित है, क्योंकि उस समय ओसिया नगरी की स्थापना का पता नहीं था।

पुरातत्ववेत्ता डॉ. डी.आर. भण्डारकर ने माना है कि उप्पलदेव ने परिहार राजा के यहाँ शरण माँगी। परिहार राजा ने उसे भेलपुर पट्टन दे दिया और कहा कि वहाँ शरण लो और उसे पुन: आबाद करो, जो अभी उजड़ा हुआ है। उप्पलदेव ने उसे पुन: आबाद किया, वही ओसिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि उपलदेव ने वहाँ ओसला किया था। मारवाड़ी भाषा में ओसला शब्द का अर्थ है, 'शरणार्थी का शरणस्थल।' यह समय नवीं शताब्दी हो सकता है।[4]

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार उप्पलदेव सूर्यवंशी था और भीनमाल का राजा

---

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृष्ठ 18-19
2. श्री सोहनराज भंसाली, ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 3
3. वही, पृ 3
4. ओसवाल वंश: अनुसंधान के आलोक में, पृ 4

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

था, किन्तु भाटों के अनुसार उप्पलदेव परमार था। श्री सुखसम्पतराज भण्डारी, 'पट्टावली समुच्चय' के लेखक मुनि दर्शनविजय, तपागच्छ पट्टावली, मुहणौत नैणसी री ख्यात्, इतिहासकार श्री अगरचंद भंवरलाल नाहटा, श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, श्री जगदीशसिंह गहलोत, श्री पूर्णचंद्र नाहर और डॉ. डी.आर. भण्डारकर आदि सभी उप्पलदेव को परमार मानते हैं।[1]

'उपकेशगच्छ पट्टावली' में उपलदेव को वि.सं 400 वर्ष पूर्व हुआ मानते हैं और भाटों के अनुसार विक्रम संवत् 222 में।

तीसरा मत इतिहासकारों का है, जो इतिहास के तथ्य तथा परमारवंश के उपलब्ध शिलालेखों पर आधारित है। मारवाड़ के परमारों की श्रृंखलाबद्ध वंशावलियां उप्पलदेव से मिलती है। परमारों का मूल स्थान आबू था। यहाँ से ही ये लोग अलग अलग फैले। गुजरात, मारवाड़, आबू, भीनमाल आदि कई प्रदेशों पर परमारों का अधिकार रहा। इन परमारों के कई शिलालेख जोधपुर संभाग के जालोर भाडूंद, किराडू, दियाणा और आबू में मिले हैं। परमार कृष्णराज के संवत् 1113 और 1123 के दो शिलालेखों [2] से ज्ञात होता है कि कृष्णराज दो पुत्र थे। संवत् 1098 के बसन्तगढ़ और संवत् 1102 के भाडूंद के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि पूर्णपाल अपने पिता की गद्दी पर बैठा और कृष्णराज भीनमाल का राजा था।

परमारों के सम्बन्ध में दियाणा ग्राम के जैन मंदिर में वि.सं 1024 का सबसे पुराना अभिलेख[3] मिला है। इसके अनुसार कृष्णराज के शासन में किसी वर्द्धमान द्वारा वीर प्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विवरण है। यह शिलालेख कृष्णराज परमार का समय निश्चित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। यह कृष्णराज आबू के परमार उप्पलदेव का पौत्र था। इस तरह उप्पलदेव और कृष्णराज के बीच दो पीढ़ी होती है। इस दो पीढ़ी का समय सामान्यत: 50 वर्ष का होता है। इस प्रकार उप्पलदेव का समय दसवीं शताब्दी के आस पास का माना जा सकता है।[4]

'ओसिया के जैनमंदिर के संवत् 1032 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उस समय वहाँ प्रतिहारों का राज्य था। हम परमार उप्पलदेव का समय 10वीं शताब्दी के आसपास मान चुके हैं। परमार उप्पलदेव ने मण्डोर के प्रतिहारों के यहाँ शरण ली, यह बात सभी मत वाले स्वीकार करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उप्पलदेव ने दसवीं शताब्दी के आसपास आकर शरण ली और ओसिया बसाई, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में तो ओसिया में प्रतिहारों का राज्य था।'[5]

कर्नल टाड के अनुसार नवीं शताब्दी के पूर्व परमारों का कोई बड़ा राज्य नहीं था। ओझा जी के अनुसार धरणीशाह के पोते उप्पलदेव को मारवाड़ के परिहारों ने दसवीं शताब्दी में शरण दी। "राजस्थान की जातियों की खोज' के लेखक के अनुसार ओसिया में वि.सं 885 में उप्पलदेव परमार का राज्य था। डॉ. डी.आर. भण्डारकर के अनुसार परमार उप्पलदेव को

---

1. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 4
2. मुनि जयन्तविजय, अर्बुदवाल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह
3. वही
4. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 6
5. वही, पृ 7

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिहारों ने नवीं शताब्दी में शरण दी।[1]

जहाँ तक परिहारों की उत्पत्ति का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि बाहुक राजा के घटियाला (जोधपुर से 20 मील दूर) में वि.सं 918 और 941 के शिलालेख मिले हैं।[2] इन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र ब्राह्मण, जो मण्डोर के राजा के यहाँ ड्योढीदार था, उसकी राजपूत स्त्री से राजुल पुत्र उत्पन्न हुआ। इस राजुल से ही परिहारों (प्रतिहारों) की उत्पत्ति मानी जाती है। राजुल की 12वीं पीढी में बाहुक राजा हुआ। इस प्रकार 12 पीढ़ी का समय 200-250 वर्ष माना जा सकता है। इससे यह सहज सिद्ध होता है कि परिहारों की उत्पत्ति आठवीं शताब्दी में हुई। अत: उप्पलदेव परमार आठवीं शताब्दी में या उसके बाद ही मण्डोर में शरण लेने आया, उसके पूर्व नहीं। अत: उप्पलदेव ने ओसिया भी 8वीं शताब्दी में या उसके बाद ही बसाई, इसके पूर्व नहीं, यह निश्चित है। घटियाला शलालेख[3] से यह भी ज्ञात होता है कि कुक्कुक मण्डोर का प्रतिहार शासक था। उसने संवत् 918 में एक जैन मंदिर का निर्माण कराया था।[4]

इस पर भी विचार किया गया कि ओसिया कब बसी। 'परमारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अब तक उपलब्ध शिलालेखों से इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उप्पलदेव परिहार का समय 8वीं से 10वीं शताब्दी के बीच का है, अत: उपलदेव ने इसी काल में ओसिया बसाई है। इतिहासकार डा. भण्डारकर, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. जगदीश सिंह गहलोत, मुहणौत नैणसी, पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ, मुनि दर्शनविजय जी, तपागच्छ पट्टावली, सुख सम्पतराज भण्डारी, पूरणचंद जी नाहर, नाहटाजी तथा 'जैन प्रश्नोत्तर ग्रंथ' के लेखक उमरावसिंह जी टाक आदि सभी का यही मत है कि उप्पलदेव ने 8वीं से 10वीं शताब्दी के बीच ही ओसियां बसाई है।'[5]

श्री भंसाली के अनुसार ओसिया में आज तक ऐसी कोई वस्तु (मुद्राएं, लोहे तांबे के उपकरण, बर्तन भाण्डे आदि) उत्खनन में नहीं मिली है, जो इस नगरी को 8वीं शताब्दी के पूर्व की सिद्ध करती हो।'[6] ओसिया के महावीर स्वामी के मंदिर में जो अभिलेख (प्रशस्ति) लगा हुआ है, वह संवत् 1013[7] का है। मंदिर के स्तम्भ पर भी वि.सं 1075 का एक छोटा सा लेख है।[8] मंदिर के तोरण और मूर्तियों पर कई लेख उत्कीर्ण है, जो संवत् 1035 से 1758 तक के हैं। एक लेख संवत 1245[9] का है। जिसमें एक व्यक्ति द्वारा अपना मकान मंदिर को भेंट करने का उल्लेख है।[10]

---

1. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 7-8
2. नाहर, जैन लेख संग्रह, संख्या 945
3. Dr. K.C. Jain, Jainism in Rajasthan.
4. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 8-9
5. वही, पृ 9
6. वही, पृ 10
7. नाहर, जैन लेख संग्रह, लेखांक 788
8. वही, लेखांक 789
9. वही, लेखांक 806
10. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 10

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घटियाला से प्राप्त संवत् 918 और वि. संवत् 940 के लेखों और ओसिया से प्राप्त संवत 1013 के प्राचीनतम लेख की लिपि मिलती हुई है। इससे अधिक प्राचीन लिपि ओसिया से प्राप्त किसी लेख की नहीं है, इससे यह माना जा सके कि ओसिया आठवीं शताब्दी के पूर्व बसी हो। ओसिया के सचिया माता के मंदिर में जो लेख प्रशस्ति है, वह भी संवत् 1236 की है। ओसिया के वर्तमान में जो इमारतें, स्मारक, छतरियां, मंदिर आदि हैं अथवा है तथा उनके जो भग्नावशेष उपलब्ध है, वे वास्तुकला की दृष्टि से वास्तुकलाविदों के मतानुसार 9वीं से 14वीं शताब्दी के मध्य के हैं।[1]

ओझा जी के अनुसार यहाँ के मंदिरों की बनावट चन्द्रावती व झालरापट्टन के मन्दिरों से मिलती हुई है, जो 9वीं शताब्दी की है।[2]

मुहणौत नैणणी ने ओसिया का जैन मंदिर 11वीं शताब्दी का बना हुआ माना है।[3]

डॉ. डी.आर. भण्डारकर ने ओसिया के समस्त मंदिरों को तीन श्रेणी में विभाजित किया है।

1. आठवीं व नवीं शताब्दी के बने हुए।

2. ग्यारहवीं शताब्दी के बने हुए।

3. वे जो नये बने, या दुबारा बने और 13 शताब्दी के।

श्री भंसाली की धारणा है कि विक्रम की 11वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी लेख में या प्राचीन ग्रंथ में उपकेशगच्छ का नाम नहीं मिलता, न कोई उपकेश, उएश या ओसवाल जाति या इसके किसी गोत्र का नाम ही पाया जाता है।[4] 'कल्पसूत्र की स्थिरावली' आदि प्राचीन ग्रंथों में उपकेशगच्छ का उल्लेख नहीं है। पार्श्वनाथ स्वामी की परम्परा का नाम भी उपकेशगच्छ नहीं था। विक्रम की 12वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी शिलालेख, ताम्रपत्र, या ग्रंथ में उपकेशगच्छ का नामोल्लेख न मिलना यह सिद्ध करता है कि उपकेशगच्छ इतना प्राचीन नहीं है, जितना पट्टावलीकार ने बताया है। और अंत में निर्णय दे दिया कि 'उपकेशगच्छ पट्टावलीकार' ने भगवान महावीर के 70 वर्ष बाद ओसिया नगरी की स्थापना का और ओसवंश के उद्भव का जो समय बताया है एव जिन अट्ठारह ओसवाल गोत्रों की उत्पत्ति का समय एवं जिन प्रसंगों के उल्लेख किये हैं, वे सब उपकेशगच्छ के यतिजनों की कल्पना की उड़ानें मात्र हैं।[5]

निष्कर्ष रूप में श्री भंसाली ने कहा है, 'उप्पलदेव ने मण्डोर में आकर प्रतिहार (परिहार) राजा के यहाँ शरण ली, यह बात सभी लोग स्वीकार करते हैं। उप्पलदेव परमार को प्रतिहार राजा ने शरण देकर उसे भेलपुरपट्टन दे दिया और कहा कि वहाँ जाकर रहा और उसे पुनः आबाद करो, जो उजड़ चुका है। उपलदेव वहाँ गया। उसने भेलपुरपुट्टन और उसके आसपास की भूमि लेकर

1. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 10-3
2. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजस्थान का इतिहास
3. मुहणौत नैणसी, मारवाड़ के परगनों की विगत, संख्यांक 137
4. Aracheological survey of India, 1908-09, Page 114
5. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 20-21

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नया नाम देकर उसे पुन: बसाया। उप्पलदेव ने वहाँ ओसला (शरण) लिया था। भीनमाल, सिंध, पंजाब, तक्षशिला आदि दूरस्थ देश विदेश के लोगों ने वहाँ आकर ओसला (शरण) लिया। इस कारण धीरे धीरे इस स्थान का नाम ओसला से ओसी और ओसी के बाद ओसिया पड़ गया, सम्भव है।'[1]

भंसाली जी आगे लिखते हैं, 'मेरे विचार से जब उप्पलदेव शरण लेने भेलपुरपट्टन आया तो उसने इस पतनोन्मुख नगर को तथा उसके आसपास की और भूमि को लेकर एक नया नगर ओसिया बसाया, उस समय भी इस भेलपुर पट्टन में भगवान महावीर का जैनमंदिर अस्तित्व में था। वहाँ जैनों की आबादी भी थी। संवत् 1013 के अभिलेख के अनुसार वत्सराज का समय आठवीं शताब्दी का माना जाता है।'[2] उप्पलदेव के ओसिया बसाने के कुछ वर्षों बाद जैनाचार्य रत्नप्रभसूरि आए। उनके उपदेशों और चमत्कार के प्रभाव से वहाँ के निवासी जैनधर्म की ओर आकर्षित हुए। अनेक जाति के लोगों ने प्रतिबोध पाकर अहिंसा धर्म को स्वीकार किया। यह समय लगभग दसवीं शताब्दी के आसपास का था। ये रत्नप्रभसूरि किस गच्छ के थे, इसका उल्लेख नहीं मिलता। ये उपकेशगच्छीय तो नहीं थे, यह निश्चित है, कारण 'उपकेशगच्छीय पट्टावली' के अनुसार इस गच्छ के छठे व अंतिम आचार्य रत्नप्रभसूरि 5वीं शताब्दी में हो चुके थे।'[3]

वीर संवत् 70 में ओसवंश के उद्भव को नकार कर भंसाली जी कहते हैं, 'अत: स्पष्ट है कि उस समय तक न तो उपकेशगच्छ ही था और न उएश, उपकेश या ओसवाल जाति का उद्भव ही हुआ था।'[4]

अंत में भंसाली जी कहते हैं, 'अत: सबकुछ विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस ओसवाल जाति का उद्भव 8वीं शताब्दी के बाद ही हुआ है, इसके पूर्व कदापि नहीं।'[5] निस्संदेह उपकेशगच्छ पट्टावली का ओसवाल (उएश या उपकेश) जाति का उद्भव वि. संवत् 400 वर्ष पूर्व होना बताना और भाटों का बीये बाइसे (222) में होना मानना, ये दोनों ही विचार भ्रामक और काल्पनिक उड़ाने मात्र है।'[6]

इस सम्बन्ध में निम्नांकित बिन्दु विचारणीय हैं-

ओसिया की प्राचीनता

उप्पलदेव कौन ? परमार या क्षत्रिय

उपकेशगच्छ की प्रामाणिकता

---

1. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 25-26
2. वही, पृ 27
3. मुनि ज्ञानसागर, पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास
4. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ 29
5. वही, पृ 30
6. वही, पृ 31

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओसिया की प्राचीनता

अब इस बात की अपेक्षा है कि ओसिया नगरी की प्राचीनता का पता लगया जाय। राजस्थान के कई मंदिर गुप्तकाल और गुप्तकाल के बाद के हैं, जिनमें ओसिया के मंदिर भी हैं।[1]

जहाँ तक ओसिया की प्राचीनता का प्रश्न है, उत्खनन में ओसिया में प्रस्तर युग के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[2] सूक्ष्म प्रस्तर ओजार (Microlithlic tools) तहसील ओसिया में उम्मेद से दो मील दूर पर मिले हैं।[3]

जोधपुर में ओसिया में उत्तर गुप्तकालीन मंदिर मिले हैं।[4]

ओसिया के मंदिरों का शिल्प और दृष्टि अत्यधिक महत्वपूर्ण है। समन्वयात्मक मूर्तियों में ओसिया में हरिहर मूर्ति है जिसमें आधा शिव और आधा विष्णु है। ओसिया में पंचायतन प्रकार के दो हरिहर मंदिर है।[5]

ओसिया में कृष्णमंदिरों में वसुदेव के सिर के ऊपर कृष्ण, यशोदा, कृष्ण का अश्व और भैंसों से युद्ध, पूतनावध, कालियदमन, गोवर्धन धारण, माखन चोरी आदि हैं। कुछ दिलचस्प मूर्तियों में बलराम को शेषनाग का अवतार बताया है।[6]

---

1. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Through the Ages, Page, 28
   Of the temples belonging to Gupta, Later Gupta and earlier mediveel periods either in ruins or renovated, mention may be made to the temples at Mukandara pass, charcoma & Krisna Vilas in Kota, The Harsata Mata temple at Abaneri, the Dilwara temples at Abu, the Jain temple at Sanganer, the Sun temple at Varman, Barod & Amer, the fort of Mandor and the temples at Osia.
2. Rajasthan Through the Ages, Page 34-35
   Traces of another stone age, called the Microlithnic on account of the tiny character of the tools used, have been found both on the flanks of Eastern & Western Rajasthan, and such microclithnic culture might have existed in the sarasvati basin Special reterence in this connection, might be made to the microliths urearthed in Ajmer, Tonk, Bhilwara, Chittorgarh, Pali & Udaipur districts, and they have been brought to light also from Raigarh in Jaipur district, from Umednagar in Tehsil Osia.
3. वही, पृ 47
   Microlithic tools were discovered also from a site, 2 miles at Umednagar in Tehsil Osia.
4. वही, पृ 71
   Of the later Gupta temples existed in Rajasthan may be mentioned, the temples at Osia in Jodhpur.
5. वही, पृ 367
   Among suncretist images attention should be drawn to the Harihara images, the left half of which represents Vishnu and the right half of Shiva. There are two hari-hara temples of the Panchayatana type at Osia.
6. वही, पृ 372
   The scenes at Osia (Jodhpur Division) include Vasudeva with the baby Krsna on his head, Krsna, Yasoda, Krisna"s fight with horse & bull demons, murder of putna, Kaliyadamana, Goverdhan-dharna, stealing butter etc. From the same localty come some interesting images of Balrama which seem to represent him as an incarnation of Seshnaga.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डॉ. आर.सी. अग्रवाल ने ओसिया में अर्द्धनारीश्वर मूर्ति की ओर संकेत किया है।[1]

ओसिया में सूर्य की प्रतिमा भी है, जिसके कमरे में वस्त्र (scarf) हैं और पाँवों में जूते (boots) पहने हैं।[2]

कुबेर की प्रतिमा भीनमाल के समान ही ओसिया में भी है, जिस पर विक्रम संवत् 749 का उल्लेख है। इसमें चण्डिका के चरणों में कुबेर और गणेश है।[3]

ओसिया में श्रेष्ठ गुप्तकालीन मूर्तिकला के अवशेष मिलते हैं।[4]

वास्तुकला की दृष्टि से भी ओसिया के सुन्दर मंदिर अप्रतिम है।[5]

शक्ति की प्रतिमाओं में ओसिया की महिषासुर मर्दिनी है, जिसे जैनों ने सच्चिका बना दिया।[6]

ओसिया वैभवशाली नगरी रही है और इसके मन्दिर श्रेष्ठ और अप्रतिम है।[7] नवग्रहों की सुन्दर प्रतिमाएं ओसिया के मंदिरों में देखी जा सकती है।[8]

यह पता लगाना आवश्यक है कि ओसिया कब बसी ? क्या ओसिया सचमुच इतनी प्राचीन नगरी है, जैसा कि 'उपकेशगच्छ पट्टावली' लिखा है और जैसा भाटों ने 222 विक्रम संवत बतलाया है।

यह भ्रामक धारणा है कि ओसिया में आज तक कोई भी वस्तु उत्खनन में नहीं मिली

---

1. Rajasthan Through the Ages, Page 378
   Dr. R.C. Agrawal has described Ardhanarisvara images from Abaneri, Osia & Mena and referred to the Khandela inscriptions of V. 701 (645 A.D.) which mentions the construction of temples of Ardhanarisvara.
2. वही, पृ 383
   At Osia there is an images of the sun, with his waist tied with a scarf & the legs covered with long boots.
3. वही, पृ 390
   Kubera & Ganpati flank chandika on the pedastal of Pipladmata in Osia and are involved with her in Sakrai inscription of V. 749
4. वही, पृ 530
   In the field of art, Rajasthan, inherited the rich sculptural traditions of the Guptas as proved by the discoveries at Amjhara in Dungarpur, Jagat in Mewara, Abaneri in Jaipur, Osia in Jodhpur
5. वही, पृ 531
   In Architecture, Rajasthan evolved a superb style of its own which found in the beautiful temples of Osia.
6. वही, पृ 720
7. वही, पृ 209
   The Osia temples are a class by themselves.
8. वही, पृ 386
   Beautiful portraiture of Navagrahas is to be seen also in the Osia temples.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो इस नगरी को आठवीं शताब्दी के पूर्व की सिद्ध करती हो। इसमें प्रस्तर युग के सूक्ष्म प्रस्तर उपकरण उपलब्ध हो चुके हैं, जिससे इस नगरी की प्राचीनता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

जहाँ तक अभिलेखों का प्रश्न है ओसिया के महावीर स्वामी के मंदिर में अभिलेख लगा हुआ है, वह संवत् 1013 का है, एक स्तम्भ पर वि.सं 1075 का एक छोटा सा लेख है, मंदिर के तोरण और मूर्तियों पर कई लेख उत्कीर्ण है वे सचिया माता के मंदिर में जो प्रशस्ति है, वह भी संवत् 1236 की है। वास्तुविदों की दृष्टि से मन्दिरों के भग्नावशेष आठवीं शताब्दी के पूर्व के नहीं है, ओझा जी ने इन मंदिरों को नवीं शताब्दी का माना है, मुहणौत नैणसी ने मारवाड़ के परगना की विगत में 11वीं शताब्दी का, डॉ. डी.आर. भण्डारकर ने आठवीं, नवीं, ग्यारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के माने हैं। अत: अभिलेखी प्रमाण की दृष्टि से ओसिया की प्राचीनता आठवीं शताब्दी के पहले की सिद्ध नहीं होती।

इतिहासकारों में डॉ. भण्डारकर, श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डॉ. जगदीशसिंह गहलोत, पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेऊ, मुनि दर्शनविजय, तपागच्छ पट्टावली, श्री सुख सम्पतराज भण्डारी, श्री पूरणचंद जी नाहर, श्री अगरचंद भंवरलाल नाँहटा सभी मानते हैं कि ओसिया को आठवीं से दसवीं शताब्दी के बीच बसाई गई। वस्तुत: केवल स्थापत्य, शिल्प और शिलालेखों की दृष्टि से ही किसी नगर की प्राचीनता का अनुमान लगाना उचित नहीं है। धर्माचार्यों द्वारा मौखिक परम्परा से लिखित साहित्य और भाटों और भोजकों की मौखिक परम्परा द्वारा रक्षित साहित्य को भी प्रमाण रूप में स्वीकार करना चाहिये।

वर्तमान नगर से 3 मील दूर जो तिवरी ग्राम अवस्थित है, वह प्राचीन नगरी का तेलीपाडा रहा हो, यहाँ से 6 मील दूर स्थित पण्डित जी की ढाणी कभी इस नगर का पण्डितपुर रहा हो, 6 मील दूर स्थित खेतासर, इसी नगर का क्षत्रीपुरा रहा हो, 24 मील दूर लोहावर इस नगर की लुहारों की बस्ती हो, यह बहुत सम्भव है। इस नगर से 20 मील दूर स्थित घटियाली ग्राम को प्राचीन ओसियां का प्रवेश द्वारा माना जाता है। घटियाली के उत्खनन में अनेक प्राचीन चिह्न मिले हैं। यहां कभी 108 जैनमंदिर थे, जिनमें से मात्र एक महावीर स्वामी का मंदिर बचा है। दस बारह मंदिरों के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं खण्डहरों से प्राचीन नगर से विस्तार का अंदाज लगाया जा सकता है। तत्कालीन उपकेशनगर के 12 योजन लम्बा और 9 योजन चौड़ा बसा होने का उल्लेख ग्रंथों में पाया जाता है।[1]

जिस महावीर मंदिर में ओसवाल जाति के संस्थापक श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा भगवान महावीर की मूर्ति की प्रतिष्ठा किया जाने का उल्लेख ग्रंथों में है, ओसिया का वह महावीर मंदिर अब भी विद्यमान है। इसी मंदिर में जिनदास श्रावक द्वारा निर्मित रंगमंडप का संवत् 1013 का एक शिलालेख है, जिसमें प्रतिहार साम्राज्य के संस्थापक महाराजा वत्सराज की प्रशस्ति है।[2]

मूल मंदिर में आदिनाथ भगवान की सुन्दर प्रतिमाएं है, जिन पर संवत् 1551 उत्कीर्ण है। जनश्रुति के आधार पर यह 400 वर्ष पूर्व राजा सम्प्रति के काल की बताई जाती है।

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 70
2. वही, पृ 70

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस मंदिर में जिनदास श्रावक द्वारा निर्मित रंगमण्डप के संवत् 1013 के अलावा निम्नांकित शिलालेख द्रष्टव्य है[1] -

1. तोरण द्वार का लेख	-	वि.स. 1035 आषाढ सुदि 10
2. रंगमण्डप के स्तम्भ का लेख	-	वि.स. 1231 माघ सुदि 5
3. मंदिर के लेख	-	वि.स. 1180 चेत्रसुदि 8 दूसरी
	-	वि.स. 1134 मिगसर वदी 7
4. जिनालय का लेख	-	वि.स. 1207
5. मूर्तियों का लेख	-	वि.स. 1088
	-	वि.स. 1234

ओसियां भग्नावशेषों के लिये प्रसिद्ध है। ओसियां में हरिहर का पंचायतन रूप है जिसमें मूर्ति का आधा हरि (विष्णु) और आधा हर (शिव) का है। ओसिया के एक मंदिर कृष्ण की विभिन्न लीलाओं की मूर्तियां हैं। महिणसुर मर्दिनी की अनेक मूर्तियां हैं। यहाँ के प्राचीन मंदिरों में सूर्यमंदिर कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है। मंदिर के स्तम्भ बड़े ही कलात्मक है। पहाड़ी पर स्थित सचियामाता का मंदिर है और शिलालेखों से यह सिद्ध हो चुका है कि इसका अनेक बार जीर्णोद्धार हुआ।

"वर्तमान ओसियां नगर उजड़कर भी अपनी अनेक सदियों की कहानी कहने में समर्थ है। हिन्दू, जैन, शैव, शक्ति अनेक धर्मों की समन्वित गाथा ओसियां के खण्डहरों से अब भी ध्वनित हो रही है।"[2]

इतिहासकारों ने यह मान्यता व्यक्त की है कि ओसिया आठवीं शताब्दी में बसी, किन्तु ऐसा ध्वनित होता है कि यह एक प्राचीन नगरी है। उत्खनन ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रस्तर युग में यह नगर था, किन्तु उसके पश्चात् पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार मौन है। नगर के उत्खनन से ही प्राचीन ओसियां की प्राचीनता सिद्ध हो सकती है।

श्री भण्डारकर ने महावीर मंदिर के रंगमण्डप में स्थित 28 पंक्तियों के वृहद शिलालेख का उल्लेख किया है जिसमें रावण संहारक श्रीराम के भ्राता लक्ष्मण के वंशजों के प्रतिहार वंश में हुए राजा वत्सराज की प्रशस्ति है, जिन्होंने मंदिर की प्रतिष्ठापना करवाई। उकेशनगर के मध्य में स्थित महावीर मंदिर के रंगमण्डप के निर्माणकर्त्ता जिन्दक नामक व्यापारी का विक्रम संवत् 1013 में जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख भी शिलालेख में है। श्री भण्डारकर के अनुसार यह मंदिर सन् 770-800 में अवश्य मौजूद रहा होगा।"[3]

भारतीय इतिहास के ऐतिहासिक स्रोतों पर दृष्टिपात करें तो संवतों की कथा अत्यधिक

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 71
2. वही, पृ 74
3. वही, पृ 77

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जटिल है। शिलालेखों में जहाँ केवल संवत् है और विक्रम शब्द का अभाव है, वहाँ केवल संवत शब्द संशय उत्पन्न करता है। एक और उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस शिलालेख में "संवत्सर दशशत्याम धिकायं वत्सरैस्त्रयो दशाभि: फाल्गुन शुक्ला तृतीया' आदि शब्दों का प्रयोग विक्रम संवत स्थापित नहीं करता। संवत् 1013 को नंदिवर्धन संवत माने तो विक्रम संवत 501 आता है और वीर संवत माने को विक्रम संवत 543 आता है। भारत देश में विभिन्न संवतों को प्रचलन समय समय पर होता रहा है। अत: निश्चित समय स्थापित करने के लिये अन्य साक्ष्यों का सहारा अत्यावश्यक हो जाता है।[1]

श्री मांगीलाल भूतोड़िया की धारणा है कि प्रतिहार शासक वत्सराज का समय छठी शताब्दी का होना चाहिये। उद्योतन सूरि रचित 'कुवलयमाल' में प्रतिहार शासक वत्सराज का उल्लेख है। कुवलयमाला का रचनाकाल विक्रम छठी शती माना जाता है।[2] डॉ. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि प्रतिहार शासक वत्सराज के राज्य में जालौर में उद्यतन सूरि ने 'कुवलयमाला' की रचना वि.सं 778 में की।[3]

डॉ. के.बी. रमेश ने अपने एक लेख (1972) में ओसियां में हरिहर मंदिर के आंगन में सुरक्षित वि.स. 893 और 992 के दो स्मारक लेखों का उल्लेख किया है। निस्संदेह ओसियां उस समय एक समृद्ध नगर रहा होगा।[4]

महावीर मंदिर के प्रांगण में तोरण पर उत्कीर्णित संवत् 1035 के प्रतिष्ठा लेख के कुछ भी पूर्णचंद नाहर ने 'जैन लेखसंग्रह' (लेखांक 789) में प्रकाशित किये हैं। श्री भण्डारकर ने भी उक्त अंश में उत्कीर्णित सं 1035 आषाढ सुदि 10 आदित्यवारे स्वाति नक्षत्रे श्री तोरण प्रतिष्ठित मिति के आधार पर तोरण द्वार की मात्र स्थापना तिथि दी थी। परन्तु यह पाठ तोरण उत्कीर्णित अभिलेख का एक अंश मात्र था। पंजाब विश्वविद्यालय के पुरातत्वविभाग के प्रो. देवेन्द्र हाण्डा ने तोरण के स्तम्भ की अष्टकोणात्मक पट्टिका पर उत्कीर्णित अभिलेख को "ओसिया की प्राचीनता' आलेख के साथ कर्मयोगी श्री केसरीमल जी सुराणा अभिनन्दनग्रंथ में प्रकाशित किया है, जिसमें "यति संवत्सराणां सुर मुनि सहित विक्रम.... गुरौ शुक्ल पक्षे पंचभ्याम्.... स कीर्तिकार..... कषट देवयश: सद्य सोनाशिखे..... आदि पाठ द्रष्टव्य है। प्रो. हाण्डा के अनुसार सुरमुनि से सुर आने 33 और मुनि यानि 7 यानि विक्रम संवत् 733 में निर्मित अर्थ अभिप्रेत है।"[5]

सुरमुनि को उल्टा न पढकर यदि सीधा पढे तो क्या यह वि.स. 337 सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से यह स्तम्भ वि.स. 337 अर्थ अभिप्रेत है। इस प्रकार उल्टा पढे तो विक्रम संवत् 733

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 77
2. वही, पृ 78
3. Rajashtan through the Ages, Page 110.
   In the Pratihara period (750-1018 A.D.) itself the earliest reference to the ward, Gurjara, is found in the 'Kuvlayamala' of Uddyotana Suri written at Jalore, in 778 A.D. in the reign of redoubtable Pratihara ruler Ranhastin Vatsraja,
4. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 78
5. वही, पृ 79

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और सीधा पढ़े तो वि.स. 337 अर्थ अभिप्रेत है। अस्तु वि.स. 337 अथवा वि.स. 733 के पूर्व ओसियां अवश्य समृद्ध नगर रहा होगा।

प्रो. हाण्डा ने ओसियां स्थित श्री वर्द्धमान जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय की नींव खोदे जाते वक्त मिले उन सिक्कों भी जिक्र किया है जो, अरब शासक अहमद के समय के हैं। 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ओसियां पर अरबों का आक्रमण हुआ है। ये सिक्के ओसियां के सेठ मंगलसिंह रतनसिंह देवी की पेड़ी ट्रस्ट में सुरक्षित है।[1]

ओसियां के उत्खनन में कुछ ऐसे संचयन भाण्ड मिले हैं, जिन पर ब्राह्मी लिपि के अभिलेख हैं। प्रो. हाण्डा के अनुसार ये भांड ईसा की दूसरी/तीसरी शताब्दी के हैं। इससे ओसिया की प्राचीनता सिद्ध होती है। प्रो. हाण्डा मानते हैं कि इस उपलब्धि से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि ओसिया नगर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में था।[2] ब्राह्मी के प्राचीनतम नमूने बस्ती जिले में प्राप्त पिपरावा के स्तूप तथा अजमेर जिले के बडली गांव के शिलालेख में मिले हैं। इनका समय 5वीं सदी ईसा पूर्व माना गया है। उस समय से लेकर 350 ई. तक ब्राह्मी लिपि का प्रयोग मिलता है।[3]

इस प्रकार नवीनतम उत्खनन में जो संचयन भाण्ड मिलते हैं, जिन पर ब्राह्मी लिपि के अभिलेख हैं, अत: इस उपलब्धि से ओसियां की प्राचीनता सिद्ध होती है और अनेक इतिहासकारों की यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो जाती है कि ओसिया का अस्तित्व आठवी शताब्दी के पूर्व नहीं था। ओसिया का अस्तित्व वीर संवत् 70 अर्थात् विक्रम संवत के 400 वर्ष पूर्व अवश्य था। उत्खनन के द्वारा नयी खोजों ने ओसिया की प्राचीनता को प्रतिपादित कर अब तक की मान्यताओं की धज्जियां उड़ा दी है कि ओसिया प्राचीन नहीं, अर्वाचीन नगरी है।

उपलदेव कौन ?

ओसवाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध 'उपकेशगच्छ चरित्र' और 'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 70 में अर्थात् वि.स. से करीब 400 वर्ष पूर्व भिन्नमाल के राजा भीमसेन के पुत्र उपलदेव ने ओसियां नगरी बसाई और भगवान पार्श्वनाथ के सातवें पट्टधर उपकेशगच्छीय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने राजा को प्रतिबोध देकर जैनधर्म की दीक्षा दी और महाजन वंश की स्थापना की।

भण्डारी जी के कथानुसार "यह बात तो प्राय: निर्विवाद सिद्ध है कि ओसिया नगरी की स्थापना उपलदेव परमार ने की जो कि किसी कारणवश अपना देश छोड़कर मण्डोवर के पड़िहार राजा की शरण में आया था।"[4]

यह उपलदेव कहाँ से आया, इसके विषय में कई मत है। कुछ कहते हैं, यह भीनमाल

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 79
2. वही, पृ 79
3. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, पृ 682
4. श्री सुखसम्पतराज भण्डारी, ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 9

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से आया और कुछ किराडू से आना मानते हैं। भीनमाल के पुराने मंदिरों में जो संस्कृत लेख पत्थरों पर खुदे मिले हें, उसमें दो लेख कृष्णराज परमार के हैं। एक संवत् 1113 का और दूसरा 1123 का है। पिछले लेख में कृष्णराज के पिता का नाम धंधुक मिलता है। यह धंधुक आबू का राजा था। इसके दो पुत्र थे- एक पूर्णपाल, दूसरा कृष्णराज। पूर्णपाल के समय का एक लेख संवत् 1098 का सिरोही जिले के एक वीरान गांव बसन्तगढ से मिला है और दूसरा संवत 1102 का मारवाड़ के भडूंद नामक गांव में मिला है। इन दोनों लेखों से यह बात पाई जाती है कि धंधुक का बड़ा पुत्र पूर्णपाल अपने पिता की गद्दी पर बैठा और कृष्णराज को भीनमाल का राज्य मिला। कृष्णराज के पीछे भीनमाल का राज्य उसके वंश में रहा, जिसका उल्लेख संवत् 1239 के लेख में पाया जाता है जिसमें महाराजपुत्र जैतसिंह का नाम आया है। नाम के साथ यद्यपि जाति नहीं लिखी हुई है, पर सम्भव है कि यह भीनमाल का अंतिम राजा या युवराज रहा होगा। क्योंकि इसके पीछे संवत् 1262 के लेख में चौहान राजा उदयसिंह का नाम आता है। भीनमाल के परमार राजाओं में उत्पलराज का नाम नहीं है।[1]

दूसरा मत किराडू के सम्बन्ध में है। यहाँ एक लेख 1218 का मिला है, जो परमारों से सम्बन्ध रखता है। इस लेख से पता चलता है कि मारवाड़ का पहला पंवार राजा सिंधुराज था। इनके वंश में क्रमशः सूरजराज, देवराज, सोभराज और उदयराज हुए। यहाँ भी उपलदेव का पता कहीं नहीं चलता है।[2] यह भ्रामक धारणा है। वस्तुतः आबू और किराडू के परमार राजाओं की वंशावली में इस वंश का प्रारम्भ धूमराज से हुआ, किन्तु वंशावली सिंधुराज से प्रारम्भ मानी जाती है। सिंधुराज के पश्चात् उत्पलराज शासक माना जाता है। यह वंशावली निम्नानुसार है -

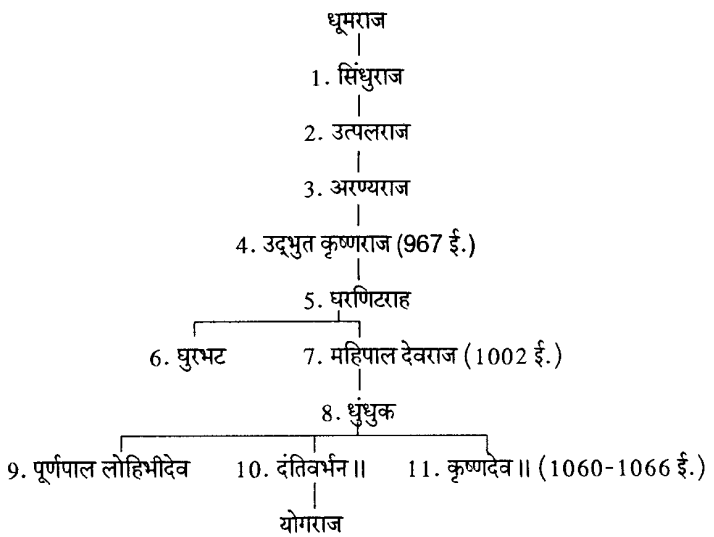

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 9
2. वही, पृ 10

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रामदेव
|
12. काकलदेव
|
13. विक्रमसिंह
|
14. येशोधवल (1144 ई)
|
15. धार वर्ष (1663, 1176, 1180, 1183, 1188, 1190, 1192, 1198, 1208, 1214, 1217, 1219 ई.)
|
16. सोमसिंह (1230, 1233, 1236 ई.))
|
17. कृष्णराज III
|
18. प्रतापासिंह 1287 ई.
|
19. अर्जुन (1290 ई.)
|
20. विक्रम सिंह (1200 ई.)

श्री भण्डारी जी ने अटकल लगाई, "इससे यह पता चलता है कि सम्भव है धूमराज के पीछे और उत्पलराज के पहले बीच में कुछ गड़बड़ी हुई हो और उत्पलराज से फिर राज्य कायम हुआ हो। क्या आश्चर्य है कि इसी उत्पलराज को मण्डोवर के पड़िहार राजा की शरण में आना पड़ा हो। इससे जहाँ तक हमारी समझ है कि ओसिया का बसाने वाला उपलदेव ही आबू का उपलदेव हो।"[1] खींचतान कर पहले श्री पूर्णचंद नाहर ने और फिर भण्डारी जी ने आबू के उत्पलराज को बिना किसी प्रमाण के ओसिया का संस्थापक उपलराज मान लिया।

मालवा के परमार राजाओं की वंशावली भण्डारी जी ने दी है-

उपेन्द्र
वैरीसिंह
सीयक
वाकपतिराज
सीयकहर्य
वाकपतिराज पुंजराज (सं 1031)
सिन्धुराज (संवत् 1036-1050)
भोजराज

भोजराज की सातवीं पीढी में एक राजा उपलदेव हुआ, यथा- 1. राजाभोज, 2. राजा विद, 3. राजा उदयचंद, 4. राजा जगदेव, 5. राजा डाबरिख, 6. राजा धूमरिख,

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 10

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. राजा उपलदेव।

मालवा के परमार राजाओं में राजा उपलदेव का नामोनिशान नहीं है। यह निम्नानुसार है।[1]

1. कृष्णराव
2. वेरिसिंह
3. सीयक
4. वाकपतिराज
5. वेरिसिंह[2] II
6. श्री हर्षसिंह
7. मुंज
8. सिंधुराज
9. भोज I
10. जयसिंह I
3. उदयादित्य
12. लक्ष्मणदेव
13. नरवर्मा
14. यशोवर्मन
15. जयवर्मा I
16. अजय वर्मा
17. विंध्य वर्मा
18. सुमट वर्मा
19. अर्जुन वर्मा
20. देवपाल
21. जगत गिद्रव
22. जयवर्मन
23. जयसिंह
24. अर्जुन वर्मा II
25. भोज II
26. जयसिंह II

डा. दशरथ शर्मा[2] ने यह वंशावली निम्नानुसार प्रस्तुत की है। इसमें वाक्पति II का नाम मुंज या उत्पल भी माना है -

1. उपेन्द्र

---

1. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट, अजमेर 193-12 लेख 2, पृ 2
2. Rajasthan Through the Ages, Page 549-552

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

2. वेरिसिंह I
3. सीयक I
4. अज्ञात शासक
5. कृष्णराज, वाक्पति I
6. वेरिसिंह II
7. सीयक II (949, 969 AD)
8. वाकपति II (मुंज, उत्पल, 949, 969 ई.)

भण्डारी जी ने दूर की उड़ान भरकर माना कि उपेन्द्र और उपल दोनों नाम दोनों एक ही राजा के हों और अरण्यराज और वेरिसिंह भाई भाई हों। जिनमें पहले से आबू एवं दूसरे से मालवा की शाखा निकली हो। पूर्णपाल का समय संवत् 1100 निश्चित होता है और उत्पलदेव इसके सात वर्ष पूर्व हुआ। हर पुश्त का समय यदि 25 वर्ष मान लिया जाय तो उत्पलराज का समय वि.स. 950 वर्ष ठहरता है। यही समय वाक्पतिराज और महाराज भोज के शिलालेखों से उपेन्द्र का आता है। यही वह समय है जब मण्डोवर में परिहार राजा बाहुक राज्य करता था। इस समय का एक शिलालेख संवत् 940 का जोधपुर के कोट में मिला है। यही समय ओसिया के बसने का मालूम होता है। इस कल्पना की पुष्टि ओसिया के जैन मंदिर की प्रशस्ति की लिपि से होती है, जो वि. संवत् 1013 की खुदी हुई है। पड़िहार राजा बाहुक और उसके भाई कक्कुक के शिलालेखों (संवत् 918 और संवत् 941) की लिपि से उक्त प्रशस्ति की लिपि मिलती हुई है। इससे पुरानी लिपि ओसिया में किसी और लेख की नहीं है।"[1]

जिस भ्रामक अवधारणा का बीजारोपण पूर्णचंद नाहर ने किया कि परमार उपलदेव ने ओसियां नगरी बसाई, उसी का पल्लवन श्री भण्डारी ने अपने 'ओसवाल जाति का इतिहास' और श्री सोहनराज भंसाली ने 'ओसवाल बंश : अनुसंधान के आलोक' में किया।

यह उप्पलदेव कौन था ?[2] इस

1. उपकेशगच्छ पट्टावली के अनुसार उप्पलदेव सूर्यवंशी था और भीनमाल का राजकुमार था।

2. ओसवाल जाति का इतिहास के लेखक सुखसम्पतराज भण्डारी इसे परमार मानते हैं।

3. मुंशी दर्शनविजय जी के 'पट्टावली समुच्चय' में इसे परमार ही लिखा है।

4. तपागच्छ पट्टावली के अनुसार उप्पलदेव परमार था।

5. 'मुहणौत नैणसीरो ख्यात में' उप्पलदेव को किराडू का माना है। किराडू पर परमारों का राज्य था। अत: उपलदेव परमार ही हुआ।

6. श्री अगरचंद नाहटा और श्री भंवरलालजी नाहटा ने उपलदेव को परमार ही माना है।

---

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 3-16
2. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 4-5

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा, श्री जगदीशसिंह गहलोत और श्री पूर्णचंद नाहर आदि विद्वानों ने उपलदेव को परमार ही माना है।

8. 'राजस्थान जातियों की खोज' में लिखा है कि वि.स. 885 में ओसियां में उप्पलदेव का राज्य था और यह परमार था।

9. 'जैन प्रश्नोत्तर' के अनुसार उप्पलदेव परमार था।

10. अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुरातत्व के उद्भट विद्वान और वास्तुविद डा. डी.आर. भण्डारकर ने उपलदेव को परमार ही माना है।[1]

ओसवालों की उत्पत्ति का आधारभूत ग्रंथ 'उपकेशगच्छ चरित्र' और 'उपकेशगच्छ पट्टावली' है। उपकेशगच्छ ने और 'पार्श्वनाथ परम्परा का इतिहास' के लेखक श्री ज्ञानसुन्दर महाराज ने उपलदेव को परमार नहीं, सूर्यवंशी माना है।

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार उप्पलदेव ने वि.स. 400 वर्ष पूर्व ओसियां बसाई और भाटों के अनुसार उपलदेव ने वि.स. 222 में ओसियां बसाई। यह सही है कि यदि उपलदेव को परमार माने तो न तो वह वि. 400 वर्ष या न वि.स. 222 वर्ष में ओसिया बसा सकता है, क्योंकि उस समय परमारों की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी।

भंसाली जी[2] की मान्यता है कि 'तीसरा मत इतिहासकारों का है, जो इतिहास के तथ्यों तथा परमार वंश के उपलब्ध शिलालेखों पर आधारित है। मारवाड़ के परमारों की श्रृंखलाबद्ध वंशावलियां उपलदेव से मिलती है। परमारों का मूल स्थान आबू था। यहाँ से ही ये लोग अलग अलग फैले। गुजरात, मारवाड़, आबू, भीनमाल आदि कई प्रदेशों पर परमारों का अधिकार रहा। इन परमारों के कई शिलालेख जोधपुर संभाग के जालौर, भडूंद, किराडू, दियाणा और आबू में मिले हैं। परमार कृष्णराज के से 1113 वि.स. और वि.स. 1123 के दो शिलालेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णराज के पिता का नाम धंधुक था। यह धंधुक आबू का राजा था। इसके पूर्णपाल और कृष्णराज दो पुत्र थे। संवत् 1098 के बसन्तगढ़ और सं. 1102 के भाडूंद के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि पूर्णपाल और पिता की गद्दी पर बैठा और कृष्णराज भीनमाल का राजा हुआ। परमारों के सम्बन्ध में दियाणा ग्राम के जैन मंदिरों में परमारों का वि.स. 1024 का सबसे पुराना अभिलेख मिला है। इसके अनुसार कृष्णराज के शासन में वीरप्रभु की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विवरण है। यह शिलालेख कृष्णराज परमार का समय निश्चित करने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। यह कृष्णराज परमार उप्पलदेव का पौत्र था। इस प्रकार उप्पलदेव और कृष्णराज के बीच दो पीढी होती है। इस दो पीढी का समय सामान्यत: 50 वर्ष का होता है। इस प्रकार उप्पलदेव का समय दसवीं शताब्दी के आसपास माना जा सकता है।

'ओसियां के जैन मंदिर के सं 1013 के एक अभिलेख[3] से ज्ञात होता है कि उस समय

---

1. आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1908-09, पृ 104
2. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 4-6
3. जैन लेख संग्रह, पूर्णचन्द नाहर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वहाँ प्रतिहारों का राज्य था।[1] इससे सिद्ध होता है कि उपलदेव ने दसवीं शताब्दी के आसपास शरण ली और उसने इसी काल में ओसियां बसाई। क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में तो ओसियां में प्रतिहारों का राज्य था।' यह पुन: कल्पना की उड़ान भरते हैं, 'ऐसा लगता है कि प्रतिहारों से मतभेद हो जाने पर अथवा अपने पूर्व राज्य आबू पर पुन: अनुकूल परिस्थितियां हो जाने पर उप्पलदेव ने प्रतिहारों का उपकार मान कर स्वेच्छा से ओसियां छोड़ दो हो और स्वयं शक्ति प्राप्त कर पुन: अपना अधिकार जमा लिया हो।' कर्नल टाड ने माना कि नवीं शताब्दी के पूर्व परमारों का कोई बड़ा राज्य नहीं था। ओझा जी के अनुसार परमार धरणीशाह के पोते उप्पलदेव की मारवाड़ के परमारों ने दसवीं शताब्दी में शरण दी। 'राजस्थान की जातियों की खोज' पुस्तक के लेखक ने माना कि विक्रम संवत् 885 में ओसियां परमारों का राज्य था।[2] डॉ. डी.आर. भण्डारकर का भी कथन है कि परमार उप्पलदेव को परमारों ने नवीं शताब्दी में शरण दी।

उप्पलदेव के अस्तित्व को जानने के लिये परिहारों की उत्पत्ति पर भी विचार किया जाय। बाहुक के राजा के घटियाला में शिलालेख मिले हैं, जो वि.स. 918 और वि.स. 941 के हैं। इन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र ब्राह्मण जो मण्डोर के राजा का ड्योडीदार था, उसकी राजपूत स्त्री से राजुल पुत्र उत्पन्न हुआ। इस राजुल ने शक्ति प्राप्त कर मण्डोर पर अपना अधिकार कर लिया। इस राजुल से ही परिहारों की उत्पत्ति मानी जाती है। ड्योडीदार की राजपूत स्त्री से उत्पन्न होने के कारण ये परिहार (प्रतिहार) कहलाए। राजल की बारहवीं पीढ़ी में बाहुक राजा हुआ। इस प्रकार 12 पीढ़ी का समय 200-250 वर्ष माना जा सकता है। इससे यह सहज सिद्ध होता है कि परिहारों की उत्पत्ति आठवीं शताब्दी में हुई। अत: उप्पलदेव 8वीं शताब्दी में या उसके बाद ही मण्डोर में शरण लेने आया, उसके पूर्व नहीं। अत: उप्पलदेव ने ओसियां भी 8वीं शताब्दी या उसके बाद बसाई, इसके पूर्व नहीं, यह निश्चित है। घटियाला शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि कुक्कुक मण्डोर का प्रतिहार शासक था, उसने वि.स. 918 में एक जैन मंदिर का निर्माण करवाया था।[3]

वस्तुत: उप्पलदेव परमार नहीं था। अनेकानेक विद्वानों और इतिहासकारों ने ओसवाल जाति के पूर्व पुरुष उप्पलदेव को परमार स्वीकार कर न जाने कितनी उड़ाने भर ली। इन विद्वानों ने 'उपकेशगच्छ पट्टावली' और भाटों और भोजकों के ओसवाल जाति के पूर्वपुरुष उपलदेव को इतिहास की वंशावलियों में ढूंढने की व्यर्थ कोशिश की। परमारों की वंशावली में उप्पलदेव को ढूँढकर कल्पना के रंगभर कर काल्पनिक कहानी गढ़ ली। ऐसे कोई प्रमाण नहीं कि उप्पलदेव परमार था। यह भी प्रमाणित नहीं कि वह कब रूष्ट होकर आबू से मण्डोर गया, कब मण्डोर के परिहार राजाओं से मिला, कब उसने ओसियां की स्थापना की। इस सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। केवल परमारों की वंशावली में उपलदेव नाम देखकर अपनी अपनी दृष्टि से विद्वानों ने काल्पनिक कहानी/कहानियाँ गढ़ ली।

---

1. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 7
2. राजस्थान की जातियों की खोज, पृ 57
3. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 9

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"उपकेशनगर को बसाने वाले उपलदेव को इतिहास से अनभिज्ञ कई व्यक्ति परमार कहते हैं। वस्तुतः वे परमार नहीं थे। भाट भोजकों की दंतकथाओं के अतिरिक्त किन्हीं प्राचीन ग्रंथों और पट्टावलियों में उपलदेव को परमार लिखा नहीं मिलता है। हमारे उपलदेव का समय विक्रम से 400 वर्ष पूर्व का है, उस समय परमारों का अस्तित्व ही नहीं था। परमारों के आदि पुरुष धूम्रराज थे। उनके बाद उत्पलदेव नाम के एक राजा अवश्य हुए, जिनका कि समय वि.स. की दसवीं शताब्दी का है। इन्हीं परमार जाति के उत्पलदेव को हमारे श्रीमालनगर के राजवंश में उत्पन्न हुआ सूर्यवंशी उत्पलदेव को एक ही समझ लेना, यह एक अक्षम्य भूल है।"[1]

उपकेशगच्छ की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता

'उपकेशगच्छ चरित्र' और 'उपकेशगच्छ पट्टावली' ने ही माना कि क्षत्रिय राजा उप्पलदेव ने ओसियां में ओसला कर ओसियां (उपकेशपुर, उएसपुर) की स्थापना की और पार्श्वनाथ परम्परा के षष्ट आचार्य रत्नप्रभ सूरि से प्रतिबोध लेकर जैन बने और उन्हीं के अनुकरण पर महाजनवंश की नींव पड़ी। महाजन वंश ही कालांतर में उपकेशवंश/ओसवाल वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अब इस बात की अपेक्षा है कि उपकेशगच्छ की प्रामाणिकता की जांच की जाय।

बाबू पूरणचंदजी नाहर ने इसकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगाया है। इनके अनुसार "जहाँ तक मैं समझता हूँ (मेरा विचार भ्रमपूर्ण होना भी संभव नहीं) प्रथम राजपूतों से जैनी बनाने वाले पार्श्वनाथ संतानीय श्री रत्नप्रभसूरि जैनाचार्य थे। उस घटना के प्रथम श्री पार्श्वनाथ स्वामी की इस परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी न था। क्योंकि श्री वीर निर्वाण के 980 वर्ष के पश्चात् भी देवर्द्धि क्षमाश्रमण ने जिस तरह जैनागमों को पुस्तकारूढ किये थे, उस समय के जैन सिद्धान्तों में और 'श्री कल्पसूत्र की स्थिरावली' आदि प्राचीन ग्रंथों में उपकेशगच्छ का उल्लेख नहीं है। उपरोक्त कारणों से सम्भव है कि संवत् 500 के पश्चात् और संवत् 1000 से पूर्व किसी भी समय उपकेश या ओसवाल जाति की उत्पत्ति हुई होगी और उसी समय से उपकेशगच्छ का नामकरण हुआ होगा।"[2]

मंदिरों व मूर्तियों के लेखों तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के अध्ययन, अवलोकन करने के बाद विद्वानों का मत है कि विक्रम की 11वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी लेख या प्राचीन ग्रंथ में उपकेशगच्छ का उल्लेख नहीं मिला और न कोई उपकेश, उएश या ओसवाल जाति या इसके किसी गोत्र का नाम पाया जाता है। ओसवालों के मूल स्थान ओसियां में मात्र एक लेख संवत् 1259[3] का है, जिसमें उपकेश गच्छ का उल्लेख उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त सं 1011 का एक प्राचीनतम लेख है,[4] जिसमें केवल 'उपकेशीय चैत्य' लिखा है। इस 'उपकेशीय' शब्द से उपकेशगच्छ का पर्याय होना कदापि प्रमाणित नहीं होता।"[5] 'उपकेशीय चैत्य' शब्द उपकेशगच्छ

---

1. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ 175
2. श्री पूरणचन्द नाहर, जैन लेखसंग्रह, तृतीय भाग
3. जैन लेखसंग्रह, भाग पहला, लेखांक 791
4. वही, लेखांक 134
5. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 17-18

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से ही सम्बन्धित है। विभिन्न गच्छों के प्राचीनतम शिलालेखों में वि.स. 1011 का शिलालेख सबसे प्राचीन है।

श्री पूर्णचंद जी नाहर के मतानुसार "हिन्दुओं से जैनी बनाने का कार्य अबाध होता रहा और ओसवंश बढता गया। शिलालेखों से जहाँ तक मेरा इस विषय में ज्ञान है, विक्रम की 11वीं शताब्दी के पूर्व किसी लेख में आचार्य रत्नप्रभसूरि के नाम के साथ उपकेशगच्छ का नाम नहीं है।"[1]

इसके अतिरिक्त 'कल्पसूत्र की स्थिरावली' आदि प्राचीनग्रंथों में उपकेशगच्छ का उल्लेख नहीं है। प्रथम पार्श्वनाथ स्वामी की पट्ट परम्परा का नाम उपकेशगच्छ भी नहीं था।[2]

डॉ. भण्डारकर के अनुसार ओसिया बसने के कुछ वर्ष बाद रत्नप्रभ नाम के जैनसाधु (यति) वहाँ आए जो हेमाचार्य के शिष्य थे। वह समय नवीं शताब्दी का था।[3]

अजारी ग्राम (सिरोही) से प्राप्त वि.स. 1194 का एक शिलालेख है, जो उपकेशगच्छ का प्राचीनतम लेख माना जाता है, जबकि अन्याय गच्छों के सैकड़ों लेख उस समय के पूर्व के मिलते हैं। नमूने के रूप में कुछ गच्छों के एक एक, दो दो शिलालेख प्रस्तुत है, जो उपकेशगच्छ के प्राचीनतम शिलालेख (1194) से अधिक प्राचीन है।

'विक्रम की 12वीं शताब्दी के पूर्व किसी भी शिलालेख, ताम्रपत्र या ग्रंथ में उपकेशगच्छ का नामोल्लेख न मिलना, यह सिद्ध करता है कि उपकेशगच्छ इतना प्राचीन नहीं, जितना पट्टावलीकार ने बताया है। उपकेशगच्छ के अब तक जितने शिलालेख मिले हैं, उनमें अधिकतर 13वीं से 16वीं शताब्दी के बीच के ही हैं। इससे पता चलता है कि इस गच्छ की लोकप्रियता मेवाड़, मारवाड़, सिरोही आदि स्थानों में 13वीं से 16वीं शताब्दी के बीच ही रही।[4]

यह भी देखना आवश्यक है कि ओसियां में प्रतिबोध देकर नूतन जैन बनाने वाले आचार्य रत्नप्रभ सूरि कौन थे ? वे किस गच्छ के थे ?

'उपकेशगच्छ पट्टावली' के अनुसार उपकेशगच्छ रत्नप्रभसूरि नाम के छह आचार्य हुए और इस गच्छ के छठे या अंतिम रत्नप्रभसूरि होने का समय पट्टावलीकार ने पाचवीं शताब्दी माना है।[5]

'बीकानेर जैन लेख संग्रह' के अनुसार वि.स. 1420[6] और वि.स. 1462[7] के अभिलेखों से सिद्ध है कि उपकेशगच्छ में 15वीं शताब्दी में रत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य भी

1. पूर्णचंद नाहर, जैन लेख संग्रह, भाग 3 की प्रस्तावना
2. वही, प्रस्तावना
3. आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1908-09, पृष्ठ 9
4. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 20
5. वही, पृ 21
6. बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक 444
7. वही, लेखांक 603

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मौजूद है।

इसके अतिरिक्त अन्य गच्छों में भी रत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य हुए।[1]

1. वृहदगच्छ	-	वि.स. 1409, 1499, 1508
2. चन्द्रगच्छ	-	वि.स. 1310
3. पूर्णिमागच्छ	-	1491 वि.स.
4. कछोलीगच्छ	-	वि.स. 1436
5. चैत्रगच्छ	-	वि.स. 1267
6. गुदाऊगच्छ	-	वि.स. 1465, 1466, 1477, 1483
7. पिप्पलगच्छ	-	वि.स. 1309, 1526
8. आंचलगच्छ	-	वि.स. 1287
9. तपागच्छ	-	वि.स. 14वीं शताब्दी
10. अट्टातगच्छ	-	वि.स. 1286

डॉ. बालथेर शुब्रिंग के अनुसार 'मुझे जैनों की और सभी पट्टावलियां सही प्रतीत होती है, पर यह उपकेशगच्छ पट्टावली सही प्रतीत नहीं होती।[1]

उपकेशगच्छ अपना सीधा सम्बन्ध भगवान पार्श्वनाथ से जोड़ता है। उपकेश गच्छ चरित्र एवं पट्टावली आदि प्राचीन ग्रंथों में इस गच्छ का सम्पूर्ण इतिहास सुरक्षित है।

भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम पट्टधर शुभदत्त गणधर, द्वितीय पट्टधर हरिदत्त सूरीश्वर, तृतीय पट्टधर समुद्र सूरीश्वर, चतुर्थ पट्टधर केशीश्रमण (भगवान महावीर के समकालीन) हुए। इस परम्परा के सभी सन्त निर्ग्रंथ कहलाते थे। पांचवे पट्टधर स्वयंप्रभसूरि के समय उनके संघ को विद्याधर गच्छ के नाम से पुकारा जाने लगा। 'उपकेशगच्छ पट्टावली' और 'उपकेशगच्छ चरित्र' के अनुसार आचार्य रत्नप्रभु विक्रम संवत् से 400 वर्ष पूर्व उपकेशपुर पधारे और उन्होंने महाजन वंश की नींव डाली। समय के अंतराल से यही महाजन संघ उएस, उकेश और उपकेश वंश कहा जाने लगा और इनके गुरुओं को उपकेशगच्छीय कहा जाने लगा। हजारों शिलालेखों में उपकेशगच्छ का उल्लेख मिलता है।

"उपकेश गच्छ पट्टावली में पार्श्वनाथ के बाद हुए गच्छ के 85 पट्टधरों का सम्पूर्ण इतिहास सुरक्षित है, हालांकि जो प्राचीनतम प्रति इस समय उपलब्ध है, उसका रचनाकाल विक्रम संवत् 1313 है। दुविधा यह है कि इस गच्छ के पट्टधरों के नामों की पुनरावृत्ति है - जैसे छठे पट्टधर रत्नप्रभ सूरि के बाद 32वें पट्टधर तक यक्ष सूरि, कक्कसूरि, देवसूरि, सिद्धसूरि और रत्नप्रभसूरि- इन्हीं पांच नामों की पुनरावृत्ति है। तत्पश्चात् 85वें पट्टधर तक बीच के नामों की

---

1. ओसवालवंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 4
2. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 38

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुनरावृत्ति है।'[2]

नामों की पुनरावृत्ति हिन्दुओं के आदि गुरु शंकराचार्य की देखी जाती है। आज तक चारों मठाधीशों को शंकराचार्य कहा जाता है। 'श्वेताम्बर सम्प्रदाय के खरतरगच्छ में 16वें पट्टधर श्री जिनचंद्रसूरि इतने प्रभावशाली हुए कि उनके बाद हर चौथे पट्टधर का नाम इन्हीं के नाम पर जिनचंद्र सूरि रखा जाता है।'[1]

श्री पूर्णचंद नाहर ने माना 'सम्भव है विक्रम संवत् 500 के पश्चात् और 1000 के पूर्व किसी समय उपकेश जाति की उत्पत्ति हुई होगी और उसी समय उपकेशगच्छ नामकरण हुआ होगा।'[2]

इतिहास के स्रोत के शिलालेख और उस समय के लेख ही नहीं होते, किन्तु साहित्यिक भी होते हैं। 'शिलालेखों एवं ग्रंथों की प्राचीनता से तथ्यों की पुष्टि तो की जा सकती है, पर साहित्यिक साक्ष्यों से पुष्ट इतिहास को नकारना उचित नहीं।'[3]

यदि साहित्यिक साक्ष्य स्वीकार न किये जायं तो वाल्मीकि रामायण के पात्र राम और महाभारत के कृष्ण की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाएगा। क्या यही प्रश्न चिह्न भगवान पार्श्व और भगवान महावीर की ऐतिहासिकता पर नहीं लगाया जा सकता है ?

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्यों, श्रमणों और साधुओं का पार्श्वप्रेम प्रसिद्ध है।

यह तो स्वत: सिद्ध है, 'खरतरगच्छ की उत्पत्ति से पूर्व पार्श्वनाथ परम्परा का उपकेशगच्छ एवं चैत्य मौजूद थे। ओसवंश के अनेक गोत्रों के निर्माण का श्रेय खरतरगच्छ को है। नये गोत्र निर्माण से ही मूल जाति की पूर्व उत्पत्ति सिद्ध हो जाती है। खरतरगच्छ के आचार्यों ने नये गोत्र बनाकर उन्हें ओसवंश में सम्मिलित किया। निस्संदेह यह जाति उस समय प्रभावशाली रही होगी। समस्त खरतरगच्छ आचार्य जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चुप है। उन्हीं की परम्परा के 19वीं सदी के यतियों ने एक स्वर से अपने ग्रंथों में ओसवंश और उपकेशगच्छ को पार्श्वनाथ परम्परा के भी रत्नप्रभसूरि द्वारा वीरात् 70वें वर्ष में उत्पन्न स्वीकार किया है।'[4]

"ओसवाल कुल के अनेक गोत्रों की स्थापना 11वीं से 16वीं शताब्दी के मध्य खरतरगच्छ के आचार्यों द्वारा हुई। इन छ शताब्दियों में इस जाति का बहुत विकास हुआ। खरतरगच्छ में अनेक प्रसिद्ध आचार्य हुए। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। परन्तु उल्लेखनीय यह है कि किसी खरतरगच्छ आचार्य ने ओसवाल वंश की उत्पत्ति का श्रेय ही नहीं लिया, न ही किसी ग्रंथ में किसी खरतर आचार्य द्वारा इस वंश की प्रस्थापना का जिक्र ही किया गया। यदि 11वीं शताब्दी या उससे कुछ पहले इस वंश की उत्पत्ति हुई होती तो अवश्य ही उत्पत्ति सम्बन्धी कथानक इन ग्रंथों में आता, जबकि 11वीं शताब्दी के अनेक शिलालेखों में खरतर आचार्यों का नाम विभिन्न गोत्रों के साथ उत्कीर्णित है। खरतरगच्छ ही क्यों, श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के

1. जैन लेख संग्रह, भाग 3, प्रस्तावना
2. इतिहास की अमरबेल- ओसवाल, प्रथम खण्ड, पृ 39
3. वही, पृ 124
4. वही, पृ 124-125

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनेक दिग्गज विद्वान हुए। अनेक बहुमूल्य ग्रंथों का सृजन भी हुआ, परन्तु किसी में ओसवाल वंश की उत्पत्ति का उल्लेख नहीं है। तो क्या बिना उत्पन्न हुए ही 11वीं सदी से ओसवाल वंश के अनेक गोत्रों के भारत के सुदूर में फैले हुए शिलालेखों की बाढ आ गई ? जिस तरह सैकड़ों शिलालेखों में खरतरगच्छ के आचार्यों के नाम ओसवाल गोत्रों से जुड़े हैं, उसी तरह उपकेशगच्छ एवं अन्य गच्छों के आचार्यें के नामे ओसवाल गोत्रों से जुड़े मिलते हैं। यह सिलसिला बीसवीं सदी तक निरंतर चलता रहा है। ऐसे हालात में जब अन्य किसी गच्छ में ओसवाल वंश की उत्पत्ति के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता तो उपकेशगच्छ के मान्य ग्रंथों एवं ओसवाल वंश की उत्पत्ति सम्बन्धी उल्लेखों को नकारना कहाँ तक उचित है ?[1]

उपकेश शब्द के साथ ओसवालों का सम्बन्ध सिद्ध प्राय है एवं जिसे सभी इतिहासज्ञ एवं पुरातत्ववेत्ता भी स्वीकार करते हैं।

जहाँ तक 'उपकेशगच्छ पट्टावली' की प्राचीन पाण्डुलिपि न मिलने का प्रश्न है, इस संदर्भ में कहा जा सकता है, 'विक्रम संवत् 523 में देवधिक्षमाश्रमण ने आगम पुस्तकारूढ़ किये। इसके पूर्व आगम वाचनाओं में आगमों को लिपिबद्ध करने का उल्लेख नहीं मिलता। आगमों में प्राचीनतम पाण्डुलिपि आवश्यक सूत्र की विक्रम संवत् 1199 की है। डा. कस्तूरचंद कासलीवाल (राजस्थान का जैन साहित्य, 1977) के अनुसार प्राचीनतम ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि विक्रम संवत् 1117 की है। अगर वीरात् 80 के बदली शिलालेख को बाद दे दिया जाय, जिसे कुछ इतिहासकार प्रामाणिक नहीं मानते, तो छठी/सातवीं शताब्दी के पूर्व का कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं है। बाद के लिखे गये ग्रंथों एवं शिलालेखों (विक्रम संवत् 530-585 या 757-827) एवं उद्योतन सूरि की 'कुवलयमाला' (छठी सदी) को प्राचीनतम एवं प्रारम्भिक रचनाएं माना गया है। इन ग्रंथों में उपकेश जाति का उल्लेख भी हुआ है।[2]

'जैन श्वेताम्बर मतों का प्रादुर्भाव ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ, यह सभी इतिहासकार एवं पुरातत्ववेत्ता स्वीकार करते हैं। कालांतर में उनके विभिन्न गच्छों एवं गणों की स्थापना हुई परन्तु किसी भी गच्छ का प्राचीनतम शिलालेख 11वीं शताब्दी के पहले का नहीं मिलता है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है-[3]

गच्छ का नाम	प्राचीन शिलालेख का समय	प्राप्ति स्थान
1. वृहदगच्छ	संवत् 1143	कोटरा (सिरोही)
2. चन्द्रगच्छ	संवत् 1231	जालौर
3. नगेन्द्रगच्छ	संवत् 1088	ओसिया
4. निवृत्तिगच्छ	संवत् 1469	सिरोही
5. कोरटक गच्छ	संवत् 1088	सिरोही
6. उपकेशगच्छ	संवत् 1194 अजारी	(सिरोही)

1. इतिहास की अमरबेल- ओसवाल, पृ 124-125
2. वही, पृ 126-127
3. वही, पृ 129

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

7. ब्राह्मणगच्छ	वि.स. 1242	अर्बुदाचल
8. पिसपालाचार्य गच्छ	वि.स. 1208	-
9. यशसूरिगच्छ	वि.स. 1242	अजमेर
10. मदाहरागच्छ	वि.स. 1287	मदारा
11. पिथतगच्छ	वि.स. 1208	कोटरा
12. वातपीयगच्छ	वि.स. 1162	जैसलमेर

यह सभी गच्छ पूर्वोत्पन्न है। केवल प्राचीन शिलालेख से इनकी उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती।

'श्री कक्कसूरि द्वारा विक्रम संवत् 1393 में विरचित इस पट्टावली को पाश्चात्य विद्वान प्रो. ए.एफ. रूडोल्क होर्नेल ने पूर्णत: प्रामाणिक मानते हुए इसकी विशद चर्चा की है।[1]

इस प्रकार उपकेशगच्छ की प्रामाणिकता और उसकी ऐतिहासिकता को चुनौती देना उचित नहीं।

ओसवंश का उद्भव : निष्कर्ष

ओसवंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस बीसवीं शताब्दी में गहरा आलोड़न-विलोड़न हुआ है। तथाकथित ऐतिहासिक मत के दावेदारों ने 'उपकेशगच्छ पट्टावली' के ओसवंश के संस्थापक उपलदेव को भोजकों और भाटों के कुछ गुटकों के प्रक्षिप्त अंश में उपलदेव को परमार मानकर, परमारों की वंशावली में से उपलदेव को लेकर केवल अनुमानों के सहारे कल्पना का महल खड़ा कर, उसे इतिहास का जामा पहनाने का निरर्थक प्रयास किया। केवल परमारों की वंशावली में उपलदेव नाम देखकर यह कथा गढ़ ली कि उप्पलदेव आबू से मण्डोवर परिहारों की शरण में गया, परिहारों की कृपा से ओसियां नगरी बसाई, ओसियां में जैनमत स्वीकार कर ओसवंश का मूल पुरुष बना और पुन: आबू में ठीक स्थिति देखकर ओसियां परिहारों को सौंपकर आबू का राज सम्भाला। इतिहास में इन सब घटनाओं का कोई प्रमाण नहीं है, किन्तु 'उपकेशगच्छ पट्टावली' में उप्पलदेव और भाटों भोजकों के आधार पर कल्पित कथा गढ़ ली। इन्होंने 'कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती का कनुबा जोड़ा' की कहावत को चरितार्थ किया। यह कैसी विडम्बना है कि ओसवंश के उद्भव को इतिहास के धरातल पर खोजने में केवल अनुमानों के सहारे कहानी गढ़ ली। यह सही है कि इतिहास में तथ्य नहीं, सत्य होता है और सत्य के लिये अनुमान भी आवश्यक है, किन्तु किसी तथ्य के अभाव में केवल अनुमानों से सत्य की संरचना नहीं हो सकती। इन तथाकथित ऐतिहासिक मत के पृष्टपोषकों ने कभी कहा कि उपलदेव ने दसवीं शताब्दी में ओसियां की स्थापना की, कभी नवीं शताब्दी में, कभी आठवीं शताब्दी में और कभी उससे भी पहले। श्री भंसाली जी ने माना कि परमारों का समय 8वीं शताब्दी से 10वीं शताब्दी के बीच ही है, इसलिये इसी काल में ओसियां बसाई अर्थात् इसी काल में ओसवंश का उद्भव हुआ।

श्री अगरचंद नाहटा के अनुसार 'कविवर ऋषभदास रचित 'हरिविजय सूरि रास' के

1. Indian Autiqumry Vol. 19, 1890

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुसार ओसवाल वंश की स्थापना वि.स. 510 में रत्नसूरि द्वारा हुई। दूसरे उल्लेख 'महावीर स्तवन' और 'ओसवाल उत्पत्ति वृतांत' के अनुसार इस घटना का समय संवत् 1011-15 है। इनमें से मुझे 9वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी के बीच ही सही समय होना सम्भव लगता है।'[1]

डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के अनुसार 'ओसवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिक रूप से ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी का निर्णय उचित प्रतीत नहीं होता।[2]

श्री भंसाली के अनुसार 'पट्टावलीकार व भाटों ने ओसवालों की उत्पत्ति एवं इस जाति के जिन 18 गोत्रों के नाम उस समय में उद्भव होना बताया है, वह विश्वसनीय नहीं है। ओसवालों के 18 गोत्रों (मूलगोत्र) की उत्पत्ति का समय 8वीं शताब्दी के बाद ही हो सकता है।'[3]

ओसवाल : दर्शन : दिग्दर्शन' की लेखिका ने माना है, 'इन सब बातों की गहराई में जाकर कहाँ हम ओसवाल जाति के अस्तित्व को विक्रम की छठी शताब्दी में तो स्वीकार कर सकते हैं, किन्तु जब तक हमें कोई ठोस प्रमाण नहीं मिल पाता, इस जाति को और अधिक पुराना घोषित करना अपने आप को औरों पर थोपने के समान प्रतीत होता है।'[4]

इस तथाकथित ऐतिहासिक मत का अप्रत्यक्ष खण्डन स्वयं श्री भण्डारी जी ने अपने 'ओसवाल जाति का इतिहास' में कर दिया। इनके अनुसार 'सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवी प्रसाद जी जोधपुर ने 'राजपूताने की शोध खोज' पुस्तक लिखी। जिसमें उन्होंने लिखा कि कोटा राज्य के अटरू नामक ग्राम में जैनमंदिर के एक खण्डहर में एक मूर्ति के नीचे वि.स. 508 का भैंसाशाह नाम का एक शिलालेख मिलता है। यदि वह भैंसाशाह और जैनधर्म के अन्दर प्रसिद्धि प्राप्त आदित्यनाग गोत्र को भैंसाशाह एक ही हो तो इसका समय वि.स. 508 निश्चित करने में कोई बाधा नहीं आती।'[5]

इसके अतिरिक्त एक और प्रमाण है। इसके अनुसार, 'श्वेत हूण के विषय में इतिहासकारों का मत है कि श्वेत हूण तोरमाण विक्रम की छठी शताब्दी में मरुस्थल की तरफ आया। उसने भीनमाल को हस्तगत कर अपनी राजधानी वहाँ स्थापित की। जैनाचार्य हरिगुप्त सूरि ने उस तोरमाण को धर्मोपदेश देकर जैनधर्म का अनुयायी बनाया। जिसके परिणाम स्वरूप तोरमाण ने भीनमाल में बड़ा विशाल मंदिर बनवाया। इस तोरमाण का पुत्र मिहिरकुल जैनधर्म का कट्टर विरोधी शैव धर्मोपासक हुआ। उसके हाथ में राजतंत्र के आते ही जैनियों पर भयंकर अत्याचार होने लगे। जिसके परिणामस्वरूप जैनी लोगों को देश छोड़कर लाट गुजरात की ओर भागना पड़ा। इन भागने वालों में उपकेश जाति के व्यापारी भी थे। अतः इससे भी पता चलता है कि उस समय उपकेश जाति मौजूद थी।'[6]

---

1. ओसवाल वंश, अनुसंधान के आलोक में, पृ 13
2. वही, पृ 13
3. वही, पृ 14
4. ओसवाल- दर्शनः दिग्दर्शन, पृ 44
5. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 17
6. वही, पृ 17-18

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपरोक्त प्रमाणों से पता चलता है कि विक्रम की छठवीं शताब्दी तक को इस जाति की उत्पत्ति की खोज में किसी प्रकार खींचतानी से पहुंचा जा सकता है, मगर उसके पूर्व कोई भी प्रमाण हमें नहीं मिलता, जिसमें ओसवाल जाति, उपकेशजाति या उकेश जाति का नाम आता हो।[1]

छठी शताब्दी में ओसवंश का उद्भव माना जाय, तो उपलदेव को परमार नहीं माना जा सकता। ओसवंश का पूर्वपुरुष उत्पलदेव परमार उत्पलराज नहीं है।

इस प्रकार छठी शताब्दी को स्वीकार करने पर ओसवंश के अस्तित्व को स्वीकार कर कर दसवीं शताब्दी में जाति की उत्पत्ति स्वीकार करने पर स्वत: ही एक प्रश्न चिह्न लग जाता है।

'हिमवंत स्थिरावली' के अनुसार आगमों की द्वितीय माथुरी वाचना के अनुसार आर्य स्किन्दिलाचार्य वीर निर्वाण संवत् 823 से 840 के आसपास आचार्य नियुक्त हुए। आर्य स्कन्दिल सूरि ने उत्तर भारत के मुनियों को मथुरा में एकत्रित कर आगम वाचना संवत (357-360) की। उस समय मथुरा निवासी ओसवंशीय पोलाक ने गंधहस्ती के विवरण सहित उन सूत्रों को ताड़पत्रों पर लिखाकर मुनियों को प्रदान किया।[2] अत: समय 357-360 के मध्य ओसवंश का अस्तित्व विद्यमान था।

श्री अगरचंद नाहटा ने ओसवंश की स्थापना के समय सम्बन्धी महत्वपूर्ण उल्लेख में लिखा है, "अभी तक 'उपकेशगच्छ पट्टावली', 'उपकेशगच्छ प्रबन्ध' आदि के उल्लेखों के अनुसार वीर भगवान के 70 वर्ष बाद ओसवंश की स्थापना होना माना जाता रहा है, पर मेरी शोध से इस समय से भिन्न समय को सूचित करने वाले तीन उल्लेख प्रकाश में आए हैं। जिनमें से पहले कविवर ऋषभदास रचित 'हरिविजय सूरि रास' के अनुसार ओसवाल वंश की स्थापना संवत् 510 में रत्नप्रभसूरि द्वारा हुई। इसके उल्लेख में ओसिया के 'महावीर स्तवन' और 'ओसवाल उत्पत्ति वृतांत' के अनुसार इस घटना का समय संवत् 1011-15 है। तीसरे उल्लेख में 'पांच पाट रास' का उद्धरण दिया गया है। इनमें मुझे 9वीं से 11वीं शताब्दी के बीच ही सही समय होना सम्भव लगता है।"[3]

प्रसिद्ध इतिहासकार टाड का कथन है कि खेरनारा जाति के लोग सहस्त्रों की संख्या में ओसीग्राम में बसे। ओसी ग्राम के निवासी होने के कारण ये ओसवाल कहलाए। ओसी ग्राम अब ओसिया के नाम से विख्यात है।[4]

---

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 17-18
2. हिमवंत स्थिरावली, श्लोक 33

   मथुरा निवासिका श्रमणोपासक वरेण ओसवंशि,
   भूथणेन पोलाकाभिधेन तासकलमणि प्रवंचन,
   गंधहस्तिकृत विवरणोपेतं तालपत्रादिषु,
   लेखयित्वा भिक्षुभ्या स्वाध्यायार्थ: समर्पितम्॥

3. अमरचंद नाहटा, श्रमण मासिक, अगस्त, 1952
4. कर्नल टाड, राजपूताने का इतिहास

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुनि कल्याण विजय जी के अनुसार, 'संसेनियन राजा अर्दशिर ने भारत पर चढ़ाई करके सिन्धु तक के प्रदेशों पर अधिकार किया था। सम्भव है इस संसेनियन जाति के भारत पर आक्रमण के परिणामस्वरूप तक्षशिला का नाश हुआ हो और वहाँ के जैन लोग उस युद्ध लीला से पंजाब की ओर आ गए हों। मेरे विचार से ओसवाल जाति तक्षशिला आदि पश्चिम के नगरों से निकले जैन संघ से निकली हो।[1]

हूण तोरमाण का समय छठी शताब्दी का है, जब हूण तोरमाण ने भीनमाल को अपने अधिकार में कर लिया था। अत: हो सकता है छठी-सातवीं शताब्दी में हूणों के अत्याचारों के बाद ही ये लोग भटकते भटकते ओसी ग्राम में बसे हों।

इस मनगढ़ंत और तथाकथित ऐतिहासिक मत के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि हरिभद्रसूरि रचित 'समराइच्च कहा' ग्रंथ के अनुसार उस समय उएशनगर का अस्तित्व था। इस ग्रंथ में लिखा है कि उएश नगर के लोग ब्राह्मणों के कर से मुक्त थे। उनके गुरु ब्राह्मण नहीं थे। बस यही एक प्राचीनतम प्रमाण है जो इस जाति का अस्तित्व विक्रम की आठवीं शताब्दी तक खींचतान कर पहुंचाता है। आचार्य हरिभद्रसूरि का समय सं 757 से 857 अर्थात् आठवीं और नवीं शताब्दी के बीच माना जाता है।

'समराइच्च कहा' में जो श्लोक आया है, वह निम्नानुसार है-

तस्मात् उपकेशज्ञाति नाम गुरवो ब्राह्मण: नहीं।
उएसनगरं सर्व कर ऋण समृद्धि मत् ।।
सर्वथा सर्व निर्मुक्त मुएसा नगरं परम् ।
तत्प्रमृति सजातिविति लोक प्रवीणम् ।।

श्री भण्डारी ने हरिभद्रसूरि का समय संवत् 530 से 585 के बीच माना जाता था, पर अब जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान इस समय को संवत् 757 से संवत् 857 के बीच माना है। यदि इस मत को स्वीकार कर लिया जाय तो संवत् 757 के समय उएश जाति और उएश नगर बहुत समृद्धि पर थे और मानना भी अनुचित न होगा कि इस समृद्धि को प्राप्त करने में कम से कम 200 वर्षों का समय अवश्य लगा होगा। इस हिसाब से इस जाति की दौड़ विक्रम की पांचवीं शताब्दी तक पहुँच जाती है। इस मत से भण्डारी जी ने ओसवाल वंश के संस्थापक उत्पलदेव/ उत्पलराज को परमार मानने से अप्रत्यक्ष रूप से असहमति जता दी है, क्योंकि उस समय परमारों का अस्तित्व ही नहीं था।

एक शिलालेख संवत् 1587 का शत्रुंजय तीर्थ पर आदीश्वर के मंदिर में है-

- इतश्च गोपाह्व गिरौ गरिष्ट श्री बप्प भट्टी प्रतिबोधितश्च।
श्री आमराजोऽजति तस्य पलि काचित्व भूवव्यवहारी पुत्री ।।
तत्कुक्षिजाता: किल राजकोटा शाराह्व गौत्रे सुकृतैक पात्रे।
श्री ओसवंश विशदि विशाले तस्यान्वयेऽश्रिपुरुष प्रसिद्ध ।।

---

1. मुनि कल्याण विजय, प्रभाकर चरित्र प्रबन्ध पर्यायलोचन

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसके अनुसार बप्पभट्ट सूरि ने कन्नोज के आमराजा (नागभट्ट पड़िहार) को प्रतिबोध देकर जैनी बनाया। उस राजा के एक रानी वणिक पुत्री थी। इससे होने वाली संतानों को इन आचार्य ने ओसवंश में मिला दिया, जिनका गोत्र राजकोष्ठागार हुआ।[1]

प्रसिद्ध इतिहासकार स्व. मुंशी देवीप्रसाद के 'राजपूताने की शोधखोज' के अनुसार कोटा राज्य के अटरू नाम ग्राम में जैन मंदिर में एक खण्डहर में एक मूर्ति के नीचे विक्रम संवत् 508 की है, जिसमें भैंसाशाह के नाम का उल्लेख है। यदि यह भैंसाशाह और जैनमत के अन्दर प्रसिद्धि प्राप्त आदित्यनाग गोत्र का भैंसाशाह एक ही है, तो इसका समय वि.स. 508 का निश्चित करने में कोई बाधा नहीं आती।[2]

अंत में यह कहा जा सकता है कि अब ओसिया की प्राचीनता सिद्ध हो चुकी है इसलिये अभिलेखी प्रमाणों का मोह त्यागकर साहित्यिक साक्ष्य के आधार यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वीर निर्वाण संवत् 70 में पार्श्वनाथ परम्परा के षष्ट पट्टधर रत्नप्रभसूरि से प्रतिबोध पाकर अनेक क्षत्रिय (18 गोत्र- राजपूत नहीं) महाजन बने। महाजनों के रूप में ओसवंश का बीजारोपण भगवान महावीर युग में उनके निर्वाण के 70 वर्ष पश्चात् (विक्रम पूर्व 400 में) हुआ, किन्तु विक्रम संवत् 222 में ओसवंश का नामकरण हुआ। जैनमत के इतिहास में संघभेद के बीज पड़ने के साथ महाजन वंश के रूप में ओसवंश का बीजारोपण हुआ और जब माथुरी वाचना में संघभेद स्थायी हो गया, उसके समानान्तर ओसिया के महाजन अन्य ग्रामों और नगरों में ओसिया निवासी होने के कारण ओसवंशी कहलाए। ओसवंश के उद्भव को लेकर कितना पिष्टपेषण और चर्वित चर्वण हुआ है, इसलिये आवरण को विदीर्ण कर सत्य का साक्षात्कार आवश्यक है। दिग्गज इतिहासकारों ने ओसवंश के मूल पुरुष और परमारों के राजा उत्पलराज को एक मानकर एक काल्पनिक महल खड़ा कर दिया। बिना किसी तथ्यात्मक आधार के केवल नाम साम्य देखकर कल्पना की ऊँची उड़ान भरना, किसी भी स्थिति में श्रेयस्कर नहीं।

यह सही है कि किसी जाति की प्राचीनता गौरव की बात नहीं, किन्तु किसी जाति का गौरव उसके विकास और उत्कर्ष में है।

ओसवंश श्वेताम्बर परम्परा की जैन जातियों में अग्रगण्य है, इसलिये श्वेताम्बर परम्परा और ओसवंशीय परम्परा को समानान्तर रूप से देखकर ही इसके उद्भव के प्रश्न को हल किया जा सकता है।

जैसे गंगा गौमुख से निकली और फिर कितनी ही नदियां उसमें समाती गई और इस तरह कालांतर में एक विशाल नदी का रूप धारण कर लिया, उसी प्रकार ओसवंश का उद्गम भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् वीर संवत् 70 में (विक्रम पूर्व 400 वर्ष में) हुआ और फिर धीरे धीरे कितनी ही जातियां अपना धर्मांतरण/रूपातंरण कर इस ओसवंश रूपी स्रोतस्विनी में समाती गई।

• • •

1. ओसवाल जाति का इतिहास, पृ 17
2. वही, पृ 17

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चतुर्थ अध्याय

ओसवंश के उद्भूत गोत्र : पूर्व जातियां

गोत्र

भारतीय जन जीवन में गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। गोत्र का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- 'गूयते शब्द्यते इति गोत्रम्' - जो कहा गया है।

मानव समाज में नाम का विशेष महत्व है। धीरे धीरे सामाजिक सम्बन्धों और रीतिरिवाजों में भी इसने स्थान प्राप्त कर लिया। जैन साहित्य में गोत्र की व्याख्या वंश परम्परा के आधार पर की जाने लगी।

वैदिक साहित्य के अनुसार प्रारम्भ में ऐसे आठ ऋषि हुए, जो गोत्र कर्त्ता माने जाते हैं। ये आठ ऋषि हैं- जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वशिष्ठ, काश्यप और अगस्त्य।

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रत्रात्रि गौतमः।
वशिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो मुनयो गोत्र कारणम्॥

ब्राह्मण परम्परा में ये मंत्रदृश ऋषि हुए हैं और इन्हीं से गोत्र परम्परा चली है। साधारणतः ब्राह्मण परम्परा में गोत्र रक्त परम्परा का पर्यायवाची माना गया है।

जैनधर्म में गोत्र का विचार प्राणी की आभ्यंतर वृत्ति की दृष्टि में रखकर किया गया है। जैनधर्म के अनुसार व्यक्ति की आभ्यंतर वृत्ति के साथ इसका सम्बन्ध होने के कारण वह गुण नाम है।[1] मोहनीय कर्म के समान गोत्र को आत्मा में निबद्ध कहा है। कुल, गोत्र, वंश, सन्तान - ये एकार्थवाची नाम हैं। गोत्र की व्याख्या में कुछ व्याख्या पर्यायपरक है, कुछ व्याख्याएं आचारमूलक है और कुछ व्याख्याएं कुल, वंश या सन्तानपरक हैं।

'पद्मपुराण' में कहा गया है कि कोई जाति गर्हित नहीं होती। वास्तव में गुण कल्याण के कारण होते हैं, क्योंकि जिनेद्रदेव व्रतों में स्थित चाण्डाल को भी ब्राह्मण में स्वीकार किया है।[2] इस कथन से यह पता चलता है कि सामान्यतः धर्म में जाति व्यवस्था को स्थान प्राप्त नहीं है।

उमास्वामी के 'तत्वार्थसूत्र' में कहा है,

उच्चैर्नी चैश्च।[3]

गोत्र उच्च और नीचे के भेद से दो प्रकार का होता है। गोत्र दो प्रकार का है- उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

जिसके उदय से लोकपूजित कुलों में जन्म होता है, वह उच्चगोत्र है और जिसके उदय

1. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचंद्र शास्त्री, वर्ण, जाति, धर्म, पृ 105
2. पद्मपुराण 3-203
   न जाति गर्हिता काचित गुणाः कल्याणकारणम्।
   व्रत स्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥
3. उमास्वामी, तत्वार्थसूत्र, 8-12

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से गर्हित कुलों में जन्म होता है, वह नीच गोत्र है।[1]

'पद्मपुराण' के अनुसार अयोग्य आचरण करने वाला नीच होता है।[2]

अनार्यभाचरन् किञ्चिज्जायते नीवनोरः।

ओसवंश के प्रारम्भिक 18 गोत्र

परम्परागत और धार्मिक मान्यता के अनुसार वीर संवत् 70 में ओसियां में आचार्य रत्नप्रभसूरिजी ने अनेक क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित कर महाजनवंश की नींव रखी और उसी समय महाजनवंश के 18 गोत्रों की भी नींव पड़ी। 'जैन जाति महोदय' के अनुसार आचार्य रत्नप्रभसूरि ने उपलदेव राजा को प्रतिबोध दिया, उस समय 18 गोत्र की स्थापना की। एक मत है कि मंत्रीपुत्र की खुशी में सूरिजी की सेवा में 18 रत्नों का थाल रखा था, तदनुसार 18 गोत्र हुए। दूसरा मत है कि देवी के मंदिर में पूजा करने गये हुए श्राद्धवर्ग के 18 गोत्र स्थापन किये। तीसरा मत है कि 18 कुल ने क्षत्रियों को प्रतिबोध दिये, जिनसे 18 गोत्र हुए। 18 गोत्रों की स्थापना एक समय हुई या अलग अलग समय में हुई हो, किन्तु इतना तो निश्चय है कि उपकेशपुर में रत्नप्रभसूरि जी ने उपकेशवंश (महाजनवंश) की स्थापना कर वीर संवत् 70 में महावीर मूर्ति की प्रतिष्ठा कर प्रारम्भ में निम्नांकित गोत्र थे। इनके दक्षिण बाहु में निम्नांकित गोत्र थे -

1. तातहड़ गोत्र	2. बापणागोत्र	3. कर्णाटगोत्र
4. वलता गोत्र	5. मोरक्षागोत्र	6. कुलहट गोत्र
7. वीरहरप्गोत्र	8. श्री श्रीमाल गोत्र	9. श्रेष्ठिगोत्र

दूसरे ओर वामबाहु के निम्नांकित गोत्र थे -

1. सुचंवंतिगोत्र	2. आदित्यनागगोत्र	3. भूरिगोत्र,
4. भाद्रगोत्र	5. चिंचटगोत्र	6. कुमट गोत्र,
7. कन्नोजियेगोत्र	8. डिडुगोत्र	9. लघुश्रेष्ठिगोत्र।[3]

गोत्र संख्या

ओसवंश के उद्भव से लेकर आज तक अनेक गोत्र बनते गये। धीरे धीरे इनकी शाखाओं-प्रशाखाओं में निरंतर वृद्धि होती गई। वर्तमान में ओसवालों के गोत्रों की संख्या ठीक ठीक नहीं बताई जा सकती। यति रूपचंदजी के 'जैनसम्प्रदाय शिक्षा' के अनुसार यह संख्या 440 और 'महाजन वंश मुक्तावली' के यति रामलालजी के अनुसार यह संख्या 609 है। एक

1. वही, 8-12 (टीका सवार्थसिद्धि)
गोत्रं द्विविधम- उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रमिति। यस्ययोदया
ल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्न तदुच्चेर्गोत्रम्। यहुदयाद्
गर्हि तेषु कुलेषु जन्म तन्नी चैर्गोत्रम्।

2. पद्म पुराण, 58-218

3. महाजन वंश मुक्तावली, पृ 52-53

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेवग द्वारा दी गई गिनती के आधार पर यह संख्या 1444 है। जैनों में 1444 की संख्या के प्रति विशेष आकर्षण और लगाव प्रतीत होता है। आचार्य हरिभद्र सूरि द्वारा सृजित ग्रंथों की संख्या जब हम ठीक ठीक ज्ञात नहीं कर सके, तो हमने कह दिया, उन्होंने 1444 ग्रंथों का सृजन किया। रणकपुर के मंदिर के खम्भों को भी जब हम ठीक ठीक नहीं गिन सके तो कह दिया, ये खम्भे 1444 हैं। इसी तरह अचलगढ़ आबू के चौमुख धातु की प्रतिमाएं जो संख्या में 12 हैं, उनका वजन भी 1444 ही मान लिया गया। ठीक इसी तरह ओसवाल वंश के गोत्रों की संख्या जब हम ठीक से नहीं गिन पाए तो कह दिया कि यह 1444 हैं।[1]

'उपकेशगच्छ चरित्र' के अनुसार उद्भव के समय 18 गोत्र माने और उत्पन्न गोत्रों की संख्या 498 मानी है। ओसवाल वंश के गोत्रों की संख्या की वृद्धि वटवृक्ष की तरह होती गई। 'उपकेशगच्छाचार्य और अन्य गच्छ के आचार्यों ने राजपूतों को प्रतिबोध दे जैन जातियों में मिलाते गये अर्थात् विक्रम पूर्व 400 वर्ष से लेकर विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक जैनाचार्य ओसवाल बनाते ही गये, ओसवाल की जातियों की संख्या विशाल होने के कारण यह हुआ कि कितने के तो व्यापार करने से, कितने एक ग्राम के नाम से, अन्य ग्राम जाने से पूर्वग्राम के नाम से, कितने के पूर्वजों ने देशसेवा, धर्मसेवा या बड़े बड़े कार्य करने से और कितनों के हंसी, ठठा, मस्करी से उपनाम पड़ते पड़ते, वे जाति के रूप में प्रसिद्ध हो गये। एक याचक ने ओसवालों की जातियों की गिनती करनी प्रारम्भ की, जिसमें उसे 1444 गोत्रों के नाम मिले। बाद में उसकी औरत ने पूछा हमारे यजमान का गोत्र आपकी गिनती में आया है या नहीं ? याचक ने पूछा कि उनका क्या गोत्र है ? औरत ने कहा, 'डोसी,' याचक ने देखा तो यह गिनती में नहीं आया, तब उसने कहा कि "डोसी तो और बहुत से होती। ओसवाल जाति एक रत्नागार है, इसकी गिनती होना मुश्किल है।'[2]

पट्टावलियों और वंशावलियों के अतिरिक्त इन गोत्रों के प्रमाण का और कोई परिचय आज उपलब्ध नहीं है, इसलिये पट्टावलियों और वंशावलियों में उपलब्ध सामग्री को ही प्रमाण स्वीकार करना पड़ेगा।

ओसवालों की अकारादि क्रम से दो सूचियां उपलब्ध है-

प्रथम सूची- बंधुसंदेश, मासिक पत्रिका की।[3]

द्वितीय सूची- 'इतिहास की अमरबेल- ओसवाल की'[4]

दोनों सूचियां यथावत् प्रस्तुत है। दोनों सूचियाँ किस सीमा तक पूर्ण है, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रथम सूची- 'ओसवाल दर्शन : दिग्दर्शन' की संशोधित सूची ओसवाल जाति की

---

1. ओसवाल वंश : अनुसंधान के आलोक में, पृ. 71
2. मुनि ज्ञानसुंदर जी, श्री जैन जाति महोदय, पृ 59-60
3. बंधु संदेश (मासिक पत्रिका)
4. श्री मांगीलाल भूतोड़िया, इतिहास की अमरबेल, प्रथम खण्ड, पृ 191-214

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मासिक पत्रिका 'बंधुसंदेश' में प्रकाशित हुई थी, उसे यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है।

गोत्रसूची - प्रथम

अकोल्या, अघोरा, अघोडा, अचल, अछड, अछूपत्ता, अछोइया, अजमेरा, अजीमगंजिया, अटकलिया, अनविध-पारख, अवड, अब्बाणी, अभड, अमराणी, अमरावत, अमी, अरणोदा, अलंकडा, असुम, असोचिया।

आईचणांग, आकतरा, आकाशमार्गी, आकोदडिया, आकोलिया, आखा, आगमिया, आगरिया, आधारिया, आच्छा, आडपायत, आथा, आथागोत, आदित्य, आदित्यनाग, आधेरिया, आबेडा, आमड, आमडरहा, आभाणी, आभू, आमर्ड, आमणी, आमदेव, आमू, आयरिया, आयारिया-लूणावत, आर्य, आलझउ, आलावत, आलीझा, आवगोता, आबड, आस्तेवाल, आसपुरा, आसराणी, आसाढ़िया, आसाणी, आसी।

इटीडका, इटोलिया, इलादिया, इलडिया, इसराणी, ईंद, ईंदाणी।

उएस, उकेश, उचितवाल, उजोत, उटडा, उडक, उतकण्ठ, उदावत, उदेचा, उनकण्ठ, उपकेश, उर, उदावत, उसतवाल, उसभ, ऊनवाल, ऊरण।

ओकश, ओडीचा, ओपरेचा, ओरडिया, ओबरेचा ओस्तवाल, ओसतवाला, ओसवाला, ओहड।

अंचल, अंभड, आँचल, आंचलिया।

कडक, कक्का, कक्कड, ककरेचा, कगरा, कच्छी, कच्छी-नागडा, कचरा, कछरा, कछावा, कछवाहा, कछीला, काजलोत, कजारा, कट, कटकथला, कटकथला-देसाई, कटारा, कटलेचा, कटारी, कटारिया, कटी, कंटोलिया, कठ, कठउड, कठफोड, कठारा, कठाल, कठियार, कठोड, कठोतिया, कठोरिया, कढिया, कडे, कणोर, कतकपुरा, कदमालिया, कनक, कन्हूडा, कन्यकुंज, कनिया, कनियार, कनोजा, कनाडा, कन्नैजिया, कपाइया, कपूरिया, कमल, कमेडी, करचू, करकट, करणा, कर्णाट, करणाणी, करणारी, करनावट (कर्णावट), करनेला, करमदिया, करमोत, करयु, कटरेडी, करवा, करहडी, करहेडी, करेलिया, करोडिया, कलवाणा, कलरोही, कलिया, कवाड, कवाडिया, कस्तूरिया, कसाण, कसारा, कसूंभा, कहा।

काड, काकरेचा, काकलिया, काकेचा, काग, कागडा, काछवा, काजल, काजलिया, काजाणी, काटी, काठेड, काठेलवाड, काड, काडक, कात्या, कातेल, कातेला, कातरेला, कानरेला, कानलोत, कानूंगा, कानूनगो, कान्नेला कान्हउडा, कापड, कापडा, कापडिया, कापूरीत, काबा, काबिया, काबेडिगा, कामदार, कामाणी, कायाणी, कारपूडिया, काल्य, काला, कावेडिया, काला-परमार, कावडिया, कावसा, काविया कास्टिया, कास्तवाल, काश्यप (कश्यप), कात्रेला।

कीमती, किराड, किरणाट, किरणाल, कीलिया, किलोला, किस्तूरिया, कीडेचा।

कूकड, कुगचिया, कुचेरिया, कुचोरिया, कुछाल, कुणन, कुणावत, कुदाल, कुबडिया, कुबेरिया, कुबुद्धि, कुभट, कुम्मट, कुम्भा, कुम्मज, कुर्कट, कुमकुम, कुरकुचिया, कुंरा, कुलगुरु,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुलधरा, कुलभाणा, कुलवट, कुलवंत, कुलहट, कुलहणा, कुसलोत, कुहाड (कुवाड), कुकडा, कूमड, कूमठ, कूमढ, कूहड।

केड, केदार, केराणी, केल, केलवाल, केलाडी, केसरिया, केसवाणेचा, केहडा।

कोकडा, कोकलियां, कोचर, कोचर-मूथा, कोचेटा, कोट, कोटडिया, कोटारिया, कोटारी, कोटी, कोटीका, कोटेकचा, कोठरिया, कोठारी, कोठारी-मेहता, कोठिया, कोठीफोडा, कोठेचा, कोणेचा, कोबर कोबेडा, कोराणी, कोल्या, कोलर, कोलड, कोलांग, कोलोरा, कोवडा, कोसेहिया, कोहेचा, कोसिया, कंकर, कंकालिया, कंच, कंजल, कान्यकुब्ज कांक, कांकलिया, कांकरिया, कांकरेचा।

कांग, कांगरेचा, कांगलिया, कांगसिया, कांचलिया, कांचिया, कांठिया, काठेड, कांधाल, कांवभा (कामसा), कांसटिया।

कांहूडा, कींचा, कुंकुम, कुंकुम-चोपडा, कुंकूरील, कुंजावत, कुंड, कुंडलिया, कुंडालिया, कुंदण, कुंपड, कुंपावत, कुंभारिया, कुंवरदे, क्यावर।

खगाणी, खड-भण्डारी, खड-भंसाली, खडबड, खडिया, खजांची, खटबल, खटहड, खटेड, खटोड, खटोल, खपाटिया, खमसरा, खमेसरा, खरधरा, खरहथ, खरे, खरेड, खवाड।

खाटोड, खान्या, खाबिया, खाभईया, खाबडिया, खारड, खारा, खारिया, खारीवाल, खारेड।

खिलची, खिमापादिया, खींचा, खीचिया, खींची, खीमसरा (खिवसरा), खीमसिरि, खीमसी, खीमाणदिया, खीया।

खुडधा, खुमाणा, खूतडा (खूथडा), खूमाण, खेचा, खेडिया, खेडेचा, खेतरपाल, खेतलाणी, खेंतसी, खेमानन्दी, खेमासरिया, खेमाहासिया, खेरवाल, खोडिया, खोखरा, खोखा, खोपर, खडिया, खिवसरा।

गगोलिया, गडिया, गजा, गटागट, गट्टा, गटिया, गटियाला, गडवाणी, गणधर, गणधर-चोपडा, गद, गद्देया, गधैया, गद्दिया, गदीया, गन्ना, ग्रथलिया, गर, गरुड, गल्लाणी, गलुंडक, गलूंडिया, गहलोत

गागा, गागाणी, गाडिया, गादिया, गाय, गलहा, गावडिया, गिडिया, गिणा, गिरमेर, गिरिया।

गुजराणी, गुजराती, गुणपालाणी, गुणहंडिया, गुणिया, गुनेचा, गुलगुलिया, गुवाल, गुगलिया, गुजरिया, गूजरगोत्ता, गूजर नागडा, गूडलिया।

गेमावत, गेरा, गेलाणी, गेवरिया, गेलडा, गेहलोत।

गोकड, गोखरु, गोगड, गोगरी, गोगलिया, गोगेड, गोडावत, गोडवाडिया, गोटावत,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोटेचा, गोढा, गोढी, गोतम, गोतमगोता, गोताणी, गोधरा, गोदावत, गोदिबा, गोध, गोप, गोपावत, गोमावत, गोरा, गोरावत, गोरीसाल, गोरेचा, गोलिया, गोलेच्छा, गोलछा, गोलबच्छा, गोवरिया, गोसल, गोसलाणी, गोसलिया, गोहिलाण, गौड।

गंग, गंगवाल, गंधिया, गंधी, गांगलिया, गांधी, गांची, गीगा गूँगलेचा, गूँदेचा, गूंगलिया।

घघेरवाल, घट्टा, घरवेला।

घींया, घीवाल।

घुल्ल, घुलिया, घेरिया।

घेवरिया, घोखा, घोडावत, घोरवाड, घोष।

घंघवाल, घंटेलिया, घांघरोल, घांघारी, घोंसल।

चतकरिया, चतर, चतुर, चतुरमूथा, चतुर-मेहता, चपडा, चपरोत, चपलावत, चपलोत, चम, चमकिया, चमनिया, चरड, चरवेडिया, चथ, चवहेरा, चहुआण।

चाचीगाणी, चापड, चापडा, चामड, चाल, चावा।

चिड़चिड़, चितालिया, चित्तौडा, चितोडिया, चिपडा, चित्रवाल, चीचंडा, चीचंट, चील, चील-मेहता, चीलिया।

चुखंड, चूदालिया, चुत्तर, चुत्र।

चेनावत, चेलावत।

चोक्खा, चोखेडिया, चोढू, चोथाणी, चोपडा (चौपडा), चोरडिया, चोरबेडिया, चीलू, चीवटिया, चोसरिया, चोहान (चौहान), चौखा, चौधरी, चौंमोला, चौहाना, चौहरना।

चंचल, चंडालिया, चंडालेचा, चंद्रावत, चम्प, चाम्पड, चींचट (चींचड), चीम्पड, चींपडा, चींपट, चुंखण्ड, चुंगा, चुंदोलिया।

छकलसोया, छछोहा, छजलाणी, छत्तीसा, छप्पनिया, छल्लाणी, छत्रवाल, छत्री, छतरिया।

छागा, छाछा, छाडोत, छाडोरिया, छाजहड, छाजहड-कजलोत, छाजेड, छापरवाल, छापरिया, छालिया, छाव, छावत।

छीलिया।

छेड, छेव, छेदवाल, छेर, छेवटिया, छैल, छोगाला, छोरिया, छोलिया, छोहया, छोहरिया, छोहया।

छांटा, छिगाणी।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जख, जग, जगडू, जगावत, जडिया, जडिया-तेलवाणी, जडूं, जणकारिया, जणिया, जदिया, जन्नाणी, जनारात, जमघोटा, जरगज, जल, जलावत, जलवाणी, जविया, जबेरी, जस्साणी, जसेरा, जक्षगोता।

जाईल, जाईवाल, जागा, जागडा, जाटा, जाणेचा, जाडेचा, जातडिया, जादव, जाबक, जाबलिया, जामडा, जारडा, जारोडिया, जारोली, जालाणी, जालोखा, जालोत, जालोरा, जालोरी, जावक, जावलिया, जासल, जाहड।

जिन्नाणी, जीजाणी, जीत, जीतोत, जीमणिया, जीरावत, जीरावला।

जुगलिया, जुबर्डा, जुष्टात, जुष्टल, जूनीवाल।

जेलमी, जेनावत, जेसगाणी, जैन, जैनावत।

जोखला, जोगडा, जोगडेचा, जोगनी, जोगनेरा, जोगपोचा, जोगिया, जोडिया, जोगाणी जोघड, जोध, जोधावत, जोधपुरा, जोरंडा, जोहा, जौहरी।

जंड, जांगड, जांगड-सिंधी, जांगडा, जाँगी, जांजी, जांतलिया, जांबड, जिंद, जिंदाणी (जिन्नाणी), जुंजाडा, जुंजाणा।

झगडावत, झबक, झवेरी, झलोरी।

झाकुलिया, झागड, झाडचूर, झाबक, झामड, झालाई, झाबॉणी।

झोटा।

झंड, झंबक, झांबड, झांबाणी, झांवावत, झावंरपाल।

टकुलिया, टप, टहुलिया, टागी, टाटिया, टापरिया।

टीकायत, टीकारो, टीबाणी, टीलिया।

टेका, टेवा।

टोडरमलोत, टोडरवाल, टोडरवालिया।

टंक, टंच, टांक, टाँटिया, टिंडीवाल, टिंबाणी, टुकालिया।

ठकी, ठकुर, ठगा, ठगाणा।

ठाकराणी, ठाकूर, ठाकुरा, ठाग, ठावा।

ठीकरिया, ठोलिया।

ठंठवाल, ठंठेरा।

डफ, डफरिया, डहत्थ।

डाक्टर, डाकले, डाकलिया, डाकूयालिया, डाकूलिया, डाकूपालिया, डागरिया,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डागरेचा, डागलिया, डागा, डाडेचा, डाबर, डावरिया, डाबा।

डिडूता, डिडुया, डिडु, डीडुल, डीडूता।

डुक, डूगरिया, डुबरिया।

डोठा, डोडिया, डोडियालेचा, डोडेचा, डोलण, डोसी।

डंड, डांगी, डिंडुम, डूंगरवाल, डूंगराणी, डूंगरिया, डूंगरेवाल, डूंगरोल।

ढ़ढ़ा (ढ़ड़ढ़ा)।

ढ़ाकलिया, ढ़ाबरिया, ढ़ासरिया।

ढ़िल्लीवाल।

ढेढिया, (ढेडिया), ढेंलडिया।

ढोर, ढींक।

तप्तभट, तरवेचा, तल्लाणी, तलवाडा, तलेरा, (तालेरा, तालेडा), तलेसरा, तलोवडा, तवाह।

ताकलिया, तातेड (तातहड), तातोल, तारावल, ताल, तालड, ताला, तालेडा।

तिरणाल, तिरवेकिया, तिरपंखिया, तिरपेकिया, तिरवेकिया, तिलखाणां, तिलहरा, तिल्लाणा, तिलेरा (तिल्लेरा), तिल्लाणी, तिलोरा, तिहुपणा, तीवट।

तुला, तुलावत, तुहाणा, तूता।

तेजपालाणी, तेजाणी, तेजारा, तेजावत, तेलडिया, तेलहरा, तेलिया, तेलिया-बोहरा, तेलेरा।

तोला, तोडरवाल, तोलीवाल, तोडयाणी, तोलावत, तेलिया, तोसटिया, तोसरिया, तोसलिया।

ताँण, तुंग, तांबी, तुंड, तुंगा।

थटेरा, थरदावत। थानावट, थारावत, थावराणी, थाहर। थिरवाल, थिराणी, थिरावाल।

थोरवाल, थोरिया।

थंमोरा, थांभलेचा।

दईया, दक, दरव, दट्टा, दणवट, दफ्तरी, दरगड, दरगेडा, दरड, दरडा, दलाल, दवरी, दस्साणी (दस्सानी), दसाणी, दसवाणी, दसवाणी, दशलहरा, दसोरा, दहा।

दाउ, दाखा, दाड, दांडीवाल, दाणीं, दातारा, दातेवाडिया, दादलिया, दाना, दानेसारा,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दालिया, दासोत।

दिल्लीवाल, दिन्नाणी, दीपक, दीपग।

दुग्ग, दुग्गड (दूगड), दुठाहा, दुडिया, दुढ़ाहा, दूणीवाल, दुनिवाल, दुद्धोणी, दूदवाल, दूदवेडिया, दूधिया, दूधिया-गांधी, दूधेडिया (दूधोडिया), दूघारिया, दूघोडा, दूसाज, दूसाजा।

देडिया, देढ़िया, देधराणी, देपालाणी, देपरा, देपारा, देमारा, देदाणी, देयाणी, देरासरिया, देलडिया, देलवाडिया, देवड, देबडा, देवराजोत, देवलसखा, देसरला, देसलाणी, देसाई, देहडा, देहरा।

दोलताणी, दोसाखा, दोसी।

दांढडिया, दांतेवाडिया, दींग।

धकट, धडवाई, धतूरिया, धन, धनचार, धनडाया, धनंतरी, धनपाल, धन्नाणी, धनारी, धनेचा, धनेजा, धनेरिया, धवडिया, धम्मल, धम्माणी, धमाणी, धर, धरकट, धरकूटा, धरा, धर्म, धरमाणी, धलईपा।

धाकड, धाकडिया, धाडावत, धाडीवाल (धारीवाल), धाधलिया, धामाणी, धाडेवाल, धाडेचा, धातूरिया, धाया, धारा, धारिया, धारोत, धारोला, धावडा, धावाड।

धीया, धीर।

धुर धुरवाणी, धुल्ल, धुवगोता, धुन्नोत, धूपड, धूप्या, धूपिया, घूमावत।

धेनडाया, धेनावत, धेलाणी।

धोका, धोका धोखा, धोखिया, धोल, धोप्या।

धंग, धंधला, धाँगी, धींग, धींगा, धींगड, धूंधिया, धूंपियाधोल।

नकीयाणी, नक्खा, नखत, नखरा, नखा, नरखीत्रेत, नग, नगगोता, नथावत, नन्दक, नन्दावत, ननगाणी, नपावलिया, नरवरा (नरुवरिया), नहसिंधा (नरसिंहा), नरायण, नलबाया, नलिया, नवकुद्दाल, नवलखा (नौलखा), नवब, नक्षत्र, नक्षत्रगोता।

नाग, नागगोत्र, नागड, नागडा, नागण, नागणा, नागदौन, नागपर, नागपुरा, नागपुरिया, नागसेठिया, नागर, नागार्जुनाणी, नागौरी, नाचाणी, नाडुलिया, नाडोलिया, नाणा, नाणागोता, नाणावट, नाणी, नाथावत, नानकाणी, नानावट, नानावटी, नानेचा, नापडा, नामाणि, नायकाणी, नारण, नारणवाल, नारिया, नारेला, नारेलिया, नारोलिया, नालेरिया, नावटा, नावटी, नावरिया, नावसरा, नावेडा, नावेडार, नाहउसरा, नाहटा, नाहर (नहार), नाहरलाणी, नाहार।

निधि, निबोलिया, निरखी, निलडिया, नियाणी, निसाणिया, नीमाणी, नीवरडा, नीवणिया, नीसटा, नीसर।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नेणवाल, नेणसर, नेणसरा, नेर, नेरा, नेनावटी।

नोडाणी, नोपत्ता, नोपाली, नोपोला, नौलखा।

नंदरक, नन्दावत, नांदेचा, नांनेचा, निंबडिंया, निंबाडा, निंबरडा, निंबणिया, निंबेडा, निंबोलिया, निंवेडा।

पगाटिया, पगारिया, पगोरिया, पडगतिया, पडाईया, पडियार, पडिहार, पचनावत, पचायणीच, पचीसा, पछोलिया, पटणी (पटनी), पटवा, पटवारी, पटविद्या, पटावरी, पटोल, पटोलिया, पठाण (पठान), पदमावत, पमार, परडिया, परजा, परधान, परधला, परधाला, परधालिया, परमार, पल्लीवाल, पसला, पहाडिया, पड।

पाका, पाचोरा, पाटणी (पाटनी), पाटणिया, पाटलिया, पाटोत, पाटोतिया, पाटांनिया, पातावत, पानगढिया, पानगडिया, पानोत, पापडिया, पामेचा, प्रामेचा, पारख, पाराणिया, पारसन, पालखिया, पालगोता, पालडेचा, पालणपुरा, पालणेचा, पालरेचा, पालाणी, पालावत, पालेचा, पावेचा, पाहणिया।

पिछोलिया, पिरगल, पीतलिया, पीथलिया, पीथाणी, पीपला, पीपलिया, पीपाडा, पीहरेचा।

पुकारा, पुगलिया, पुजारा, पुजारी, पुहाड, पूण, पूनमिया (पूनम्याँ), पूनोत, पूनोत-गोधरा, पूराणी, पूर्बिद्या, पुष्करणा।

पेथडाणी, पेथाणी, पेपसरा।

पोकरणा, पोकरवाल, पोखरणा, पोतदार, पोपाणी, पोपावत, पामसियाणी, पोमाणी, पोसालिया, पोलडिया, पोसालेचा, पोसालेवा, प्रोचाला।

पंचकुदाला, पंचलोढ़ा, पंचवना, पंचा, पंचायणेचा, पंचावत, पंचवया, पंचाणेचा, पंचायणी, पंचोरी, षंचोली, पंचोली-बाबेल, पंडरीवाल, पंवार, पंसारी, पंचा, पांचावत, पांचारिया, पांडूगोता, पीचा, पींपाडा, पूंगलिया, पेंचा, पैंतीसा।

फतहपुरिया, फलसा, फलोदिया।

फार्कारिया, फाल, फालसा, फाफू।

फितूरिया, फिरोदिया।

फूमडा, फूलगरा, फूलफगर, फूसला।

फोकटिया, फोफलिया, फोलिया।

बकरा, बकील, बकियाणी, बग, बगडिया, बगचार, बगाणी, बगला, बघेरवाल, बडगौता, वडजातिया, बडबड, बडभट्टा, बडला, बड़गीता, बडलोया, बडाला, बडेर, बडेरा, बडोल, बडोला, बडोरा, बच्छावत, बच्छस, बजाज, बट, बटबटा, बडोदिया, बढाला, बण,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बणभट, बणवट, बलदोटा, बदलोढ़ा, बदलिया (बदालिया), बद्धड़, बद्धण, बधाणी, बबोईया, बनबट, बनावत, बप्पनाग, बब्बर, ववाल, बबाला, बबूकिया, बबेर, बया, बरकिया, बरड, बरण, बरडिया (बरहडिया), बराड, बरडेया, बरदिया, बरपत, बरमेचा, ब्रह्मेचा, बरलेचा, बरसाणी, बरहुडिया, बराड, बरादूपिया, बरुआ, बरुडिया, वरीदिया, ब्रद्ध, बला, बलदेवा, बल्लड, बलदोब, बलदोटा, बलहरी, बलाहारा, बलाई (बलाही, बलही), बलोटा, ववाल वेला, बसाहा, बहडा, बहाणी, बहरा, बहुड, बहूबोल, बहुरा, बहीरा।

बाकरमाल, बाकुलिया, बाखोटा, बागडिया, बागडेचा (बागरेचा), बागचार (बाघचार), बागजयाणी, बागजयासी, बागरेचा, बागला, बाघ, बाधडी, बाघमार (बागमार), बाधणा, बाड़भटा, बाडोना, बातडिया, बातोकडा, बादरिया, बादवार (बादवोर), बादलिया, बादोला, बाधाणी, बानीगोता, बानुणा, बानेत, बानेता, बापडा, बापवत, बापावत, बापना (बहूफणा), बाबेल, बाबी, बामाणी, बायरगोता, बारडेचा, बाराणी, बाल, बालगोता, बालड, बालडा, बालत्य, बालबा, बालोटा, बालोत, बालह, बाला, बालिया, बालोटा, बालोत, बावरिया, बावरेचा, बावेल (बाबेल), बावेला, बाहडा, बाहणी, बाहला, बाहरिया, बाहबल बाहूबली।

बिछावत, बिजात, बिदाणी, बिदामिया, बिनय, बिनसट, बिनसर, बिनायक, बिमल, बिरदाल, बिरमेचा, बिलस, बिरहट, बिशाल, विषापहरा, बीजला, बीजाणी, बीजावत, बोजोत, बीतरागा (वीतरागा), बीर (वीर), बीराणी, बीराबत, बीसराणी, बीसलाणी, बीसरिया।

बुगला, बुच्चा, बुचाणी, बुटिया, बुड, बुरड, बुबकिय, बुहड, बूजाडिया, बूलिया।

बेगड, बेगवाणी, बेगाणिया, बेगाणी (वैगाणी), बेछात, बेताल, बेताला, बेतालिया, बेराठी, बेद, बेला, बेला-भण्डारी, बेलावत, बेलिया, बेलीम, बेलहस, बेवल, बेहड, बोक, बोकडा, बोकडिया, बोकडासा, बोकरिया, बोगावत (बोरधिया), बाचाणी, बोत्थानी, बोथरा, बोमीचा, बोरड, बोरडा, बोरडिया, बोर्डिया, बोरदिया, बोरधा, बोरधिया, बोरा, बोराणा, बोराणा-राठोड, बोरिया, बोरुदिया, बारेचा, बोरीचा, बोरोचा, बोलिया, बीसूदिया, बोहड, बोहरा, बोहरा-काग, बोहरिया, बोहित्थरा।

बंका, बंग, बंगाला, बंदा, बंदा-मेहता, बंब (बम्ब), बंभ, बंबोई, बंबोरी, बंश, बंबोडा, बांका, बोगाणी, बाटिया, बांठिया, बांदोलिया, बांबडा, बांम, बंबल, बांवलियां, बिंबा, बुम्ब, बैंगाणी।

भक्कड, भगत, भगालिया, भडकतिया, भडगतिया, भडगोता, भडमेचा, भडास, भट्ट, भट्टारकिया, भटनेरा, भटेरा, भटेवडा, भंडासा, भटावर, भणोत, भणूकिया, भद्र, भद्रा, भदेश्वर, भमराणी, भभावत, भयाण, भयाणा, भर, भरकीयाणी, भरद्द, भरथाण, भरवाल, भरह, भलगट, भलणिया, भलभला, भल्ल, भल्लडिया, भला, भवलिया, भसीड।

भाईचणा, भाखरिया, भागू, भाडेगा, भाटिया, भाटी, भाणद, भाणेंश, भादनिया, भादर, भाद्रगोता, भाद्रा, भादानी, भानावत, भाभू, भाभू-पारख, भामड, भामराणी, भाया,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाराणी, भाला, भावडा, भावसार।

भिन्नमाला, भीटडिया, भीनमाला, भीमावत, भीर, भीलमार, भुगडी, भुगतरिया, भुटो, भुणिया, भुरट, भुरदा, भुरट, भूतडा, भूतिया, भूतेड, भूतेडा, भूतेडिया (भूतोडिया), भूय, भूरट, भूरटिया, भूरा, भूरी, भूलडा, भूलाणी, भूसल, भूषण।

भेलडा, भेलडिया, भेला।

भोगर, भोजाणी, भोजावत, भोढ़ा, भोपावत, भोपाला, भोभलिया, भोर, भोरडिया, भोल।

भंगलिया, भंडगोता, भंडलिया, भंडसाली, खड-भंसाली, राय-भंडसाली, इसरा-भंसाली, भंडारा, भण्डारी, भडासरा, भणवट, भंवरा, भंसाली (भणसाली), भांडावत, भांडिया, भंझड, भांभट, भींड, भूंडलिया, भैंसा।

मक्कलवाल, मकवाणा, मकाणा, मकुयाणा, मखाणा, मगदिया, मघासरिया, मडिया, मच्छा, मछराला, मट्टड, मट्टा, मठा, मणहरा, मणहरिया (मणहाडिया), मणहेडा, सणियार, मथाणा, मथाल, मथुरा, मदारिया, मदरेचा, मदारिया, मन्ना, मन्नी, मनहानी, ममैया, मरडिया, मरडेचा, मरलेचा, मरवाणी, मरुवा, मरुथलिया, मरोठिया, मरोठी, मलटिया, मल्ला, मल्लारा, मल्लावत, मल्लावत-बाँठिया, मल्हाडा, मलेशा, मसरा, मसाणा, मसाणिया, महड, महणोत (मनोत), महत्था (महत), महतियाण, महरोड, महाजन, महाजनिया, महापाल, महाभद्र, महावत, महिपाल, महिवाल, महीरोलन, महेच, महेचा, महेला, महोता, महोरा।

माधवाणी, माघोरिया, माडलिया, माडोत, माणकाणी, माणावत, माथुरा, मादरेचा, मादुरा, माधवाणी, माघेटिया, माघोरिया, मानी, मारलेचा, मारु, मालक, मालकश, मालखा, मालतिया, मालदे, मालनैसा, मालविया, माल्हणु, माल्हाजा, माला, मालाणी, मालावत, मालू, मालोत, माहालाणी।

मिचकिन, मिछेला, मिठा, मिणियार, मिनागरा, मिनारा, मिनिया, मिन्नी, मीठडिया, मीठडिया सोनी, मीठानागरा, मीनारा, मीहा।

मुकीम, मुखतरपाल, मुगडिया, मुणोत (मुहनोत), मुत्ता, मत्थड, मुन्नी, मुन्नी-बोहरा, मुनहानी, मुमडिया, मुरगोपाल, मुरगीवात, मुरडिय (मरडिया), मुरदा, मुलला, मुसलिया, मुहणाणी, मुहणो, मुहाणाणी, मुहाला, मुहालिया, मृहिमवाल, मुहियड, मुहिलाण, मूघा, मूदा, मूधाला, मूमडियां, मूलमेरा, मुलाणी।

मेघा, मेघालजानी, मेडतवाल, मेडतिया, मेताला, मेनाला, मेमवाल, मेर, मेराण, मेलाणी, मेहमवार, मेहर, मेहता, मेहू, मैराणा।

मोगरा, मोगिया, मोघा, मोडत, मोडोत, मोटावत, मोटाणी, मोतिया, मोतियाण, मोदी, मोर, मोरख, मोरच, मोरचिया, मोराक्ष, मोहलानी, मोलानी, मोहडा, मोहनाणी, मोहनोत, मोहता, मोहब्बा, मोहलाणी, मोहिनानी, मोहीवाल, मोहीवाला, मौतियाणी, मंगलिया।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंगीवाल, मंडलीक, मंडोचित, मंडोचिया, मंडोंवरा, मंदिरवाल, मेसाणिया, मेम, मंत्री, मंहोरा, मांगेत, मांडलेचा, मांडोत, मांडोता, मुंगडिया, मुंगरोल, मुंडणेचा, मुंहानी, मुंहियण, मूंहिमवाल, मूंगरवाल, मूंगरेचा, मूँधडा, मेंहु।

यति, यक्ष, यक्षगोता।

यादव।

योगड, योगेसरा, योद्धा।

रखवाल, रणधीर, रणधीरोत, रणसोत, रणशोभा, रत्ताणी, रत्ताणी-बोथरा, रतनगोता, रतनपुरा, रतनसुरा, रतनावत, रहेडा। राक्यान, राकावाल, राखडिया-बोहरा, राखेचा, रागली, राडा, राजगंधी, राजडा, राजदा, राज-बोहरा, राजध्याना, राजसरा, राजाणी, राजावत, राजोत, राठोड, राठौडिया, राठा राठी, राणाणी, राणावत, राणोत, रातडिया, रामपुरिया, रामसेन्या, रामाणी, रामावत, राय रायजादा, रायजादा-बाफणा, रायपुरिया, राय-भण्डारी, राय-भंसाली, राय सुराणा, रायसोनी, राव रावत, रावल, राहड।

रिखब, रिसाण, रीहड, रुगवाल।

रुणवाल, रुणिया, रुनीवाल, रुप, रुपधरा, रुपावत, रुपावर।

रेड, रेनु, रेहड, रैदानी, रैदासनी।

रोआँ, रोटांगण, रोहिल।

रंक, रांका, रुंगलेचा, रुंगवाल।

लक्कड, लघु-कुम्मट, लघु-खंडेलवाल, लघु-चमकिया, लघु-चिंजट, लघु-चूंगा, लघु-चौधरी, लघु-नाहटा, लघु-पारख, लघु-पोकरणा, लघू-भूरंट, लघु-रांका, लघु-राठी, लघु-समदरिया, लघु-सुरवा, लघु-संघवी, लघु-सोढ़ती, लघु-सोढानी, लघु-संचेती, लघु-हिंगड, लघु-श्रेष्ठी, लछा, ललवाणी (ललवानी), ललानी, ललित, लसोड, लहरिया।

लाखानी, लाछी, लाडवा, लाडलरवा, लामानी, लाम्बा, लामड़, लालण, लालन, लाला, लालानी, लालेन, लालोत, लाहोरा।

लिरुणा, लीगा, लीगे, लीरुणा।

लुटंकण, लुणवाल, लूणा, लुणावत, लूणिया, लूणेचा, लूसड।

लेरखा, लेल, लेला, लेवा, लेहरिया।

लोटा, लोढ़कर, लोढ़ा, लोढा-राय, लोम्बा, लोलग, लोला, लोलेचा, लीसर।

लिंगा, लीम्बा, लींबडा, लींबडिया, लूंकड, लूंग, लूंडा, लँबक, लूंगावत, लूंछा, लौंकड।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वकील, वडेर, वडेरा, वर्धन, वर्धमान, वरदिया।

वागानी, वागजयासी, वाघमार, वाजियानी, वानूणा।

विद्याधर, विनय, विनायक, विनायका, विनायकिया, विरहट, विषापहार, वीतरागा, वीर।

वैद्य, वैद्य-गाँधी, बैद्य-मेहता।

स्थूल, स्याल, स्याला, सकलेचा, सकलाद, सखद, सखाणी, सखला, सखलेंचा, सखानी, सगरावत, सचिया, सचोणा, सणवा, सध्यानी, सधरा, सधराणी, सफला, सभद्रा, समदडिया, समधडिया, समरखी, समुदिक, समुद्रडिया, समूलिया, सरजानी, सरभेला, सरभेल, सरला, सरवाला, सरा, सराफ, सराहा, सरुपिया, सरगनी, सलगणा सलगना, सलगवा, सवरला, सवलिया, सवाया, सहचेती, सहचिंती, सहजानो, सहलोत, सहसगुणा, सहसगुणा-गाँधी, सही।

साखेचा, सागानी, सागावत, साचा, सचावट, साचासंधि, साचोरा, साचोरी, साढ, साढा, साढेराव, सादावत, साधि-मेहता, साधु, सानी, सारंगणि, सामडा, सामद्रा, सामर, सामोता, सायानी, सायलेचा-बोहरा, सारुपारिया, सारुप्रिया, सालीपुरा, सालेचा, सावन, सावणसुखा, सावलसखा, सावलिया, साह, साहलेचा, साहचिंती, साहिबगोता, साहिला, साहलेचा, साहावाठिया, साहाबोथरा, सहिला, साहुलेचा, साहुला, सिखरिया, सिधाडिया, सिचिवाल, सिणगार, सियार, सियाल, सिरहट, सिरोहिया, सिसोदिया।

सीखरिया, सीखा, सीखानी, सीगाला, सीप, सीपानी, सीलरेचा, सीवाणी, सीसोदिया।

सुखनिया, सुखलेचा, सुखा, सुखानी, सुखिया, सुगणिया, सुघड, सुजन्ती, सुंट, सुथड, सुदेवा, सुघरा, सुधा, सुघेचा, सुबाजिया, सुभन्ना, सुभादा, सुरती, सुरपिया, सुरपारिया, सुरपुरिया, सुरभरा, सुरहा, सुरडिया, सुराणा, सुराणिया, सुरिया, सुवर्णगिरी, सुसानी, सुसांखुला, सूकाली, सूघड, सूचा, सूधा, सूर्या, सूर, सूरति, सूरपुरा, सूरमा, सूरया, सूहा।

सेखाणी, सेजावत, सेठ, सेठिया, सेठिया-पावर, सेठिया-वैद्य, सेठी, सेठीपारा, सेणा, सेमलानी, सेलहोत, सेलोत, सेपडिया, सेलवाडिया, सेवडिया, सेवाजी, सेहजावत।

सोजतवाल, सोजतिया, सोजन, सोठिल, सोढ़ा, सोढ़ानी, सोधिल, सोनगरा, सोना, सोनाणा, सोनारा, सीनावट, सोनावत, सोनी, सोनीगरा, सोनी-बाफणा, सोनीभिंडे, सोनेचा, सोफाडिया, सोभावत, सोमलिया, सोमाणी, सोमालिया, सोलंकी (सोलंखी), सोसरिया, सोसलाणी, सोहनवाडिया, सौवणिंक।

संकलेचा, संखला, संखलेचा, संखवाल, संखवालेचा, संघवी, संधी, संघोई, संचेती, संड, सेडासिया, संधी, संभारिया, संभुआता, संवला, संवलिया, सोईया, सांख्या, सांखला, सांखला-परमार, सांखलेचा, सांगानी, सांचोपा, सांचोरा, सांड, सांडेला, सांढ़ा, सांढ़िया, सांपद्राह, सांपुला, सांबर, सांवलिया, सांबर, सांभरिया, सांसला, सिंगड, सिंघल, सिंधी, सिंघवी,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिंघलोरा, सिंघला, सिंघूडा, सिंघुडा, सिंदरिया, सिंहावट, सिंहावत, सींधाडिया, सींचा, सींपाणी, सुंदर, सुंघड, सुंडाल, सुन्धा, सूंघेचा, सूँडाल।

श्यामसुखा (शामसुखा)।

शाह (शाहा), शाह-छाजेड।

शिवा, शिगाला, शीशोदिया।

शुकनिया, शूरमा, शूरवा।

शेखावत, शेठ।

शौराण।

हगुडिया, हठिल, हठीला, हठूंडिया, हरथाल, हथूंडिया, हमीर, हलदिया, हरखावत, हरगणानी, हरण, हरयाणी, हरसोट, हस्ती हरसोत, हरसोरा, हर्षावत।

हाकडा, हाका, हाटिया, हाडा, हाडेरा, हाथाल, हापाणी, हाला, हाहा।

हिया, हिरण, हिरणा, हिराऊ, हिराणी, हीडाउ, हीपा, हीया, हीया, हीराबत।

हुकमिया, हुडिया, हुना, हुब्बड, हुला, हुवा।

हेम, हेमपुरा, हेमादे।

हंस, हंसा, हंसारिया, हांडिंया, हांसा, हिंगड, हींगल, हुंडिया।

त्रिपंखी, त्रिपेकिया।

ऋषभ, ऋषभगोता।

श्राप, श्रावण सुखा।

श्रीपति, श्रीपणा, श्रीमाल, श्रीवंश, श्रीवर, श्री श्रीमाल।

श्रेष्ठि।

गोत्र सूची (द्वितीय -क)

ओसवाल जाति के कच्छ सौराष्ट्र एवं गुजरात में बसे गोत्रों/खापों की सूची

अधोदूया	आभाणी	कटारिया
अभराणी	आल्हा	कपाइया
अलियाण	आसराणी	करणाणी
आग्नेय	इसराणी	करणीया
आथा	कऊड	कांकरिया
आंबलिया	कका	कात्यायन
		कांटिया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कापडिया
कामसा
कायाणी
काला
काला परमार
काश्यप
कुलधर
कुपर्द
केनिया
कोकलिया
कोठारी
कोराणी
खेतलाणी
खोडायण
खोना
गटा
गदा
ग्रंथलिया
गागाणी
गादबाणा
गांधी
गाला, गाल्हा
गुगलीया
गेलाणी
गोखरू
गोठी, गोष्ठी
गोदड़ा, गोदड़िया
गोपाउत
गोसल
गोसलीया
गौतम
घट्टा
घलइया
घेलाणी
चंडीसर
चिंचट
चोथाणी
चौपड़ा
चौधरी
चोखेड़िया
चौहान
छकलसीया
छाजेड़
छुटसखा
छेडा
छोवट्टाणी
जवेरी
जांबड़
जाजा
जासल
जाहड़
झवेरी
ठक्कर
ठाकराणी
डहरवालिया
डूंगराणी
डोडिया
डोडियालेचा
ढ़ार्सारिया
ढ़ेढ़िया
तातोल
तालाणी
तेजपालाणी
थावराणी
दंड
दाघेलिया
दांठड़ी
दिन्नाणी
दुघड़
देढ़िया
देपालाणी
देयाणी
देवया
देवड़ा
देवाणी
देवाणदसखा
देसलाणी
दोसी
धरोड
धुरियाणी
नकीयाणी
नपाणी
नागड़ा
नागना
नाखुयाणी
नागार्जुनाणी
नागर
नाहर
नीकीयाणी
नीसर
नोद्राणी
पडाईया
पंचायाणी
पबाणी
परमार
परीख, पारीख, पारेख,
पाटलिया
पारस
पारायण
पांचारिया
पालणपुरा
पावेचा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रामेचा
पीपलिया
पुराणी
पेथडाणी
पेथाणी
पोम
पोलडीया
बकीयाणी
बहंद
बहुल
ब्रह्मशांति
बाधाणी
बीसलाणी
बुहड़
बेरीया
बोरीया
बोहड़
बोहरा
भणसाली, भांडशाली
भंडारी
भरकीथाणी
भादरायण
भारद्वाज
भुंबाणी
भुलाणी
भूगतरिया
भोर
मथाल
मणियार
मरुथलिया
महाजनी
महीरोल
महेता
महोता

महुडिया
महुडिया गांधी
माणकाणी
मालदे
मालाणी
माल्हू, मालू
मीठड़िया
मुमणिया
मूलाणी
मेघाजलाणी
मेलाणी
यशोधन
राजाणी
राठौड़
राणाणी
राणाथी
रांका
लघुशाखा
लाखाणी
लाछिल
लाछी
लालन
लालाणी
लींबड़िया
लोडाईया
लोडाया
लोढ़ा
लोढ़ायण
लोलड़िया
वकीयाणी
वडेरा
वड़हरा
वंशीयाण
व्यवहारी

वरहडिया, वरहुडिया
वहोरा
वागड़िया
वागड़ेचा
वांछिया
वारध
वाहणी
विषपहार
वीखरी
वीजल
वीसरिया महेता
वीसाणी
वृद्ध शाखा
शंख
शाएला
शाह
शंखेश्वरिया
शेढ
शत वर्धवान
सचीया
सध्याणी
सघराणी
संघवी
स्याल
समरसी
सरवण
सरवाणी
सहसगणा
सहस्रफणा
सहस्रफणागांधी
सांईया
सांड
साचोरी
सांडल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सांडसा	सिवाणी	सोनगिरा
सांयाणी	सीयाणी	सोनी
साहुला	सुगंधी	सौराणकीया
साधु	सुवर्णगिरा	हथुडीया
सायलेचा	सुराणा	हरगणाणी
सिंघलोरा	सेल्होत	

हरिया
हरियाण
हरियाणी
हापाणी
हीराणी
श्री पल्लिवाल
श्रीपाल
श्रीमाली
श्री श्रीमाली
ऋषभ

(2) गोत्र-सूची (द्वितीय 'ख')

उक्त समस्तनाम भी नहीं मालूम। हमाराअजीमगंजिया
विवरणों के आधार पर समस्तसमाज इतना वृहद् है कि अबअटकलीया
ओसवाल गोत्रों की एकवैवाहिक सम्बन्धों के सन्दर्भ मेंअंचल
प्रमाणिक सूची यहाँ प्रकाशितगोत्रों का कोई औचित्य नहींअनविध पारख
की जा रही है जिसमें कुल 26रहा। अंबड़
00 गोत्रों के नाम संग्रहीत हैं। यह सूची भी पूर्णअबाणी, अब्बाणी
अनेक गोत्रों के नाम स्थान वनहीं कही जा सकती। होअभड़
समय के विपर्यय से बदलते रहेसकता है अनेक गोत्रों के नामअभाणी
हैं। गणना में उन्हें 'एक' गोत्रछूट गयेअभराणी
ही माना है। अनेक गोत्र ऐसेहों। अमरावत
हैं, जो किसी बड़े गोत्र कीअकोल्या अमी
शाखा या उपशाखा हैं।अधोरा, अघोड़ा अरणोदा
कालान्तर में उन्होंने अपनीअछड़ अलंझड़ा
अलग पहचान बना ली अतःअछुपता असुभ
उन्हें भिन्न गोत्र मान लिया है।अछोइया असोचिया
अनेकों को अपने पूर्व गोत्र काअजमेरीया आईचणाग

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आकतरा
आकाशमार्गी
आकोदड़िया
आकोलिया
आखा
आगमिया
आगरिया
आधारिया
आछा, आच्छा
आडपायत
आथा
आथागोत
आदित्य
आदित्यनाग
आदितनाग
आधेरिया
आँचल
आँचलिया
आँचल्या
आबेड़ा
आभड़रहा
आभड़
आभाणी
आभू
आमड़
आमणी
आमू
आमदेव
आयरिया
आर्य
आलझड़ा
आलावत
आलीझा
आवगोता
आवड़
आस्तेवाल
आसपुर
आसराणी
आसाढिया
आसाणी
आसी
इटोडका
इंदा
इंदाणी
इलदिया
इसराणी
उएस, उकेश, ऊकेश
उचितवाल
उजोत
उटड़ा
उड़क
उत्कंठ
उद्धावत, ऊदावत
उदेचा
उनकण्ठ
उपकेश
उर
उस्तवाल
उसतवाल
उसभ
ऊनवाल
ऊरण
ओकेश
ओडीचा, ओदीचा
ओपेचा
ओरड़िया
ओरा
ओवरेचा
ओस्तवाल
ओसतवाल
ओसवाल, ओशवाल
ओहड़
कउक
क्यावर
कर्करेचा
कक्का
कक्कड़
कगरा
कड़क
कड़ावत
कड़िया
कड़े
कच्छी
कच्छी नागड़ा
कचरा
कछारा
कछावा
कछवाहा
कछोला
कजलोत
कजारा
कटकथला देसाई
कटलेचा
कटारा
कटारी
कटारिया
कटी
कटोलिया
कठ
कठउड़
कठफोड़
कठारा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कठाल
कठीयार
कठोड़
कठोतिया
कठोरिया
कर्णावट
कर्णाट
कणोर
कतकपुरा
कदामालिया
कंकर
कंकालिया
कंच
कंजल
कंठीर
कंबेड़ी, कमेड़ी
कन्याकुब्ज
कनक
कनीय
कनियार
कनोड़ा, कन्हूड़ा
कनोजा
कनोजीया, कन्नोजिया
कपाईया
कपूरिया
कबाड़
कबाड़िया
कमल
करकट, कर्कट
करणा
करणाट
करणाणी
करणारी
करणावट, कर्णावत

करनेला
करमदीया
करमोत
करयु करेरड़ी
करवा
करहड़ी, करहेड़ी
करेलिया
करोड़िया
कलवाणा
कलरोही
कलिया
कवाड़
कवाड़िया
कस्तुरिया
कसाण
कसारा
कसूंभा
कहा
काउ
काकरेचा
काकलिया
काग, कागोत
कागड़ा
काछवा
काड़क
काजल
काजलिया
काजाणी
काटी
काठेड़
काठेलेवड़ा
काड
कात्या
कातेल

कातरेला
कांक
कांकलिया
कांकरिया
कांकरेचा
कांग, कांगरेचा
कांगसिया
कांचिया
कांटिया
कांठेड
कांधाल
कांवसा, कामसा
काँस्टिया
कान्हूड़ा
कानरेला
कानलोत
कानूँगा, कानूगा
कानूनगा, कानूनगो
कान्नेला
कापड़
कापड़िया
कापुरीत
काबरिया
काबा
काबिया
काबेडिया
कावेड़िया
कांबेड़िया
कामदार
कामाणी
कायाणी
कारणी
कारपूंडिया
काराजी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काल्या
काला
काला परमार
कावड़िया
कावसा
काविया
कावेड़िया
कांस्टिया
कासतवाल
काँसेरिया
काश्यप, कश्यप
कात्रेला
किमती
किराड़
किरणाट
कींचा
काटेचा
कीलोला
कीस्टूरिया
कुकड़, कुक्कड़, कुक्कुड़
कुकड़, चोपड़ा
कुगचिया
कुचोरिया
कुचोरिया, कुचोर्चा
कुछाल
कुणन
कुणावत
कुदार, कुदाल
कुंकुम
कुंकुम चोपड़ा
कुंकुरोल
कुंजावत
कुंड़
कुंड़लिया, कुंडालिया
कुंदण
कुंपड़
कुंपावत
कुंभारिया
कुंवरदे
कुबड़ीया, कुबाड़िया
कुबेरिया
कुबुद्धि
कुभटा
कुम्मट, कुम्भट, कुमठ
कुम्भा
कुर्कट
कुरकुचिया
कुरा
कुलगुरु
कुलधरा
कुलभाणा
कुलवट
कुलवंत
कुलहट
कुलहणा
कुसलोत
कुहाड़, कुआड़
कुवाँड़, कुवाड़
कुकड़ा
कूमढ़, कूमठ
कूहड़
केड़
केदार
केराणी
केल
केलवाल
केलाड़ी
केसरिया
केसवाणेचा
केहड़ा
कोकड़ा
कोकलीया
कोचर
कोचरमूंथा
कोचेटा
कोट
कोटड़िया
कोटलिया
कोटारी
कोटीका
कोटी
कोटेचा
कोठरिया
कोठारी
कोठारी
मेहता
कोठारी चोपड़ा
कोठिया
कोठीफोढ़ा
कोठेचा
कोणेजा
कोबर
कोबेड़ा
कोराणी
कोल्या
कोलर, कोलड़
कोलोरा
कोहेचा
कौसीया
खगाणी
खड़ भंडारी
खड़ भंसाली

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खड़बड़
खड़िया
खजांची
खटवड़, खटहड़
खटेड़, खाटेड़, खटेर
खटाड़, खंटेड़
खटेल
खटोड़, खाटोड़ा
खटोल
खंडिया
खपाटिया
खमसरा
खमेसरा
खरधरा
खरहत्थ
खरे
खरेड़, खरोड़
खवाड़
खाव्या, खाबिया
खाभईया
खाबड़िया
खारड़
खारा
खारिया
खारींवाल
खारेड़
खिंदावत
खिलची
खीचा, खीचिया
खीची
खीमसरा, खींवसरा
खीमसिरि
खीमसी
खीमाणदिया
खीया
खुड़धा
खुतड़ा, खुथड़ा
खुमाणा
खेचा
खेड़िया
खेड़ेचा
खेतपालिया
खेतरपाल
खेतलाणी
खेतसी
खेमासरिया
खेमानन्दी
खेमाहास्या
खेरवाल
खोखरा
खोखा
खोड़िया
खोपर
गगोलिया
गड़िया, गडिया
गजसरा
गजा
गट्टा
गटागट
गटिया
गटियाला
गडवाणी
गढ़वाणी
गणधर
गणधर चोपड़ा
गदा
गदैया, गदईया
गद्दैया, गदेहिया
गदीया
गंग, गांग
गंगवाल
गंधिया
गंधी
गन्ना
ग्रथलीया
गर
गर्जा
गरुड़
गलाणी
गलुंडक
गलूंडिया
गहलोत
गागा
गागाणी
गांगलिया
गांधी, गांधी मेहता
गांधी सहसगुणा
गांची
गाढ़िया
गादिया
गाय
गाल्हा, गाला
गावड़िया
गिडिया
गिणा
गिरमेर
गिरिया
गीगा
गुजराणी
गुजराती
गुणपालाणी
गुणहंडिया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुणिया
गुंगलेचा
गुंदेचा, गोंदेचा, गुदेचा
गुनेचा
गुलगुलिया
गुवाल
गूगलिया
गूजड़िया, गूजरिया
गूजर गोत्ता
गूजर नागड़ा
गूडलिया
गूंगलिया
गूंदिया
गेमावत
गेरा
गेलाणी
गेवरिया, घेवरिया
गेहलड़ा, गेलड़ा
गेहलोत
गोकड़
गोखरू
गोगड
गोगरी
गोगालिया
गोगेड़ा
गोड़ावत
गोड़ावत
गोड़ावत
गोड़वाड़िया
गोटावत
गोटेचा
गोठा
गोठी
गोढ़ा
गोतम
गोतम गोता
गोताणी
गोधरा
गोदावत, गोधावत
गोदिबा
गोंध
गोध
गोंधा
गोप
गोपाउत, गोपावत
गोमावत
गोरा
गोरावत
गोरीसाल
गोरेचा
गोलीया
गोलेच्छा, गोलेचा
गोलछा
गोलवछा
गोवरिया
गोसा
गोसल
गोसलाणी
गोसलिया
गोहीलाण
गौड़
घघेरवाल
घंघवाल
घट्टा
घंटेलिया
घरघटा
घरवेला
घांघरोल
घांघारी
घासाल
घिया, घीया
घीवाल
घुल्ल
घुलिया
घेमावत
घेरिया
घेवरिया
घोखा
घोरवाड़
घोंसल
घोष
चतकरिया
चतर
चतुर
चतुर मूंथा
चतुर मेहता
चंचल
चंडालिया, चिंडालिया
चंदावत
चन्द्रावत
चंडालेचा
चपलावत
चपलोत
चपरौत
चम्प
चम
चम्ब
चमकीया
चमनीया
चरड़
चरवेड़िया
चवा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चरेहरा
चहुआण
चाचिगाणी
चांचिया
चाणोदिया
चांपड़
चापड़
चापड़ा
चामड़
चावत
चामण
चाल
चावा
चिड़चिड़
चितालिया
चितोड़ा
चितोड़िया
चित्रवाल
चींचड़
चीचंड़ा
चीचंट
चींपड़
चींपड़ा
चींपट
चील
चोलिया
चुखंड
चुंगा
चुदालिजा
चुंदोलिया
चुतर
चुत्र
चेलावत
चैनावत

चोक्खा
चोथाणी
चोढू
चोधरी, चौधरी
चोपड़ा
चोरड़िया
चोरवेड़िया
चोलू
चोवटिया
चोसरिया
चोहान, चौहान
चौमोला
चौहाना, चौहना
चौहरना
छकलसीया
छछोहा
छजलाणी
छत्तीसा
छपनिया
छलाणी, छेलाणी
छल्लाणी
छत्रवाल
छत्री
छत्र
छत्रिया
छागा
छाछा
छाड़ोरिया
छाड़ोत
छाजेहड़, छाजेड़
छाँटा
छापरवाल
छापरिया
छालिया

छाव
छावत
छिंगाणी
छीलिया
छेड़ा
छेदवाल
छेर
छेवटाणी
छैल
छोगाला
छोलिया
छोरिया
छोहरिया
छोह्या
जख
जग
जगडू
जगावत
जड़िया
जड़िया तेलवाणी
जडीया
जण्कारी
जणिया
जदिया
जन्नाणी
जंड
जडूँ
जनारात
जम्मड़, झम्मड़
जामड़
जमघोटा
जरगड़
जल
जलवाणी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जलावत
जविया
जवेरी, झवेरी
जस्साणी
जसेरा
जक्षगोता
जाईल
जाईलवाल
जागा
जाटा
जाणेचा
जाजेचा
जातड़िया
जादव
जाँगी
जांगड़
जांगड़ सिंघवी
जागड़ा, जांघड़ा
जांजी
जांतह्या
जांबड़
जाबक
जाबलिया
जामड़ा
जारड़ा
जारोडीया
जारोली
जालाणी
जोलोखा
जालेरा, जालोरी
जालोत
जावक
जासल
जाहड़

जिंद
जिंदाणी
जिन्नाणी
जीजाणी
जीत
जीतोत
जीमणीया
जीरावत
जीरावला
जीरावाल
जुगलिया
जुंजाड़ा
जुंजाणा
जुनीवाल, जूनीवाल
जुबर्डा
जुष्टत
जुष्टल
जेलमी
जेसगाणी
जैन
जैलावतजोखेला
जोगड़, जोगड़ा
जोगनेरा
जोगनी
जोगणेचा
जोगपोचा
जोगिया
जोड्या
जोगाणी
जोधड़
जोधपुरा
जोधा
जोधावत
जोरुडा

जौहरी
जौहा
झगड़ावत
झंड़
झंबक
झबेरी
झलोरी
झाकुलिया
झागड़
झाड़चूर
झांबड़
झांबावत
झांबरपाल
झांबरवाल
झांबाणी
झामड़
झाबक
झालाई
झोटा
टकुलिया
टंक, टांक
टंच
टप
टहुलिया
टागी
टांटिया, टाटिया
टापरिया
टिंडीवाल
टिंबाणी
टीकायत
टीकोरा
टीबाणी
टीलिया
टुंकलिया, टुंकालिया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

टेका
टेबा
टोडरवाल, टोडरवाह्या
टोडरमालोत
ठकी
ठकुर
ठगा
ठगाणा
ठंठवाल
ठंठेर, ठंठेरा
ठाकराणी
ठाकुर
ठाकुरा
ठाकुरोत
ठावा
ठीकरिया
ठेलिया
डक
डंड
डफ
डफरीया
डहत्थ
डाक्टर
डाकले
डाकलिया, डाकुलिया
डाकूलीया
डागरिया
डागरेचा
डागलिया
डागा
डाँगी
डाडेचा
डाबर
डावा
डावरिया
डीडू
डीडुल
डीडूता
डींडुम
डीडुया
डुक
डूँगरवाल
डूंगराणी
डूँगराणी
डूँगरिया
डूँगरोवाह
डूँगरोल
डूबरीया
डोठा
डोडिया
डोडोयालेचा
डोडेचा
डोलण
डोलसगर
डोसी
ढ़ाढ़ा, ढ़ड्ढ़ा
ढ़ाकलिया
ढ़ाँचालिया
ढ़ाबरिया
ढ़ासरिया
ढ़िल्लीवाल
ढ़ींक
ढ़ेढ़िया, ढ़ेडिया
ढ़ेलड़िया
ढ़ोर
तप्तभट्ट
तरवेचा
तलवाड़ा
तलेरा, तालेरा, तालेड़ा
तलेसरा
तलेबड़ा
तवाह
ताकलीया
तोतेड़, तातहड़
ताँण
ताम्बी
तारावल
ताल
तालड़
ताला
तालाणी
तालेड़ा
तिरणाल
तिरपंखिया
तिरपेकिया
तिरवेकिय
तिलखाणा
तिलहरा
तिलाणा
तिलेरा, तिल्लेरा
तिलाणी
तिलोरा
तिहुयणा
तीवट
तुंग
तुंड
तुला
तुलावत
तुहाणा
तुंगा
तूता
तेडपालाणी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तेजाणी
तेजारा
तेजावत
तेलड़िया
तेजाणी
तेजारा
तेजावत
तेलड़िया
तेलहरा
तेलिया
तेलिया बोहरा
तेलेरा
तोडरवाल
तोड़ीवाल
तोडयाणि
तोलावत
तोलीया
तोसटीया
तोसरिया
तोसलिया
थटेरा
थंभोरा
थरदावत
थांभलेचा
थानावट
थारावत
थावराणी
थाहर
थिरवाल
थिराणी
थिरावाल
थोरवाल
थोरिया
दईया
दक
दख
दड़ा
दंड
दहा
दणवट
दनेचा
दफ्तरी
दरगड़
दरगेड़ा
दरड़
दरड़ा
दरड़िया
दलाल
दंवरी
दस्सानी, दासानी
दसाणी
दसवाणी
दशलहरा
दसोरा
दाउ
दाखा
दाढ़ीवाल
दाणी
दातारा
दादलिया
दाना
दानेसरा
दांठडिय
दांतेवाड़िया
दालिया
दासोत
दिल्लीवाल
दिन्नाणी
दीपक
दींग
दीपग
दुग्ग
दुग्गड़, दूगड़
दुठाहा
दुडिया
दुढ़ाहा
दुणीवाल, दुनिवाल
दुद्धोणी
दूदवाल
दूधवेड़िया
दूधिया, दुधिया
दूधीया गांधी
दूधेडिया, दुधोड़िया
दूधोरिया
दूधोड़ा
दूसाज
दुसाझा
देडिया
देढ़िया
देधराणी
देपालाणी
देपरा
देपारा
देमारा
देदाणी
दैयाणी
देरासरिया
देलडीया
देलवाड़िया
देवड़
देवड़ा
देवराजोत

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दैवलसखा
दैवाणदंसखा
देवाणी
देवानन्दा
देवानन्दी
देशरला, देसरला
देशलहरा, देसलरा
देशवाल
देसरला
देसलाणी
देसरडा, देसड़ला
देशाई, देसाई
देहरा, देहड़ा
दोलताणी
दोसाखा
दोषी, दोसी
धंग
धडवाई
धतूरिया
धन
धनचा
धनचार
धनड़ाया, धनडाय
धनंतरी
धनपाल
धन्नाणी
धनारी
धनेचा
धनेजा
धनेरिया
धबड़िया
धम्मल
धम्माणी
धामाणी
धर
धरकट, धर्कट
धरकूट्टा
धरा, धर्म
धरमाणी
धलईया
धाकड़
धाकड़िया
धांगी
धाड़ावत
धाड़ीवाल, धारीवाल
धाड़ेवाल
धाड़ेवा, धाड़ेवाह
धातुरिया
धाबाल
धांधालिया
धांधिया
धाया
धारा
धारीया
धारोत
धारोला
धावड़ा
धावरिया
धावड़ा
धींगा
धींग, धीग
धींगड़
धीया
धीर
धूँधिया
धुपड़
धुप्या
धुपिया
धुर
धुरीयाणी
धुल्ल
धुवगोता
ध्रुवगोता
धूमावत
धेनडाया
धेनावत
धेलाणी
धोका
धोखा
धोखिया
धोल
धोप्य
नकीयाणी
नखत
नखरा
नखित्रेत
नग
नगगोता
नथावत
नन्दक
नन्दावत
ननगाणी
नपावलिया
नरवरा, नरुवरिया
नरसिंघा, नरसिंह
नरायण
नलवाया, नलवाह्या
नलिया
नव कुद्दाल
नवलखा, नौलखा
नवाब
नक्षत्र

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नक्षत्रगोता
नाग
नगगोत्त
नागोत्ता
नागोथा
नागण
नागड़ा
नागड़
नागपुरा
नागपुरिया
नागार्जुनाणी
नागीयाणी
नागदौन
नाग सेठिया
नागणा
नागर
नागौरी
नाचाणी
नाडुलीया
नाडोलीया
नाणा
नाणा गोता
नाणवट
नाणी
नाथावत
नानकाणी
नानावअी
नानावट
नानेचा
नांदेचा
नापड़ा
नामाणी
नायकाणी
नारणवाल
नारण
नारिया
नारेला
नारेलिया
नारोलिया
नालेरिया
नावटा
नावटा
नावटी
नावरिया
नावसरा
नावेड़ा
नारेडार
नाहर, नहार
नाहरलाणी
नाहउसरा
नाहटा, नाहटा
निंबड़िया
निंबाड़ा
निबरड़ा
निंबणिया
निंबड़ा
निबोलिया
निधि
निरखी
निमाणी
निलड़िया
नीसटा
नियाणी
निसाणिया
नेणवाल
नेणसर
नेणेसरा
नेर
नेरा
नैनावटी
नोडाणी
नेपत्ता
नोपाली
नोपोला
नौलखा
पगाटिया
पगारिया
पगोरिया
पड़गतिया
पड़ाईया
पड़ियार, पड़िहार
पचनावत
पचीसा
पठाण, पठान
पटणी, पटनी
पछोलिया
पटोल
पटवा
पटवारी
पटावरी
पटोलिया
पंचकुदाल
पंचलोढ़ा
पंचवना
पंचायणेचा
पंचावत
पंचवया
पंचाणेचा
पंचायाणी
पंचोरी
पंचोली
पंडरीवाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पंवार, परमार
पमार
पटविद्या
पटोलिया
पदमावत
परडीया
पबाणी
परजा
परधान
परधला
परधाला
परमार
पलीवाल
पल्लीवाल
पसला
पंसारी
पहाड़िया
पहु
पाका
पाचोरा
पाटणी
पाटनी
पाटणिया
पाटोतिया
पातावत
पांचावत
पांचारीया
पांडुगोता
पानगढ़िया
पानगड़िया
पानोत
पापड़िया
पामेचा
प्रामेचा

पारख, पारेख
पारीख
पारणीया, पाराणीया
पारसन
पालगोता
पालखीया
पालणीया
पालाणी
पालावत
पालरेचा, पालड़ेचा
पालणेचा
पालणपुरा
पालेचा
पावेचा
पाहणिया
पिछोलिया
पिरगल
पीतलिया
पीथलिया
पीथाणी
पींचा
पींपाड़, पींपाड़ा
पीपलिया
पीपला
पीहरेचा
पुकारा
पुगलिया
पूंगलिया
पुजारा
पुजारी
पूण
पुनराजाणी
पुनमिया, पूनम्यां
पूनियाणी

पुनीत
पुराणी
पूर्विया
पुहाड़
पुष्करणा
पेंचा, पैचा
पेथडाणी
पेथाणी
पेंतीसा
पेपसरा
पोकरणा
पोखरणा
पोकरवाल
पोतदार
पोपाणी
पोपावत
पोमसीयाणी
पोमाणी
पोसालीया
पोरवाल
पोसालेचा
पोसालेवा
प्रोचाल
फतहपुरिया
फलसा
फलोदिया
फाकरिया
फाल
फालसा
फाफू
फितूरिया
फिरोदिया
फूमड़ा
फूलगरा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फूलफगर
फुलेचा
फूसला
फोकटिया
फोफलिया
फोलिया
बकरा
बकील
बकीयाणी
बगड़िया
बगचार
बगाणी, बागाणी
बंगाणी
बगला
बघेरवाल
बड़गौता
बड़जात्या
बड़ला
बड़लौता
बड़लोया
बडाला
बड़ोला
बच्छावत, बछावत
बच्छस
बजाज
बट
बटवटा
बड़बड़ा
बड़भटा
बड़हरा
बड़ेर
बड़ेरा
बड़हरा
बडोरा

बड़ोदिया
बढ़ाला
बण
बणभट, बणवट
बदलोटा, बलदोठा
बदलोढ़ा
बदालिया, बदलिया
बद्धड़
बद्धण
बघाणी
बंका
बंग
बंगाला
बन्दा
बन्दा मेहता
बंब, बम्ब
बंभ
बंबोई
बबोईया
बंबोरी
बबोईया
बंबोरी
बम्बोली
बंश
बंबोड़ा
बंहद
बनबट
बनावत
बब्बर
बवाल
बबाला
बबूकिया
बबेर
बया

बरकीया
बरड़
बराड़
बरड़ा
बरण
बरड़िया, बरहड़िया
बरहूड़िया
बरडेया
बरदिया
बर्धन
बर्धमान
बरमेचा, ब्रह्मेचा
बिरमेचा
बरपत
बरलद्ध
बरलेचा
बरसाणी
बरहुड़िया
बरादुपिया
बरुआ
बरुड़िया
बरोदिया
बृद्ध
ब्रह्मेवा
बला
बलदेवा
बल्लड़
बलदोबा
बलदोटा
बलहरी
बलाहारा
बलाई, बलाही, वलही
बलोटा
बवाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बवेला
बसाह
बहड़ा
बहाणी
बहरा
बहुड़
बहुबोल
बहुरा
बहोरा
वप्पनाग
बाकरमार
बाकुलिया
बाखेटा
बाखोटा
बागड़िया
बागड़ेचा/बागरेचा
बागचार, बाघचार
बाग जयाणी
बाग जयासी
बागरेचा
बागला
बागानी
बाघ
बाघड़ी
बाघमार, बागमार
बाघणा
बाड़भटा
बाड़ोना
बातड़िया
बातोकड़ा
बादरिया
बादवार, बादवोर
बादलिया, बादलीया
बादोला
बाधाणी
बांका
बागाणी, बंगाणी
बांवलिया
बांठिया
बांदोलिया
बांबल
बांबड़ा
बांभ
बानीगोता
बानुणा
बानेत
बानेता
बापड़ा
बापना
बाफणा, बहुफणा
बापावत
बाबेल, बबेल
बाबो
बामाणी
बायरगोता
बारडेचा
बाराणी
बाल
बालड़
बालड़ा
बालगोता
बालत्य
बालवा
बालोटा
बालोत
बालह
बाला
बालिया
बावरिया
बावरेचा
बावेला
बाहड़ा
बाहणी, वहाणी, वाहणी
बाहला
बाहरिया
बाहबल, बाहुबली
बिछावत
बिजोत
बिदाणा
विद्याधर
बिदामिया
बिनय
बिनायक
बिनायका
बिनायकिया, बिनाकिया
बिनायक्या
बिनसट
बिनसर
बिम्बा
बिमल
बिरदाल
बिरमेचा
बिलस
बिरहट
बिशाल
बिषापहार
बीजल
बीजाणी
बीजावत
बीजोत
बोतराणा
बीर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बीराणी, वीराणी
बीरावत
बीसाणी
बीसराणी
बीसलाणी
बीसरिया
बुचस
बुरड़
बुच्चा
बुचाणी
बुटीया
बुन्देचा
बूहड़
बूजड़िया, बूझड़िया
बूवकिया, बूबकिया
बुम्ब बुपक्या
बुलीया, बुलिया
बूड़
बेगड़
बेगवाणी
बेगाणिया
बेगाणी, बेंगाणी
बेछात
बेताल
बेताला
बेतालिया
बेताली
बेद, वेद
बेद्य, बैद्य
बेद गांधी, वैद्य गांधी
बेद मेहता
बेद मूथा, बेद मूँथा
बेद मूता
बैकर, बैंकर
बेंगाणी, बंगाणी
बेराठी, बैराठी
बेलावत
बेला भंडारी
बेलिए
बेलीम
बेलहस
बेवल
बेहड़
बोक
बोकड़ा
बोकड़िया
बोकरिया
बोकड़ासा
बोगावत
बोचाणी
बोडाने
बोटाउरा
बोत्थाणी
बोथरा, बोहत्थरा
बोपीचा
बोरड़
बोरड़ा
बोरड़िया
बोर्डिया
बोरदिया, बोरधिया
बोरधा
बोरा
बोराणा
बोरीया
बोरुदिया
बोरेचा
बोरीचा, बोरोचा
बोलिया
बोसूदिया
बोहड़, बुहड़
बोहरा
बोहरा काग
बोहरिया
बोहित्थरा
भक्कड़
भगत
भगालिया
भड़कतिया
भड़गतिया
भड़गोता
भड़भेचा
भटेरा
भटेवड़ा
भटेवरा
भटनेरा
भट्टारकिया
भट्ट
भणवट
भद्र
भद्रा
भद्रेश्वर
भणेत
भणूकिया
भंडलिया
भंडसाली
भंडासर
भंडारा
भंडारी
भंसाली, भणसाली
भँवरा
भमराणी
भमावत

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भयाण, भयाणा
भर
भरकीयाणी
भरथाण
भरह
भरवाल
भलगट
भल्ल
भल्लड़िया
भलभला
भलणिया
भला
भवालिया
भसौड़
भाईचणा
भाखरीया
भागू
भाड़ेगा
भाणेश
भादर
भादनिया
भादानी
भाटी
भाटिया
भाणद
भाद्रगोता
भाद्रा
भांचावत
भाडावत, भंडावत
भांडिर
भांभ
भाभट
भानावत
भामड़
भामराणी
भाभू
भाभू पारख
भाया
भाराणी
भाला
भावड़ा
भावसरा, भींवसरा
भीटड़िया
भींड
भीनमाल, भीनमाला
भीमावत
भीर
भीलमार
भुगड़ी
भुगतरिया
भुणिया
भूटी
भुंडलिया
भुतड़ा
भुतेड़ा
भूतेड़िया, भूतोड़िया
भुतिया
भूय
भूरटिया
भुरट
भुरंट
भुरदा
भूरा
भूरी
भूलाणी
भूसल
भूषण
भेलड़ा
भेलड़िया
भेला
भैंसा
भोगर
भोजाणी
भोजावत
भोपावत
भोपाला
भोभलिया
भोढा
भोर
भोरड़िया
भोल
मक्कलवाल
मकवाणा
मकुयाणा
मकाणा
मगदिया
मच्छा मछराला
मड़िया
मघासरिया
मट्ठा
मट्ठड़
मठा
मणहरा
मणहाड़िया
मणहेड़ा
मणियार
मथाल
मथुरा
मथाणा
मथाल
मदारिया
मदरेचा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंगलिया
मंगीवाल
मंडलीक
मंडोचित
मंडोचिया
मंडोवरा
मन्ना
मंसाणिया
मन्म
मंत्री
मंहोरा
मनहनी, मनिहानी
ममईया, ममैया
मरड़िया
मरडेचा
मरलेचा
मरवाणा
मरवाणी
मरुवा
मरुथलिया
मरोठी
मरोठिया
मल्ल
मल्हाड़ा
मल्लारा
मल्लावत
मल्लावत, बांठिया
मलटिया
मला
मलेशा
मसरा मवडीकार
मसाणा
मसाणिया
महड़
महत्था
महणोत, मनोत
महता
महतियाण
महरोड़
महा
महाजन
महाजनिया
महाभद्र
महावत
महिवाल
महीरोलन
महेच
महेचा
महेला
महिपाल
महोता
महोरा
मांगेत
माघवाणी
माडलीया
माणकाणी
माणावत
माथुरा
मादरेचा, मुदरेचा
माधोटिया
माधोरिया
मांडलिक
मांडलेचा
मांडोत
मांडोता
मानी
मारलेचा
मारू
मालक
मालकस
मालखा
मालतिया
मालनेसा
मालविया
माल्हणु
माल्हाजा
माला
मालाणी
मालावत
मालू, माल्हू
मालोत
माहालाणी
मिचकिन
मिछेला
मिण
मिणियार
मित्री
मिनिया
मित्री, मिनिया
मिठा
मित्री
मीठड़िया
मीठड़िया सोनी
मीनागरा
मीनारा
मीहा
मुकीम
मुखतरपाल
मुणोत, मुहनोत
मुत्थड़
मुठलिया
मुंगड़िया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुंगोरल
मुडणेचा
मुन्नी बोहरा
मुन्हानी
मुमणिया
मुलल
मुरगीपाल
मुरगीवाल
मुरड़िया
मुरदा
मुसलीया
मुहणाणी
मुहाणाणी
मुहिमवाल
मुंहियड़
मुहिलाण
मुहाल्या
मूघा
मुंथड़ा
मूंथा, मूथा
मूदा
मुधाला
मूंगरवाल
मूंगरेचा
मूंछाला
मूंधड़ा
मूलमेरा
मूलाणी
मूसल
मेघा
मेघालजाणी
मेड़तवाल
मेड़तीया
मेताला
मेनाला
मेमवाल
मेर
मेराण
मेलाणी
मेहमवाल
मेहर
मेहता
मेहसा
मेंहू
मैराण
मोगरा
मोगिया
मोघा
मोडत
मोडोत
मोटावण
मोटाणी
मोता
मोतीया
मोतीयाण
मोदी
मोमाया
मोर
मोरख
मोरच
मोरचीया
मोराक्ष
मोल्हाणी
मोलाणी
मोहड़ा
मोहनाणी
मोहब्बा
मोहलाणो
मोहणोत
मोहता
मोहीवाल
मोहीवाला
मौतियाण
यति
यक्ष
यादव
योगड़
योगेसरा
योद्धा
रंक
रखवाल
रणधीरा
रणधीरोत
रणशोभा
रणसोत
रतनगोता
रतनपुरा, रतनपुर
रतनसुरा
रतनावत
रत्ताणी
रहेड़
रांका, राका
राक्यान
राकावाल
राखड़िया बोहरा
राखेचा
रागली
राजड़ा
राजदा
राज गांधी
राज बोहरा
राज ध्याना

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राजसरा
राजाणी
राजावत
राजोत
राठोड़, राठौड़
राठौड़िया
राठी
राठा
राडा
राणावत
राणांणी
राणोत
रातड़िया
रामपुरिया
रामसेन्या
रामाणी
रामायत
राय
रायगांधी
रायजादा
रायपुरिया
राय भंसाली
राय भंडारी
राय सुराणा
राय सोनी
राब
रावत
रावल
राहड़
रीखब
रींसाण
रीहड़
रुणवाल, रुणिवाल
रुंणियां
रुगवाल
रुंगलेचा, रुंघलेचा
रूप
रूपधरा
रूपाणी
रूपावत
रूपावर
रूमाल
रेखावत
रेड़
रेणु
रेहड़
रैदानी
रैदासनी, रैदासणी
रोआँ
रोटागण
रोहिल
लक्कड़
लघु कुम्भट
लघु खंडेलवाल
लघु चमकीया
लघु चिंचट
लघु चुंगा
लघु चौधरी
लघु नाहटा
लघु पोकरणा
लघु पारख
लघु भुरंट
लघु रांका
लघु राठी
लघु सुरवा
लघु संघवी
लघु समदड़िया
लघु सोढ़ती
लघु संचेती
लघु हिंगड़
लघु श्रेष्ठि
ललवानी, ललवाणी
ललानी
ललूंडिया
ललित
लसोड़
लहरिया
लाखाणी
लाछी
लाडवा
लाडलखा
लाभाणी
लाम्बा
लामड़
लालण, लालन
लाला
लालाणी, लालानी
लालेन
लालोत
लाहोरा
लीगा
लीगे, लिगे
लींगा, लिंगा
लीबड़िया
लीरूणा
लुंकड़, लूंकड़
लुंग
लुंडा
लुंबक
लूंगावत
लूँछा
लुणा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लूणिया, लूनिया
लूणावत, लूनावत
लूणवाल
लूणेचा
लूसड़
लेरखा
लेल
लेवा
लेहेरिया
लोडाया
लोटा
लोढ़कर
लोढ़ा
लोढ़ा राय
लोलग
लोला
लोलेचा
लोसर
लौकड़
स्याल, स्याला
सकलेचा
सकलाद
सखण
सखला
सखलेंचा
सखाणी
सगरावत
सचिंती
सचिया
सचोपा
सणवाल
स्थूल
सध्याणी
सधरा
सधराणी
संकलेंचा
संखला
संखलेचा, संखवालेचा
संखवाल
संघवी
संघी
संचयि
संचेती
संड
संडासिया
संधि
संभरिया
संभुआना
संवला
संवलिया
सवां
सदावत
सफला
सभद्रा, सबदरा
समदड़िया, समदरिया
समधड़िया
समरखी
समुदरिख
समुद्रडिया
समुद्रिया
समूलिया
स्याल
स्याला
सरा
सराफ, सर्राफ
सरभेल
सरला
सरवला
सराह, सराहा
सरुपिया
सलगणा
सलगवा
सवा
सरवला
सवाया
सहचेती
सहचिंती
सरजाणी, सजाणी
सहजावत
सहलोत
सहसगुणा
सहसगुणा गाँधी
सही
साखेचा
सागाणी
सागावत
साचा
साचावट
साचा संधि
साचोरा
साचोरी
साढ़ेराव
साढ़ा
सादावत
साधि मेहता
साधु
सांईयां
सांख्या
सांखला, साखला
सांखला परमारा
सांखलेचा
सांगाणी
सांचोपा
सांड
सांडेला
साढ़
सांढ़ा
सांढ़िया
सानी
साँपद्राहा
सांपुला

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारंगणि
साँवरा
सांवला
साँवलिया
सामडा
सामसुखा, स्यामसुखा
सांभरिया
साभद्रा
सामर
सामोता
सायाणी
सायलेचा बोहरा
सारूप्रिया
सारूपारिया
साल्हणेचा
सालीपुरा
सालेचा, सालेसा
सावन
सावणसुखा
सावलसखा
सावलिया
सांसला
साह
साहिब गोता
साहिला
साहलेचा
साहुला
सिखरिया
सिचिवाल
सिणगार
सिंघल
सिंघी
सिंघवी
सिंघलोरा
सिंघाला
सिंधी
सिंधड़

सिंधुड़ा
सिंदरिया
सिंहावट
सिंहावत
सियाल, सीयाल
सिरहट
सिरोदिया सिरोलिया
सिरोहिया, सिरोया
सीखा
सीखाणी
सीगाला
सींगी
सींघाड़िया
सींचा
सीप
सींपानी, सीपानी
सींपाणी
सीरोह्या संघवी
सीरोहिया, सीरोह्या
सीलरेचा
सीवाणी
सीसोदिया
सुखनिया
सुखलेचा
सुखा
सुखाणी, सुखानी
सुखिया, सुखीया
सुगंधी
सुगणिया
सुचंति, सुंचिती
सुचिंतित
सुधड़
सुजन्ती
सुदेवा
सुजंती
सुधेचा, सुँधेचा
सुट

सुधड़
सुधरा
सुंडाल
सुन्दर
सुन्धा
सुन्धेचा
सुबाजिया
सुभना
सुभादा
सुरती
सुरपिया
सुरपारिया
सुरपुरिया
सुरयरा
सुराणा
सुराणीया
सुरहा
सुरहिया
सुरोवा
सुसाणी
सुसाँखुला
सुवर्णगिरी
सूकाली
सूघड़
सूचा
सूधा
सूंडाल
सूर
सूरपुरा
सूरमा
सूरिया, सूर्या
सूहा
सेखाणी, शेखाणी
सेठिया
सेठिया पावर
सेठिया वैद्य
सेठ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेठी
सेठीपारा
सेणा
सेमलानी
सेल्होत
सेलोत
सोपड़िया
सेलवाड़िया
सेवड़िया
सेवाजी
सेहजावत
सोजन
सोजतवाल
सोजतिया
सोठिल
सोढ़ा
सोढ़ाणी
सोधिल
सोनगरा
सोना
सोनाणा
सोनारा
सोनावट
सोनावत
सोनी
सोनीगरा
सोनी बाफणा
सोनीमिंडे
सोनेचा
सोफाड़िया
सोभावत
सोमाणी
सोमालिया
सोलंखी, सोलंकी
सोसलाणी
सोसरिया
सोहनवाडिया

सौवर्णिक
शंखी
शंखेश्वरीया
श्यामसुखा, शामसुखा
शठे
शाह, शाहा
शाह-छाजेड़
शिवा
शीगाला
शीशोदिया
शुकनिया
शूरमा
शूरवा
शेखावत
शेठ
शौराण
हगुड़िया
हड़िया, हरिया, हरीया
हठीला
हठुड़िया
हथुड़िया
हमरी
हलदीया
हरखावत, हरकावत
हरगणाणी
हरण
हरपावत
हरसोरा
हरसोत, हरसोट
हरियाणी
हंस
हंसा
हंसारिया
हस्ती
हर्षावत
हाका
हाकड़ा

हाड़ा
हाड़ेरा
हाटिया
हांडिया
हाथाल
हापाणी
हाला
हांसा
हाहा
हिरण
हिरणा
हिराउ
हिराणी
हिंगड़, हींगड़
हींगल
हीडाउ
हीपा
हीया
हीराऊ
हीराणी
हीरावत
हुकमिया
हुड़िया
हुडिया
हुंडिया
हुना
हुब्बड़
हुला
हुवा
हेम
हेमपुरा
हेमादे
त्रिपंखी
त्रिपंखिया
ऋषभ
श्राफ
श्रावणसुखा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री	श्रीमाल	श्री श्रीमाल
श्रीपति	श्रीवंश	श्रेष्ठि
श्रीपणा	श्रीवर लद्ध	

नाम-पद्यात्मक

'ओसवाल जाति नो रास' और 'ओसवाल भोपालों का रासा' में अनेक गोत्रों के नाम है।

।। ओसवाल ज्ञातिनी रासो ।।

सोह वधौ संसार सीर, इल राखण इखियातः,
नखित्र अभीच निमंधियौ निज उजलावण न्याति ।।
जहाँ साढीबाहर न्याति सरांहा श्रीमाली वोसवाल सवे ।
डीडू, बघेरवाल दाखी जै, चित्रावाल पलीवाल चवे ।।
खैखाल, नराणा, हरसौरा, जुगती जै ओपम जाणे ।
अेती ओसवाल न्याति उज्जालं, बधौ बड़ि महथ वाखाणे ।।
पीणी पोकरवाल भणो जे, वली मेडतवाला कारमहे ।
खंडेलवाल लहुवै जस खाटै, सगली विधि ठठवाल सहे ।।
वड़एनात वखणै अेम बेरसल, खरी न्यांति हीरा खांणे ।
अेती ओसवाल न्याति उज्जालं, बघौ बड़ि महथ वाखाणे ।।
आयचणां, तातहड भूरा भाखीये, करणांटा बाफणा कहे ।
चीचड अराभंड कूकड़ा, चावा लहुडीडू कुभटा लहे ।।
सेठीया भिरह मोर सुसंचीती श्री श्रीमाली सुरतांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बघौ वाखांणे ।।
रांका अर लिंगा वैद कहि रूपक सलहां लोढा सूरांणा ।
नाहर वोथरा चोपड़ा निरमल वण दांनी पारिख घणा ।।
सांडि सीखा गोलेछा बहु विधि, जगपुर चेरडया जाणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, बघौ बड़ि महथ वाखांणे ।।
गादहीया चंब चौधरी दूगड विनाइकाया वंभ भणे ।
दरड़ा प्रामेचा जंबड़ दाखा, भुत सखवाला सुजस सुणे ।।
भंडसाली अधिक छाजहड़ भल्ल पण इल कांकरिया अहिनाणे
येती ओसवाल न्याति उज्जालं वघौ बड़ि वाखाणे ।।
वागरैचा वौहरा मीठडिया वलि, छजलांणी डागा छाजै ।
डाकलिया सांड सांकला डाही, काबेडिया कथावर काजे ।।
लुणिया सीसोदिया, वांगाणी, पूरे वगड़ परियांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वड़ि महथ वाखांणे ।।
छल्लीया केलांणी भेलडीया छलि, ललवाणी लोकड़ लेखे ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सीरोहिआ मालू सौ विधि सुंदर, दीपक मालवीया देखे ।।
गणधर चौपड़ा देसलहर गाजै, विधि कहि फोफलीया नांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वड़ि महथ वाखाणे ।।
कूकड़ लुणावत खीवसरा कहि सहसगुणा माहे सोह ।
बावेल लुणावत फलोधीआ वहु, मतिसागर जोगड मोहै ।।
कुलण नाहटा भंडारी कहीये, वले वांठिया निधि वाणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वड़ि महथ वाखांणे ।।
मुहणोत अनै भंडसाली मोटिम, बरहडिया विधि विधि वाया ।
पंशुल प्रामेचा सोनी सफला, सहु विधि मोहांणी साचा ।।
भगलीया कोठारी पोकरणा भणि, येम गहलडा आपांणे ।
येती ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वडि महथ वाखांणे ।।
डोसी कटारिया पाल्हवत समदडीया गिडीया साचा ।
राखेचा वाघरेचा बांसि रूपक, विहु डोहुडीया नहु वाचा ।।
थोरवाल वोपमा लालण, जुगति नाग गोत्रा जाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वधौवडि महथ वाखाणे ।।
वड़ गोत्रा आछा गो9 बड़ला धाड़ीवाहा घवलधरे ।
खटवड़ असौचीया डांगी हींगड़, खित परारिया सांभरा पटे ।।
खीची अयरी कुहाड़ गोखरू, घीया अरगं गवाल घणे ।
येती ओसवाल न्याति उब्जालं, वधौ वड़ि महथ वाखांणे ।।
टोटखाल टिकुलिया तधिजे, ककड़ वीरोलिया कहीये ।
नादेचा रातड़ीया ढाबरिया नखै,निकलकं नाखरीया नहीये ।।
मगदीया अचलिया छोहरीया महि, हीरण घमारी दलिद हणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वड़ि महथ वाखांणे ।।
वडहरा भांगरीया जोधपुरा वलि, नागौरी वधवाल नर ।
नरवै मीठडीया नलवाया नीधनर, हित जालोरी दलिहरं ।।
चिंडालीया परड़ पालेरचा चाचवि, डूगरिया जड़ीया ढाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ बड़ि महथ वाखांणे ।।
रूणवाल भटेवरा जांगड़ा राजे, घुपीया खांटहड कहा घने ।
पीपाड़ा वोरोदीया चतुर पणि मेड़तवालां कहे मने ।।
असुभ गोत्र रोटागिण आखा, बुरड़ घांघ बहु विधि वाणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वघौ वड़ि महथ वाखांणे ।।
भड़कतीया मंडोरा भणीये, मंडलेचा अघीका मुणीये ।
वलि वीरोला डुगरवाला वाचीजै थंभ महेवचा जस थुणिये ।।
दिल्लीवाल महमवाल दूधेडीया, प्रगट वोपमा परमांणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वघो वड़ि महथ वाखांणे ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोजतीया मडोवरा सुणि जे माणहंडिया रेहड मंडे ।
गजदाता सुर हुवो गुण हडीयो, वढ़पात्रा दालिद विहडै ॥
अमराव तेज तूज हो अबिचल, भुवनंतर उगै भांणे ।
येति ओसवाल न्याति उज्जालं, वधौ वढ़ि महथ वाखांणे ॥
॥जुदां जुदां गोत्रना प्रसिद्ध श्रीमालीओ॥
आगे अधिकारी थे अनंत तिस नाम कहूँ श्रीमालका,
इस कलि में सांडा कोडिया दे कनक टका कलिकालका,
इस परि भीम तंबोल त्यागी, हेम मुकत अरू लालका,
उदेसी वीधू टाक दांनि, जासा अरू देपाल का,
उह दिली गोपा बदलीया जेजिया छुटया दर हाल का,
रतनागर नाहा भांडिया ढिली ढिग झझरवालका,
राय सघारह सीरी वछ भंडारी सेर संभालका,
लिखी सतीदास चिंडालिया, जो देसक नांने चालका,
लाकज नरसी रैपती करी नर ब्रोहरा नरपालका,
इस जुग में वेगो महाराज थे, सिघुड़ अमिट अटालिका,
इण काण्योण्ज घिरिआ जुनिवाल, हरखारड हरपालका,
वो कीरतिमल कुकड़ी आंदरीज करनाल का,
वो जौनपुर भरहा ढोर जानि पाँणी पथ वाघ मुछालका,
अरधान मांन रुस्तगि हूये, मौठीया कहूँ महिपालका,
अधिकारी टालन धांधीया, जस पल्हवड राजपाल का,
खिती भैरू रांमा परगटे, मेवात बहतरि पालका,
गोल्हा सारग समरथ साह, तांबी मेघ प्रनाल का,
घणां विरद अब रांकिआण तिस ऊपरी हठी हठाल था,
नखित्रज तेरा भारमल भभीच जनम भरिसाल का,
मलि मैवासी कीये जेर चढि गिर खुंद्या खुरताल का,
जगि उपरि बलि विकम जिसा, दालिद कस्या जंजाल का,
राजा टोडरमल शुं प्रीति, ज्यौं सरवर मांन मराल का,
\+ + + +
साचा गुन खेते कह्या, संबत सोलासै तेतालका ।
हुकमज अकबर पातिसाह परताप जो भारहमालका ॥

ओसवाल भोपालों का रासा

शारद मात नभू शिरनामी । कवियों की तूँ अंतर्जामी
विणा पुस्तक धारणी माता । हंस बाहनि वयण वर दात्ता ॥1॥
बारह न्यात बली चौरासी । ओसवाल सब में गुण रासी ।
रास भणु मन धरी उल्लाश । जाति नामक करहूँ प्रकाश ॥2॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पार्श्वनाथ वर छट्टे पट्टाम्बर । रत्नप्रभसूरि सूरिवार ।
आये मरुधर देश मझारी । उएश नगरे उग्र विहारी ।।3।।
शिष्य पांचसौ थे गुणवन्ता । मात दोमास तप आचरंता ।
कोई नहीं पुच्छे न अन्नपाणी । ज्ञान ध्यान तपस्या मन ठाणी
राय जमात अही विष ग्रह्यो । सूरि समीप लाइने धर्यो ।
चरण प्रक्षाल नलछटकावे । तत्क्षण कुंवर सचेतन थावे ।।5।।
राजा मंत्री नागरिक सारा । गुरु उपदेश शिर पै धारा ।
सात दुर्व्यसन दूर निवारी । सवालाख संख्या नरनारी ।।6।।
जिनके गोत्र प्रसिद्ध अठारा । तातेड़ बापणा कर्णावट सारा ।
बलाह गोत्र की रांका शाखा । मोरक्ष ते पोकरणा लाखा ।।7।।
विरहट कूलहट ने श्री श्रीमाल । संचेती श्रेष्ठि उज्जमाल ।
आदित्यनाग चोरड़िया वाजे । भूरि भाद्र समदड़िया गाजे ।।8।।
चिंचड-देसरड़ा कुम्भट भेटी । कनौजिया डिडु लघुश्रेष्टि ।
चरड गोत कांकरिया आखा । लुंगगोत चंडालिया शाखा ।।9।।
सुंघड़ दूघड़ ने घटिया गोत । ऐता आदृ ओसवंश उद्योत ।
महाजन संघ थाप्यो गुरुराय । दिन दिनवृद्धि अधिकी थाय ।।10।।
वीर संवत् के थे सीतर वर्ष । अपूर्व था उस संघ का दर्श ।
अमर यश: सूरीश्वर लिनो । धर्म कलि में स्थिरकर दिनो ।।3।।
आर्य छाजेड़ राखेचा काग । गरुड़ सालेचा भरी जिन माग ।
वाघरेचा कुंकुम ने सफला । नक्षत्र आभड़ बहुरी कला ।।12।।
छावत वाघमार पिच्छोलिया । हथुड़ियों ने शुभ कार्य किया ।
मंडोवरा मल गुंदेचा जाण । गच्छ उएश ऐते पहचान ।।13।।
वड़ लिम शाखा विस्तरी । गणती तेनी को नहीं करी ।
भानुं ताप प्रचण्डमध्यान्ह । महाजन संघ को वडियो मान ।।14।।
तप्तभट्ट तातेड़ कहलाया । तोडियाणी आदि मन भाया ।
बायीस शाखा विस्तरी । भाग्यरवि ने उन्नति करी ।।15।।
बाप्पनाग प्रसिद्ध बाफणा । नाहटा जंघड़ा वैताला घणा ।
पटवा वालिया ने दफ्तरी । बावन शाखा विस्तरी ।।16।।
करणावट की सुनिये बात । जिनसे निकली चौदह जात ।
वलाह वास वल्लभी करे । शिलादित्य राजा से अडे ।।17।।
कांगसी ने उत्पात मचायो । वल्लभी को भंग करायो ।
रांका बांका नाम कमायो ।जाति रांका सेठ पद पायो ।।18।।
छवींस शाखा पृथक कही । समय उन्नति को मानो सही ।
मोरक्ष गोत पोकरणा आदि । सत्तरा शाखा भाग्य प्रसिद्ध ।।19।।
कुलहट शाखा सूरवा कहांजी । जाति अठारह प्रकट को जाणी ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरहट गोत भुरेंटादि सत्तरे । वड़ जिम शाखाएं विस्तरे ॥20॥
श्रीश्रीमालों ने सोनो पायो । मान राज से मिलियो सवायो ।
निडियादि बावीस जात । शुभ कार्यों से हुई विख्यात ॥21॥
राव डत्पलदेव के नाम कमायो श्रेष्टिगोत वैद्य मेहता पद पायो ।
भाला रावतादि एकतीस । श्रेष्ठ काम करते निशदिस ॥4॥
सुचंति शुभ सूचना करे । संचेती हिंगड़ नाम ज धरे ।
शाखा तेतालीस निकली । उन्नति में सब फूली फली ॥23॥
आदित्यनाग था पुरुष प्रधान । प्रकट हुआ था नवनिधान ।
धर्म तणोकिना उद्योत । महाजन संघ में जागति जोत ॥24॥
चोरड़िया गुलेच्छा जात । परख गादइया सुप्रभात ।
सामसुखा ने बूच्चा आदि । चौरासी शाखा है प्रसिद्ध ॥25॥
ओसवंश में नाम कमायो । विस्तार पायो संघ सवायो ।
इस गोत में भैंसाशाह चार । जिनकि महिमा अपरंपार ॥26॥
भूरि गोत भटेवरा लाखा । विस्तरी बड़जिम वीस शाखा ।
भाद्र गोत समदडिया नाम । गुणतीस शाखा वड़िया काम ॥27॥
चिंचट गोत देसरडा जाणो । उन्नीस जाति सुकाम प्रमाणो ।
कुम्मट शाखा काजलिया परे । बीस जाति सेवा शिर धरे ॥28॥
डिडू गोत कौचर प्रमाण । तेवीस शाखा शुभ कार्य जाण ।
कनोजिया की उन्नति कही । उन्नीस शाखा मानो सही ॥29॥
लघु श्रेष्टि फिर इनकी जात । वर्धमानादि सोलह विख्यात ।
चरड गोत कांकरिया जाणो । नव शाखा के काम पहचाणो ॥30॥
सुंघड़ दूघड़ के संडासियासात । लुंग-चण्ढालिया चार हुई जात ।
गटिया गोत टीबांणो तीन । धर्म कर्म में रहते लीन ॥31॥
अठारह चार सब बावीस मूल । पांच सौ पन्द्रह जाति हुई कूल ।
उन्नति के यह हनाण । नामी पुरुष हुए प्रमाण ॥32॥
जिन्होंने धार्मिक कार्य किये । धर्म काम में बहु द्रव्य दिया ।
राज काज व्यापार से कही । कई हाँसो से जातियें बन गई ॥33॥
दोय हजार वर्ष निरान्तर । उपकेश-सूरियों ने बराबर ।
अजैनों को जैन बनाते रहे । उनकी जाति की गिनती कोन कहे॥34॥
अन्याचार्यों ने जैन बनाये । महाजन संघ के साथ मिलाये ।
जिससे संगठन बढ़ता गया । अलग रखने का नाम न लिया ॥35॥
महाजन (संघ) समृद्धशाली भया । तन धन मन उतंग नभ गया ।
क्रिया भेद गच्छ पृथक हुआ तब श्रीगणेश पतन का हुआ ॥36॥
चैत्य निश्रय अनिश्रय कृतदोय । गोष्टिक बनाये सुयोग्य को जोय ।
इसने गड़बड़ मचाइ पुरी । ममत्व भाव नहीं रही अधूरी ॥37॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हाल इसका है विस्तार । केता लिखू नहीं आवे पार ।
वर्तमान जो प्रचलीत है वात । जिसका ही लिख दू अबदाता ॥38॥
मतमर्तातर निकले नहीं मान । ले ले जातियां मांडी दुकान ।
जातियों ने उनका साथ दिया । उनके ही इतिहास का खून किया ॥
तोड़ संगठन अपनी की थाप । कृतघ्नी बन किया वज्र पाप ।
पतन दशा का कारण यही । अनुभव से सब जाणी सही ॥
भवितव्यता टारी नहीं टरे । होन हार अन्यथा कोन करे ।
अन्य गच्छ के कहलावे गोत्र । वंशावलियों से पाई जोत ॥
मंडोत सुंघेचलने रातडिया । बोत्थरा बछावत व फोफलिया ।
कोठारी कोटड़िया कपुरिया । घाड़िवाल धाकढ़ा सेठिया ॥
धूवगोता नागगोता वली नाहर । धाकड़ और खीबसरा सार ।
मथुना मिन्नी सोनेचा सुजाण । मकवाणा फितुरिया को जाण ॥
खाबिया सुखियाने संखलेचा । ढाकलिया पाडूगोत पोसालेचा ।
बाकुलिया सहुचेती नागणा । खीवांणदिया वडेरा वडपणा ॥
कोरंटगच्छ के ये श्रावक जाण । वंशावलियों में हैं प्रमाण ।
नन्नप्रभसूरि आदि प्रभाविक । जिन्होंने बनाये जैनी भाविक ॥
गोहलाणि ने नवलखा गण । भुतोड़िया ये एक ही प्रमाण ।
पीपाड़ा हिरण ने गोगढ़ा । शिशोदिया है इसमें बड़ा ॥45॥
रूणीवाल ने वेगाणी दानी । हिंगड़ लिंगा ने रायस नी ॥
झामड़ झाबक दूधेडिया कही । छजलाणी छलाणी सही ॥46॥
घोडावत हरिया कल्हाणी । गोखरू चोधरी नागड जाणी ।
छोरिया सामड़ा लोडावड वीर । सूरिया मीठा नाहर गंभीर ॥47॥
जड़िया आदि ओर विवेक । नागपुरिया तपा सूरि नेक ।
दुर्व्यसन छोडाइ जैन बनाया । उनका उपकार सदा सवाया ॥48॥
वरदिया-वरडिया वंश जतावे । वरहुदिया शिलालेखबतावे ।
बांठिया कवाड थे बड़े ही वीर । शाह-हरखावत साहस सधीर ॥49॥
छत्रिया लालाणी ने रणधीर । ललबाणी हुए वडे गंभीर ।
गान्धीराज वैदबलगान्धी । जिन्होंने प्रीत प्रभु से सान्धी ॥50॥
खजानची और डफरिया जाण । युरड संघी मुनौत पहचान ।
पगारिया चौधरी व सौलंकी । गुजरांणी कच्छोला जिनकी ॥51॥
मरडेचा सोलेचा और खटोल । विनायकिया लुंकड सराफ अमोल ।
अंचलिया मिन्नी ने गोलिया, ओस्तवाल गोठी दोलिया ॥52॥
मादरेचा लोलेचा व भाला । गुरु प्याल पी लो मतवाला ।
घृहद तपागच्छ के सूरि सधीर । जैन बनाये क्षत्री वीर ॥53॥
गिरते नरक से स्वर्ग बताया । परम्परा हम चलते आये ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपकार तणो नहीं आवे पार । प्रतिदिन वन्दन वार हजार ॥54॥
गाल्हा आथ गोता बुरड जाणा । सुभद्रा बोहरा व सियालाण ॥
कटारिया कोटेचा रत्नपुरा । नागड़गोत मिटड़िया वड़शूरा ॥55॥
घर गान्धी देवानन्द धरा । गोतम गोत डोसी सोनोगरा ॥
कांटिया हरिया देड़िया वीर । बोरेचा और श्रीमाल वडधीर॥56॥
अंचल गच्छ सूरीश्वर राया । अजैनों को जैन बनाया ॥
उपकार आपका अपरम्पार । स्मरण करिये प्रत्युपकार ॥57॥
पगारिया बंब गंग कोठारी । गिरिआ गहलड़ा ओर है न्यारी ॥
मलधार गच्छ के सूरि जाण । श्रावक बनाये जाति प्रमाण ॥58॥
सांढ सिवाल पुनमियाधार । सालेचा मेघाणी धनेरा सार ॥
पूनमिया गच्छ के सूरिराय श्रावकबनाये करुणा लाय ॥59॥
रणधीरा कावडिया सुजाण । ढड्ढाश्रीपति तेलेरा मान ॥
कोठारी नाणावल गच्छ सार । सूरि कितो जबर उपकार ॥60॥

सुरांणा सांखला सोनी जिसा । भणवट मिटड़िया है किसा ॥
ओस्तवाछ खटोड ओर नाहरं । सुरांणा गच्छ का परिवार ॥61॥
धर्मघोष सूरि का उपकार । नहीं भूले एक क्षण लगार ॥
धोखा-बोहरा डुगरवाल कही । पल्लीवाल गच्छ की कृपा सही
दूधेड़िया कटोतिया गंग जाति । बंब और खाबड़िया साति ॥
कदरसा गच्छ के सूरि महन्त । हम पर किया उपकार अनंत
भंडारी गुगलिया धारोला । चूतर दूधेडिया बोहरा झोला ॥
कांकरेचा और शिशोदिया वीर । गच्छ सांढेराव सदा सधीर ॥64॥
उपकार तणो नहों आवे पार । विनय भक्ति वन्दना वार हजार ॥
गच्छ मंडोवरा आगमिया गच्छ । द्विवन्दनिक जीरावला है स्वच्छ ॥
चित्रवाल गच्छ छापरिया ओर । चौरासी गच्छों का था बहु जौर ॥
थोड़े बहुत प्रमाण में सही । अजैनों को जैन बनाये कहीं कहीं ॥
साधु साध्वी हुए विच्छेद तमाम । कहीं 2 कुल गुरु माण्डे नाम ॥
साहित्य का है आज अभाव । प्रकाशित नही हुआ स्वभाव ॥
ओसवंश रत्नाकर था विशाल । गोत्र जातियाँ थी रत्नों की माल ॥
संवत् सतरहसौ सीहर मझार । सेवग प्रतिज्ञा ली दीलधार ॥
तमाम जातियों का लिखसुनाम । पिच्छे करसु घर का काम ॥
दशवर्ष तक भ्रमण बहुकिया । चौदहसौ चमालीस नाम लिख लय ।
शेष रह गई एक डोसी जात । डोसी और घणेरी होसी-साचीबात
पन्ना पुरांणा मिलियो ज्ञान भण्डार । लिख सुजातियो उनके आधार ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऊपर लिखी जातियों करसु बाद । फिरभी रह जाता है अपवाद ।।
आमी अरणोदिया और अतार । अच्छा आमदेवा आलझडा सार ।।
आबगोता आखा अर्बुदा जाण । भालीजा ओसरा आसांणी मान ।।
ओरड़िया इज्जारा इन्दाणी परे । ऊटड़ा उबड़ा उमरावज सरे ।।
ऊनिया ऊकारा उसकेरिया मान कटक कटारा कणेरा प्रमाण ।।
कड़िया कटोतिया कसाराकट । कागदिया काजलिया करकट ।।
कासतवाल कांकलिया कापडिया । कान्धल कविया काल दिया ।
किराड़ कुँबोज कुंकर कुंडसार । कुचेरिया कुंपड़ कसरिया धार ।।
केलवाल केरिया केवड़ा भारी । कोलिया काबर कंडीरकारी ।
खंगार खंगणी खर भंडारी । खडभंशाली खटवड़ा उपकारी ।।
खाटा खारीवाल खेलची जाणो । खीची खीचिया खेंचाताणों ।
खेरिया खेतरपाल खेतसी वीर । खेमानन्दी खुतड़ खेताणी गंभीर ।।
खुखुवालखे तसार खंडिया । खाउ खेलू खेतासर खीजुरिया ।
खखरोटा खेडीवाल खोसिया । गट्टा गलगट गडवाणी लिया ।।
गुलगुला गेमावत और गौरा । गुजरा गोल किया गीया भौरा ।
गुणतिया गुलखण्डियां गोदा । गोगावत गोवरिया योद्धा ।।
गोसलाणी गोहिल गुजरा । घोघा गीरवा घंघवाल धार ।
चौसरा चीमाणी चौमोहल्ला । चूंगीवाल चेतावत् चौखंड ।
चोखा चूड़ावाल ने चंचल । चिनीचुड़ावत चूंगा अलिबल ।।
छ छोड़ छोगा छोटा छा ही । छालिया छीटिया छीवरसाही ।
भाला जोगड़ जोगावत् शूरा जाणेचा । जीनाणी जेताब जोतूरा ।।
जक्षगोता जालौरी जिन्दा । जेलमी जोगनेरा जेबी प्रसिद्धा ।
झोटा झबरवाल ने झलेची । टाटिया टोडरवाल और टकेबी ।।
टाडुलिया टीकायत टुकलियां । टांचा टाकलिया टांकीवादियाँ ।
ठावा ठाकुर ठेठवाल ठंठेर । ठगणा ठंठवाल और ठंडेर ।।
डागा डांग डावा डाकलिया । डोडिया डावणां ने डावरिया ।
ढ़ाबरिया ढेलिवाल ढेढिया । ढूंढवाल ढूँढेडा लिया ।।
तोडरवाल तोलावत् तुल्ला । तीखा तेजावत् ने तोमुला ।
थोथा थाभलेचा थानावत् । थाका, थीरा और थीरावत् ।।
दादा दरड़दक ने देदावत् । दाउ दीलीवाल और दीपावत् ।
देवड़ा दीसावाल दीवाना । धमाणी धींगड़ धुपिया आना ।।
धोखा धंधलिया धनेचा । धावा धीरा धींगा धूलेचा ।
नावरिया नाडोला नांदेचा । निधि नेमाणी ने नाथेचा ।
नवसरा नाथसरा नौवेरा । नाणावटी नारा निबेडनेरा ।।
पंवार पामेचा पालीवाले । पाटणिया पटवा षोमावत् चाले ।।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पड़िहार पापड़िया पालरेचा । पोकरवाल पितलिया पादेचा ।
पालावत् पिपलिया पुहड़ा वीर । पाथवत् पोपटिया पगुँ धीर ।।
फूला फूलपगर फोकटिया जाण । फक्कड़ा फेफावत् फला प्रमाण ।
बडोलिया बडाला वलोटा धीरा बालडा बहुबोला बावला वीरा ।।
वाबेल बांगाणी बघेरवाल । बाबेलिया बह्मेचा वांकीवाल ।
बुरड़ बुर्कचा बोकडियामान । बोरूदिया बोगा बजाज पहचान ।।
बुबकिया बुर्ड बेगडा खरा । बालिया बोरेचा बगला धरा ।
भक्कड़ भड़गतियां भंडेसरा सही । भीलुडिया भाभू भन्शाली कही ।।
भंडावत् भोपाला भुंगड़ी धीर । भीन्नमाला भादवत भुनिडवीर ।
भाला भोगरवाल और भूरा । भाटी भलभला ने भल चूरा ।।
मरडिया मीनीयार मे मागदिया । मेड़तिया ममाइया भालुकिया ।।
महुतीयाणी मीनारा ने मुशल । मेथात है मोडो मीठा कुशल
माडलेचा मालविया ने मेवाड़ा । मालावत मुगा मोथा चाडा ।।
मच्छा मुलीवाल अरू मुर्गीपाल । मकाणा मादरेचा वे सुविशाल ।।
मोदी मर्चा और मोतिया वडवीर । मोहीवाल में दीवाल हुए रणबीर
रायजादा राय भणसाणी ने राठौड़ । राजावत् रासाणी रोडा कोड़
लालन लुणिया लुणावत जाण । लुंबक लोला लेवा पहचान ।।
लाखाणी लखेसरा ने लोलेचा । संरिया साचोरा ने सोलेचा ।।
सिरोया सरवाला ने सेवइयाँ । सोढा सींगाणी शृँगारारिया ।।
सुरपुरियां सांगरिया सोनीगरा । सोजतिया सिंहावत् उत्तमधरा
संखवाल साच्चा सुखा सही । हरसोला हाड़ा हेमावत कही ।।
हांसा हंसाणी हाला खेडी वीर । हापड़ा हुल्ला हरियागंभीर ।।
संक्षिप्त से मैं किया विचार । ओसवंश रत्नाकर नहीं आवे पार ।।

ओसवंश के गोत्रों का वर्गीकरण

ओसवंश के गोत्रों का वर्गीकरण निम्नांकित आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें कुछ गोत्रों को ही स्थान मिल सका है।

1. प्रतिबोधकर्ता आचार्य के आधार पर
2. गच्छ के आधार पर
3. प्रतिबोध के स्थान के आधार पर
4. उद्भव के समय के आधार पर
5. नामकरण के आधार पर
6. मूल गोत्रों के आधार पर
7. पूर्वजाति (उद्भव जाति) के आधार पर

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1. प्रतिबोधकर्ता के आधार पर-

वर्धमान सूरि और उनकी शिष्य परम्परा ने यह सराहनीय कार्य किया। इनकी शिष्य परम्परा में जिनेश्वर सूरि, जिनचंद्र सूरि, अभयदेव सूरि, जिनवल्लभ सूरि, जिनदत्त सूरि, मणिधर सूरि, जिनचन्द्र सूरि, जिनपति सूरि, जिनकुशल सूरि, जिनप्रभ सूरि, जिनभद्र सूरि, जिनचन्द्र सूरि, जिनकीर्ति सूरि आदि ने अनेक ओसवाल गोत्रों के उद्भव में योग दिया। इन आचार्यों ने जिन जिन गोत्रों के उद्भव में योग दिया, वे निम्नानुसार हैं।

1. वर्धमान सूरि- लोढ़ा, पीपाड़ा[1]

2. जिनेश्वर सूरि- श्रीपति, ढढ्ढा, तिलेरा, भणसाली (चील मेहता)

3. जिनचन्द्र सूरि- श्रीमाल

4. अभयदेव सूरि- खेतसी, पगारिया, मेड़तवाल

5. जिनवल्लभ सूरि- कांकरिया, चोपडा, गणधर चौपडा, कूकड, चोपडा, बडेर, सांड, सिंधी, बांठिया, ललवाणी, बरमेचा, हरखावत, मल्लावत, साह और सोलंकी।

6. जिनदत्त सूरि- पटवा, टांटिया, कोठारी, बोरड, खीमसरा, समदरिया, कटोतिया, रत्नपुरा, कटारिया, ललवाणी, डागा, मालू, भामू, सेठी, सेठिया, रांका, बाँका, धोका, राखेचा, सकलेचा, पुंगलिया, चोरडिया, सांबसुखा, गोलेछा, पारख, लूणिया, नाबरिया, सोनी, पीतलिया, बोहित्थरा (बोथरा) आर्यारिया, लूनावत, बापना, भंसाली, चण्डालिया, आवेडा, खटोल, भडगतिया, पोकरणा।

7. मणिधारी जिनचन्द्र सूरि- आघडिया, छाजेड, भिन्नी, खजांची, मुंगडी, श्रीमाल, सालेचा, गांग, दूगड-सूगड, शेखाणी, आलावत, कोठारी, सालेचा बोहरा

8. जिनकुशल सूरि-, बाबेल, संघवी, जड़िया, डागा।

9. जिनप्रभसूरि- खण्डेलवाल जाति के लोगों को प्रतिबोध दिया।

10. जिनभद्र सूरि- आपने प्रतिबोध देकर नूतन जैन बनाये।

11. जिनचन्द्र सूरि- पहाल्या, पींचा

12. जिनहंस सूरि- गेलड़ा

13. जिनकुशल सूरि- डागा

14. मानदेव सूरि- नाहर

15. उद्योतन सूरि- बरडिया/दरडा, सिंघी (बलदोटा)

16. यशोभद्र सूरि- भण्डारी

---

1. श्री मोहनराज भंसाली - ओसवाल वंश, अनुसंधार के आलोक में, पृ. 279-280

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

17. शिवसेन सूरि- मुहणोत

18. धनेश्वर सूरि- लूंकड

19. रविप्रभ सूरि- लोढ़ा

20. देवगुप्त सूरि- लूणावत

21. हेमसूरि- सुराणा आदि आदि।

2. गच्छ के आधार पर

गच्छ के आधार पर ओसवाल के गोत्रों का वर्गीकरण किया जा सकता है। गच्छ के अनुसार ओसवंश के गोत्रों का वर्गीकरण निम्नानुसार है-

1. उपकेशगच्छ- प्रारंभिक अट्ठारह गोत्र

2. खरतरगच्छ- कटारिया, कांकरिया, करणिया, कठोतिया, खजांची, चोपडाकूकड, चोपडा, गुणधर, चोरडिया, गोतेछा, सांवसुखा, पारख, छाजेड, झाबक, डागा, डोसी, पीथलिया, दूगड-सूगड, धाडिया, टाटिया, पगारिया, पोकरणा, पीपाँडा, बाबेला, बोरड, बाफणा (बहूफणा), नाहटा, बोथरा (बोहित्थरा), बच्छावत, फोफलिया, मूकीम, भामू, भंसाली, मालू, मुहणोत, राखेचा, पुंगलिया, ललवाणी, बांठिया, ब्रह्मेचा, हरखावत, मल्लावत, रांका, बांका, रुणवाल, लूणिया, लोढ़ा, आयरिया, लूणावत, कासटिया, मैमेया, सालेचाबोहरा, श्रीपति ढढ्ढा, तिलेरा, सींधी, सिंधवी कमाणी, सिंघी, सुचन्ती, आवेडा, खाटेड और खण्डेलवाल ओसवाल- आदि

3. सांडेर गच्छ- भण्डारी

4. तपागच्छ- मुहणोत आदि

5. उपकेश गच्छ- लूणावत आदि

6. कोरंट गच्छ- संकलेचा

7. रुद्रपल्लीगच्छ- छजलानी/घोड़ावत

8. संखेश्वर गच्छ - सेठ

3. प्रतिबोध के स्थान के आधार पर-

जैनधर्म के आचार्यों ने अलग अलग स्थानों पर अनेक जाति के लोगों को अलग अलग स्थानों पर प्रतिबोध देकर उन्हें जैन बनाया और इस प्रकारनये गोत्रों के उद्भव में योग दिया-

1. रतनपुर- कटारिया, मालू, रीहड

2. कांकरोत- कांकरिया

3. कच्छ- करणिया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

4. कठौती- कठोतिया

5. देवीकोट- खजांची मिन्नी

6. खीमसर- खीमसरा

7. भारवरी- गड़वाती, भड़गतिया

8. खजबाणा- गेलड़ा

9. अणहिलपुर- गोठी

10. मण्डोर- चोपडा कूकड, चोपड गणधर

11. चोरडियागांव- चोरडिया

12. चित्तोड- सामसुखा

13. आहड- पारख

14. सिवाणा- छाजेड

15. झाबुआ- झाबक

16. नाडोल- डागा

17. विक्रमपुर- डोसी, पीथलिया

18. वीसलपुर- दूगड, सूगड

19. आघाट- दूगड़, सूगड

20. महानगर- नाहर

21. भीनमाल- पगारिया

22. पुष्कर- पोखरणा

23. पीपाड- पीपाडा

24. बगड- बगरेचा

25. बावेला- बावेल

26. अम्बागढ़- बोरड

27. धार- बाफणा/बाहुफणा, नाहटा

28. देलवाडा- वोथरा (बोहित्थरा)

29. रतनपुर- भामू

30. भडसाल- भंसाली

31. नाडोल- भण्डारी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

32. खेड- मुहणोत

33. जैसलमेर- राखेचा

34. पुंगल- पुंगलिया

35. रणथम्भोर- ललवाणी, बांठिया, ब्रह्मेचा, मल्लावत

36. रुण- रुणवाल

37. पाली के पास एक गांव- रांका, बांका

38. नेणा- लूंकड, श्रीपति

39. मुल्तान- लूणिया

40. बडनगर (मूंडवा)- लोढ़ा

41. सिंध- आयरिया, लूणावत, ढढ्ढा

42. संखवाल- संकलेचा

43. सियालकोट- सालेचा बोहरा

44. सिरोही- सींधी, सिंघवी

45. मांडवगढ़- कमाणी सिंघी, सिंघवी

46. डीडर- सिंघवी डीडू

47. दिल्ली- सुचन्ती

48. सिद्दपुर- सुराणा

49. पाटन- आवेडा

50. खाटू- खाटेड

5. गोत्रों के उद्‌भूत- समय के आधार पर

संवत्		
विक्रम संवत् 400 वर्ष पूर्व	-	सभी 18 प्रारम्भिक गोत्र
वि.सं. 24		दूधोरिया आदि
सातवीं शताब्दी 684 सं		आर्य/आयरिया आदि
आठवीं शताब्दी 735 सं		गलूण्डिया आदि
नवीं शताब्दी 878 सं		राखेचा
से 885		कुंकुभा आदि
दसवीं शताब्दी 912 सं		सालेचा
933 सं		तुण्ड
935 सं		छाजेड़

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संवत्		
954		बोर्दिया/दरड़ा
994		नक्षत्र आदि
ग्यारहवीं शताब्दी	-	दूगड़, सूगड़, भण्डारी, भण्साली
1001		लूंकड़
1009		बागरेचा
1011		काग
1026		कमाणी सिंघवी/सिंघी, गुंदेचा
1072		पीपाड़ा
1076		सुचन्ती
बारहवीं शताब्दी		मालू
1101		श्रीपति
1111		पगारिया
1132		सुराणा, भण्वट
1042		कांकरिया
1043		गरुड़
1152		गोठी
1156		चोपड़ा कूकड़, चोपड़ा गुणधर (जालोर के मोदी)
1167		हरखावत (कुवाड़), बांठिया, ललवाणी, मल्लावत
1169		टांटिया, घाड़ीवाल
1175		ब्रह्मेचा, संखलेचा, संखवालेचा, आर्य
1172		आयरिया, बोरड, लोढ़ा
1176		करणिया, कणतिया
1177		बाफणा, नाहटा
1182		कटारिया
1187		राखेचा, पुंगलिया
1192		गोलेच्छा, गदहिया (गधैया), पारख, चोरडिया, लूंकड, शामसुखा, लूणिया
1197		बच्छावत, फोफलिया, मुकीम, पीथलिया, बोथरा (बोहित्थरा) दोसी आदि
1198		आयरिया
तेरहवीं शताब्दी	-	भण्साली, मालू, भटनेरा चौधरी, ओसतवाल
1201		वैद्य, खटेड़ (खटोड़), आवेड़ा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संवत्		
1204		पीछोलिया
1215		छाजेड
1216		खजांची, भिन्नी
1217		दूगड-सूगड, सालेचाबोहरा,
चौदहवीं शताब्दी	-	गांग, सिसोदिया, तिलेरा
1313		संखवाल, संखलेचा
1371		बावेला
1381		डागा
पन्द्रहवीं शताब्दी	-	जोहरी, सिंघवी डीडू
1475		झाबक
सोलहवीं शताब्दी		
1552		गेलड़ा/गेहलड़ा
1595		पींचा
सत्रहवीं शताब्दी	-	ढढा
1800		गेमावत
अट्ठारहवीं शताब्दी	-	
1727		रामपुरिया

6. नामकरण के आधार पर

नामकरण के आधार पर भी ओसवाल वंश के गोत्रों का विभाजन किया जा सकता है। इसको निम्नानुसार उपविभाजित किया जा सकता है-

(i) पूर्व जाति के आधार पर

राठौड, खींची, सोलंकी, खण्डेलवाल,

(ii) स्थान के आधार पर नामकरण

भंडसाल से भंसाली
खीवसरा से खींवसरा
पीपाड से पीपाडा
नागोर से नागौरी
मेडता से मेडतवाल
पूंगल से पूंगलिया
कांकरोत से कांकरिया
संखवाल से संखलेचा
रुण से रुणवाल
झाबुआ से झाबक
हाला से हलाखंडी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जालोर से जालोरी
खाटू से खटोल
मण्डोर से मण्डोवरा
सिरोही से सिरोहिया
सांचोर से सांचोरा
कुचेरा से कुचेरिया
काटेडा से कोटेचा आदि।

(iii) पूर्वज/प्रमुख व्यक्तियों के नाम के आधार पर

लूणसिंह से लूणिया
लूणा से लूणावत
हरखचंद से हरखावत
डुंगरसी से डूगरानी
मल्ल से मल्लावत
दास्सु से दस्सानी
खेता से खेतानी
आसपाल से आसाणी
माल्हदे से मालू
बोहित्थ से बोथरा
बच्छाजी से बच्छावत
डूंगा से डागा
गोंगा से गांग
दुधेड़ा से दुधेडिया
ब्रह्मदेव से ब्रह्मेचा
गद्दाशाह से गदिया
लालसिंह से ललवाणी
पीडला से पीथलिया आदि

8. व्यापार-व्यवसाय के आधार पर नामकरण

तेल से तिलेरा
घी से घीया
गूगल से गूगलिया
जवाहरात से जौहरी
बोहरागत से बोहरा आदि।

(iv) राजकीय सेवाकार्य के आधार पर नामकरण

खजाने का कार्य से खजांची

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोठार का कार्य से कोठारी
हुकूमत का कार्य से हाकिम
मोदी का कार्य से मोदी
चौधराट का कार्य से चौधरी
भण्डार के कार्य से भण्डारी

(v) पदवी आदि के आधार पर नामकरण

शाह, सेठ, सेठिया, वैद्य, पारख, सिंघवी, संघवी आदि

(vi) हँसी मजाक के आधार पर नामकरण

गेलडा, टाटिया, हीरण, बाघमार, चिंचड, धोका आदि

18 पूर्वजाति (उद्भव जाति) के आधार पर

ओसवंश के विविध गोत्रों की पूर्व जातियां

जाति व्यवस्था का जन्म वर्णव्यवस्था से हुआ है। मूल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातियां मानकर अवान्तर भेद मान लिये गये हैं। जैन साहित्य में केवल महापुराण में जाति व्यवस्था को प्रश्रय मिला है। जैनधर्म में जातिवाद को स्थान नहीं है किन्तु, जैन साहित्य के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि लगभग प्रथम शताब्दी के काल से लेकर जैनधर्म रूपी मयंक को जातिवाद रूपी राहु ने ग्रसना प्रारम्भ कर दिया था।[1] दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है, न देह वंदनीय है, न कुल वंदनीय है, न जाति संयुक्त मनुष्य ही वंदनीय है। गुणहीन मनुष्य की मैं वन्दना कैसे करूँ। ऐसा मनुष्य न श्रावक ही हो सकता है न श्रमण ही।'[1]

महावीर के ही समान दिगम्बर परम्परा के ग्रंथ 'वरांगचरित्र' में कहा है, ब्राह्मण कुछ चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्रवर्ण वाले नहीं होते, क्षत्रिय कुछ किंशुक के पुष्प के समान गौर वर्ण वाले नहीं होते, वैश्य कुछ हरताल के समान रंग वाले नहीं होते और शूद्र कुछ अंगार के समान कृष्ण वर्ण वाले नहीं होते। चलना, फिरना, शरीर का रंग, केश, सुख-दुख, रक्त, त्वचा, मांस, मेदा, अस्थि और रस इन सब बातों में एक समान होते हैं।[2]

पारमार्थिक दृष्टि से जैनमत में जातिवाद को अस्वीकार किया है। पारमार्थिक दृष्टि हो या लौकिक दृष्टि, जातिवाद बुरा है, जाति नहीं।

ओसवंश के विविध गोत्रों का उद्गम प्रमुख रूप से प्रारम्भ में क्षत्रियों और कालांतर में राजपूतजाति से हुआ, किन्तु कालांतर में अन्य जातियों- ब्राह्मण, अन्य वैश्य वर्ग और कायस्थ आदि जातियों ने भी छोंक डाली है।

---

1. पं. फूलचंद शास्त्री, वर्ण, जाति और धर्म, पृ 165
2. वरांगचरित 3-195

न ब्राह्मणाश्चन्द्र मरीचि शुभ्रा न क्षत्रियः किशंकु पुष्प गौरा।
न चेह वैश्या हरिताल तुल्याः शूद्रा न चाङ्गारसमान वर्णा॥
पाद प्रचारे स्तनु वर्ण केशैः सुखेन दुखेन च शोणितेन।
त्वग्मांसमेदोऽस्थिरसैः समानाश्चतुः प्रभेदाश्च कथं भवन्ति

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्षत्रियों (गोत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र

क्षत्रिय

क्षत्रिय जाति के मूलत: दो वंश है- सूर्यवंश और चन्द्रवंश। महाकवि कल्हण ने राजतरंगिणी में क्षत्रियों के 36 वंशों की चर्चा की है। 'पृथ्वीराज रासो' में चन्दरबरदाई ने निम्न पद में छत्तीस वंश वर्णित किये हैं-

बंस छत्तीस गनीजे भारी, च्यार कुली कुल तीन अधिकारी।
सब सुजात जोनीभग दिणिएं, ए ब्रह्मा अविशेष विसिष्यिये॥
रवि ससि जादव वंश, काकुस्थ परमार सदावर।
चाहुमान चालुक्य, छंद सिलार आभीयर॥
दोयमत मकवान, गरुज गोहिल गोहिलपुत।
चापोत्कट परिहार, राव राठौर रोस जुत॥
देवरा टांक सैंधव अनिग, येतिक प्रतिहार दुघिषट,
कारट्टपाल कारपाल हुल, हरितर गोतर कलाव मद॥
धन्य पालक निकुंभ वर, राजपाल कविनीस।
काल छरक्के आदि है, वरनै वंस छत्तीस॥

मोहनलाल पांड्या ने काकुस्त्स्थ को कछवाहा, सदावर को तंवर, छंद को चंदेल और दोयमत को दायमा लिखा है। इस सूची में वर्णित रोजसुत, अनंग, योतिका, दधिष्ट, कारट्टपाल, कोटपाल, हरीतट, कैमाश, धान्यपाल और राजपाल आदि नहीं मिलते जबकि वैस, भाटी, झाला और सेंगर आदि वंश इस सूची में नहीं है।

कर्नल टाड को छत्तीस कुलों की भिन्न पांच सूचियां मिली -

(1) नाडोल के जैन मंदिर के यति से, (2) पृथ्वीराज रासो से, (3) कुमारपाल चरित से, (4) खीचियों के भाट से और (5) भाटियों के भाट से। इसके आधार पर कर्नल टाड की संशोधित सूची निम्नानुसार है-

1. गहलोत	2. यादव	3. तुआर
4. राठौर	5. कछवाहा	6. परमार
7. चौहान	8. चालुक या सोलंकी	9. प्रतिहार (परिहार)
10. चावड़ा	11. टांक	12. जिट
13. हूण	14. कट्टी	15. बल्ला
16. झाला	17. जैटवा	18. गोहिल
19. सर्वया	20. सिलट	21. डाबी
22. गौर	23. डोड़ा	24. गेहरवाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

25. चन्देला	26. वीरगुनर	27. सेंगर
28. सिकरवाल	29. वैस	30. दहिया
31. जोहिया	32. मोहिल	33. निकुम्भ
34. राजपाली	35. दाहरिया	36. दाहिमा

एक कवि के एक दोहे के अनुसार छत्तीस कुलों में दस कुल सूर्यवंशी, दस चन्द्रवंशी, चार अग्निवंशी और एक एक नागवंश और भूमिवंश के हैं-

दस रति से दस चंद से द्वादस ऋषि प्रमाण
चार हुतासन यज्ञ से, यह छत्रीस कुल जान।

सूर्यवंश -

1. मौरी (सूर्यवंशी)	2. निकुम्भ (श्रीनिकेत)	3. रघुवंशी
4. कछवाहा	5. बडगूजर	6. गहलोत (सिसोदिया)
7. राठौर (गहरवार)	8. रैकतार	9. गौड़
10. निमि (कटहरिया)		

चन्द्रवंश-

1. वदुवंशी (जादौन, भाटी, जाड़ेचा)		2. सोमवंशी
3. तंवर (कटियार)	4. चंदेल	5. करचुल (हेहय)
6. बैस (पायड़)	7. पोलच	8. वाच्छित
9. वनाफर	10. झाला (मकवाना)	

अग्निवंशी -

1. परिहार	2. परमार	3. सोलंकी
4. चौहान		

ऋषिवंशी -

1. सेंगर	2. कनुपरिया	3. विसैन
4. गौतम	5. दीक्षित	6. पुण्डीर
7. धाकरे (भृगुवंशी)	8. गंगवंशी	9. पडियारिन
10. दाहिमा		

नागवंश -

1. टांक (तक्षक)

भूमिवंश -

1. कटोच या कटोक्ष

इसमें अग्निवंशी, नागवंशी, भूमिवंशी केवल आलंकारिक नाम हैं। ऋषिवंशी भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि सभी क्षत्रिय ऋषियों की संतान है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूर्यवंश

सूर्यवंशियों की उत्पत्ति विवस्वान (सूर्य) से मानी जाती है। ब्रह्माजी के पुत्र मारीच हुए, मारीच के कश्यप हुए और कश्यप की रानी अदिति से सूर्य की उत्पत्ति हुई, जिसे विवस्वान भी कहा जाता है। विवस्वान के पुत्र मनु थे। मनु के दस पुत्रों में पृथु, हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु, दशरथ, रामचन्द्र, शुद्धोधन और सिद्धार्थ जैसे राजा और महापुरुष हुए।

सूर्यवंश के रघुवंशी उत्तरप्रदेश के फैजाबाद, बनारस, जौनपुर, आजमगढ़, गौड़ा, सुल्तानपुर, मध्यप्रदेश के सतना और बिहार, राजस्थान, आसाम और चण्डीगढ़ के आसपास रहते हैं।

निमि वंश वैवस्वत मनु के एक पुत्र निमि (मिथि) की सन्तान है। मिथिला के शासकों की उपाधि जनक भी है। सीरध्वज जनक की पुत्री सीता का विवाह रामचन्द्र से हुआ और दूसरी पुत्री उर्मिला का विवाह लक्ष्मण से हुआ। छोटे भाई कुशध्वज की पुत्री मांडवी भरत के साथ और दूसरी पुत्री श्रुतकीर्ति का विवाह शत्रुघ्न से हुआ। यह वंश बिहार प्रान्त के उत्तरी जिलों में निवास करता है।

इक्ष्वाकु वंश के प्रसिद्ध राजा निकुम्भ से वंश चला। इन्होंने बम्बई के पास खानदेश में अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश के क्षत्रिय अब राजस्थान के जयपुर, अलवर, बिहार के आरा, छपरा, वैशाली, मुजफ्फरपुर तथा उत्तरप्रदेश के गोरखपुर, आजमगढ़, बलिया, जौनपुर, गाजीपुर, रायबरेली, हरदोई, फर्रूखाबाद और कानपुर में बसते हैं। इस वंश का राज्य पहले श्रीनगर में था, रुद्रपुर का राज्य इन्हें दहेज में मिला और उनवल का राज्य इन्होंने बाद में जीत लिया। इसके अतिरिक्त इस वंश के क्षत्रिय अब उत्तरप्रदेश के उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त बलिया, गाजीपुर, बस्ती और बिहार के मुजफ्फरपुर, भागलपुर, छपरा और दरभंगा आदि जिलों में बसते हैं।

नागवंश, सूर्यवंशी राजा शेषनाग का वंश है। महाभारतकाल में ये गंगा यमुना के बीच और कुरुक्षेत्र और दिल्ली के आसपास खाण्डव वन में बसते थे। नागवंशियों का फोजी द्वीप पर शासन होने के प्रमाण मिले हैं। अर्जुन ने नागराजा की पुत्री उलूकी से विवाह किया था। मथुरा, मारवाड़ और काश्मीर पर सातवीं से नौवी शताब्दी तक, बस्तर पर नौवीं शताब्दी में, येलवर्गा, भागेवती और निजाम राज्य पर दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक इनका राज्य था। अब इस वंश के क्षत्रिय बिहार के रांची, हजारीबाग, मुजफ्फरपुर जिलों, आसाम, बंगाल, मध्यप्रदेश, काश्मीर और दक्षिण भारत में बसते हैं। कर्नाटक में यह कर्नाटक क्षत्रिय कहलाते हैं। इसकी उपशाखा टांक वंश के क्षत्रिय टक्क देश (पंजाब) में रहते थे। इसकी एक शाखा पंचकर्टक किंचित मात्र में पंजाब, राजस्थान में बसते हैं।

गोहिलवंश गहलोत वंश की शाखा है। सिसोदिया भी गहलोत वंश की शाखा है। यह वंश राम के पुत्र लव का वंश है।

राठौड़ वंश की उत्पत्ति मुचकुंद राठौड़ से हुई। भाट इसकी उत्पत्ति हिरण्यकश्यप की

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रानी दीति से उत्पन्न मानते हैं। राठौड़ वंश प्राचीन राष्ट्रकूट वंश की ही शाखा है।

गौतमवंश को अनेक ग्रंथों में विशुद्ध सूर्यवंशी माना है। इसी वंश में महाराणा शाक्यसिंह जी हुए, इसलिये इसे शाक्यवंश भी कहते हैं। इसी वंश में गौतम बुद्ध हुए। ये उत्तरप्रदेश के गाजीपुर, फतहपुर, प्रतापगढ़ फर्रूखाबाद, गोरखपुर, बनारस बहराइच आदि और बिहार में आरा, छपरा, दरभंगा और मध्यप्रदेश के रायपुर आदि जिलों में बसते हैं।

परमारों को शत्रुओं को मारने के कारण प्रमार या पँवार भी कहा गया है। चन्दरबरदाई और सूर्यमलमिश्रण इन्हें अग्निवंशी, विदेशी विद्वान इन्हें विदेशी मानते हैं। श्री हरनामसिंह चौहान इन्हें मौर्यवंश की शाखा मानते हैं।

चावड़ावंश को चापोत्कर, चापोत्कट या चापवंश भी कहा जाता है। काठियावाड़ के हड्डाला ग्राम से मिले 914 ई के एक शिलालेख के अनुसार यह माना जाता है कि यह वंश शंकर की चाप से उत्पन्न हुए। इसके वंशज शिव के पुजारी हैं। कुछ विद्वान इन्हें गुर्जर कहते हैं। मुहणौत नैणसी, कल्याणसिंह परिहार और जगदीशसिंह गहलोत इन्हें परमारों की शाखा मानते हैं। इनका शासन थोड़े समय तक भीनमाल पर भी रहा। माघ भीनमाल का निवासी था। उसने 'शिशुपाल वध' में लिखा है कि उसका दादा सुभदेव भीनमाल का राजा चावड़ा का मुख्यमंत्री था।[1] परिहारों से पराजित होने के पश्चात् 821 ई में वनराज चावड़ा ने अनहिलपुर (पाटन) को अपनी राजधानी बनाया। वनराज, योगराज, खेमराज, भूयोदराज, वैरिसिंह, रत्नादित्य और सामन्तसिंह अनहिल के चावड़ा नरेश हुए।

डोडवंश को डोड, डोडिया और डोडेया भी कहते हैं। ऐसा कहते हैं कि अग्निवंशी कुलों की तरह एक केले के फूल से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, उसे डोडेया या डोड कहा गया। यह कपोल कल्पित है। अब इस वंश के क्षत्रिय सरदारगढ़ (मेवाड़) के अतिरिक्त, मध्यप्रदेश में पीपलोदा, डांणी, गुदनखेड़ा और चम्पानेर आदि रियासतों में बसते हैं। इसके अतिरिक्त ये उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, गाजियाबाद, बुलन्दशहर, मेरठ, अलीगढ़, बांदा तथा मध्यप्रदेश के पन्ना और सागर और कहीं कहीं पंजाब में भी मिलते हैं।

कच्छवाहा वंश को कच्छपघात या कच्छपरि भी कहा जाता है। यह भगवान राम के द्वितीय पुत्र कुश का वंश है।

परिहार वंश को पनिहार, परिहार, पड़ियार या गुर्जरवंश भी कहते हैं। चन्दरबरदाई ने इन्हें अग्निवंशी और विदेशी विद्वानों ने इन्हें विदेशी माना है। यह राम के अनुज लक्ष्मण का वंश है।

षडगूजर वंश को कर्नल टाड शकों और हूणों की संतान मानते हैं। 'बीकानेर वंशावली', 'क्षत्रिय वंश प्रकाश' और 'क्षत्रिय वंश भास्कर' में इसे लव का वंश माना गया है। कुछ विद्वान इसे प्रतिहार वंश की शाखा कहकर लक्ष्मण का वंश कहते हैं। इस समय इस वंश के क्षत्रिय उत्तरप्रदेश के मेरठ, बुलन्दशहर, गाजियाबाद, एटा, इटावा, मैनपुरी, अलीगढ, फर्रूखाबाद,

1. माघ, शिशुपाल वध, सर्ग 20, श्लोक 1

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बदायू, मुरादाबाद, हरियाणा के गुड़गांव और राजस्थान के जयपुर, अलवर और बीकानेर जिलों में बसते हैं। माहेश्वरी तापड़िया इसी वंश से निकले हैं। सिकरवार और मडाढ भी बड़गूजरों की शाखा है।

गौड़वंश राम के लघु भ्राता भरत का वंश है। गंधर्व शब्द ने ही सम्भवत: गौड़ बना।

चौहान वंश को चन्दरबरदाई, मुहणौत नैणसी और सूर्यमलमिश्रण ने अग्निवंशी माना है। कर्नल टाड और स्मिथ सभी तथाकथित अग्निवंशियों को विदेशी मानते हैं। रामकृष्ण भण्डारकर ने चौहानों की वत्सगोत्री ब्राह्मणों की सन्तान माना है। वास्तव में ये विशुद्ध सूर्यवंशी हैं। खींची और सोनगरा आदि भी चौहानों की शाखाएं हैं।

वैसवंश वसति जनपद के महाराजा वासु के वंशधर ही वैस वंश के कहे जाते हैं। हर्षवर्धन इसी वंश का है। हर्षवर्धन के पश्चात् इसी वंश में प्रसिद्ध राजा हुआ। इस वंश के क्षत्रिय उत्तरप्रदेश के मैनपुरी, एरा, बदायूं, अलीगढ, कानपुर, बांदा, हमीरपुर, इलाहाबाद, फर्रूखाबाद, अजयगढ़, जौनपुर, गाजीपुर, फैजाबाद, गोरखपुर, उन्नाद, रायबरेली और बिहार में सारण जिले में बसते हैं।

दाहिमा वंश : जोधपुर जिले में गोठ और मांगलोद के बीच दधिमाता का मंदिर है। ओझा जी के अनुसार इस मंदिर के क्षेत्र के राजपूत दाहिमे राजपूत कहलाये।[1] पृथ्वीराज चौहान का सेनापति कैमास दाहिमा वंश का था। इस वंश के क्षत्रिय जिला मेरठ के बागपत तहसील में बसते हैं। इस वंश की केवल एक रियासत जसमौर राज्य है। अब इस वंश के क्षत्रिय उत्तरप्रदेश के सहारनपुर, मुजफ्फरपुर, मैनपुरी, इटावा और अलीगढ जिलों में बसते हैं।

दहिया वंश महर्षि दधिचि की संतान है। महाराजा बिल्हण दहिया वंश का सबसे शक्तिशाली राजा रहा है। इस वंश के क्षत्रिय अब राजस्थान के निवासी भी हैं।

दीक्षित वंश को कुछ इतिहासकारों ने चंद्रवंश की शाखा माना है, जो ठीक नहीं है। प्राचीन समय में इनका राज्य अयोध्या में होना सिद्ध होता है। अयोध्या के राजा दुर्गभाव ने अपना राज्य गुजरात में स्थापित किया था। उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य ने इन्हें दीक्षित की उपाधि से विभूषित किया था।

इसके अतिरिक्त सूर्यवंश के विसेनवंश के भभूरभट ने कर्नाटक प्रदेश के पल्लवों को हराकर अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश के क्षत्रिय इलाहाबाद, गोरखपुर, गोंडा, फैजाबाद, प्रतापगढ़, बांदा, जौनपुर, बनारस, गाजीपुर, आजयगढ़ आदि जिलों में बसते हैं।

काननवंश, सूर्यवंश का एक प्राचीन वंश है। ये कोंकण से आए इसलिये इन्हें काननवंश कहते हैं। ये यू.पी. के गाजीपुर, बलिया, आजयगढ़ और बिहार के आरा, छपरा, दायंगा और मुजफ्फरपुर जिलों में बसते हैं। इसके अतिरिक्त डोगरा वंश (कश्मीर के) और गुप्तवंश भी विशुद्ध सूर्यवंशी क्षत्रिय थे।

---

1. गौ.ही. ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 270

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूर्यवंश की वंशावलियां

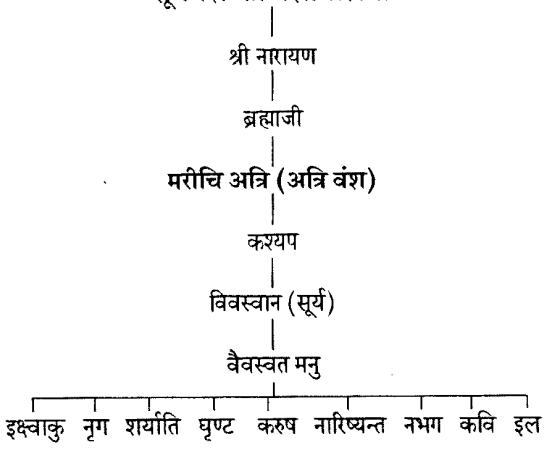

इक्ष्वाकुवंश

अपर नाम निमि विकुक्षि आदि (निमि वंश)

पुरंजय

विश्वगंधि

आर्द्र

युवनाश्व

श्रावस्त

धुंधमार

दृढाश्च

हर्यश्व

निकुंभ

(निकुंभ वंश)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निमि वंश

1. निमि
2. मिथि
3. जनक
4. उदावसु
5. नंदिवर्द्धन
6. केतु
7. देवरात
8. बृहद्रथ
9. महावीर्य
10. सुधृति
11. घृष्टकेतु
12. हर्य
13. मरुत
14. प्रतीप
15. कृतरथ
16. देवभीढ
17. विस्तृत
18. महापृति
19. कृतिरात
20. महारोय
21. स्वर्णरोया
22. हस्वरोया
23. सीरध्वन
24. कुशध्वज
25. धर्मध्वन
26. कृतध्वन
27. केशीध्वज
28. बाहुमान (भानुमान)
29. अरिष्टनेमि
30. श्रुतायु
31. सुपार्श्व
32. चित्ररथ
33. क्षेमधी
34. समरथ
35. उर्ध्वकेतु
36. सोमरथ
37. सत्यरथ
38. उयगुरु
39. उपगुप्त
40. एकनगुप्त
41. युयुधान
42. सुभाषण
43. श्रुतसेन
44. नयसेन (जय)
45. विजय
46. आर्द्र (ऋजु)
47. शुनक
48. वीतहव्य
49. घृति
50. बहुलाश्व
51. कृति

इति निमिवंश

निकुंभ वंश

1. निकुंभ
2. बृहणाश्व
3. सेनजित
4. युवनाश्व
5. मान्धाता
6. पुरुकुत्स
7. अनरण्य
8. त्रिधेन्वा
9. त्रय्यारुण
10. सत्यव्रत
11. नाभाग
12. अम्बरीष
13. सिन्धुद्वीप
14. आयुतायु
15. ऋतुपर्ण
16. नल
17. सक्काम
18. सुदास
19. अश्मक
20. मूलक
21. सत्यव्रत (दशरथ)
22. ऐडविड
23. विश्वसह
24. खटवांग
25. दीर्घबाहु
26. त्रिशंकु
27. हरिश्चन्द्र
28. रोहित
29. हरित
30. चम्प
31. विजय
32. भसक
33. वृक
34. बाहुक (असित)
35. सगर
36. केशी
37. असमंजस
38. अंशुमान
39. दिलीप
40. भगीरथ
41. श्रुतसेन
42. दिलीप
43. रघु
44. अज
45. दशरथ
46. रामचंद्र

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

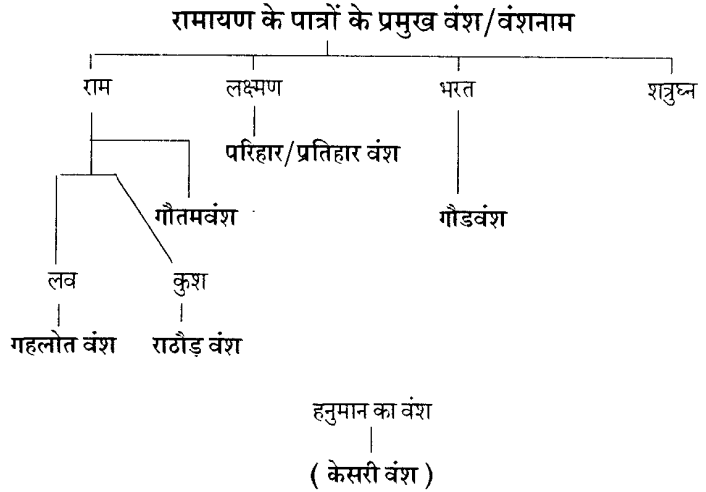

चंद्रवंश

चंद्रवंश दूसरे पुत्र अत्रि की संतान है। अत्रि की धर्मपत्नी अनुसूया का ज्येष्ठ पुत्र सोम था। सोम का वंश होने से यह चन्द्रवंश कहलाया। अत्रि का पुत्र सोम, सोम का पुत्र बुध, बुध का पुत्र पुरुरुवा, पुरुरुवा का पुत्र आयु, आयु का पुत्र नहुष, नहुष का पुत्र ययाति, ययाति का पुत्र पुरु, और पुरु का पुत्र जनमेजय हुआ। दुष्यंत, भरत, शान्तनु इसी कुल में हुए। शान्तनु की पत्नी गंगा से भीष्म और रानी सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य उत्पन्न हुए।

चन्द्रवंश से **यदुवंश, हैहयवंश, जाड़ेचा वंश, चंदेल वंश, तंवर वंश, सेंगर वंश, गहरवार वंश, बुन्देलावंश, झालावंश, सोलंकी वंश, बघेल वंश और बनाफर वंश** निकले।

सोमवंश प्राचीन वंश है। हस्तिनापुर का राज्य छूटने के पश्चात् इन क्षत्रियों ने झूसी (प्रयाग के पास) राज्य स्थापित किया। यह तेरहवीं शताब्दी तक चला। इस वंश के क्षत्रिय अब उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़, गोंडा, रायबरेली, हरदोई, सीतापुर, फर्रूखाबाद, कानपुर, बरेली, फैजाबाद, शाहजहांपुर, जौनपुर, इलाहाबाद, बिहार और पंजाब के कतिपय स्थानों में मिलते हैं।

इस वंश की शाखाएं **पुरुवंश**, हरिद्वार क्षत्रिय, **दुर्वसुवंश, द्रहयूवंश, पांचालवंश, शल्यवंश, काश्यवंश, कण्व वंश, कौशिक वंश, जनवार वंश, पलवा वंश, भारद्वाज और भृगुवंश** है।

महाराजा ययाति के दो रानियां थी। पहली रानी देवयानी (शुक्राचार्य की पुत्री) दो पुत्रों में

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(1) यदु से यादव वंश

(2) दुर्वसु से दुर्वसु वंश

दूसरी रानी शर्मिष्ठा के पुत्रों से

(1) द्रहयू- द्रहयूवंश

(2) अनु से- अनुवंश

(3) पुरु- पुरुवंश

पांचाल वंश - पांचाल नरेश महाराजा हस्ती से पांचालवंश प्रारम्भ हुआ। धृष्टद्युम्न अर्जुन का साला था।

शल्यवंश - चन्द्रवंश के छियालसवें शासक प्रताप से चला।

काश्यवंश - पुरुरुवा से काश्यवंश प्रारम्भ हुआ।

कण्व वंश - ययाति से कण्व वंश का प्रारम्भ माना जाता है। पुरुरुवा से कौशिक वंश चला।

जनवार वंश - में गाधि और गाधिपुत्र विश्वामित्र हुए। राजा जनमेजय के वंशज जनवार क्षत्रिय कहलाये।

पलवारवंश - पाली (जिला) हरदोई के रहने वाले पलवार क्षत्रिय कहलाते हैं।

भारद्वाज वंश - कुछ क्षत्रिय भारद्वाज ऋषि के आश्रम में चले गये, वे भारद्वाज क्षत्रिय कहलाते हैं।

भृगुवंश - भृगु ऋषि में जिन ऋषियों ने दीक्षा ली, वे क्षत्रिय भृगु क्षत्रिय कहलाते हैं। काकतीय वंश कुंतीपुत्र अर्जुन का वंश है। इस वंश के क्षत्रियों ने अन्मकोड़े (हनुमकोड़े) में अपना राज्य स्थापित किया था। बाद में इनका राज्य बहमनी राज्य में मिला दिया गया।

काकतीय वंश - काकतीय क्षत्रियों ने यहाँ से जाकर बस्तर में अपना राज्य स्थापित किया।

वच्छिलशाखा - सोमवंश की शाखा वाच्छिल मथुरा बुलन्दशहर और शाहजहाँपुर में मिलते हैं।

जरौलिया शाखा के वंशज बुलन्दशहर में मिलते हैं।

यदुवंश- यह चन्द्रवंश की सबसे बड़ी शाखा है। श्रीकृष्ण इसी वंश के थे। चंद्रवंशीय राजा ययाति की पुत्री देवयानी से यदु का जन्म हुआ था, इसी के नाम से यदुवंश चला।

कोष्टु वंश यदु के दूसरे पुत्र कोष्टु से चला। यदुवंश की परम्परा में सात्वत हुए, उनसे **सात्वत वंश** चला। सात्वत वंश की परम्परा में पुनर्वास के पुत्र आहुक और पुत्री आहुकी हुई। आहुक के दो पुत्र थे- देवक और उग्रसेन। मथुरा का यह वंश **अंधक वंश** कहलाता था।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृष्णिवंश- सात्वत के छोटे पुत्र वृष्णि से वृष्णिवंश चला। इसी वंश में सुरसेन की पुत्री पृथा (कुंती) का विवाह राजा पाण्डु से हुआ था। सुरसेन की पांच पुत्रियां थी- पृथा, श्रुतकीर्ति, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा, और राजाधिदेवी। इसमें श्रुतश्रुवा से सुनीत (शिशुपाल) का जन्म हुआ था, जिसक वध श्रीकृष्ण ने किया। सूरसेन के ही पुत्र वसुदेव देवक की पुत्री देवकी से हुआ था। वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणी से बलराम का जन्म हुआ।

यदुवंश के बारे में इतिहासकारों का विचार है कि श्रीकृष्ण का पूरा वंश उनके जीवनकाल में ही समाप्त हो गया। यादवों के प्राचीन काल में बड़े बड़े साम्राज्य थे, जैसे मैसूर और करौली। ओझा जी के अनुसार मुसलमानों के पूर्व इनके राज्य दक्षिणी काठियावाड़, कच्छ और राजपूताना के आदि में थे। यदुवंशियों का द्वारिका की तरफ से दक्षिण में जाना लिखा मिलता है। प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख और पुस्तकों में इनका इतिहास मिलता है।

यदुवंश की शाखाएं सिंघेन, होयसल, जादौन, डारी, खरबड़, खागर, छोकर और जाड़ेचा आदि हैं।

हैहय वंश की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। स्वयं हैहयवंशी इसे सिसोदिया वंश की शाखा मानते हैं, किन्तु एक ताम्रपत्र में इसे चंद्रवंशीय राजा भरत की संतान माना है। यदु के ज्येष्ठ पुत्र सहस्राजित के पुत्र शताजित था। शताजित का पुत्र हैहय था। अब इस वंश के क्षत्रिय उत्तरप्रदेश के बलिया, बिहार और आन्ध्रप्रदेश में मिलते हैं।

भाटी वंश को भट्टी वंश भी कहा जाता है। देवास में 1183 ई के एक शिलालेख में श्री कृष्ण की 606वीं पीढ़ी में विजयपाल के वंशजों में गजपाल, शालिवाहन और भाटी हुए। भाटी के द्वारा ही यह वंश भाटी वंश चला। जैसलमेर पर भाटी नरेशों का राज्य रहा है।

जाड़ेचा वंश को जाड़ेजा वंश भी कहते हैं। लाहौर के राजा बालंद के बारह कुंवरों में सभी जी ने परिहारों की जाम पदवी छीन ली, इसके कारण इसे जाम+ज्या जाड़ेचा या जाड़ेजा कहा गया। इनकी रियासतें राजकोट, कच्छस्टेट, नवानगर, गोंडाल स्टेट, मोरवी स्टेट और गोंदल है।

चन्देलवंश को कर्नल टाड विदेशी वंश मानते हैं। कुछ विद्वानों ने इसे राठौड़ और सिसोदियों की शाखा माना है। इसके बारे में एक लोक कथा है कि काशी के महाराजा इन्द्रजीत के राजपुरोहित हेमराज की सोलहवर्षीय पुत्री हेमावली रतिपुण्य नामक स्थान में जलक्रीड़ा कर रही थी, तब भगवान चन्द्र के संसर्ग से चन्द्रब्रह्म हुए, उन्हीं के कारण यह वंश चंदेल वंश कहलाया। खजुराहो के विक्रम संवत् 1059 के एक लेख के अनुसार अत्रि के नेत्रकमल से चन्द्रमा का प्रादुर्भाव हुआ। इससे चन्द्रात्रेय या चन्देलवंश की उत्पत्ति हुई। चन्देल राजा यशोवर्यन ने कन्नोज को राजधानी बनाकर अपना राज्य राजस्थान से बंगाल तथा उत्तर में तिब्बत तक विस्तृत कर दिया था। इस वंश के क्षत्रिय अब कानपुर, मिर्जापुर, जौनपुर, बलिया, बांदा, सीतापुर, फैजाबाद, आजयगढ़, इलाहाबाद, बनारस, उन्नाक्ष और हरदोई आदि जिलों में बसे हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तंवरवंश का नाम महाभारत के युद्ध के उपरान्त आया। इस वंश के बारे में कथा है कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने नागजाति को ही समाप्त करने का निश्चय किया। उस समय एक नागवंशीय ऋषि ने जनमेजय को समझाया तब एक यज्ञ में जनमेजय का पुत्र पौत्रादि दीक्षित हुए। उन्हें महर्षि 'तुर' ने दीक्षित किया, इसलिये वे तंवर (तोमर) कहलाये। 'पृथ्वीराज रासो' में भी तेवरों को चन्द्रवंशीय माना है। राजस्थान के सीकर की तहसील नीम का थाना, जयपुर की तहसील कोटपुतली और अलवर के कुछ क्षेत्रों में तंवर अधिक है इसलिये इसे तोरावाटी (तंवरवटी) भी कहते हैं। इसकी कई शाखाएं हैं।

सेंगरवंश के सबसे प्रसिद्ध राजा बलि थे। इनके पांच पुत्र बालेय कहलाए

1. अंग	2. बंग	3. सहय	4. कलिंग	5. पुण्ड्रक
अंगदेश की स्थापना की			कलिंग देश की स्थापना की	

अंगवंश परम्परा में 20वाँ विकर्ण हुआ। विकर्ण के 100 पुत्र होने से वे शतकर्णी कहलाए। शतकर्णी का ही अपभ्रंश सेंगरी सिंगर, सेंगर हुआ। चेदि इनका राज्य था। इस वंश का सिरोज (मालवा) पर कई वर्षों तक राज्य रहा।

गहरवार वंश को कुछ विद्वान राठौड़ों से उत्पन्न मानते हैं। कर्नल टाड इसे विदेशी मानते हैं। वस्तुतः यह विशुद्ध चंद्रवंशी है। इस वंश का उदय ग्यारहवीं शताब्दी में मिर्जापुर के पहाड़ी क्षेत्रों में हुए। गुफा में रहने के कारण ये गुहावाल या गहरवार कहलाए। जयचंद इसी वंश का राजा था। जयचंद के साथ ही यह वंश समाप्त हो गया। इस वंश के क्षत्रिय अब उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद, बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, तथा बिहार के रांची रामगढ, पलागू, गया, दरभंगा, शालाबाद, वैशाली और मुजफ्फरपुर जिलों में बसते हैं।

बुन्दैला गहरवार वंश की शाखा है

झालावंश की उत्पत्ति के बारे में मतभेद है। कर्नल टाड न इसे सूर्यवंशी, न चंद्रवंशी और न अग्निवंशी मानते हैं। वास्तव में यह वंश चन्द्रवंशीय है, जो मकवाना क्षत्रियों से उत्पन्न है। झालावाड़ पर झाला नरेशों का राज्य रहा।

सोलंकी वंश को प्राचीन ग्रंथों, ताम्रपत्रों और शिलालेखों में चोलुक्य, चुलुक्य, चलुक्य, चालुक्य, चुलुवक और चुलुग वंश माना है। कर्नल टाड इसे अग्निवंशी मानते हैं। सोलंकी क्षत्रियों के दो वंश हैं- उत्तर के सोलंकी, दक्षिण के सोलंकी। बघेलवंश भी इसी की शाखा है।

बनाफरवंश को कर्नल टाड ने यदुवंश की शाखा माना है। अम्बिकाप्रसाद दिव्य इसे लक्ष्मण का वंश मानते हैं। इनके अनुसार बनाफर इनकी उपाधि थी। वह्निदेव की अच्छी सेवा करने के कारण ये बनाफरवंशी कहलाए। वास्तव में यह पाण्डुपुत्र भीम का वंश है। हिडिम्बा के पुत्र से यह वंश चला। इस वंश के लोग अब उत्तरप्रदेश में जादौन, हम्मीरपुर, बांदा, बनारस,

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गाजीपुर, बिहार के गया और रांची जिलों में बसते हैं। जगनिक कृत 'परमालरासो' में इसी के वीरों की प्रशस्ति है।

चंद्रवंश की अन्य शाखाएं- कान्हवंशी क्षत्रिय, रकसेला क्षत्रिय, कटोचवंश, चोपट खम्भ क्षत्रिय, गर्गवंश आदि हैं। चन्द्रवंश की प्राचीन शाखाओं में मौखरी वंश है। अश्वपति ने 100 पुत्र प्राप्त किये। अश्वपति के एक वंशज मुखर या मोखरी था। चन्द्रवंश के एक पुरुष सामन्तसेन से यह वंश चला।

पांड्यवंश का पाण्डव वंश की शाखा माना गया है। चन्द्रवंशीय तीन भाइयों पांड्य चोल और चेरि से तीन वंश चले। ओड़छा नरेश का मूल स्थान वकाट (वर्तमान नागार) के नाम से वाकाटक वंश चला। पल्लव वाकाटक वंश की शाखा किली वल्लन का विवाह मणि पल्लव की पुत्री पिलिवलय के साथ हुआ। माता के नाम से यह वंश पल्लव वंश चला। पांडुपुत्र युधिष्ठिर के पुत्र का नाम यौद्धेय था, जिसके नाम से यौद्धेय वंश चला। मगध के अंतिम शासक रिपुंजय के केवल एक पुत्री थी। उसके प्रद्योत का विवाह राजकुमारी से कर दिया। प्रद्योत के नाम से एक वंश प्रद्योत वंश चला। इसने मगध पर कुल 138 वर्ष राज्य किया। शिशुनागवंश में बिम्बसार और अजातशत्रु हुए। शिशुबाण वंश के अन्त में नंद वंश ने मगध पर अधिकार किया।

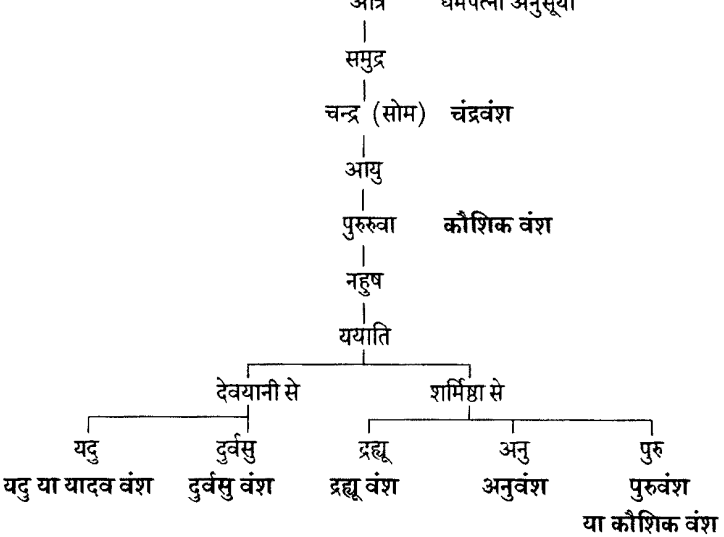

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जनमेजय (जनवार वंश)
|
प्राचीरवान
|
प्रवीर
|
मनस्यु
|
चारुपद
|
सुधन्वा
|
बहुगव
|
संयाति
|
अहयाति
|
रौदाश्व (दस पुत्र)
|
रतिनार
|
सुमति
|
कण्व

कण्व वंश

पुरुरुवा का वंश

आयु धीमान अमावसु श्रतायु शतायु अपतायु

श्रतायु
|
भीम
|
कांचन
|
सुहोत्र
|
जह्नू
|
अजक
|
ललाकाश्व
|
कुश
|
कुशाम्ब

For Private and Personal Use Only

गाधि (कौशिक)

विश्वामित्र

(कौशिक वंश)

पुरुवंश की वंश परम्परा

पुरु के वंशज

पाण्डु

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव

(काकतीय वंश)

महाराज जनमेजय

जनवार वंश

तंवर वंश महर्षि तुर ने दीक्षित किया

यदुवंश

यदु

सहस्राजित | कोष्टु | नील | अंजिक | रघु

कोण्टु वंश

इसी परम्परा में

सात्वत से

सात्वत वंश

छोटा पुत्र वृष्णि

वृष्णि वंश

वृष्णि **(वृष्णि वंश)**

वंश परम्परा में

सुरसेन

दस पुत्र | पांच पुत्रियाँ

वसुदेव, देवाभागा, देवश्रवा, अनावृष्टि, कुवि,
नंदि, सकृद्यश, श्याम, समीर, शंसस्यु

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री कृष्ण

पृथा- अर्जुन की माता
श्रुतकीर्ति
श्रुतदेवी
श्रुतश्रवा
राजाधिदेवी

पुरु के वंशज

महाभोज

हृदिक

देवभोढ

अहिद्योत

पुनर्वसु

आहुक **(अंधक वंश)**

देवक — उग्रसेन

यदुवंश की शाखाएं

यदुवंश — **भाटीवंश** — **हेहयवंश** — **जाड़ेचावंश**

आठ शाखाएं

1. यदु- करौली के राजा
2. भाटी- जैसलमेर के राजा
3. जाड़ेचा- कच्छभुज के राजा
4. समेचा- सिन्ध के निवासी
5. मुडेचा
6. विदभन
7. बद्दा
8. सोहा

अज्ञात

यदु के ज्येष्ठ पुत्र
सहस्राजित के पुत्र
शताजित से

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोष्टुवंश

यदु के पुत्र कोण्ठु से

कोण्ठुक

वज्रिनवान

स्वाहि

रुषद्रु

चित्ररथ

पृथुश्रवा

सुयशा

उसना

तितिक्षु

(तितिक्षु वंश)

कोष्टुवंश की वंश परम्परा में

बलि

अंग बंग कलिंग सुह्म पौण्ड्र

दधिवाहन

दिविरथ

धर्मरथ

चित्ररथ

दशरथ (लोभपाद)

चतुरंग

पृथुलाभ

चम्प

हर्यस्व

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भद्ररथ
|
वृहत्कर्मा
|
वृहदगर्भ
|
वृहन्मना
|
जयदर्थ
|
दृढ़रथ
|
कर्ण
|
विकर्ण- (सौकर्ण- शतकर्णी से)
(सेंगरवंश)

क्षत्रिय (गोत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र

श्री भूतोड़िया ने निम्नांकित ओसवंश के गोत्र क्षत्रियों से निसृत माने हैं।

1. श्रेष्ठि/वैद्य/वेद/मेहता/मूथा

2. झाबक/झबक/झम्मड़/जम्मड़

3. बाफना/बहुफणा/बापना

4. नाहटा

5. कोचेटा/कोटेचा

6. बेताला

7. सांभर/सामर/चतुर साम्भर

8. कुम्भट

9. सिंघी (मुर्शिदाबाद के बलदोता सिंधी)

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 23 और 74

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

10. राजकोष्ठागार/रायकोठारी

11. कावड़िया

12. तातेड़

13. विनायकिया

14. गांधी/गांधी मेहता/ रायगांधी

15. पटवा

प्रारम्भिक सभी 18 गोत्र

तातेड़, बाफणा, करणावट, बलाहा, मोरख, कलहट, विरहट, श्री श्रीमाल, श्रेष्ठि, संचेति, आदित्यनाग, भूरि भहु, चिंचट, कुमट, डिडू, कन्नोजिया और लघु श्रेष्ठि और इनकी जो शाखाओं पहले महाजन कहलाते थे, वे ओसवंशी गोत्र हो गये और ये सभी गोत्र विविध क्षत्रियों से वीर संवत् 70 में ही स्थापित हो गये। राजपूतकाल में इन गोत्रों को प्रतिबोधित किया, संस्थापित नहीं।

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि ने ओसिया के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर कुछ गोत्रों - चरड, सुघड़, लुंग, गहिया, आर्य, काम, गरुड़, सालेचा, बागरेचा, चोपड़ा, सफला, नक्षत्र, आभड़, छावत, तुण्ड, पदबोलिया, हथुंडिया, मण्डोवरा, गुदेचा, छाजेड़, और राखेचा और इनकी शाखाओं को प्रतिबोधित किया, यह सभी क्षत्रिय थे।

इसके अतिरिक्त विविध गच्छों के अनेक आचार्यों ने जिन जिन गोत्रों की स्थापना की, उनके पूर्वपुरुषों की जातियों का विवरण उपलब्ध नहीं है, इसलिये जब तक विवरण ज्ञात नहीं हो तो उनकी पूर्व जाति को क्षत्रिय (गोत्र ज्ञात नहीं) मानना चाहिये।

ओसवंश के कतिपय गोत्र जो क्षत्रियों से निसृत हुए, उनके विवरण उपलब्ध हैं-

गोत्र	सम्वत	आचार्य	गच्छ	स्थान	प्रतिबोधित व्यक्ति
1. कांकरिया	1142	जिनवल्लभसूरि	खरतर	कांकरोल	भीमसिंह
2. टांटिया	1169	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	सांवल जी
3. धाड़ीवाल	1169	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	डेडूजी
4. फोफलिया	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	समधर
5. बच्छावत	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	बच्छाजी
6. बोथरा (बोहित्थरा)	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	बच्छाजी
7. बाठिया	912	भावदेवसूरि	उपकेश	परमा (आबू के पास)	रावमधु देवादि

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

8. मुकीम	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	सवाईराम
9. वैद्य[1]	1201	जिनदत्तसूरि	खरतर	चित्तोड़	दूल्हा
10.झम्मड़ (झामड़)		-		झबुआ	जयसेन
11.नाहटा	-	-	-	-	सांवलजी
12.सिंघी[2]	संवत् 109	प्रद्योतनसूरि	-	रामसीण नगर.	चाहडदेव
बलदोता	-	प्रद्योतनसूरि	-	रामसीण नगर	बालातदेव

परिहार/पड़िहार राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

परिहार/पड़िहार/प्रतिहार

इस वंश को प्रतिहार, प्रतिहार, पड़िहार या गुर्जर प्रतिहार वंश भी कहा जाता है। चन्दरबरदाई आदि कवियों ने इसे अग्निवंशी माना है। पहले इस वंश को राम के पुत्र लव की संतान मानते थे, किन्तु अब इसे लक्ष्मण का वंश मानते हैं। लक्ष्मण ने वन में राम के प्रतिहार का काम किया, इसलिये इसे प्रतिहार वंश कहते हैं। नवीं शताब्दी के एक शिलालेख में अंकित है-

स्व भ्राता राम भद्रस्थ प्रतिहार्य कृतं सत: ।।
श्री प्रतिहार वड शोयमत श्रीन्नति माप्युयात ।।

इस शिलालेख के अनुसार इस वंश का शासनकाल गुजरात में प्रकाश में आया था। उस समय इसकी राजधानी भीनमाल था। भीनमाल को प्राचीन ग्रंथों में मालपट्टन और स्कन्दपुराण में श्रीमाल भी कहा गया है।[3] गुर्जरस्मा या गुजरात प्रदेश पर राज्य करने के कारण इन्हें गुर्जर प्रतिहार कहा गया।

नवीं शताब्दी की ग्वालियर प्रशस्ति में भी वत्स राज्य प्रतिहार को इक्ष्वाकु वंशियों में अग्रणी बताया गया है। राजशेखर ने कन्नोज के प्रतिहार राजा भोजदेव के पुत्र महेन्द्र को रघुकुल तिलक अर्थात् सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है।

भारत में इस वंश का शासन 750 ई से 1018 ई तक माना जाता है।

मण्डोवर के प्रतिहार

मण्डोर के प्रतिहारों के बारे में हमें कुछ जानकारी 836 ई के जोधपुर के शिलालेख और दो 837 ई और 831 ई के घटियाले के शिलालेख हैं। इन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि हरिश्चन्द्र प्रतिहारों का गुरु था, जो सामन्त भी रहा हो। इसके दो पत्नियाँ थी- एक ब्राह्मण और दूसरी क्षत्रिय। ब्राह्मण पत्नी से ब्राह्मण प्रतिहार और क्षत्रिय पत्नी से क्षत्रिय प्रतिहार हुए। भद्रा क्षत्रिय पत्नी थी, जिससे चार पुत्र- भोगभट्ट, कदक, रज्जिल और दठ हुए। हरिश्चन्द्र का समय

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 74-75
2. वही, पृ 91
3. राजपूत वंशावली, पृ 39

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छठी शताब्दी के आसपास माना जाता है।[1] इसमें रज्जल पोता नागभट्ट I बड़ा प्रतापी शासक था, जिससे मण्डोर में प्रतिहारों की स्थिति सुदृढ़ हुई। इसने अपनी राजधानी मण्डोर से मेड़ता स्थापित की। उसका पुत्र जीवन को क्षणभंगुर समय मण्डोर में आश्रम में जाकर धर्माचरण में लग गया। इसके दसवें शासक शीलुक ने भाटी देवराज को युद्ध में पछाड़ा।[2] उसके भाटी वंश की महारानी से बाहुक और दूसरी रानी दुर्लभदेवी से कक्कुक नाम के पुत्र हुए। बाहुक ने 837 ई की प्रशस्ति मण्डोर के विष्णु मंदिर में लगाई जिसे बाद में जोधपुर शहर के कोट में लगा दिया गया। 861 ई में पटियाले के शिलालेख उत्कीर्ण करवाए। इन शिलालेखों का एक अंतिम श्लोक कक्कुक ने रचा था।[3] 1145 ई का सहजपाल चौहान का एक लेख मिलता है इससे यह स्थापित होता है कि 12वीं शताब्दी के मध्य से ही मण्डोर पर चौहानों का राज्य स्थापित हो गया था।

भडौंच के गुर्जर प्रतिहार

ऐसी मान्यता है कि हरिश्चन्द्र का भाई या पुत्र दद्द गुजरात राज्य व्यवस्था के लिये निकल गया हो। ओझाजी की मान्यता है कि भीनमाल का गुर्जरों का राज्य ही भडौंच तक फैल गया हो और भीनमाल निकल जाने पर भडौंच के राज्य पर उनका या उनके सम्बन्धियों का अधिकार रहा।[4] 629 ई और 641 ई के दानपत्रों से ज्ञात होता है कि नान्दीपुरी इनकी राजधानी रही हो। जयभट्ट चतुर्थ इस वंश का अंतिम शासक प्रतीत होता है, जिसका ज्ञात समय 735 ई. है।

गुर्जर प्रतिहार- जालौर, उज्जैन और कन्नौज

इस शाखा के प्रतिहारों का उद्भव स्थान मण्डोर से ही प्रतीत होता है, क्योंकि हरिश्चन्द्र की भांति इस वंश के प्रवर्तक नागभट्ट को राम का प्रतिहार, मेघनाथ के युद्ध का अवरोधक, इन्द्र के गर्व का नाशक, नारायण की मूर्ति का प्रतीक आदि विशेषताओं से विभूषित किया है। अंतर केवल इतना है कि हरिश्चन्द्र को ब्राह्मण कहा गया, जबकि नागभट्ट को क्षत्रिय। इस शाखा को रघुवंशी प्रतिहार भी कहते हैं। डा. दशरथ शर्मा नागभट्ट गुर्जर प्रतिहारों की राजधानी जालौर मानते हैं और दूसरा मत उज्जैन और कन्नोज है।[5] वस्तुत: गुर्जर प्रतिहारों का उद्भव मण्डोर में हुआ और वहीं से अन्य स्थानों पर राज्य स्थापना में लग गये। 'कुवलयमाला' के अनुसार रणहस्ती जालौर का शासक था और यह नागभट्ट का पोता था। इस वंश का चौथा शासक वत्सराज बड़ा प्रभावशाली था। यह जैन 'हरिवंशपुराण' से प्रमाणित है। 778 ई में 'कुवलयमाला' जालौर में लिखी गई। इन ग्रंथों से उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

वत्सराज की रानी सुन्दरदेवी से नागभट्ट का जन्म हुआ, जिसके शासनकाल का वर्णन काव्यग्रंथों और ग्वालियर प्रशस्ति में उपलब्ध है। नागभट्ट का स्वर्गवास 23 अगस्त 833 ई को

1. B.N. Puri, The Gurjar Pratihar, Page 23-24
2. ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 167-168
3. वही, पृ 166
4. B.N. Puri, The Gurjar Pratihar, Page 27,31
5. वही, पृ 34-36

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ। नागभट्ट के बाद रामभद्र और भोजदेव इस वंश के शासक थे। इनके उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल के भी 893-900 ई के ताम्रपत्र मिलते हैं। इनके गुरु राजशेखर थे जिन्होंने 'काव्यमीमांसा', 'कर्पूर मंजरी' आदि की रचना की। इसका पुत्र महिपाल बड़ा विजेता रहा, जिसके 914 ई से 917 ई. के दानपत्र मिले हैं। 1093 ई में कन्नोज के प्रतिहार राज्य का पतन हो गया फिर भी राजस्थान में कुछ प्रतिहार गहड़वालों, राठौड़ों और चौहानों के सामन्त रहे। जैन परम्परा के अनुसार भोज जैनाचार्य बप्पभट्ट का मित्र था।[1]

राजगढ़ के प्रतिहार

अलवर राज्य के राजगढ़ (राजोगढ) में 960 ई के शिलालेख से पता चलता है कि सावट का पुत्र मथनदेव राज्य करता था। इस शिलालेख से पता चलता है कि गुर्जर (गूजर) जाति के किसान भी वहाँ रहते थे।

प्रतिहारों की वंशावली

साम्राज्यवादी प्रतिहार

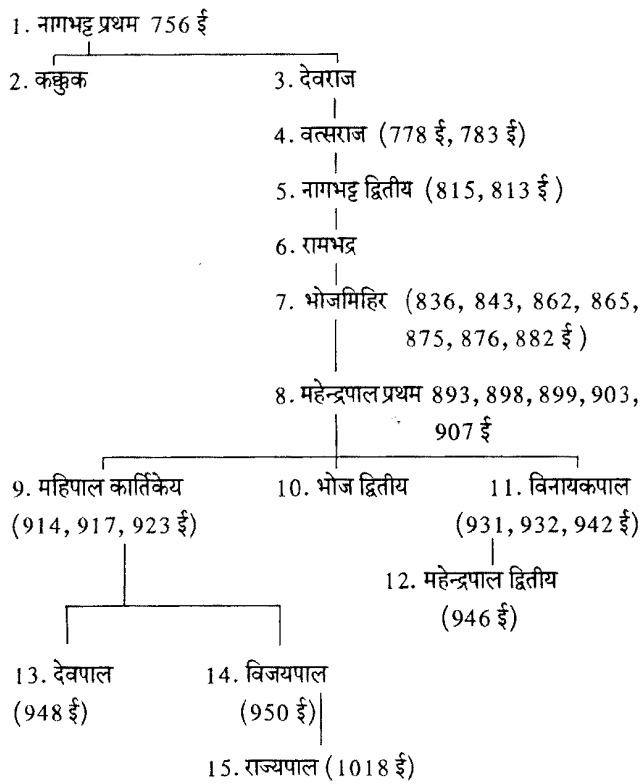

1. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Through the Ages, Page 159

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

16. त्रिलोचनपात (1027, 1019 ई)
|
17. यशपाल
(1036 ई)

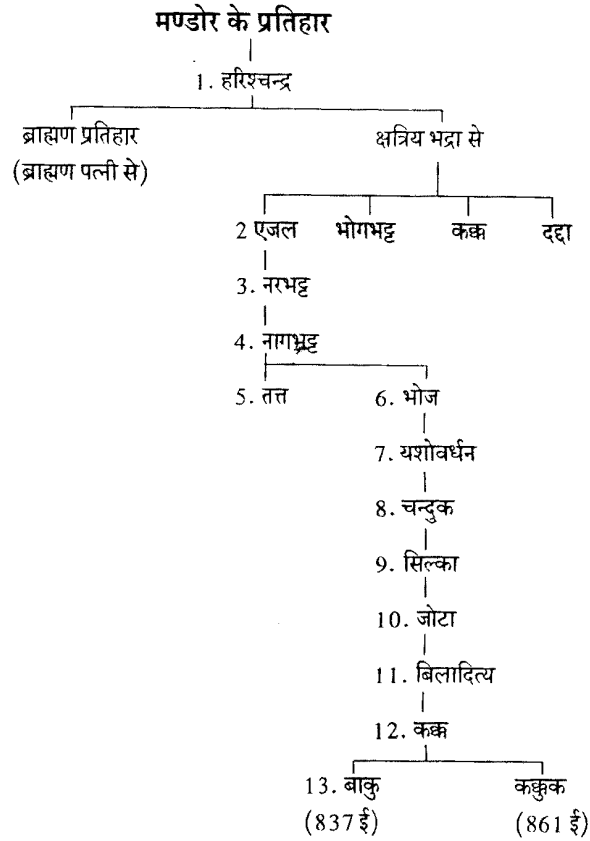

प्रतिहारों का उद्भव

प्रतिहारों का उद्भव कन्नोज नहीं, भीनमाल (जालोर के पास) है। प्रतिहारों को लगातार गुर्जर कहा गया। यह गुर्जर शब्द जातिवाचक न होकर प्रदेश वाचक है। गुर्जर प्रतिहार स्वयं को राम के अनुज लक्ष्मण का वंश मानते हैं। डा. आर.सी. मजूमदार ने माना है कि मण्डोर का प्रतिहार परिवार और कन्नोज के साम्राज्यवादी प्रतिहारों में समानता है, क्योंकि दोनों अपने को राम के अनुज लक्ष्मण के वंश का मानते हैं। वे मानते हैं कि लक्ष्मण ने राम के लिये प्रतिहार का

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दायित्व निभाया।[1] डा. डी.आर. भण्डारकर प्रतिहारों की गूजर उत्पत्ति मानने के प्रबल समर्थक हैं।[2] राजौर के शिलालेख में महेन्द्रदेव को गुर्जर प्रतिहार स्वीकार किया गया है। कन्नोज के प्रतिहार क्षत्रिय और इन्हें गुर्जर कहने का अभिप्राय है कि वे गुर्जर प्रदेश के थे। प्रतिहारों की एक शाखा सियादोनी (SIYADONI) के भी मिलते हैं इन राजाओं के नामों अंत में 'पाल' और राजा मिलता है। डा. डी.सी. सरकार ने इन राजाओं में हीराराजा (948 ई) पर प्रकाश डाला है। यह शाखा भी कन्नोज के प्रतिहारों से सम्बन्धित है।

इसके अलावा ईडर के प्रतिहार भी मिलते हैं। इसमें भी प्रतिहार नाम वंशानुक्रम से हैं। इस शाखा के बारे में अभी भी खोज की आवश्यकता है।

इस प्रकार यह निर्णय लिये जा सकते हैं।

1. प्रतिहार वह व्यावसायिक उपनाम है, जो राजशाही के दरबानों से जुड़ा है।

2. जालौर और कन्नोज के प्रतिहार गुर्जर प्रदेश से सम्बन्धित है, इसलिये गुर्जर प्रतिहार कहा जाता है। नवीं शताब्दी में इन्हें रघु परिवार के क्षत्रिय माना जाता था।

3. मण्डोर के प्रतिहार ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों थे। यह वंश लक्ष्मण से उत्पन्न न होकर ब्राह्मण हरिश्चन्द्र से उत्पन्न है।

4. राजोर के गुर्जर प्रतिहार इन दोनों श्रेणियों के प्रतिहारों से भिन्न है।

5. इनके अतिरिक्त भी देश में कुछ प्रतिहार परिवार मिल सकते हैं।

साम्राज्यवादी प्रतिहार

साम्राज्यवादी प्रतिहारों को गुर्जर प्रतिहार कहा गया। इस मत की प्रस्थापना डा. दशरथ शर्मा ने की है। यही मत डा. डी.आर. भण्डारकर और डा. आर.सी. मजूमदार का है। ह्वेनचांग ने 22 देश माने जिसमें गुर्जर देश की राजधानी भिन्नमाल मानी, जिसका राजा क्षत्रिय था।[3] प्रतिहार काल (750-1018 ई) में रणहस्ती वत्सराज के काल में 778 ई में जालोर में लिखित 'कुवलयमाला' के लेखक उद्योतनसूरि ने गुर्जर शब्द का प्रयोग किया है।[4] इसके पश्चात् सोमदेव सूरि (959 ई) ने 'यशतिलक' चम्पू में दाक्षिण्य, तिरमुक्त, गौड़, उतरापथ और गुर्जर

1. Dr. Dasharath Sharma, Rajasthan through the ages, Page 159
2. Dr. B.N. Puri, Gurjar Pratihars page 14
   The family of Mandore held in common with the Imperial Pratihars of Kanuj, the tradition that they were descended form Laksman, the brother of Rama, and both explained the origin of family named Pratihar to the same event viz that Lakshman served as the doorkeeper of Rama.
3. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan through the Ages, Page 481.
4. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan though the Ages, Page 109.
   In the Pratihar period (750-1018 A.D.) itself the earliest reference to the word Gurjara, is found in 'Kuvlayamala' of Udhotana Suri written at Jalore in 778 AD in an region of redoubtable Pratihar ruler, Ranhatin Vatsraja.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सेनाओं का वर्णन किया है। 'प्रबन्धकोश' में कहा गया कि गुजरात के लोगों को मुण्डिका कहा गया, क्योंकि उनके सिर टोपी से नहीं ढंके रहते हैं या गुर्जर नरेश के आध्यात्मिक गुरु- श्वेताम्बर मुण्डिका कहलाते थे।[1] इससे यह भी ध्वनित होता है कि गुर्जर नरेश के आध्यात्मिक गुरु श्वेताम्बर मुनि होते थे। इस प्रकार गुर्जर शब्द भूगोलवाचक है, इसमें कोई संदेह नहीं।

नागभट्ट I प्रथम प्रतिहार नरेश थे, जिनकी राजधानी जालौर थी और इन्होंने जैन विद्वान यक्षदेव को क्षमाश्रमण स्वीकार करते हुए परामर्शदाता बने।

प्रतिहारों ने हिन्दू भारत की रक्षा के लिये अपना दायित्व निबाहा। भोज I के ग्वालियर प्रशस्ति में नागभट्ट में नागभट्ट को नारायण माना गया है, जिसने उत्पीड़ित व्यक्तियों की प्रार्थना सुनी और उस शासक का विनाश किया जो गुणों का नाशक था। नागभट्ट II को श्रेष्ठ पुरुष और भोज I और वाकूपतिराज को आदि वराह माना गया।[2]

वत्सराज के सम्बन्ध में वि.सं. 1013 का ओसियां का शिलालेख मिलता है। मालवा को प्रतिहारों का घर माना जाता है, किन्तु वहाँ प्रारम्भ के कोई सिक्के और लेख नहीं मिलते हैं। ह्वेनसांग के अनुसार सातवीं के शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पश्चिमी मालवा पर वल्लभी राजाओं का शासन था।[3]

वत्सराज निश्चित रूप से राजस्थान का शासक था। वत्सराज ने भाटियों को पराजित किया। भाटी को भांडी भी कहा जाता था। वत्सराज ने गौड़ देश (बंगाल) पर भी आक्रमण किया था। डा. आर.सी. मजूमदार के अनुसार वत्सराज का राजस्थान और राजस्थान के बड़े भूभाग पर अधिकार था। राष्ट्रकूट में ध्रुव धार वर्षा के हाथों वत्सराज को पराजय झेलनी पड़ी। ऐसा लगता है कि वत्सराज को 786 ई और 793 ई के बीच यह पराजय झेलनी पड़ी। वत्सराज की मृत्यु लगभग 794 ई में मानी जा सकती है।[4]

नागभट्ट II के काल में प्रतिहार राज्य में परिपक्वता आ गई। इसके पौत्र भोज I के ग्वालियर प्रशस्ति में यह माना गया कि आंधु, सिंधु, विदर्भ और कलिंग के नरेश नागभट्ट II रूपी शमा में परवानों की तरह जल मरे, यह उगते सूर्य की तरह प्रकाशित हुआ और इसने कई किले फतह किये। ग्वालियर प्रशस्ति से भी पता चलता है कि नागभट्ट II ने राजस्थान में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी।

'प्रभावक चरित्र' से पता चलता है कि उसके दरबार में इनका पथप्रदर्शक जैन आचार्य

1. प्रबन्धकोश, पृ 59

टोपिका रहिता सिरसक्तवा मुण्डिका गुर्जरा लोक।
अथवा श्वेताम्बर गजरेन्द्र गुरुओ॥
People of Gurjara were called Mundikas because their heads were not covered with caps or it may be that the Swetambaras, the spritual guides of the king of Gurjara were called Mundikas.

2. Indian Historical Quarter, 1958, Dr. Dasharath Sharma's paper Rambhodra & Bhoja.
3. Dr. Dasharath Sharma, Rajasthan though the Ages, Page 126.
4. Dr. Dashrath Sharma, Rajashtan though the Ages, Page 134.
5. Bappa Bhatt Pradandh, Page 127-141.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बप्पभट्टसूरि थे और इनकी सलाह से इन्होंने जैन मूर्तियों में धन व्यय किया।[5]

प्रतिहार साम्राज्य की चरमसीमा- रामभद्र से महेन्द्रपाल प्रथम तक

प्रतिहारों ने राजस्थान में ही नहीं, पूरे भारत में अपनी सुदृढ़ स्थिति बना ली। 833 ई से 910 ई. के सत्तर वर्षों तक तीन प्रतिहार राजाओं नागभट्ट II के पुत्र और उत्तराधिकारी रामभद्र, रामभद्र के पुत्र भोज और भोज के पुत्र महेन्द्र पल I हुए।

रामभद्र (833 से 836 ई) ने केवल 2/3 वर्ष ही शासन किया। रामभद्र सूर्योपासक था, इसलिये इसने अपने पुत्र का नाम मिहिर रखा।

अगला शासक भोज I मिहिर या मिहिर भोज प्रतिहार वंशावली का महानतम् शासक माना जाता है। भोज का गौड़ देश के देवपाल से संघर्ष हुआ। भोज देवपाल को पराजित करने में सफल हो गया। दिल्ली के पुराने किले से प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि दिल्ली भी भोज के साम्राज्य में थी। नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भोज एक महान् भारतीय शासक था, जिसके राज्य में उत्तरप्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, दक्षिणी पूर्वी पंजाब, बिहार के कुछ भाग, और पश्चिमी पंजाब थे। अपने शासनकाल के अंत में गुजरात पर भी अधिकार कर लिया था। इसके साम्राज्य का प्रशासन व्यवस्थित था और प्रत्येक को धार्मिक स्वतंत्रता थी।[1] इसने भारतीय संस्कृति के शत्रुओं का विनाश किया और निरंकुशता से भारत को मुक्त किया।

महेन्द्रपाल I 892 ई में राजगद्दी पर बैठा। महेन्द्रपाल I का जीवन युद्धों में व्यतीत हुई। महेन्द्रपाल I का आखिरी शिलालेख 908 ई का मिलता है। 914 ई में महेन्द्रपाल I का पुत्र महिपाल गद्दी पर बैठा। महिपाल का शासन कुछ असफलताओं के बावजूद सफल शासन था। इस समय भी कन्नोज भारतीय संस्कृति का केन्द्र थी। राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' की रचना इसके दरबार में रहकर की।

भोज II 917 ई और 931 ई के बीच गद्दी पर बैठा। भोज II के राज्य के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। भोज II के पश्चात् इसका भाई- महेन्द्रपाल I का पुत्र विनायकपाल I राजगद्दी पर बैठा। इस समय राष्ट्रकूट के शासकों ने प्रतिहार साम्राज्य पर आक्रमण किया और प्रतिहार पराजित हुए।

प्रतापगढ़ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि महेन्द्रपाल II महाराजा विनायकपालदेव और प्रसाधनदेवी का पुत्र था।

950 ई तक प्रतिहार साम्राज्य ने 200 वर्ष पूरे किये। दो नागभट्ट, वत्सराज, भोज I, महेन्द्रपाल I, और महिपाल के कारण इस वंश के गौरव में अभिवृद्धि हुई।[2]

देवपाल प्रतिहार 949 ई में गद्दी पर बैठा। 960 ई में देवपाल का भाई विजयपाल कन्नोज की गद्दी पर बैठा। ऐसा लगता है कि 984 ई में विजयपाल की मृत्यु हो गई तब राजपाल

---

1. R.S. Tripathi, History of Kanauj, Page 247.
2. Dr. Dasharath Sharma, Rajasthan though the Ages, Page 197.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गद्दी पर बैठा। यह राज्य की रक्षा न कर सका। महमूद गजनी के आक्रमण से राजपाल टूट गया और उसने अग्नि में जलकर आत्महत्या की। इसके पश्चात् प्रतिहार साम्राज्य का कुछ अंश राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल के अधीन रहा, इसके झूंसी के 1084 ई. शिलालेख में मिलता है। 1019 में महमूद ने पुन: आक्रमण किया। महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् त्रिलोचनपाल के पास राज्य का कितना हिस्सा बचा, यह ज्ञात नहीं है। यह वंश कुछ समय तक घिसट कर चलता रहा। गजनवी से पराजय के बावजूद प्रतिहारों के शासन ने इस देश को बहुत कुछ दिया। कला की नयी विचारधारा पनपी। ओसिया के मंदिर अपने में विशिष्ट है।[1] युद्ध में और शांति में दोनों ही दृष्टियों से प्रतिहारों का योग विशिष्ट रहा। इनके समकालीनों ने माना कि प्रतिहार राजाओं ने विष्णु के रूप में पाप से विश्व को मुक्त किया और गुणों की रक्षा की।

प्ररिहार/प्रतिहार राजपूतों से निसृत गोत्र

श्री भूतोड़िया के अनुसार प्रतिहारों/परिहारों से निसृत ओसवंश के गोत्र निम्नानुसार हैं-[2]

1. चोपड़ा/कूकड़/गणधर/परिहार/कोठारी चोपड़ा
2. गांधी/सियाल
3. सांड
4. मंत्री (माहेश्वरी)
5. ऋषभकोठारी
6. कांकरिया
7. बंदा मेहता

परिहार राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

(तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्व पुरुष
1. गुंदेचा	1026	देवगुप्तसूरि	उपकेश	पावागढ	रावलाधी
2. चोपड़ा कूकड़	1156	जिनदत्तसूरि	खरतर	मण्डोवर	कूकड़देव
3. मण्डोवरा	955	सिद्धसूरि	उपकेश	मण्डोवर	देवराज

---

1. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Throuhg the Ages, Page 209.
   A new school of art came with existence the production of which reveal in their beauty same of the art compositions of their periods. Osia temples are in a class by themselves.
2. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 24

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमार राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

परमार शब्द का अर्थ शत्रु को मारने वाला होता है, इसलिये इस वंश के राजपूतों का नाम क्षत्रियोचित कर्म से सम्बन्धित है। ज्यों ज्यों प्रतिहारों की शक्ति का ह्रास होता गया, परमारों का राजनीतिक प्रभाव अधिक बढ़ता गया। धीरे-धीरे इन्होंने मारवाड़, सिन्धु, गुजरात, वागड़ और मालवा आदि स्थानों में अपने राज्य स्थापित किये।

'परान् मारतीति परमार:' अर्थात् शत्रुओं को मारने के कारण ही इन्हें परमार या बाद में प्रमार या पँवार कहा जाने लगा। कवि चन्दरबरदाई, सूर्यमल मिश्रण आदि कवियों ने इन्हें अग्निवंशी माना है। कर्नल टाड और डा. भण्डारकर आदि ने इन्हें विदेशी जातियों से उत्पन्न माना है, जो ठीक नहीं है। श्री हरनामसिंह मान ने इसे मौर्य वंश की शाखा माना है। सभी परमार स्वयं को सूर्यवंशी मानते हैं। डा. जगदीश सिंह गहलोत के अनुसार अग्नि वंश की भ्रांति उत्पन्न होने के कारण यह है कि इस वंश के महापुरुष का नाम धूम राज था। धूम (धुआं) अग्नि से उत्पन्न होता है, इसलिये इसे अग्निवंशी कहा जाने लगा।[1]

आबू के परमारों का कुलपुरुष धूमराज माना जाता है, परन्तु इसकी वंशावली उत्पल राज से प्रारम्भ होती है। प्रारम्भ में इन्हें सोलंकियों से संघर्ष करना पड़ा। इसकी चतुर्थ पीढ़ी में धरणी वराह में सोलंकी मूलराज ने आक्रमण किया, इसलिये इसने राष्ट्रकूट धवल की शरण ली जो धवल के 997 ई के शिलालेख में स्पष्ट है। इसके बाद धरणीवराह का अधिकार फिर से आबू पर हो गया। महिपाल का एक दानपत्र 1002 ई. का मिलता है। महिपाल का पुत्र धुंधक स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति था।

मारवाड़ के परमार नरेशों का क्रम निम्नानुसार है

1. सिन्धुराज	2. उत्पलराज	3. अरण्यराज
4. कृष्णराज I	5. धरणीवराह	6. महिपाल
7. धुंधुक	8. पूर्णपाल	9. कृष्णराज II
10. ध्रुवभट	11. रामदेव	12. विक्रमसिंह
13. यशोध्वत	14. धारावर्ष	15. सोमसिंह
16. कृष्णराज III	17. प्रताप सिंह	18. विक्रमसिंह

विक्रम का प्रपौत्र धारावर्ष आबू के परमारों में बड़ा प्रसिद्ध है। उसने 60 वर्ष राज किया। इसके 363 ई से 1219 ई तक के शिलालेख मिलते हैं। धारवर्ष का लड़का सोमसिंह गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (द्वितीय) का सामन्त था। इसके समय में वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपाल ने आबू में देलवाड़ा मंदिर का निर्माण करवाया। 1311 ई के आसपास आबू में परमार राज्य का अंत हुआ और चौहान राज्य की स्थापना हुई।[2]

---

1. डा. जगदीशसिंह गहलोत, परमार वंश, पृ 43
2. ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृष्ठ 201-202

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जालौर के परमार

जालौर के परमार नरेश निम्नानुसार हुए

1. वाक्पतिराज	2. चन्दन	3. देवराज
4. अपराजित	5. विज्जल	6. धारावर्ष
7. वीसल		

यह सम्भव है कि इस शाखा के परमार धरणीवाल के वंशज रहे हो। इसे आबू के परमारों की छोटी शाखा माना जाना चाहिये। वाकपतिराज इस वंशक्रम में प्रथम 960-985 ई. के लगभग जालौर का राजा रहा। सम्भवत: वह आबू शाखा के ध्रुवभट्ट का समकालीन था। इस वंश के सातवें राजा की रानी मेलरदेवी ने सिंधु राजेश्वर के मंदिर में सुवर्ण कलश 1087 ई में चढ़ाया।[1]

किराडू के परमार

किराडू के शासक निम्नानुसार हुए

1. सौच्छराज	2. उदयराज	3. सोमेश्वर

किराडू के शिवालय पर उत्कीर्ण 1161 ई के एक शिलालेख से यहाँ के राजाओं के नाम मिलते हैं। उदयराज सोलंकियों का सामन्त था। उसने कई युद्ध लड़े।

मालवा के परमार

मालवा के परमार नरेश निम्नानुसार है-

1. कृष्णराव	2. वेरिसिंह I	3. सीमर
4. वाकपतिराज	5. वेरिसिंह II	6. श्री हर्षरिवह
7. भुंज	8. सिंधुराज	9. भोज I
10. जयसिंह I	11. उदयादित्य	12. लक्ष्मणदेव
13. नरवर्मा	14. यशोवर्मा	15. जयवर्मा
16. अजयवर्मा	17. विंध्यवर्मा	18. सुभटवर्मा
19. अर्जुनवर्मा I	20. देवपाल	21. जातकिद्रव
22. जयवर्मा II	23. जयसिंह	24. अर्जुनवर्मा
25. भोज II	26. जयसिंह II	

मालवा के परमार बड़े ही शक्ति सम्पन्न थे। इस शाखा के शासक वीर, साहसी, विद्या सम्पन्न और धन सम्पन्न थे। मुंज के बाद सिंधुराज और उसके बाद भोज परमार हुए। भोज अपनी विजयों और विद्यानुराग के लिये प्रसिद्ध हुआ। उसने स्वयं कई ग्रंथ लिखे और अनेक विद्वान

1. ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 204

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भोज के दरबार में आश्रय लिए हुए थे। खिलजियों के आतंक से मालवा का वैभव समाप्त हुआ और बाद में इन्हीं के वंशज अजमेर के आसपास छोटे सामन्त के रूप में रहते थे। इनके वंशजों में और कर्मचंद पंवार सांगा का समकालीन था जो अजमेर के पास पास छोटे सामन्त के रूप में रहता था।[1]

बागड़ का परमार वंश

बागड़ के परमार वंश के नरेश निम्नानुसार हैं-

1. डम्बरासिंह (मालवा के वेरिसिंह का पुत्र)		2. धनिक
3. चच्च	4. कंवरदेव	5. चंडप
6. सत्यराज	7. लिंवराज	8. मंड
9. चामुण्डराज	10. विजयराज	

मालवा के परमार राजा कृष्णराज के दूसरे पुत्र डम्बरसिंह से बागड़ का परमार राज्य प्रारम्भ होता है। यह राज्य डूंगरपुर बांसवाड़ा का भाग था, जिसे वागड़ कहते हैं। यहाँ के राजा धनिक ने धनेश्वर का मंदिर बनवाया। विजयराज अंतिम शासक था। उसके समय के 1178 ई और 1109 ई के दो शिलालेख मिलते हैं। इसके पश्चात् उस भाग में परमारों के कोई शिलालेख नहीं मिलते हैं। गुडिल सामंतसिंह के कारण वागड़ परमारों के हाथ से निकल गया। 'इसके खण्डहरों से पता चलता है कि अंथूणा उस समय बड़ा वैभवशाली नगर था, जहाँ अनेक शैव, वैष्णव, शक्ति और जैन देवालय थे।[2]

परमारों की अनेक शाखाएं हैं।

कर्नल टाड के अनुसार-

मोरी, उमरा, बुल्हट, सोडा, सुमर, कावा, सांखला, बेहिल या बिहिल, अभट, खैर, मैपावत, रेहवर, दण्ठा, खेचड, सम्पल, कोहिला, देवा, धूंता, सोरगरिया, सुगड़ा, भीखा, पूया, बरतर, रिकुम्बा, हटैर, बरकोटा, कालपुसार, कहोरिया, जीप्रा, टीका, चौदां, पूना, कालामोह, धुंध, योसरा।

डा. दशरथशर्मा ने विभिन्न राज्यों के परमार राजाओं की वंशाशवली निम्नानुसार दी है।

मालवा के परमार

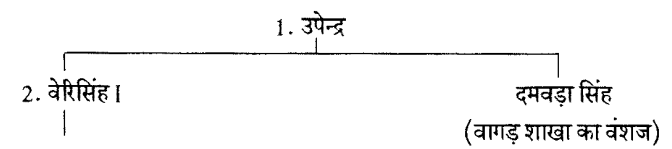

1. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट, अजमेर, 193-12, लेख 2, पृ 2
2. ओझा, राजपूताने का इतिहास, पृ 48-233

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

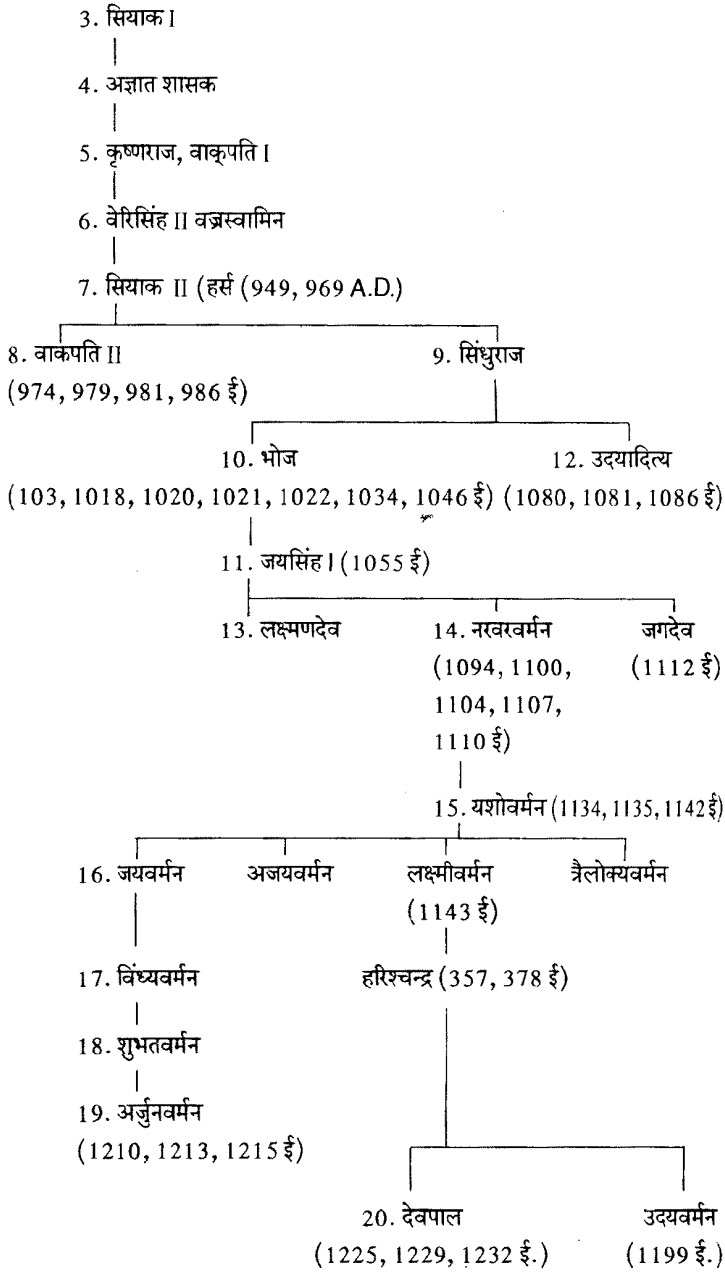

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

21. जैतुगदेव
|
22. जयसिंह II, जयवर्मन
(1255, 1257, 1260, 1263, 1269, 1274 ई)
|
23. अर्जुनवर्मन II — 24. भोज II
|
25. महालकदेत
|
26. जयसिंह II (1310 ई)

आबू और किराडू के परमार

धूमराज
|
1. सिंधुराज
|
2. उत्पलराज
|
3. अरण्यराज
|
4. अद्भुत कृष्णराज I (967 ई)
|
5. धरणिवराह
|
6. घुरभट — 7. महिपाल, देवराज (1002 ई)
|
8. धंधुक
|
9. पूर्णपाल (1042, 1045 ई) — लोहिमीदेव — 10. दांतिवर्मन II — 11. कृष्णदेव II (1060, 1066 ई)
|
योगराज
|
रामदेव
|
12. काकलदेव

सोच्छराज
|
सोमदेव (1141 ई)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

13. विक्रमसिंह
14. यशोधनवल (1144 ई)
15. धारवर्षा (1163, 1176, 1180, 1183, 1188, 1190, 1192, 1198 ई., 1208, 1214, 1217, 1219)
16. सोमसिंह (1230, 1233, 1236 ई)
17. कृष्णराज III
18. प्रतापसिंह 1287 ई
19. अर्जुन (1290 ई)
20. विक्रमसिंह (1300 ई)

वगेला के परमार

1. दम्मरसिंह
2. धनिक
3. चच्चा
4. कनकदेव
5. चण्डप
6. सलराजा
   - 7. तिम्बराजा
   - 8. मण्डालिक (1059 ई)
     9. चामुण्डराव (1079, 1080, 300 ई)
     10. विजयराजा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जालोर के परमार

1. वाकपतिराज
2. चांदना
3. देवराज
4. अपराजित
5. विज्जल
6. धारवर्षा
7. विसाला (1109, 1118 ई)

जगदीशसिंह गहलोत के अनुसार

भामल, सांखला, कणेता, जांगतवा, सोण, उभट, वराह, बरड़ कान्नया, गूगा, उज्जेनी, टेकहा, काना।

मुहणौत नेणसी के अनुसार

पंवार, सांखला, भरमा, भामल, पेस, थाणमीवल, बहिया, वाहस, छाहड़, मोदशी, हुवंड-सीलोरा, जैपाल, कंगना, काना, ऊमट या उमत, धाधू, धूरिया, भाई, कछोड़िया, काला, कालमुहा, रवेदा, खूंटा, ढल, ढेसल, जागा, ढूढा, गेहलड़ा, कलीलिया, कूकण, पीथलिया, डोडा।

परमार राजपूतों से निसृत ओसवंशों के गोत्र

श्री भूतोड़िया ने निम्नांकित ओसवंश के गोत्रों को परमारों से उत्पन्न माना है-

1. दूधोड़िया	2. गिड़िया	3. गांग/गंग
4. पालावत	5. बरडिया	6. नाहर
7. बांठिया	8. मल्लावत	9. हरखावत
10. कुवाड़	11. ललवाणी	12. बरमेचा/ब्रह्मेचा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमार राजपूतों से निसृत कुछ ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. करणिया	1176	जिनदत्तसूरि	खरतर	कच्छ	गदाधर
2. गांग	13वीं शताब्दी	जिनचन्द्रसूरि	खरतर	मोरिपुर	गंगासिंह
3. डीडू सिंघवी	14वीं शताब्दी	जिनप्रभसूरि	खरतर	डीडर	माधवजी
4. नाहर	-	मानदेवसूरि	-	महानगर	आसपीर
5. बरडिया/दरड़ा	954	उद्योतनसूरि	-	-	लखनसी
6. बरमेचा/ब्रह्मेचा	1175	जिनदत्तसूरि	खरतर	अंबागढ	बोरड
7. हरखावत/कुवाड़	1167	जिनवल्लभसूरि	खरतर	रणथम्भौर	हरखाजी
8. सुराणा	1132	धर्मघोष सूरि	-	अजयगढ	रावसूर
9. बांठिया	1167	जिनवल्लभसूरि	खरतर	रणथम्भोर	बंठ
10. ललवाणी	1167	जिनवल्लभसूरि	खरतर	रणथम्भोर	लालसिंह
3. बाफना बहुफणा	1177	जिनदत्तसूरि	खरतर	धार	जयपाल
13. मल्लावत	1167	जिनवल्लभसूरि	खरतर	रणथम्भौर	मल्ल
14. बावेल	1371	जिनकुशलसूरि	खरतर	बावेला	रणधीर
15. छावत	1073	सिद्धसूरि	उपकेश	धारा	रावछाहड़

चौहान राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

चौहान -

चौहानों का इतिहास राजस्थान के उत्तरी पश्चिमी भाग में समृद्धि और प्रसिद्धि का युग था। इस वंश में वासदेव चौहान से लेकर पृथ्वीराज III चौहान के पुत्रों के समय तक पाँच सौ वर्षों तक उत्तर और पश्चिमी भारत में चौहानों का राज्य था। चौहान जांगल देश (मरुभूमि) के राजा थे। उन्होंने गुर्जर राज्य के पतन के बाद 736 ई में अपना राज्य स्थापित कर लिया था।[1] वास्तव में चौहानों का आदि स्थान सीकर है और इनके आदि पुरुष सीकर में ही रहते थे। चौहान सामन्त प्रतिहारों के अधीन थे। चौहानों का सबसे पहले शिलालेख बीजोलिया में प्राप्त हुआ है जो 1169 ई का है।[2] 'प्रबन्धकोश' के अनुसार चौहानों का पहला शासक वासदेव 608 वि में सांभर में राज्य करता था और सांभर झील उसने खुद बनवाई थी। डा. दशरथ शर्मा इस राजा की उत्पत्ति के बारे में लिखते हैं यह वत्स गोत्र का अहिछत्रपुर (नागौर) का ब्राह्मण था। नागौर से

1. बी.एम. दिवाकर, राजस्थान का इतिहास, पृ 53
2. वही, पृ 53

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रवाना होकर यह सामन्त शेखावाटी (सीकर) में महाजनों की सेवा करने लगा।[1] यहीं इसने हर्षादेवी का मंदिर बनवाया और शासक बन बैठा। 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार चौहान वैदिककालीन ब्राह्मण थे, किन्तु यह मत मान्य नहीं है। डॉ. भण्डारकर ने Indian Antiquary में माना है कि चौहान लोग खंजर नामक विदेशी जाति के थे। चारण और भाट चौहानों को सूर्यवंशी बताते हैं। चौहानों ने ही अजमेर नगर बसाया था। इस वंश के अणैराज ने मुसलमानों को हराकर आनासागर झील बनाई थी।

कर्नल टाड के अनुसार आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक चौहान राज्य अजमेर से सिन्ध प्रदेश तक फैला हुआ था। उनकी राजधानियां अजमेर, नागौर, जालौर, सिरोही और चोटन में थी। यों तो साधारण तौर पर वे सभी स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु कुछ बातों में अजमेर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है।'[2] नरदेव के बाद चौहानों की छ पीढ़ियों में विग्रहराज उल्लेखनीय है। चौहान शिलालेखों में विग्रहराज को मतंगा (मुसलमानों का विनाशक) कहा गया है। विग्रहराज ने मुसलमानों को हराया, दुर्लभराज ने चालुक्यों को, अजयराज ने गजनी की सेना को और अर्नेराज ने दिल्ली को ही अपने अधीन कर लिया।

चौहान शब्द 'चाहमान' का विकृत रूप है। इनकी उत्पत्ति विवादास्पद है। भाटों और चारणों ने इन्हें अग्निवंशीय, ओझा सूर्यवंशी, यूरोप के विद्वान आर्य मानकर विदेशी और दशरथ शर्मा इनकी उत्पत्ति ब्राह्मणों से मानते हैं।[3]

जिन भाटों और चारणों ने इन्हें अग्निवंशीय माना इसका आधार चन्दरबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' है। इसमें कहा गया है कि सब ऋषियों ने आबू में यज्ञ करना प्रारम्भ किया तब राक्षसों ने उनमें मलमूत्र, हड्डियां आदि अपवित्र वस्तुओं को डालकर भ्रष्ट करने की चेष्टा की। वशिष्ठ ऋषि ने यज्ञ की रक्षा के लिये मंत्रसिद्धि से अग्नि से चार पुरुषों को जन्म दिया जो प्रतिहार, परमार, चालुक्य और चौहान कहलाये।[4] पृथ्वीराज विजय, हमीर महाकाव्य हमीर रासों आदि ग्रंथ चौहानों को सूर्यवंशीय मानते हैं। कर्नल टाड ने चौहानों को विदेशी माना।[5] डा. स्मिथ[6] और क्रुक ने इसी मत को स्वीकार किया।

डा. भण्डारकर[7] ने चाहमानों को खज्र जाति से सम्बन्धित बताया। डा. दशरथ शर्मा[8] ने बिजोलिया के लेख के आधार पर ब्राह्मण वंश की संतान हैं। "विप्रः श्रीवत्स गोत्रे भूत्" अंकित पंक्ति इस विचार की पुष्टि करती है। 'कायमखाँ रासों' और चंद्रावती के लेख में इनका ब्राह्मणवंशीय होना माना गया है।

---

1. Dr. Dashrath Sharma, Early Chauhan Dynasties, Page 9-10
2. Col Tod, Annals & Antiquities of Rajasthan, Page 608.
3. डा. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ 87
4. वही, पृ 87-88
5. टाड, राजपूताने का इतिहास, भाग 1, पृ 80
6. Dr. Smith Early History of India, III, Page 412.
7. Dr. Bhandarkar, Indian Antiquary, Page 41, 25-29.
8. Dr. Dashrath Sharma, Early Chauhan Dynasties, Page 9-10

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहमानों का मूल स्थान

चित्तोडगढ के मानमोरी 713 ई. के शिलालेख में दी गई वंशावली में महेश्वरदास और भीमदास नाम आते हैं, जो चहमान शासक भर्तृवृद्ध द्वितीय के भी पूर्व पुरुष थे। चाहमान और मोरी वंश की वंशावलियों के नाम या नामान्त की ही साम्यता नहीं है, वरन् इनके समय में भी साम्यता दीख पड़ती है। ऐसी हालत में चाहमानों का मोरियों से वंश सम्बन्ध हो सकता है और उनका मूल निवास स्थान चित्तोड़ माना जा सकता है।[1] यह माना जाता है कि यदि छठी और सातवीं शताब्दी में भडौंच प्रान्त में चाहमान थे तो वे प्रतिहारों के सामन्त थे।[2] 'पृथ्वीराज विजय', 'शब्दकल्पद्रुम' आदि लेखों में चाहमानों के निवास स्थान विशेष का वर्णन मिलता है। इससे स्पष्ट है कि चाहमान जांगलदेश (बीकानेर, जयपुर, उत्तरी मारवाड़) के रहने वाले थे और उनके राज्य का प्रमुख भाग सपादलक्ष (सांभर) था और उनकी राजधानी अहिछत्रपुर (नागौर) थी।[3]

राजस्थान के इतिहास में ही चौहान दृष्टिगत होते हैं। अहिछत्रपुर (नागौर) इनका मूल स्थान है। बिजोलिया के शिलालेख में इसके प्रारम्भिक सामन्त को विप्र वत्स गोत्र का ब्राह्मण माना है।[4] आरम्भिक शासकों में सिंहराज का उत्तराधिकारी विग्रहराज द्वितीय चौहान के प्रारम्भिक शासकों में सबसे शक्तिशाली था।

रणथम्भौर के चौहान

1211 ई. में इस्लामी आक्रमण के पश्चात् सपादलक्ष और नाडोल के साम्राज्य लुप्त हो गये, किन्तु इनके ही परिवार के एक व्यक्ति ने जबलिपुर (जालौर) पर आधिपत्य कर लिया। यह गोविन्द था, जिसे 'हमीर काव्य' में पृथ्वीराज का पौत्र माना है।

रणथम्भौर के चौहान राज विरण्यारण को दिल्ली के बादशाह अल्तमश ने जहर दिया, किन्तु अल्तमश की मृत्यु के पश्चात् इसका चाचा ने रणथम्भोर को अधीन करके सात वर्ष तक राज्य किया। वागभट्ट के काल में चौहान परमार संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। हमीर रणथम्भौर का अंतिम चौहान राजा था। नयचंद्र सूरि के 'हमीर महाकाव्य' और भांदू व्यास के 'हमीरायण' भाट खेना की 'हरीरादो रा कवित्त', मल्ला का 'हमीरादे रा कवित्त', चन्द्रशेखर का 'हमीर हठ', ग्वाल का 'हमीर हठ' आदि हमीर पर लिखी रचनाएं है। हमीर ने एक प्रकार से दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ कर दी थी। हमीर एक विशिष्ट प्रकार का राजपूत था। यह अपने मित्रों के प्रति निष्ठावान और वीर, हिन्दू संस्थाओं का रक्षक शौर्यवान और राजपूतों की प्रतिष्ठा का रक्षक था।

जैन कवि नयचन्द्र ने हमीर की प्रशस्ति गाई है। नयचन्द्र ने नहीं माना कि हमीर की मृत्यु हो गई क्योंकि उसकी उपलब्धियाँ हमेशा ऊपर रहेगी। हमीर का पतन जुलाई 12, 1301

---

1. डा. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, पृ 89
2. वही, पृ 10
3. Dr. Dashrath Sharma, Early Chauhan Dynasties, Page 10-12.
4. Dr. Dasharath Sharma, Rajasthan through the Ages, Page 231
   This would suggest save Naga Connections though in the Bijolia inscription, their early ruler Samanta is called Vipra, is a Brahman of Vatsa gotra.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को हुआ।

जालौर के चौहान

जालौर या जवालिपुर के चौहान राजाओं ने भी हिन्दू जीवन की रक्षा की। नाडोल के ही कीर्तिपाल चौहान ने 1178 ई में जालौर में चौहान राज्य की नींव रखी। कीर्तिपाल के पुत्र समरसिंह और फिर समरसिंह के पुत्र उदयसिंह ने जालौर पर 52 वर्षों (1205-1557 ई) तक शासन किया। यह नाण्डोल, जालौर, मण्डोर, बहाडमेर, किराडू, राडाधरा खेर. रामसेन, रतनपुरा, श्रीमाल और सांचौर का स्वामी था। उदयसिंह अनवरत दिल्ली के सुल्तानों के विरुद्ध युद्ध करता रहा। उदयसिंह को मारवाड़ का स्वामी या 'शाकम्भर ईश्वर' कहा जाता था। 1259 ई में उदयसिंह की मृत्यु तक जालौर उत्तर भारत में शक्तिशाली राजपूत राज्य था।

वंशावलियां

1. रणथम्भौर के चौहान

1. गोविन्द
2. बल्हन वि 1272 (1215 ई)
   - 3. प्रहलादन
     - 4. विरनारायण
   - 5. वाग्भट्ट
     - 6. जेत्रसिंह- मृ वि. 1339 (1282 ई)
       - 7. हमीर
       - विरम

वि 1345, 1339, 1358
(1288, 1292, 1391 ई)

जालौर के चौहान

1. कीर्तिपाल (नाडोल के अल्हण का पुत्र)
2. समरसिंह (1182, 1185 ई)
3. उदयसिंह (1205, 1217, 1248, 1249, 1253, 1257 A.D.)
4. चाचिगदेव (वि 1316, 1319, 1323, 1332, 1333)
5. सामंतसिंह (वि 1339, 1340, 1342, 1344, 1345, 1348, 1352, 1355, 1356, 1359, 1362)
6. कान्हादेव मालदेव वि 1371 (1314 ई)
   - वीरमदेव

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धोलपुर के चौहान

1. इसुका
2. महिसरभा
3. चन्द महासेना 841 ई

प्रतापगढ के चौहान

1. गोविन्दराज
2. दुर्लभराज
3. महासामन्त इन्द्रराजा (946 ई)

शाकम्भरी और अजमेर के चौहान

1. वासुदेव
2. सामन्त
3. नृप या नरदेव
4. जयराज
5. विग्रहराज I
6. चन्दनराज I
7. गोपेन्द्रराज या गोपेद्रक
8. गोविन्दराजा या गुबाका I
9. दुर्लभराज I
10. गोविंदराज या गुबाका II
11. चन्दनराज II
12. वाकपतिराज
13. विंध्यराज
14. सिंहराज (956 ई)
    - लक्षण
    - वत्सराज
15. विग्रहराज II 973 ई
16. दुर्लभराज II (996, 999 ई)
    - चन्दराज
    - गोविन्दराज

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

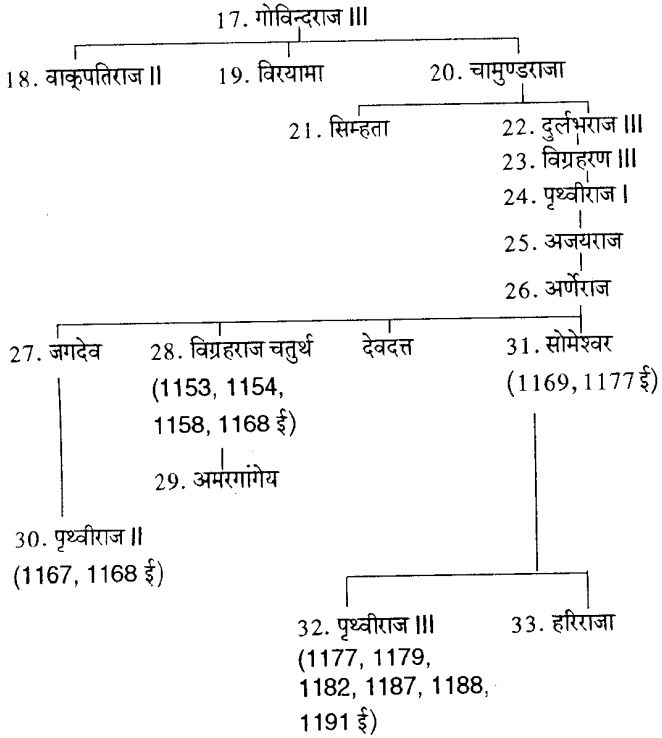

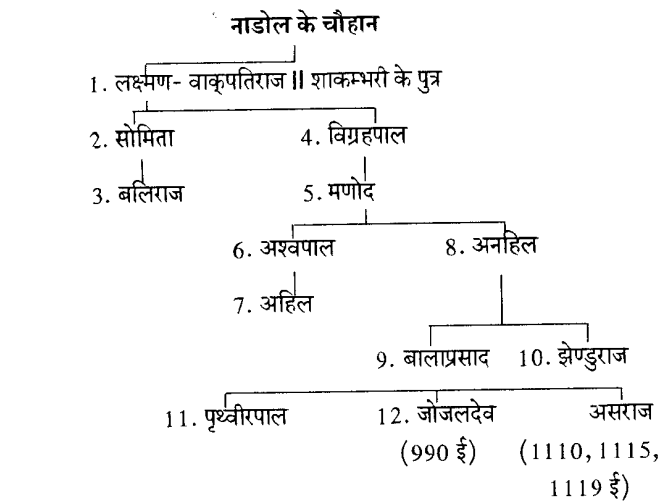

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

14. रतनपाल
(1119 ई)
|
15. रायपाल (1132, 1138, 1141, 1145 ई)
रुद्रपाल अमरपाल सहमणा
असराज
16. कातुदेव 18. आल्हण (1148, 1150, 1152, 1161 ई)
|
17. जवतसिंह
19. केल्हाना गजसिंह कीर्तिपाल
(1163, 1164, 1166,
1167, 1170, 1174,
1176, 1179, 1184,
1192 ई)|
20. जयतसिंह II (1194 ई)
|
21. सामन्तसिंह (1199, 1201 ई)

सूयमल मिश्रण ने चौहानों की कुल 35 शाखाओं का वर्णन किया है।

चौहानों से निसृत ओसवंश के गोत्र

श्री भूतोडिया ने निम्नांकित गोत्रों को चौहानों से उत्पन्न माना है-

1. बोहित्थरा (बोथरा)	2. दस्साणी	3. बच्छावत
4. मेहता	5. मुनीम/खजांची	6. फोफलिया
7. लोढ़ा	8. खजांची	9. मिन्नी
10. दुगड़/सुगड़	11. शेखाणी	12. कोठारी
13. बावेलसिंधी	14. कोठारी	15. कभाणी सिंधी
16. बोलिया/बूलिया	17. बंगाली/बेंगाणी	18. खींवसरा
19. डागा	20. भण्डारी	21. लूनावत भण्डारी
22. खांटेड/खटेड़/अवेड़/खरोल	23. रतनपुरा	24. कटारिया/मेहता
25. पावेचा	26. बलाही	27. संचेती/सुचिंती
28. डोसी/दोणी	29. सोनीगरा	30. पीथलिया
31. बागरेचा	32. मेहता	33. आच्छा
34. संखवाल/संखलेचा	35. ममैया	36. जिन्दाणी/जिन्नाणी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

37. कांस्टिया 38. बुच्चा/बूंटा 39. बोरदिया

चौहानों की उपशाखा खीची से निसृत गोत्र

1. नरवत/कुचोरिया
2. गेहलड़ा/गेलड़ा
3. घाड़ीवाल/धाड़ेवा : कोठारी
4. टांटिया
5. पींपाड़ा

चौहानों की उपशाखा देवड़ा से निसृत गोत्र

1. कमाणी सिंघवी/सिंघवी
2. लोढ़ा

सोनगरा (चौहान) से निसृत गोत्र

डोसी

बागरेचा

सुचन्ती

चौहान राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. आभड़	1079	कक्कसूरि	उपकेशगच्छ	सांभर	राव आभड़
2. काग	1011	कक्कसूरि	उपकेश	धामाग्राम	पृथ्वीधर
3. कटारिया	1182	जिनदत्तसूरि	खरतर	रतनपुर	धनपाल
4. कांसटिया	-	जिनेश्वरसूरि	खरतर	-	-
5. खींवसरा	-	जिनवल्लभसूरि	खरतर	खीमसर	खीमसी
5. खाटेड़/खटेड़	1201	जिनदत्तसूरि	खरतर	खाटू	बुद्धसिंह
6. गरुड़	1043	सिद्धसूरि	उपकेश	सत्यपुर	महाराय
7. दूगड़/सूगड़	11वीं सदी	जिनवल्लभसूरि	खरतर	वीसलपुर	दूगड़ सूगड़
8. डागा	1381	जिनकुशलसूरि	खरतर	नाडोल	डूंगाजी
9. तुण्ड	933	सिद्धसूरि	उपकेश	तुंडग्राम	सूर्यमल
10. बागरेचा	1009	कक्कसूरि	उपकेश	बागरा	बाजसिंह
11. भणवट	1132	धर्मघोषसूरि	उपकेश	बणथलि	पृथ्वीपाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

12. ममैया	-	जिनेश्वरसूरि	खरतर	-	-
13. संखलेचा/संखवालेचा	1175	रत्नप्रभसूरि	कोरंट	संखवाल	लखमसी
14. संखवाल	1313	जिनेश्वरसूरि	खरतर	संखवाल	कोचरशा
16. पीथलिया	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	विक्रमपुर	पीउला
17. बावेल	1371	जिनकुशलसूरि	खरतर	बावेला	रणवीर
18. भण्डारी	11वीं शती	यशोभद्रसूरि	सण्डेर	नाडोल	दूराराव
19. सफला	1197	सिद्धसूरि	उपकेश	जालोर	लाखणसी
20. बोहित्थरा/बोथरा	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	देहवाड़ा	बोहित्थ
21. दस्साणी	-	-	-	-	दस्सू
4. बच्छावत	-	-	-	-	बच्छो

चौहानों की उपशाखा खींची से निसृत ओसवंश के गोत्र

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. गेलड़ा/गेहलड़ा	1552	जिनहंससूरि	खरतर	खजवाणा	गिरधारी

चौहानों की उपशाखा देवड़ा से निसृत ओसवंश के गोत्र

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. कमाणी/सिंघी/सिंघवी	1026	वर्द्धमानसूरि	खरतर	माडवगढ	समरसंघ
2. लोढ़ा	1172	रविप्रभसूरि	खरतर	बडनगर	लाखन

चौहानों की उपशाखा सोनगरा से निसृत ओसवंश के गोत्र

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. दोसी/दोषी	1197	जिनदत्तसूरि	खरतर	विक्रमपुर	हीरसेन

राठौड़ राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

राठौड़

राठौड़ों की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। इनके भाट इन्हें हिरण्यकश्यप की रानी दिति से उत्पन्न मानते हैं। इनका कहना है कि राजा मुचकन्द का नाम राठौड़ था, जिसके वंशज राठौड़ कहलाए। कुछ विद्वान इन्हें इन्द्र की रीढ़ से उत्पन्न मानते हैं। कर्नल टाड इन्हें शक आदि अनार्यों की तथा वी.ए. स्मिथ इन्हें असभ्य जातियों से उत्पन्न मानते हैं। कुछ विद्वान इनकी उत्पत्ति द्रविड़ों से मानते हैं। एक दयालदास इन्हें ब्राह्मणवंशीय भल्लराव की संतान मानता है। ईश्वरसिंह

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मडाढ इन्हें राम के द्वितीय पुत्र कुश का वंश मानते हैं।[1] इस वंश का प्राचीन नाम राष्ट्रकूट है, जो विकृत होकर राइठड़ राठौद, राठौड़, राठौर हुआ।

ऐलोरा की गुफाओं में राष्ट्रकूट नरेश दंतिदुर्ग के लेख में लिखा है :-

नरोत्ति खल कः क्षितो प्रकट राष्ट्रकूटा न्वयम्

भगवान राम के पुत्र कुश के किसी वंशज ने दक्षिण में जाकर राज्य स्थापित किया। वहाँ इनकी राजधानी मालखेट थी। यहीं से इनकी एक शाखा मध्यभारत में आई, जहाँ इनके राज्य को महाराष्ट्र कहा गया। यहीं से ये काठियावाड़, बदायूं और कन्नौज में फैल गये। बदायूं से राव सीहा पाली आए और वहाँ के पल्लीवाल ब्राह्मणों की सहायता से सन् 1243 में उसने मारवाड़ राज्य की स्थापना की।

राव सीहा की मृत्यु के बाद अस्थान ने खेडगढ छीन कर राज्य बढ़ाया। अस्थान के पुत्र धूहड़ ने नगाणा (जिला बाडमेर) में कुलदेवी स्थापित की। धूहड़ के बाद क्रमशः कानपाल, राजपा, जालणणी, छाड़, तीड़ा, सलखा खेडगढ की गद्दी पर बैठे। सलखा के पुत्र मल्लीनाथ भी लोकदेव हैं, जिनका तिलवाड़ा (बाड़मेर) में मंदिर है। राव सलखा के वंशज क्रमशः वीरम, चुण्डा, कान्हा, सत्ता, रणमल और जोधाजी हुए। जोधाजी ने जोधपुर बसाकर वहाँ अपनी राजधानी बसाई।

जोधपुर राज्य की वंशावली इस प्रकार है :-

1. रावजोधा	2. सातल	3. सूजा
4. गांगा	5. मालदेव	6. चन्द्रसेन
7. रामसिंह	8. उदयसिंह	9. किशनसिंह
10. सूरसिंह	11. गजसिंह	12. जसवंतसिंह
13. अजीत सिंह	14. अनयसीह	15. रामसिंह
16. बख्तसिंह	17. विजयसिंह	18. भीमसिंह
19. मानसिंह	20. तरवतसिंह	21. जसवंतसिंह II
22. सरदारसिंह	23. सुमेरसिंह	24. उम्मेदसिंह
25. हनवंतसिंह	26. गजसिंह।	

राव जोधाजी के दूसरे पुत्र बीका ने 1485 में बीकानेर राज्य स्थापित किया। जोधाजी के तीसरे पुत्र दूदा को मेड़ता की जागीर दी गई। दूदा के बड़े पुत्र वीरम का पुत्र वीर जयमल था। दूदा के पुत्र रत्नसिंह को कुड़की ग्राम मिला, जिनकी पुत्री भक्तिमती मीराबाई थी। जोधपुर के राजा उदयसिंह के पुत्र किशनसिंह ने सन् 1609 में किशनगढ़ राज्य की स्थापना की।

बीकानेर राज्य के राठौड़ शासकों की वंशावाली-

1. राव बीका	2. रावनराजी	3. लूणकरण

1. ठा. ईश्वरसिंह मडाढ, राजपूत वंशावली, पृ 74

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

4. जैतसी	5. कल्याणसिंह	6. रायसिंह
7. दलपतसिंह	8. सूरसिंह	9. करर्णसिंह
10. अनूपसिंह	11. स्वरूपसिंह	12. सुजानसिंह
13. जोरावरसिंह	14. गलसिंह	15. राजसिंह
16. सूरतसिंह	17. रत्नसिंह	18. सरदारसिंह
19. डूंगरसिंह	20. गंगासिंह	21. शार्दूलसिंह
22. कर्णीसिंह		

किशनगढ के राठौड़ राजा

1. रत्नसिंह	2. रायसिंह	3. राजसिंहजी
4. शिवसिंह जी	5. केशवदास (सीतामऊ राज्य के संस्थापक)	
6. छत्रशाल	7. केसरीसिंह	8. मानसिंह
9. पृथ्वीसिंह	10. पदमसिंह	11. पर्वतसिंह
12. बलवंतसिंह	13. भैरवसिंह	14. रणजीतसिंह
15. सज्जन सिंह	16. लोकेन्द्रसिंह	

रतनलाल के तीसरे राजा केशवदाससिंह ने सीतामऊ और सातवें राजा मानसिंह के छोटे भाई जयसिंह ने सैलाना राज्य स्थापित किया।

सीताभऊ राज्य के राठौड़ नरेश

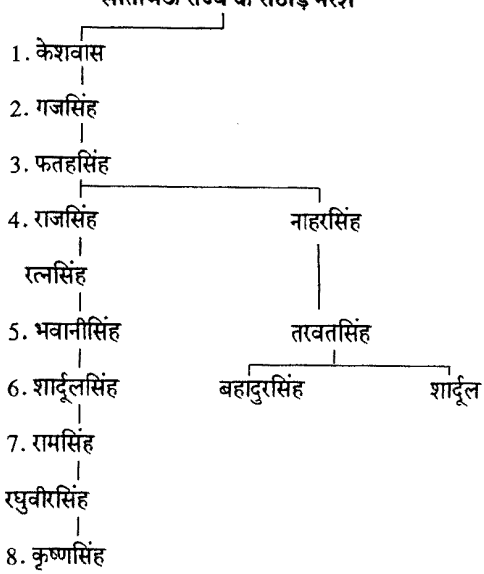

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सैलाना का राज्य

1. जयसिंह	दौलत सिंह	अजयसिंह
2. जसवंतसिंह	बख्तखरी सिंह	
3. अजबसिंह	शिर्णाह	
4. मोहकमासिंह	कुशालसिंह	
5. लक्ष्मणसिंह	नाहरसिंह	
6. रत्नसिंह	भवानीसिंह	
7. नाहरसिंह	जसवंतसिंह	
8. तखतसिंह		
9. दुलतसिंह		
10. जसवंतसिंह		

ईडर राज्य

1. रावसोना	2. अहमल्ल	3. धवलमल
4. लूणका	5. खनदत्त	6. रणमल्ल
7. रावपुंजा	8. नारायण	9. रावमाण
10. सूरजमल	11. रायमल्ल	12. भीम
13. भारमल्ल	14. पुंजो	15. नारायणदास
16. वीरमदेव	17. कल्याणमल	18. जगन्नाथ
19. पुंजो	20. अर्जुनदास	21. गोपीनाथ
22. कर्णसिंह	23. चंद्रासिंह	

रावजोधाजी के पुत्र वरसिंह ने झाबुआ रियासत पर अधिकार किया

झाबुआ का राजवंश

1. वरसिंह	2. सीहाजी	3. जयसिंह
4. रामसिंह	5. भीमसिंह	6. केशवसिंह
7. करणी	8. महासिंह	9. कुशलसिंह
10. अनूपसिंह	11. बहादुरसिंह	12. भीमसिंह
13. प्रतापसिंह	14. रत्नसिंह	15. गोपालसिंह
16. उदयसिंह	17. दिलीप सिंह	18. अजीतसिंह

कर्नल टाड ने राठौड़ों की 24 शाखाएं मानी हैं। वे हैं- धांधल, मडैल, चकित, पूहड़िया, खोरवरा, बदूरा, छाजीरा, रामदेवा, कवरिया, हटूदिया, सुंडु, कटेचा, मुहौली, गोगादेवा, महेचा, जयसिंह, मुरंसया और जोरा। डा. ईश्वरसिंह मडाढ़ ने राठौड़ों की 124 शाखाओं के नाम

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गिनाए हैं।

श्री जगदीश सिंह गहलो ने राठौड़ वंश की निम्नलिखित शाखाएं लिखी हैं-

हतूंडिया, छप्पनिया, बाढेल, सिंघल, अहड़, घांघल, चाचिक, घूहाड़िया, अंगी, मोहनि, खोखर, धवेचा, सोहड़, राड़दड़ा, महेचा, जैतमलोत, पोकरण, बाड़मेरा, कोटड़िया, जसोलिया, गोगादे, चाहड़दे, देवराजोत, भदावत, जैतावत, जोधा, कांपलोत, चांपावत, माडलोत, रूपावत, पालावत, करणोत, मंडल, बला (बालवत), बीकवत, दूदावत, मेड़तिया, अदावत, घाघरिया

राठौड राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

श्री भूतोड़िया[1] के अनुसार राठौड़ राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

1. चोरड़िया	2. रामपुरिया	3. भटनेरा
4. चौधरी	5. गधैया	6. गोलेच्छा/गोलछा
7. सावणसुखा/शामसुखा	8. गुगलिया	9. गुलगुलिया
10. नांदेचा	11. बुच्चा	12. पारख
13. साधु	14. आसाणी	15. ओस्तवाल
16. सराफ	17. मुहणोत/मुणोत	18. पींचा
19. छाजेड़	20. भड़गंतिया	21. गड़वाणी
22. मुरडिया	23. घलूण्डिया	24. पोकरणा
25. धेमावत		

राठौड़ (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. कुकुभ	885	देवगुप्तसूरि	उपकेश	कन्नोज	अड़कमल
2. गोलेछा	1192	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	बच्छराज
3. गधैया/गदहिया	1192	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	सेनहत्थ
4. चोरड़िया	1170	जिनदत्तसूरि	खरतर	चोरिड़या ग्राम (या चंदेरी नगरी)	खरहत्थ
5. छाजेड़	942	सिद्धसूरि	उपकेश	शिवगढ	राव काजल
	1215	जिनचंद्रसूरि	खरतर	सिवाना	काजल
6. झाबक	1475	जिनभद्रसूरि	खरतर	झाबुआ	झंबदे
7. नक्षत्र	994	कक्कसूरि	उपकेश	वटवाड्ग्राम	मदनपाल
8. पोकरणा	-	जिनदत्तसूरि	खरतर	पुष्कर	सकलसिंह
9. पारख	1192	जिनदत्तसूरि	खरतर	आहड़	पाशुजी
10. भड़गतिया/गडवाणी	-	जिनदत्तसूरि	खरतर	भाखरी	ग्राम गडवा
11. मुहणौत	-	जिनचंद्रसूरि	खरतर	खेड़	मोहन जी
12. मल	949	सिद्धसूरि	उपकेश	खेड़	मलवराव

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, पृ 159

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

13. सावणसुखा/शामसुखा	1192	जिनदत्तसूरि	खरतर	चित्तौड़	कुंवरजी
14. हथूड़िया	1191	देवगुप्तसूरि	उपकेश	हथूड़ी	अभ
15. पींचा	1595	जिनचंद्रसूरि	खरतर	जैसलमेर	पांचीसिंह
16. रामपुरिया	1727	रामपुरा	खीमसिंह (चोरड़िया गोत्र की शाखा)		
17. भटेनरा चौधरी,	12वीं सदी	-	-	भटनेर	-
18. गूगलिया/गुलगुलिया		-	-	-	गुलराज (सावणसुखा गोत्र की शाखा)
19. बुच्चा	-	-	-	-	बुच्चाशाह
20. आसाणी	12वीं सदी	-	-	-	आसाणी
21. ओसतवाल	12वीं सदी	-	-	-	ओसतवा
22. घलूण्डिया	735	भट्टारकशांतिसूर्व	-	गलूण्ड	कल्होजी
23. घेमावत	1800	-	-	हस्तीकुण्डी	घेमोजी

कछवाहा राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

कछवाहा

कछवाहा वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक अनेक भ्रांतियां और विसंगतियां हैं। कुछ संस्कृत शिलालेखों में इन्हें कच्छपगात या कच्छपरि कहा गया है।[1] जनरल कनिंघम के अनुसार कछुवाहा, कच्छपगात और कच्छपरि का अर्थ कछुओं को मारने वाला है। कुछ लोगों का अनुमान है कि कछवाहों की कुलदेवी का नाम कछवाही (कच्छपवाहिनी) था, जिसके कारण ही इस वंश का नाम कछवाहा पड़ा। यह दोनों मत मतगढंत है। कछुआ मारना राजपूतों के लिये गौरव की बात नहीं है। कर्नल टाड, शेरिंग, इलियट और कुरु के अनुसार यह राम के द्वितीय पुत्र कुश का वंश है। कुश की पूर्ण वंशावली में सुमित्र के पुत्र कूर्म और कूर्म के पुत्र कच्छप हुए। कच्छप के ही वंशज कछवाहे कहलाए।

जब शिशुनाग ने कछवाहों से अयोध्या छीन लिया, तो ये सोन नदी के किनारे विहार में रोहताशगढ में जा बसे। कुछ विद्वानों के अनुसार यहाँ का दुर्ग कछवाहों ने ही बसाया था। यहाँ से एक शाखा ने आकर नरवरगढ (मालवा) का दुर्ग बनवाया। वि.सं 977 और वि.सं 1034 के ग्वालियर के शिलालेख के अनुसार इन्होंने विजयपाल परिहार से ग्वालियर का दुर्ग छीन और फिर स्वामी बन गये। लक्ष्मण का पुत्र वज्रदामा कछवाहा शासक बना। वज्रदामा के पुत्र कीर्तिराज के वंशधर क्रमशः मूलदेव, देवपाल, पदमपाल, और महापाल हुए। कुतुबदीन ऐबक के शासनकाल तक ये ग्वालियर के शासक रहे। छोटे पुत्र सुमित्र के वंशज क्रमशः मधु, ब्रह्मा, कहान, देवानीक, ईशसिंह-ईश्वरीसिंह, सोढदैव देहलरायय (दुर्लभराय या ढोलाराव) हुए। ढोला राय दौसा (जयपुर)

---

1. राजपूत वंशावली, पृ 106

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के बड़गूचर क्षत्रियों के यहाँ ब्याहे गये, किन्तु उन्होंने बड़गूजरों को निकालकर स्वतंत्र शासक बन गये । इस प्रकार धीरे धीरे व समस्त ढूंढाणा (वर्तमान) जयपुर राज्य के स्वामी बन गये । इनके पुत्र काकिलदेव ने 1027 वि.स. में मीणों से आमेर छीनकर अपनी राजधानी बनाया।

इनकी वंशावली निम्नानुसार है -

1. ढोलाराव	2. काकिलदेव	3. हुणुदेव
4. जान्हडदेव	5. पजवणदेवा	6. मालसी
7. विजलदेव	8. राजदेव	9. किल्हण
10. कुन्तल	11. जाणसी	12. उदयकरण
13. नरसिंह	14. बनवीर	15. उदयराज
16. चन्द्रसेन	17. पृथ्वीराज	18. पूर्णमल
19. भीमदेव	20. रत्नसिंह	21. आसकरण
22. भारमल (बिहारीमल)	23. भगवेतदास	24. मानसिंह
25. भावसिंह	26. जयसिंह	27. बिशनसिंह
28. सवाईजयसिंह।	29. ईश्वरीसिंह	30. माधवसिंह
31. पृथ्वीसिंह	32. प्रतापसिंह	33. जगतसिंह
34. जयसिंह	35. रामसिंह	36. माधवसिंह
37. मानसिंह	38. भवानीसिंह	

28 वे शासक जयसिंह II ने जयपुर नगर बसया। यह नरेश बड़ा ही विद्वान और खगोलविद था। इन्होंने जयपुर के अतिरिक्त दिल्ली, आगरा, मथुरा, उज्जैन और बनारस मैं पाँच वैद्यशालाएं स्थापित की।

अलवर के नरेश भी कछवाहा हैं। इनकी वंशावली निम्नानुसार है-

1. प्रतापसिंह	(1775-1790)
2. बखतावसिंह	(1790-1815)
3. बन्नेसिंह	(1815-1857)
4. शिवदान सिंह	(1857-1874)
5. मंगलसिंह	(1874-1892)
6. जयसिंह	(1892-1933)
7. तेजसिंह	(1933-

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनके वंशज उड़ीसा, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, जालौर, जम्मू और कश्मीर और पुंछ में है। ठाकुर उदयनारायण सिंह के अनुसार नरवट के कछवाहे नरुके कछवाहे बहलाते हैं। उदयकरण के दूसरे पुत्र बालाजी को शेख बुरहान चिश्ती की कृपा से शेखा जी उत्पन्न हुए। राव शेखाजी के वंशज शेखावत कहलाते हैं। ये बड़ी मात्रा में शेखावटी में रहते हैं।

शेखावतों की कई शाखाएं हैं, जैसे- टकनेल शेखावत (शेखाज़ी की टांकर रानी से उत्पन्न), रत्नावत शेखावत (शेखाजी के पुत्र रत्नावत की संतान), मुल्कपुरिया शेखावत (जयपुर के पास मुल्कपुर के रहने वाले), खेजड़ोलिया शेखावत (खेजड़ोली ग्राम के रहने वाले), रायमलोत शेखावत (शेखाजी के सबसे सबसे छोटे पुत्र रायमल जी के वंशज), तेजेसिंह शेखावत (रायमल जी के तीसरे पुत्र तेजसिंह जी के वंशज), सहसमलजी शेखावत (रायमल जी के तीसरे पुत्र सहसमलजी के वंशज), दूदावत शेखावत (रायमलजी के दूसरे पुत्र दूदा के वंशज) लूणकरण जी शेखावत (रायमल जी के दूसरे पुत्र लूणकरण जी के वंशज), रायसलोत शेखावत (सूजा जी के पुत्र रायसल जी के वंशज), गोपालजी शेखावत (सूजाजी रायसलोत के तीसरे पुत्र गोपालजी के वंशधर), चांदापोता शेखावत (सूजाजी के दूसरे पुत्र चांदा जी के वंशधर), भेंरू जी शेखावत (सूजा जी के सबसे छोटे पुत्र भैंरूजी के वंशज)।

कछवाहा-वंशावली

1. **ग्वालियर शाखा**

लक्ष्मण (950-975 ई)
|
वज्रदमन 975-995 ई)
|
मंगलराज (995-1013)
|
कीर्तिराज (1015-35 ई)
|
मूलदेव (1035-55 ई)
|
देवपाल (1055-75 ई)
|
पदमपाल (1075-80 ई)
|
महिपाल (1089-300 ई)

2. **देवकुण्ड शाखा**

युवराज (1000 ई)
|

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्जुन (1000-35 ई)
|
अभिमन्यु (1035-44 ई)
|
विजयपाल (1044-70 ई)
|
विक्रमसिंह (1070-1100 ई)

3. नरवर शाखा

गंगासिंह (1075-1090 ई)
|
सरदारसिंह (1090-1105 ई)
|
वेरिसिंह (1105-1125 ई)
|
1. दुल्हराय
|
2. हनुमान
|
3. काकलदेव
|
4. नरदेव
|
5. जहानदेव
|
6. पज्लुना (पृथ्वीराज III का एक सामन्त)
|
7. मलपणी
|
8. बेजल
|
9. राजदेव
|
10. कल्याण
|
11. राजकुल
|
12. त्रिभुवनपाल
|
13. विजयपाल
|
14. सूरजपाल
|
15. अनंगपाल

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कछवाहों (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र

1. नौलखा/नवलखा

2. भूतोड़िया/भूतोड़िया

कछवाहा (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
नवलखा	-	-	तपागच्छ	-	-
भूतोड़िया	-	-	तपागच्छ	भूतिग्राम	-

शिशोदिया राजपूतों से निसृत गोत्र

गोहिल गहलोत वंश

गहलोत वंश की उत्पत्ति के बारे में अनेक विसंगतियां है। अबुलफजल ने इस वंश को ईरान के बादशाह आदिलशाह नौशेरखा की संतान माना है। उनका मानना है कि नौशेरखां का पुत्र नोशेजाद ईसाई धर्म को स्वीकार करके भारत आया था, उसी के वंश गुहिल या गहलोत हैं। कर्नल टाड तथा स्मिथ आदि ने भी इन्हें विदेशियों की संतान माना है। डॉ. भण्डारकर ने इन्हें नागरवंशीय ब्राह्मणों से उत्पन्न माना है।[1]

यह सब बातें कपोल कथित हैं। गोहिल/गहलोत विशुद्ध सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। इनके झण्डे और सिक्कों पर सूर्य का चिह्न अंकित हैं और 'सूर्यायः नमः' इसी मत को प्रमाणित करता है। यह वंश भगवान राम के पुत्र लव का वंश है। लव ने लाहौर पर राज्य किया था। उसके वंशज कनकसेन (विजयसेन) ने वल्लभी (गुजरात) में राज्य स्थापित किया। हूणों के आक्रमण से राजा शिलादित्य सन् 524 में वीरगति को प्राप्त हो गया और वल्लभी नष्ट हो गई। शिलादित्य की महारानी उस समय अम्बा भवानी की यात्रा को गई थी। उसे वल्लभी पतन की सूचना मिली, तो वह अरावली की एक गुफा में रहने लगी और वहाँ उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उस पुत्र का नाम गुहादित्य रखा गया, क्योंकि वह गुहा में उत्पन्न हुआ। गुहा को महारानी ने एक नागरवंशीय ब्राह्मण को सौंपा। बड़े होकर गुहा ने ईडर में अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंशजों में भोज, महेन्द्र, नाग, शील, और अपराजित हुए। इसी भूल से डॉ. भण्डारकर ने इन्हें नागरवंशीय ब्राह्मणों से उत्पन्न माना।

कर्नल टाड के अनुसार इसकी 24 शाखाएं हैं-

अहाड़िया, मांगलिया, सिसोदिया, केलाना, गहारे, घोरणिया, गोध, मंगरीया, भोंसला, ककोटक, कोटेचा, पार-ऊहड, उसेना, निरूप, नादोड़या, नावोता, कुचेरा, दासोद,

1. राजपूत वंशावली, पृ 64

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भटवेरा, पांता, पूराते।

मुहणौत नैणसी के अनुसार इसकी शाखाएं-

गहलोत, वीसोदिया, ऊहाड़ा, पीपाड़ा, हुल, मांगलिया, आसायत, केनता, मंगरीया, गोधा, जहलिया, मोटसिरा, गोदारा, भीवल, मोर, टीवण, भाहिल, तिबड़किया, बोसा, चन्द्रावत, घोरपिया, बूटीवाल, गौतमा है।

'वीरविनोद' में इसकी शाखाएं- गोहिलोत, सिसोदिया, पीपाड़ा, मांगलिया, ऊजवराया, केलवा, कूंपा, भीमल, घोराण्या, हूल, गोधा, अहाड़ा, नादौत, आशावत, षीण, करा, भटेवश, मूदोत, घालरया, कुचेला, दुसंध्या और कड़ेचा मानी गई है।

वस्तुतः गुहिल वंश गहलोत वंश की शाखा है। वि.स. 1034 के शक्तिकुमार के आवकुमाद शिलालेख में गुहिलवंश को गुहदत्त से उत्पन्न माना है।

आनन्दपुर विनिर्गत विप्र कुलानन्दनो महिदेवः।
जयति श्री गुहदत्तः प्रभनः श्री गुहिलू वंशस्य॥

सिसोदिया (गहलोत)

इस प्रकार सिसोदिया गहलोत वंश की एक शाखा है। सिसोदिया की उपशाखाएं निम्नानुसार हैं-

1. चुण्डावत (सलूम्बर में)
2. सांगावत (आमेर में)
3. सारंग देवोत (कानोड़ में)
4. चन्द्रावत (रामपुरा मालवा में)
5. क्षेमावत (देवलिया प्रतापगढ में)
6. सूहावत (ठिकाना धामोदर)
7. राणावत (महाराणा उदयसिंह के वंशज)
8. शक्तावत (महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तिसिंह के वंशज- भींडर और बानसी)
9. कान्हावत (अमरगढ़ में)
10. जगमलोत (सिरोही में)
11. वीरमदेवोत
12. भीमसिहोंत
13. संग्रामसिंहोत
14. कृष्णावत
15. रुद्रोत (सिरोही में)
16. नगराजजोत (मालवा में)
17. जगमालोत

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

18. अहाड़िया (अहाड़ ग्राम में)

19. पीपारा (पीपाड़ में)

20. नागदेह (नागदा में)

21. महयान (मध्यप्रदेश के कुछ क्षेत्रों और बिहार के गया में)

22. चामियाह (उदयपुर के राजवंश की)

इसकी शाखा में

(1) मडियार देवगढ (मेवाड़) और गया (बिहार)

22. भोंसला (शिवाजी का वंश- चित्तोड़ के महाराणा लक्ष्मण के छोटे पुत्र अजयसिंह का वंश है।)

23. सिंधिया (ग्वालियर और इंदौर का राजवंश)

24. गोरणा (नेपाल का राजवंश)

सिसोदिया (गहलोत) से निसृत ओसवशं के गोत्र

श्री भूतोड़िया ने निम्नांकित ओसवंश के गोत्रों को शिशोदिया राजपूतों से निसृत माना है -

1. शिशोदिया
2. सुरपुरिया
3. जोहरी

सिसोदिया (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
पीपाड़ा	1072	वर्द्धमान सूरि	खरतर	पीपाड़	कर्मचंद
सिसोदिया	13वीं सदी	यशोभद्र जी	-	श्रवण,	
सुरपुरिया (सिसोदिया की शाखा)		-	-	-	
जोहरी	15वीं शती	-	-	ठाकुर	पदमसिंह

भाटी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

भाटी

इसे भट्टी वंश भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति चंद्रवंशी राजा भाटी से हुई। श्रीकृष्ण के वंशजों ने काठियावाड़, कच्छ, ग्वालियर, मथुरा, धौलपुर, करौली, जैसलमेर, तथा गुड़गांवा तक राज्य स्थापित किया। इस वंश के एक राजा रिज की राजधानी पुष्पपुर (वर्तमान पेशावर) में भी प्रमाणित हो चुकी है। इनके पुत्र गज ने गजनीपुर (वर्तमान गजनी) बसाई। इसका पुत्र शालिवाहन

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बड़ा ही वीर, पराक्रमी, और महान् शासक था, जिसने शालिवाहन कोट (वर्तमान स्यालकोट) बसाई।

इसी शालिवाहन का पुत्र भक्त पूर्णमल हुए, जो बाद में नौ नाथों में चौरंगीनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरा पुत्र बालन्द राज्य का अधिकारी बना। बालन्द पुत्र भाटी (भट्टी) था जिसके वंशज भाटी (भट्टी) क्षत्रिय कहलाते हैं।

कई शिलालेख ऐसे मिले हैं, जिनसे भाटी वंश के मूल पुरुष भाटी का सन् 623 ई में प्रमाणित होना सिद्ध होता है।[1] वि.स. 686 ई में भट्टीक संवत् भी चला। इन्होंने बीकानेर के निकट भटनेर और गोविन्दगढ को बसाकर भटिण्डा (पंजाब) नाम रखा।

भाटी के पुत्र मंगलराव स्यालकोट से राजस्थान आए। इनके पुत्र केहर ने तन्नोर दुर्ग बनवाया। केहट के पुत्र विजयराव ने बहावलपुर बसाया और लोद्रवों से लोद्रवा छीनकर अपनी नयी राजधानी बनाई। इसी वंश में जेसलदेव ने 1115 ई में जैसलमेर दुर्ग बनाकर अपनी राजधानी बनाई। इसके बाद जेसलदेव ने पटियाला जीतकर अपने राज्य में मिला दिया।[2]

डा. दशरथ शर्मा के अनुसार 1214 वि.स. (1157 ई) में जैसल ने जैसलमेर बसाया और इसे अपनी राजधानी बनाई।[3] अगर 1212 वि.सं की परम्परागत रूप से जैसलमेर की स्थापना सही है, तो विजयराज विजता, विजलदेव, विजयराजा 1167 ई में गद्दी पर बैठा।

भाटियों ने 623 ई में भट्टिका संवत चलाया। विजयराजदेव भाटियों का शक्तिशाली शासक रहा है, जिसके कुछ शिलालेख मिलते हैं। जैसलमेर के इतिहास में एक से अधिक विजयराज हुए। विजल को तो अपने पिता के समय में ही सौतेली माँ से सम्बन्ध होने के कारण मार दिया गया था। विजयराज के लिये तो 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' उपाधि शिलालेख में मिलती है। नैणसी के अनुसार यह राव दुसाज का पुत्र था। चालुक्य राजकुमारी से विराट के पश्चात् इसे 'उत्तर का द्वार' उपाधि प्रदान की गई थी। इसे 'उत्तर दिशा बड़ा किंवाड़' की उपाधि दी गई। विजयराज ने चालुक्य राजा की पुत्री से विवाह किया था और चालुक्य राजा सिद्धराज ने 1143 ई तक राज्य किया, इसलिये यह अनुमान है कि विजयराज लगभग 1222 वि.स. के लगभग गद्दी पर बैठा और वि.स. 1233 तक राज्य किया।

भाटियों और मुसलमानों के बीच युद्ध बारहवीं शताब्दी में सम्भव है। मुस्लिम आक्रमण की सही तिथि ज्ञात नहीं है। यह सम्भव है कि आगे बढ़ते हुए मोहमद गोरी ने लोद्रवा का शासन जैसल के सुपुर्द करा दिया हो, क्योंकि भोज के पश्चात् जैसल ने राजधानी लोद्रवा से जैसलमेर परिवर्तित कर दी। भाटियों की वंशावली से यही पता चलता है कि विजयराज जैसल के पहले हुआ, बाद में नहीं। जैसलमेर के बारे में सर्वप्रथम शिलालेख 1244 वि. का मिलता है। विजयराज की मृत्यु 1233 वि.सं में हुई, इसलिये जैसलमेर की नींव सम्भवत: वि.सं 1234 में रखी गई।

---

1. राजपूत वंशावली, पृ 213
2. D.C. Nahar, Jain Inscriptions, Jaisalmer, Page 4
3. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Through The Ages, Page 280.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विजयराज शक्ति का उपासक था, जिसने चाहनदेवी मठ का निर्माण करवाया।[1]

जैसल ने फोर्ट अपने नाम बनवाया, जिसका नाम जैसल मेरु रखा गया। पांच वर्ष पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र शालिवाहन ने इसे 1244 वि.स. के लगभग पूर्ण करवाया, खरतरगच्छ की वृहद विरुदावली में इसका संदर्भ है। शालिवाहन के पश्चात् उसका पुत्र वैजल हुआ, जो विजयराज कदापि नहीं है। वैजल का उत्तराधिकारी पिता का अनुज केलना था, जिसने 18 वर्ष राज किया।

केल्हण का उत्तराधिकारी चीचगदेव हुआ जिसने 28 वर्ष 5 महीने राज्य किया। चीचगदेव के पुत्र रावलकर्णा का राज्य लम्बे समय तक चला। 'खरतरगच्छ वृहद गुरुवावली' के अनुसार यह वि.सं 1340 में रावलकर्ण के समय में खरतरगच्छ के आचार्य जिनप्रभ सूरि वहाँ पधारे थे। उन्होंने राजा के अनुरोध पर चातुर्मास किया था।[2] 'खरतरगच्छ वृहदावली' के ही अनुसार राजाधिराज श्री जेत्रसिंह के निवेदन पर जिनचंद्रसूरि जैसलमेर पधारे थे और उनका अधिकारियों और प्रजाजनों द्वारा भव्य स्वागत हुआ था।[3] वि.स. 1357 (1300 ई) में जैत्रसिंह ने सूरी के तत्वावधान में आयोजित एक धार्मिक समारोह के लिये कुछ वाद्ययंत्र भेजे थे।[4]

जैत्रसिंह के पुत्र पुण्यपाल ने केवल 2 वर्ष और 5 माह तक राज्य किया। यह जेतसी के द्वारा हटाया गया, जो चीचड़देव के पुत्र तेजर्वा का पुत्र था। पुण्यपाल को अपनी सौतेली मा के साथ प्रतिबन्धित सम्बन्ध होने के कारण हटा दिया गया।

अनेक शिलालेखों आदि से यह प्रमाणित होता है कि अलाउद्दीन खिलजी का जैसलमेर पर आक्रमण 1308 ई में हुआ। जैतसी के पश्चात् दूदा शासक बना, जो राव कल्हण का प्रपौत्र था। उस समय के पार्श्वनाथ और सम्भवनाथ मंदिरों के शिलालेख उपलब्ध होते हैं। दूदा का राज्यकाल सम्भवत: 1309-1331 ई. के बीच रहा।

जैसलमेर पर दूसरी बार आक्रमण अलाउद्दीन खिलजी द्वारा न होकर गयासुद्दीन तुगलक द्वारा हुआ। दूदा का शत्रु तुगलक सुल्तान था, अलाउद्दीन खिलजी नहीं। यह भी सम्भव है कि यह गयासुद्दीन तुगलक न होकर उसका पुत्र मोहम्मद बिन तुगलक हो।

---

1. मेहता नथमल, जैसलमेर की तवारीख, पृ 27
2. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Through the Ages, Page 680.
   Chachigdeve"s son Ravad Karna had a long reign and according to Khartargachachhabraha gurvavali, he was on the thone of Jaisalmer in V. 1340 (1283 AD) when the place was visited by Khortargachchha Acharya Jinprabha Suri. He had chatumars there at the request of the ruler.
3. Dr. Dashrath Sharma, Rajasthan Through the Ages, page 680.
   ..... at the request of Rajadhiraj Sri Jaitrasimha Jinchandra Suri went to Jaiselmer and had a splendid reception at the hands of officials as well as public.
4. वही, पृ 680
   In V. 1357 (1300 AD) Jaitrasimha sent musical instruments for certain religious functions performed under the aegis of Suri.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसलमेर के भाटी नरेशों की वंशावली निम्नानुसार है।

1. भाटी	2. बच्छराव	3. विजयराव
4. मंगलराव	5. केरा	6. तनु
7. विजयराव	8. देवराज	9. मुण्ड
10. बच्छ	11. दुसाझ	12. विजयराव
13. भोज	14. जैसल	15. शालिवाहन
16. नेजल	17. केल्हण	18. चाचिगदेव
19. कर्ण	20. जेत्रसिंह	21. लखण सेन
22. पुण्यपाल	23. जैत्रसिंह	24. मूलराज
25. रतनसिंह	26. दूदा	27. घटासिंह

28. केहरदेव (1361-96 ई.)
29. लक्ष्मण (1396-1436)
30. बैरसी (1436-48)
31. चाचिगदेव II (1448-81)
32. देवकर्ण (1481-96)
33. जैतसिंह (1496-1528)
34. लूणकरण (1528-50)
35. मालदेव (1550-61)
36. द्वराज (1561-77)
37. भीमसिंह (1577-97)
38. कल्याणदास (1597-1627)
39. मनोहरदास (1627-50)
40. रामचन्द्र (1650)
41. सबलसिंह (1650-59)
42. अमसिंह (1659-71)
43. जसवंत सिंह (1671-1707)
44. बुधसिंह (1707-21)
45. तेजसिंह (1721-22)
46. सवाईसिंह (1722-23)
47. अखेसिंह (1723-61)
48. मूलराज II (1761-1819)
49. राजसिंह (1819-46)
50. रणजीतसिंह (1846-64)
51. बेरीसत (1864-1891)
52. शालिवाहन III (1891-1914)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

53. जवाहरसिंह (1914-59)
54. गिरधरसिंह (1649-50)
55. रघुनाथसिंह (1950-)

इस वंश की शाखाएं अम्बाला, रोपड़, पटियाला जिला (तावनी), गाजियाबाद (रावलोत), सिरमौर (हिमांचलप्रदेश-सिरमोरिया) में मिलते हैं। श्री विक्रमसिंह गुण्दोज में भाटियों के मूल पुरुष के नाम से अनेक खांपों की ओर संकेत दिया है और इनकी संख्या 65 है।

भाटी राजपूतों से अनेक जातियां भी निकली जैसे

मूल पुरुष	जाति का नाम
मंडराव	मेवाती मुसलमान
पालसेन	ससनवाल जाट
सुवसेन	अहीर
खड़गसी	जाट
खेमकाण	चकता मुसलमान
जामराव	बनिया
आण	खोरी
सारण	सारणजाट
मुड़जी	मुडजाट

श्रीकृष्ण की भट्टी तक भाटी वंशावली [1]

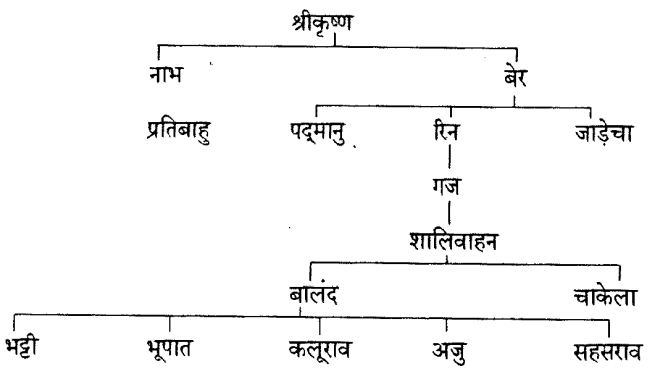

भट्टी से जैसल तक की वंशावली [2]

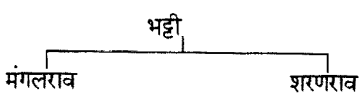

1. राजपूत वंशावली, पृ. 215
2. वही, पृ. 215-216

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

केहर (तनु) — मंडमराव कलदसी मूलराव शिवराव फूल

विजयराव

श्रीकृष्ण की 88वीं शताब्दी

देवराज

बापूराव

दूसा

जैसल

भाटियों की वंशावली-

नैणसी ख्यात के अनुसार भाटियों की वंशावली निम्नानुसार है-

1. भाटी
2. वाचरवा (टाड ने नहीं दी)
3. विजयराव (टाड ने छोड़ दी)
4. मंजमरवा
5. केहरा
6. तनु
7. विजयरवा II
8. रावला देवरा
9. मुण्ठा
10. वच्छा
11. दुसाज

(दुसाज के पश्चात् भट्टी वंशावली निम्नानुसार है)

12. विजयराज लंजा (1164, 1166, 1175 ई)
13. भोज
14. जेसल (विजयराज III का भ्राता)
15. शालिवाहन

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

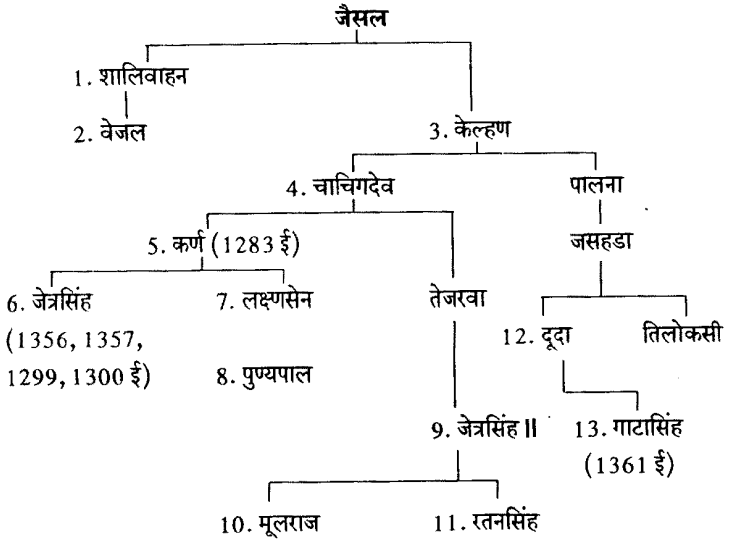

महारावल देवराज से जवाहरसिंह तक की सूची जैन साहित्य- जैसलमेर में निम्नानुसार दी है।

देवराज (892 से 1022 संवत्)

मंधजी मण्ड चामुण्ड (संवत 1022 से 1065)

बाधूजी (बछेर) (संवत 1065 से 300)

दूसाजी बछेर के ज्येष्ठ पुत्र (सं 1100 से .....)

विजेराज (लेज) दूसानी के तीसरे पुत्र (संवत ज्ञात नहीं)

भोजदेव (राज्य प्राप्ति होते ही जैसल से मारे गये)

जैसल (जयशाल सं 1212-144)

शालिवाहन (जैसल के द्वितीय पुत्र- सं 1234 ....)

वीजलदेव (जैसल के ज्येष्ठ पुत्र- पिता के जीवित में गद्दी पर बैठे और मारे गये)

केलणजी (जैसल पुत्र- 1256-1275 सं)

चाचकदेव (सं 1275-1306 केलण के ज्येष्ठ पुत्र)

करणसिंह (चाचक के कनिष्ट पौत्र- सं 1306-1327)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लखनसेन (करणसिंह पुत्र- सं 1327-1331)

पुण्यपाल (लखनसेन के ज्येष्ठ पुत्र- 1331-1332

जैताती (जयताली) - करणसिंह के ज्येष्ठ भाई - संवत 1332-1350

मूलराज (जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र - 1350-1362

दूदाजी (दुर्जनशाल-भाटी उसोड़ के पुत्र) - संवत 1351-1362

घडसी (घटसी - मूलराज के भाई रतनजी के पुत्र - मृत्यु 1391सं)

केहर (मूलराज के पौत्र-राज्यकाल 60 वर्ष तक)

लक्ष्मणजी (केहरजी के पुत्र- संवत् 1451-1493

बैरसी (वयरसिंह- सं 1493-1505

चाचकदेव (चाचोजी सं 1505-1518

देवीदास देवकर्ण (चाचकदेव के पुत्र संवत् 1518-1533)

जैतसिंह जयंत सिंह (देवकर्ण के ज्येष्ठ पुत्र सं 1581-1583 या 1585)

लूणकरण नूनकरण (जयतसिंह के पुत्र 1529-1550)

मालदेव (लूणकरण के ज्येष्ठ पुत्र सं 1607-1618)

हरराज (मालदेव के ज्येष्ठ पुत्र सं 1618-1634)

भीमजी भीमसेन (हरराज के ज्येष्ठ पुत्र- 1650 से 1663)

कल्याणदास- कल्याणसिंह (भीमजी के कनिष्ट भ्राता- 1680 में इनका राज्यकाल मिलता है)

मनोहरदास (कल्याणदास के पुत्र- संवत् 1684 ....)

रामचंद्र (मनोहरदास के पुत्र सं 1700 में राजच्युत हुए)

सबलसिंह (मालदेव के प्रपौत्र- 1707-1717 में राजच्युत हुए)

अमरसिंह (सबल के दूसरे पुत्र- संवत् 1717-1758)

जसवतंसिंह (अमरसिंह के दूसरे पुत्र- संवत् 1759-1764)

बुधसिंह (जसवंतसिंह के पौत्र- 1764-1769)

तेजसिंह (जसवंतसिंह के पुत्र ....)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सवाईसिंह (तेजसिंह के पुत्र .....)
|
मैलसिंह (1778-1818 जसवंतसिंह के पौत्र)
|
मूलराज (अखेसिंह के ज्येष्ठ पुत्र- सं 1818-1876)
|
गजसिंह (मूलराज के पौत्र 1876-1902)
|
रणजीतसिंह (गजसिंह के भ्राता पुत्र- 1902-1920)
|
वैरीशालजी (रणजीतसिंह के भ्रातष्पुत्र 1921-1948)
|
शालिवाहन (वैरीशाल के दत्तक पुत्र 1948-1971)
|
जवाहिरसिंह (राज्याधिकारी 1971 ....)

भाटी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

श्री भूतोड़िया'

1. आर्य/आयरिया
2. लूणावत
3. भंसाली/भणसाली
4. राय भंसाली
5. चण्डालिया
6. भूरा
7. पूगलिया भंसाली
8. चील मेहता
9. राखेचा
10. पूगलिया
11. जड़िया
12. आग्रहिया/आगरिया

भाटी (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. आर्य/आयरिया	1175	जिनदत्तसूरि	खरतर	सिंध	अभयसिंह
आर्य	684	देवगुप्तसूरि	उपकेश	अटवड़	राव कोसल
2. भंसाली/भणसाली	11वीं शती	जिनेश्वरसूरि	खरतर	भण्डसाल	सागर
	12वीं शती	जिनदत्तसूरि	खरतर	भण्डसाल	भादोजी
3. राखेचा	878	देवगुप्तसूरि	उपकेश	नालेर	रावराखेव

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राखेचा	1187	जिनदत्तसूरि	खरतर	जैसलमेर	कल्हण
4. पुंगलिया	1187	जिनदत्तसूरि	खरतर	पूगल	कल्हण
5. लूणावत	14वीं सदी	देवगुप्तसूरि	उपकेश गुड़ा	गुढा (मारवाड़)	लूणाशाह
6. राय भंसाली (भंसाली की शाखा)	-		-	-	थाहरूशाह
7. चण्डालिया (राय भंसाली की शाखा)			-	-	-
8. भूरा (भण्डसाली की शाखा)	-		-	-	- -
9. पूगलिया (भण्साली की शाखा)	-		-	पूगल	-
10. आग्रहिया	1214	जिनचंद्रसूरि	खरतर	अग्रोहा	कोशल सिंहभाटी

सोलंकी राजपूतों से निसृत गोत्र

सोलंकी

प्राचीन ग्रंथों, ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों में इस वंश को चोलुक्य, चुलुक्य, चलुंक्य, चलिक्य, चालुक्य, चुलुक तथा चुलुग वंश भी कहा गया है। अब इसे सोलंकी या सोलंखी वंश कहा जाता है।[1]

'पृथ्वीराज रासो' में इसे अग्नि से उत्पन्न माना है।कर्नल टाड, विलियम क्रुक इसे विदेशियों से उत्पन्न मानते हैं। इस वंश का आदि पुरुष अंजति या चुल्लु से उत्पन्न हुआ। कवि विल्हण ने लिखा है कि ब्रह्मा ने चुलुक से एक वीर उत्पन्न किया, जो चुलुक्य कहलाया।वडनगर की प्रशस्ति में लिखा है कि राक्षसों से देवताओं की रक्षा के लिये ब्रह्मा ने चलुक से गंगाजल लेकर एक वीर उत्पन्न किया, जो चौलुक्य कहलाया। एक कथा यह भी प्रचलित है कि हारीत ऋषि द्वारा अर्घ्य अर्पण करते हुए उनके जलपात्र से इनके आदि पुरुष का जन्म हुआ, जो बाद में चौलुक्य कहलाया।[2]

यह कथाएं कपोल कल्पित, अनैतिहासिक और अप्रामाणिक है। वस्तुत: सोलंकी नाम के राजपूतों के दो वंश हैं- उत्तर के सोलंकी और दक्षिण के सोलंकी। उत्तर के सोलंकी भारद्वाज ऋषि की संतान है और दक्षिण के सोलंकी मानव्य ऋषि की।

डा. सी.वी. वैद्य इस मत को चंद्रवंशी मानते हैं। जैनाचार्य हेमचंद्र भी इसे चंद्रवंशी मानते हैं।

इस वंश का राज्य तो द्वारका, रोहितगढ़, टोंकयर में रहा, किन्तु इनका प्रामाणिक शासन अनहिलवाड़ा 'पाटन' में प्रारम्भ हुआ। साम्भर के अभिलेख से यह पता चलता है कि उत्तरभारत के चालुक्य नरेश मूलराज ने अपने मामा सामंत सिंह चावड़ा को मारकर 941 ई में राज्य स्थापित किया था।

इस वंश की रियासतें गुजरात में वासन्दा, जीतवाड़ा, रूपनगर तथा बिहार में पोहियार

1. गोरीशंकर हीराचंद ओझा, सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 1
2. राजपूत वंशावली, पृ 247

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में है। इसके अतिरिक्त इस वंश के क्षत्रिय अब गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और बिहार में मिलते हैं। उत्तरप्रदेश में एटा में इस वंश के 84+60 गोत्र हैं, जिसे सोमदत्त सोलंकी ने बसाया था।[1]

इस वंश की कई शाखाएं हैं जैसे बघेला, भरसुरिया, तांतिया, स्वर्णमान, सरकिया (बिहार में) भुरेता (जैसलमेर में) कालेचा (जैसलमेर में) रावका (टोडा राजस्थान में) राणकरा (देसूरी, राजस्थान) स्वरूरा (जालोर और जावड़ा (मालवा) हड़कईया (झांसी, ललितपुर, बुन्देलखण्ड), कटारिया (भांणी मालवा और बुंदेलखण्ड में)।

मुहणौत नैणसी के अनुसार इसकी शाखाएँ -

1. सोलंकी	2. बघेला	3. खालत
4. रहनर	5. चीरपुर	6. खटोड़
7. वहेला	8. पीथापुर	9. सोझतिया
10. हुहर (सिंधी सुसलया)		11. रूझा (मुसलमान)
12. मूहण (मुसलमान)		

कर्नल टाड के अनुसार इसकी शाखाएँ-

1. बघेला	2. वीरपुरा	3. बेहिल
4. भुरता	5. कालेचा	6. लंघा
7. लोगरू	8. बीकु	9. सोल्के
10. सिखरिया	11. राजोका	12. राणीका
13. खरूरा	14. तांतिया	15. अलमेचा
16. कालाभोर है।		

जगदीशसिंह गहलोत ने इसकी चार शाखाएं मानी है-

1. बघेला 2. वीरपुरा 3. कुलभौर 4. भुद्दा

ओझाजी और वैद्य ने यह स्वीकार किया है कि यह मनगढंत है कि प्रतिहार, सोलंकी, परमार और चौहान अग्निवंशी है, क्योंकि इन विदेशियों को अग्नि में तपाकर शुद्ध किया गया।[2] वस्तुत: सभी वीर जातियों को क्षत्रिय कहलाने का पूरा अधिकार है क्योंकि मूलत: क्षत्रिय शब्द कर्मणा है, जन्मना नहीं।

सोलंकी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र[3]

भणसाली/सोलंकी/आभू
लूकड़/कवाड़िया/ठाकुर/हंस
सोलंकी/सेठिया/नाग सेठिया
श्रीपति/ढढा/तलेरा/तिलेरा

1. राजपूत वंशावली, पृ 249
2. ओझा: राजपूताना का इतिहास, प्रथम भाग, पृ 49
3. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 41

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सोलंकी राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. भण्डसाली/ सोलंकी/आभू	12वीं सदी	जिनवल्लभसूरि	खरतर	भंडसाल	-
2. श्रीपति	1101	जिनेश्वरसूरि	खरतर	नाणा	गोविन्द
3. ढढा	17वीं सदी	-	-	सिंध	सारंगजी
4. तिलेरा	13वीं सदी	-	-	-	कुमारपाल
5. लूकड़	1001	धनेश्वरसूरि	-	नाणा	नरवाहन
6. सालेचा	912	सिद्धसूरि	उपकेश	पाटन	सालमसिंह

गौड़ वंश से निसृत ओसवंश के गोत्र

गौड़

यह भगवान राम के लघु भ्राता भरत का वंश है। राज्य विभाजन के पश्चात् भरत गंधर्व देश के स्वामी बने थे, जहाँ उनके पुत्र तक्ष ने तक्षशिला और पुष्कल ने पुष्कलावती बसा कर, उन्हें अपनी राजधानी बनाया। यह गंधर्व देश ही अपभ्रंश होकर गौड़ बना। महाभारतकाल में जयद्रथ यहाँ का शासक था। जयद्रथ ने अभिमन्यु को मारा था और वह स्वयं अर्जुन के गाण्डीव से मारा गया था। इसके पश्चात् इस वंश में सिंहादित्य और लक्ष्मणादित्य राजा हुए। इसी वंश के किसी क्षत्रिय ने बंगाल में अपना राज्य स्थापित किया, इसलिये बंगाल को गौड़ बंगाल कहा जाने लगा। पूज्य गोपीचंद इसी वंश के थे।

यहीं से इनकी शाखा मथुरा आई। अनंगपाल तंवर के दो सगे भाई- सूर और घौट थे। यहाँ गौड़ों के बारह गाँव है, यह गौड़ों का बाहर गाँव कहलाता है। उदयपुर जिले के घाटी सादडी से दो मील दूर एक पहाड़ी पर एक शिलालेख अंकित है, जिसका आशय है, 547 सं. की माघ सुदी दशमी के दिन राज्यवर्द्धन के पौत्र प्रथम गुप्त गौड़वंशी नरेश के द्वारा अपने माता-पिता की पुण्य स्मृति में यह मंदिर बनवाया था।

शाखाएँ-

कर्नल टाड के अनुसार- अन्तरि, सिह्लाता, तूम्नतूड, दुसैना और बोडाना इसकी शाखाएँ हैं।

विभिन्न गौड़ निम्नानुसार हैं।

1. ब्रह्मगौड़ (ब्राह्मण गौड़)

2. चमर गौड़ (चमार गौड़)

3. गौड़हर (गौड़वाड़ मारवाड़ के, दो भाई नाहरदेव में नाहरदेव को कालपी की जागीर दी गई और नाहरदेव ने नार (कानपुर) को राज्य बनाया।)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

4. अमेटिया गौड़ (राजाकान्हदेव के वंशज अमेठिया गौड़ कहलाए, क्योंकि वे अमेठी, लखनउ और सीतापुर में बसते हैं।)

5. अजमेर के गौड़- (नार की तीसरी पीढ़ी में हरदेव हुए। इन्हें अजमेर की जागीर दी इसलिये इन्हें अजमेर गौड़ कहा जाता है।)

6. वैद गौड़

7. सुकेत गौड़ (सुकैत हिमाचल में बसने के कारण) इसके अतिरिक्त पीपरिया गौड़ (बुन्देलखण्ड में) हुटेड, शालियाना, दुहाण और बोड़ाणा आदि अन्य शाखाएं हैं।

गौड़ (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र

गोठी

छजलाणी

रांका बांका

सेठिया (सेठी/रांका-बांका)

गौड़ (राजपूतों) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. रांका बांका	1185	जिनदत्तसूरि	खरतर	पाली के पास	टांकावत
2. पीच्छोलिया	1204	देवगुप्तसूरि	उपकेश	पाल्हणपुर	-
3. छजालानी/घोड़ावत - छाजू के वंशज छजलानी		जयप्रभसूरि	रुद्रपल्लीगच्छ	जावलनगर	राजा रावत वीरसिंह
4. घोड़ावत	-	-	-	नागौर	शेरसिंह
5. गोठी	1152	जिनदत्तसूरि	खरतर	अनहिलपट्टन	गौड़ी
6. सेठी (रांका की संतानें)	-	जिनवल्लभसूरि	खरतर	-	काक
7. सेठिया (बांका की संतानें	-	जिनवल्लभसूरि	खरतर	पाली के पास गांव	बांका

दहिया राजपूतों से निसृत ओसवंश के गोत्र

दहिया

यह वंश महर्षि दधीचि की संतान है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों और प्राचीन ग्रंथों में दाहिया के स्थान पर दधिचिक, दहियक, दयिक, दधिचि आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार मुहणौत नैणसी के अनुसार दहियाराज्य भिन्न भिन्न शताब्दियों में परबतसर, मारौठ, घुटियात, साबर, हरसौर (जोधपुर राज्य), नैणवा (बूंदी राज्य), जांगलू (बीकानेर राज्य), जालौर, सांचोर (मारवाड़) और देरावरगढ में रहा।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परबतसर के चार मील की दूरी पर एक सर्वोच्च शिखर पर भवानी केवाय माता का मंदिर है, जिसके शिलालेख (वि.स. 1056 वैसाख सुदी अक्षय तृतीया) दधिचिक चच्च का है। यह वंश दधिचिक की संतान है। चच्च के पश्चात् यशपुष्ट, कीर्तिसी और विक्रमसिंह दाहिया आदि शासक हुए। मंदिर के दूसरे शिलालेख (वि.स. 1300) में कीर्तिसिंह के पुत्र दधीचिक विक्रम की मृत्यु पर उसकी रानी नेलादेवी के सती होने का उल्लेख है।

चच्चराजा के छोटे पुत्र विल्हण ने मारोठ में अपना अलग राज्य स्थापित किया। इनके निवास स्थान देवाड़ा में इनके द्वारा निर्मित दुर्ग और तालाब आज तक विद्यमान है।

महाराजा विल्हण दहिया वंश का सबसे शक्तिशाली राजा था। लोककथाओं के अनुसार उसकी घोड़ी तेजा प्रसिद्ध थी। विल्हण के वंशजों का मारोठ पर लगभग 300 वर्षों तक शासन रहा और तेरहवीं शताब्दी में नष्ट हो गया।

जालौर में वीरमदेव चौहान से पूर्व एक दुर्ग बना हुआ है, इसमें एक पोल दाहियों की प्रमाणित होती है। बावतरा ग्राम से 6 मील दक्षिण में मुण्डवा ग्राम के जैन मंदिर से उपलब्ध एक ग्रंथ से यह पता चलता है कि चौथी शताब्दी के आस-प्रास जालौर पर परमारों का राज्य था।[1] विक्रम संवत् 1332 में बावतराजी के बूहड़ जी दाहिया ने परमारों से मुण्डवा छीन लिया था और धीरे धीरे 48 गाँवों पर अपना स्वतंत्र शासन स्थापित किया। यह क्षेत्र दहियावाटी कहलाता है। बूहड़जी के वंशज यवनों से जूझते हुए शहीद हुए, जिनके स्मारक पर वि.स. 1838 अंकित है।

विक्रम संवत् 1797 में जोधपुर के महाराजा अभयसिद ने दहियावाटी पर अधिकार कर दहियों का शासन सदा के लिये समाप्त कर दिया।

सिकन्दर के आक्रमण के समय सतलुज नदी के आसपास भी दहियों का राज था। साहिलगढ़ (वर्तमान अफगानिस्तान) पर भी दहियों का राज होना प्रमाणित है। रोपड़ पंजाब में बसे दहिये (राठौड़) इनसे भिन्न हैं।

इस वंश के ठिकाने राजस्थान में जालौर, पाली और सिरोही (कैर) में बसते हैं। कनवास (ग्वालियर) में भी दहियों का ठिकाना है।

दहिया वंश से निसृत ओसवंश के गोत्र

सालेचा बोहरा

दहिया वंश से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. सालेचा बोहरा	1217	मणिधारी जिनचंद्रसूरि	खरतर	सियालकोट	सालमसिंह

1. राजपूत वंशावली, पृ 169

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्राह्मण (गोत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र

वर्ण/जातिपरिवर्तन की प्रक्रिया

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चारों वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के जन्म का उल्लेख है। प्रजापति द्वारा जिस समय पुरुष विभक्त हुए, उनको कितने भागों में विभक्त किया गया, उनके मुख, बाहू, उरू और चरण कहे जाते हैं ? ब्राह्मण जाति इस पुरुष के मुख से क्षत्रिय जाति भुजा से, वैश्य जाति उरूद्वय से और शूद्र जाति चरणों से उत्पन्न हुई है।[1]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भू: शब्द उच्चारण करके ब्रह्माजी ने ब्राह्मण को उत्पन्न किया, भुव: शब्द कहकर क्षत्रिय को और स्व: शब्द कहकर वैश्य को उत्पन्न किया।[2]

'हरिवंशपुराण' के अनुसार दक्षप्रजापति अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करता है। अक्षर रूप से सौम्यगुण विशिष्ट ब्राह्मण, क्षररूप से क्षत्रिय, विकार रूप से वैश्य और धूम विकार से शूद्र हुए।[3]

भारतीय वाङमय के अनुसार ब्राह्मणों का श्वेतवर्ण, क्षत्रियों का लोहित वर्ण, वैश्यों का पीत वर्ण और शूद्रों का नीलवर्ण माना गया है।

वर्णपरिवर्तन भारतीय समाज में परिवर्तन की चिरकाल से प्रक्रिया रही है। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार गर्ग, संकृत और काव्य को क्षत्रोवेता कहा गया है।

गर्गा: संकृतय: काव्या: क्षत्रोवेता द्विजातय:

'ब्राह्मण पुराण' के अनुसार गर्ग से शिनि और शिनि से गार्ग्य उत्पन्न हुए। यह गार्ग्यगण क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व में परिवर्तित हो गये।[4] 'मत्स्यपुराण' के अनुसार भी उरुक्षय के तीन पुत्र- त्रय्यरुण, पुष्करा और कपि क्षत्रिय होकर ब्राह्मण हुए।[5]

---

1. ऋग्वेद- 10 सू. 9 मं/3/12
   उत्पुरुषं व्यदधु कतिधा व्यकल्पयन्।
   मुख किमरयकौ बाहू कावूरू पादा उच्यते।
   ब्राह्मवोऽस्य मुखमासी द्वाहू राजन्य कृत:।
   उरू तदाय यद्वैस्य, पद्भयां शूद्रोऽजायत॥
2. शतपथब्राह्मण 2/1/4/13
   भू रिति वै प्रजापतिर्ब्रह्म अजयनत भुव: क्षत्र्यूछ स्वरिति।
   विशम एतावद्वै इदं सर्वं यावद्वह्य क्षत्रं विट्।
3. हरिवंशपुराण
   दक्षप्रजापतिर्मू त्वासृजते विपुल: प्रजा।
   अक्षराद्ब्राह्म: सोम्याक्षरात्क्षत्रि बांधवा।
   वैश्वा विकारत श्चैव शूद्रा धर्म विकारत:॥
4. ब्रह्मपुराण 9/21/39
   गार्गाच्छि निस्ततो गार्ग्य: क्षत्राद्ब्रह्म त्यवर्तन।
5. मत्स्यपुराण
   उरुक्षयसुता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गत:।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'भागवतपुराण' के अनुसार नोदिष्ट का पुत्र नामाग नाभांग वैश्य कन्या से विवाह करके वैश्यता को प्राप्त हुआ।[1] 'हरिवंशपुराण' के अनुसार नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्य ब्राह्मण भाव को प्राप्त हुए।[2]

महाभारत के अनुशासन पर्व में महादेवजी पार्वती से कहते हैं, जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके क्षत्रिय धर्म में जीविका निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर क्षत्रिय योनि में जन्म ग्रहण करते हैं और जो बुद्धिहीन ब्राह्मण लोभ मोह के कारण वैश्यकर्म को ग्रहण करता है, वह वैश्यत्व को प्राप्त कर परजन्म में वैश्य ही हो जाता है। इसी प्रकार वैश्य शूद्र हो जाता है। उसी प्रकार शूद्र भी श्रेष्ठ कर्म करते करते ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो जाता है।

ब्राह्मण

सनातनधर्मानुसार ब्राह्मण जन्म सबसे उत्कृष्ट है। अत्रि ऋषि के अनुसार ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न ब्राह्मण कहाता है, किन्तु संस्कारों से द्विज होता है, विद्या से विप्र होता है और तीनों वेदों के ज्ञान से श्रोत्रिय कहलाता है

जन्मना ब्राह्मणी ज्ञेव: संस्कारौ द्वेर्ज उच्यते।
विद्यति विप्रत्वं श्रोत्रिय स्त्रि भिरवे च।।

महाभाष्यकार के अनुसार, तप, शास्त्र और योनि तीन ब्राह्मण के कारक हैं।

तप: श्रुतं च योनिश्चेत्येतद्वा ब्राह्मण कारकम्।

श्रुति स्मृति में कहा गया है कि सब जगह देव के अधीन है, देवता मंत्रों के अधीन और वे मंत्र ब्राह्मणों के अधीन है इसलिये ब्राह्मण देवता है।

देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता:।
ते मंत्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद्ब्रहन देवता:।।

'मनुस्मृति' के अनुसार सातवीं पीढ़ी में माता को दोष दूर हो जाता है और स्पष्ट ब्राह्मणत्व प्रकट होता है। इस सात के बीच की कन्या संकर जाति को उत्पन्न करती है।[3]

ब्राह्मणोत्पत्ति मार्त्तण्ड में बहुत सी ब्राह्मण जातियां लिखी है किन्तु विन्ध्याचल के उत्तर में पाँच ब्राह्मण जातियां- सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, उत्कल और मैथिल पाई जाती है।

सारस्वता: कान्यकुब्जा गौड़ा उत्कल मैथिला:।
पंच गौड़ा इति ख्याता विंध्यस्योत्तर वासिन:।।

कुल दस प्रकार के ब्राह्मणों में सारस्वत पंजाब देश में प्रसिद्ध है। 'वायुपुराण' के

---

1. भागवतपुराण 9/2/23
   नाभागो दिष्ट पुत्रोऽन्य: कर्मणा वैश्यता गत:।
2. हरिवंशपुराण 3/3/9
   नाभागारिष्ट पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणता: गतौ।
3. मनुस्मृति 10/64
   शूद्रायां ब्राह्मणाज्जात: श्रेयसा चैत्प्रजायते।
   अश्रेया श्रेयसी जातिं गच्छ

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुसार सरस्वती तीरवासी सारस्वत देश में रहने वाले सारस्वत ब्राह्मण कहे जाते हैं। 'श्री हर्षचरित' के अनुसार ब्रह्मलोक में एक समय जब दुर्वासा के मुख से जब अशुद्ध शब्द निकल गया, तब सरस्वती हंसी, तब दुर्वाशा ने श्राप दिया कि तुम मर्त्यलोक में मानुषी हो, तब सरस्वती मानुषी होकर दधीचि से ब्याही गई, उसकी संतान सारस्वत ब्राह्मण के नाम से विख्यात हुई। यह जाति लाहौर अमृतसर प्रान्त से गुरुदासपुर बटाला, जलंधर, मुलतान, लुधियाना, उच्च झंग और शाहरपुर तक निवास करती है।[1]

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के बारे में वाल्मीकि रामायण में एक कथा के अनुसार महोदयपुर निवासी महात्मा कुंशनाम राजा से सौ कन्या जन्मी। वह रूपगुण सम्पन्न यौवना जब बाग में विहार कर रही थी तब सर्वात्म वायु ने विवाह की इच्छा प्रकट की। वायुदेवता का निराकरण कर उसने कहा, आप हमारे प्रभु और हमारे देवता हैं। यह सुनकर वायुदेवता ने उसे कुबड़ा कर दिया। लौटने पर पिता को जब यह ज्ञात हुआ तब राजा ने ब्रह्मदत्त को बुलाकर सौ कन्याओं को देने का विचार किया। तब ऋषि के कर ग्रहण करते ही उन कन्याओं का समस्त रोग और कुबड़ापन जाता रहा। वाल्मीकि कहते हैं, हे राम! जिस देश में वह कान्यकुब्जा हुई, उसी दिन से वह ब्रह्मर्षि सेवित देश कान्यकुब्ज के नाम से विख्यात हुआ और इस देश के निवासी ब्राह्मण कान्यकुब्ज नाम से विख्यात हुए।[2]

अयोध्यापुरी के दक्षिण में कान्यकुब्ज देश कहलाता है। कानपुर, फतहपुर, फर्रूखाबाद, इटावा आदि में कान्यकुब्ज बहुतायत में फैले हैं। इनके छः गौत्र- कश्यप, भरद्वाज, शांडिल्य, सांकृत और कात्यायन बहुत प्रसिद्ध हैं और शेष गौत्र हैं- कश्यप, धनंजय, कविस्त, गौतम, गर्ग, कौशिक, वशिष्ट, वत्स, और पाराशर धारसंज्ञक हैं। इनमें ही वेद पाठी- द्विवेदी, त्रिवेदी, अध्यापक-उपाध्यापक और पाठक, कर्मानुष्ठान करने वाले वाजपेयी, अवस्थी, अग्निहोत्री और दीक्षित, श्रोत स्मार्त कर्मानुष्ठान करने वाले शुक्ल कहलाते हैं।

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और मरीचि के कश्यप हुए, उन्हीं से कश्यप या काश्यप के यज्ञ करने से अग्निकुण्ड से शाण्डिल्य ऋषि हुए, उन्हीं से शाण्डिल्य गौत्र चला। श्री ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के वंश में कात्यायन ऋषि उत्पन्न हुए, जिनसे कात्यायन गौत्र चला। ब्रह्माजी के पुत्र अंगिरा, अंगिरा के बृहस्पति, और बृहस्पति के भरद्वाज हुए, जिनसे भरद्वाज गौत्र चला। भरद्वाज के ही वंश में द्रोणाचार्य हुए। ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ट जी, वशिष्ट जी के पुत्र व्याघ्रपद और उनके उपमन्यु हुआ जिनसे उपमन्यु गौत्र चला। ब्रह्माजी के पुत्र भृगु जी के वंश में सांख्यायन मुनि हुए, इनके पुत्र गगन हुए और गगन के पुत्र सांकृत से सांकृत गौत्र चला। यह सभी कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं।

सरयू नदी के उत्तर किनारे को लोक में साख कहते हैं, वहाँ उत्पन्न हुए ब्राह्मणों की साख संज्ञा जो साखापारीण, सरयूपारीय या सरवरिया नाम से विख्यात है। बंग देश से लेकर

---

1. जाति भास्कर (सम्पादक श्री जालाप्रसाद मिश्र) पृ 48
2. वाल्मीकि रामायण

कन्या कुब्जाऽभवन् यत्र कान्यकुब्जस्ततोऽभवत्।
देशोऽयं कान्यकुब्जाख्यः सदा ब्रह्म सेवित॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमरनाथ पर्यन्त गौड़ देश की स्थिति है। 'मतस्यपुराण' में श्रावस्ती का वर्णन गौड़ देश में दिया गया है। गण्ड नदी के पश्चिम की भूमि गौड़ देश कहलाती है। बंगदेश के राजाओं ने पाँच ब्राह्मणों को बुलाया और दान से संतुष्ट किया, अत: गौड़ मूलत: बंगाल के नहीं है।

इसके अतिरिक्त पाराशर से पारीक, दाधीच से दायमा ब्राह्मण हुए। सनाढ्य ब्राह्मण भी गौड़ के अन्तर्गत हैं।

इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए इल से जो सुद्युम्न नाम से विख्यात है, उनके तीन पुत्रों- उत्कल, गय और हरिताश्व में उत्कल ने उत्कलदेश बसाया। इनके वंशज उत्कल ब्राह्मण कहे जाते हैं। इसी तरह मैथिल देश में बसने वाले मैथिल ब्राह्मण कहलाते हैं।

इस प्रकार वैवस्वत मनु की परम्परा में इक्ष्वाकु के सुद्युम्न से कान्यकुब्ज का, निमि से मिथिला ब्राह्मणों का और शर्याति से सारस्वत ब्राह्मणों का वंश चला।

दक्षिण में इसी तरह कर्णावट ब्राह्मण, तेलंग देश में तैलंक ब्राह्मण, द्रविड़ देश में द्रविड़ ब्राह्मण, महाराष्ट्र में महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं और सागरखण्ड से नागर ब्राह्मणों की, गड़वाल में गड़वाली ब्राह्मणों की और श्रीमाल में श्रीमाली ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई।

ब्राह्मण (गौत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र[1]

1. कठोतिया
2. पगारिया/खेतानी/मेड़तवाल/गोलिया
3. संघवी/सिंधी/सिंघवी
4. सेठ/सेठिया
5. ननवाणा सिंधी

ब्राह्मण (गोत्र अज्ञात) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. कठोतिया	1176	जिनदत्तसूरि	खरतर	कठौती ग्राम	-
2. पगारिया	1111	अभयदेवसूरि	खरतर	भीनमाल	शंकरदास
3. बर्डिया	-	कृष्णर्शि	उपकेश	नागपुर	नारायण
4. सेठ	उदयप्रभसूरि	शंखेश्वरगच्छ	काशी	सोम	
5. सिंघी/सिंघवी	1121	जिनवल्लभसूरि	खरतर	सिरोही	ननवाणा बोहरा विजयानंद (ब्राह्मण)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य वैश्य वर्ग से निसृत ओसवंश के गोत्र

वैश्य

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनुसार वैश्य वर्ग का उद्‌भव ब्रह्मा की जंघाओं (उरू तदाय यद्वैश्य) से हुआ। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति भू शब्द उच्चारण करके ब्राह्मण, भुव शब्द कहकर क्षत्रिय और स्वः शब्द कहकर वैश्य को उत्पन्न किया। आर्य जाति में गोरक्ष अन्नादि आहार्य द्रव्य का योग ही वैश्यों का कर्म है। यास्क के अनुसार भूमि से उत्पन्न हुए पदार्थों को देश विदेश में जाने के लिये ही वैश्यों की सृष्टि हुई है।

इस वैश्य जाति से ही शैव, जैन और बौद्ध धर्मों की विशेष पुष्टि हुई। 'उपासक दशासूत्र नामक जैन ग्रंथ जो डेढ़ हजार वर्ष पूर्व है, उसमें आनन्द नामक एक वैश्य की कथा लिखा है कि उसने जैन शालानुसर यतिधर्म न ग्रहण करके पाँच अणुव्रत धर्म किया था।'[1]

'मृच्छकटिक' नाटक में श्रेष्ठि चत्वर जैसे धनकुबेरों का वर्णन है।विक्रम की चौथी पांचवी शताब्दी पर्यन्त वैश्य जाति परम उन्नत थी, उस समय जैन और बौद्ध धर्म का प्रभाव चमक रहा था। वैशाली, श्रावस्ती, पाटलीपुत्र, कान्यकुब्ज, उज्जयनी, सौराष्ट्र, पौण्डवर्द्धन आदि व्यापार के नगरों में ताम्रपत्र पाये गये हैं, उनसे वैश्य समाज की उन्नति का पता चलता है।[2]

अग्रवाज, माहेश्वरी, ओसवाल, पोरवाल, खण्डेलवाल और श्रीमाल प्रमुख वैश्य जातियां मानी जाती है।

अग्रवाल

वैश्यों में जो पहले पुरुष हुआ, उसका नाम धनपल था। उसकी कन्या याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्याही गई और आठ पुत्र माने जाते हैं- शिव, नल, अनिल, नन्द, कुन्द, कुमुद, वल्लभ और शेखर। शानिहोत्र के निर्माता विशाल राजा ने अपनी आठ पुत्रियों- पद्मावती, मालती, कांति, शुभ्रा, भवा, रजा और सुन्दरी का विवाह इन से कर दिया। नल का पुत्र योगी और दिगम्बर होकर चला गया और सातपुत्रों ने सातद्वीप पर अधिकार पाये। इसी के वंश में राजा अग्रसेन ने साढ़े सत्रह यज्ञ किये। अग्रवालों के गोत्र- गर्ग, गोईल, गाबाल, वातासिल, कासिल, सिहंत, मंगल, भदल, ऐरण, टेरण, हिंगल, तित्तत, तुन्दल, गोविल और गवन है।

माहेश्वरी

'जातिभास्कर' में वर्णित एक कथा के अनुसार 'सूर्यवंशी राजाओं में चौहान जाति के खंगलसेन राजा खण्डेला नगर में राज्य करता था, इसका बहुत बड़ा प्रभाव था, वह बड़ा दयालु और न्यायपरायण था, परन्तु उसके कोई पुत्र नहीं था। एक समय राजा ने बड़े अरमान से एक ब्राह्मणों को बुलाकर उनका बड़ा सत्कार किया, ब्राह्मणों ने वर मांगने पर कहा, तब राजा ने महाराज मेरे पुत्र नहीं है, कृपाकर पुत्र दीजिये, तब ब्राह्मणों ने कहा तू शंकर की उपासना कर तेरे

---

1. जाति भास्कर, पृ 266
2. वही, पृ 271

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुत्र होगा, परन्तु सोलह वर्ष तक वह उत्तर दिशा में न जाय और सूर्यकुण्ड में नहीं नहाये, राजा ने तथास्तु कहा। ब्राह्मण आशीर्वाद देकर विदा हुए, उस राजा के चौबीस रानियां थी, उनमें चम्पावती रानी के पुत्र हुआ, तब राजा ने बड़ा आनन्द मनाया और पुत्र का नाम सुजानकुवंर रक्खा, इस प्रकार आनन्द से दिन बीते। 14 वर्ष की उम्र में कुमार को एक जैन ने अपनी शिक्षा से शंकर मत के विरुद्ध कर दिया, जिसके कारण वह ब्राह्मणों से द्रोह करने लगा, तीनों दिशाओं में घूमकर उसने ब्राह्मणों को दुख दिया। उनके यज्ञोपवीत तोड़े गये, यज्ञ योग बन्द हो गये, राजा के भय से उत्तर दिशा को नहीं जाता था, पर प्रारब्ध वश उत्तर में ब्राह्मणों का यज्ञ पूजन सुनकर वहाँ चला ही गया और सूर्यकुण्ड पर जाकर पाराशर गौतम आदि ऋषियों को यज्ञ करता देखकर बड़ा क्रोधकर कहा कि इन ब्राह्मणों को पकड़ो मारो और यज्ञ सामग्री नष्ट कर दी, ब्राह्मणों ने यह वचन सुन राक्षस जान शाप दिया कि तुम सब जड़बुद्धि पाषाणवत हो जाओ, वे तत्काल ऐसे हो गये, तब राजा और नगरवासी बड़े दुखी हुए, राजा ने तो अपने प्राण त्याग दिये, सोलह रानी राजा के साथ सती हो गई, शेष उमराव आदि की लिएं ब्राह्मणों की शरण हुई, उन्होंने धर्मोपदेश देकर उन्हें शांत किया और सब को शंकर की तपस्या करने को कहा, उन स्त्रियों ने शंकर की तपस्या की, जिसके कारण शिवपार्वती ने उनको दर्शन दे वर मांगने को कहा, तब रानियों ने कुमार और उनके साथियों को चैतन्य किया और वे सब चैतन्य हो शिवजी को प्रणाम करने लगे। शंकर ने कहा तुमने क्षत्रिय होकर स्वधर्म त्यागन किया, इस कारण तुम क्षत्रिय न होकर वैश्य पद के अधिकारी होंगे।'' यह कपोल कल्पित कथा है किन्तु इससे यह ध्वनित होता है कि क्षत्रियों से माहेश्वरी परिवर्तित हुए। इस कथा के अनुसार 72 सामन्त खण्डेला से डीडवाना आ गये और बहत्तर खांप के डीडू माहेश्वरी कहलाए।

यह 72 गोत्र हैं-

सोनी,	सोमानी,	जाखेटा,	सौढानी,	हुरकट,
न्यातिहेड़ा,	करव्वा,	काकाणी,	मालू,	सारडा,
कहाल्या,	गिलंग,	जाजू,	बाहेती,	विदारा,
विहाणी,	बजाजू,	कलभी,	कासट,	कचोल्या,
कल्हाणी,	झंवर,	काबरा,	डाड,	डागा,
गटाणी,	राठि,	विड्हाला,	दरक,	तोसणीवाल,
अजमेरा,	भण्डारी,	छपरवाल,	भटइं,	भूतडावंग,
अहत,	इन्द्रणी,	मुरांग्या,	भंसाली,	लढा,
मालपानी,	सिंकची,	लाहौटी,	गदैया,	गागरानी,
खटव्यंग,	लखौटा,	असाता,	चेचाणी,	मुडधन्या,
गूधड़ा,	चौख,	बलदवा,	बालदो,	बूच ब्रांगड,

1. जाति भास्कर, पृ 276-277

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भंडोवरा, तौतला, आगिवाल, आगसैंग, प्रतानी,
नाटूधर, नवालं, पलौड़ा, तापर, मणियार,
धूत, धूपड़, मोदानी।[1]

डीडू माहेश्वरी से हटकर धाकड़ माहेश्वरी, खण्डेलवाल माहेश्वरी, मेड़तवाल इत्यादि है। यह जयपुर, टोंक राज्य में बगरू, महल, निमाडे, रानीखेडे और कुछ चित्तोड़ के समीप निवास करते हैं। इनके गोत्र निम्नलिखित हैं -

चण्डक	सोमानी	डाड	झंवर	बजाज
राठी	मालपानी	जाराडे	भंसाली	बासट
बायती	मूंघड़े	टावाणी	डागा	भटड
तोसनीवाल	काबरा	साकौथा	थीवा	लाहौती
नागौरी	गरगौली	लण्द	बघेरवाल	धाखा
धारवाल	मौरी	मौहता	मतिवार	मेड़तवाल
गूगले	कुलभ			

डीडू माहेश्वरी से कुछ पौकर माहेश्वरी हो गये। जैसे काबरा, चदेस्या, साहा, बीगौद्या, डडवाड्या, सिंणोल्या, दौडवास, धुतावत, बलवन्या, कायखास, साभरया, कीचक है।

खण्डेलवा माहेश्वरियों में कुछ डीडू माहेश्वरी है और कुछ खण्डेलवाल श्रावक हैं।

एक समय गोडवाड में पद्मावती नगरी के पौरवाल महाजन ने बड़ा द्रव्य खेचकर यज्ञ किया जिसमें चौरासी जाति के वैश्य आए।

84 जाति के वैश्य

1. आगरा से आगरवाल
2. आडलपुर से अडालिया
3. अयोध्या से अजोधिया
4. अजमेर से अजमेरा
5. आवेर से अवकथवाल
6. ओसियां से ओसवाल
7. खाटू से कठाड़ा
8. करौली से कांकरिया
9. नगरकोट से कपोल
10. बालकुण्डा से ककस्थन
11. खेखा से खटवा

---

1. जाति भास्कर, पृ 295

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

12. खड़वासे से खड़ामत
13. खेमानगर से खेमवाल
14. खण्डेला से खण्डेलवाल
15. गेहिलगड से गाहिलवाल
16. मंगराड से मंगराडा
17. गोरगढ से गोलवाल
18. गोगा से गोगवर
19. गिंदौड़ से गिंदौड़िया
20. चरणपुर से चतुदण
21. रणथम्भचकडा से चकौड़
22. खेमानगर से खेमवाल
23. चित्तोर से चित्तोड़
24. चावंडिया से पोरंडिया
25. सोमनगढजालौरात से जालौर
26. जामल से जामलवाल
27. जेसलगढ से जायलवाल
28. जम्बूनगर से जम्बूसरा
29. टीटोड से टीटोड़ा
30. टटेरानगर से टंटोरिया
31. ढाकलपुर से ढूसर
32. दसौर से दसौरा
33. धाकड़गढ से धाकड़
34. धौलपुर से धवलकोष्ठी
35. नागरचाल से नागर
36. हरिश्चन्द्रपुरी से नेग
37. नवसपुर से नवांभरा
38. नरानपुर से नारनगरेणा
39. नरसिंहपुर से नरहिपुर
40. नागेन्द्र नगा से नागिन्द्र
41. सिरोही से नाथचल्ला
42. नाडौलाई से नाछेला
43. नौसलगढ से नोटिया
43. पाली से पलीवाल
44. पंचम नगर से पंचम
45. नोसलगा से नोटिया

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

46. परानगरवास से परवार
47. पौकरजी से पौकर
48. पारेव से पौरवार
49. पौसरनगर से पौसरा
50. बघेरा से बघेरवाल
51. बदनौर से बदनोर
52. विदियाद से विदियादा
53. ब्रह्मपुर से वरमार
54. विसलापुरी से वोंगार
55. भावनगर से भवनग
56. भूरपुर से भूगडवार
57. डीडवाना से माहेश्वरी
58. मेड़ता से मेड़तवाल
59. मथुरा से माथुरिया
60. सीधपुर पाटन से मौड
61. मांडलगढ से माडलिया
62. राजगढ से राजिया
63. राजपुर से राजपुरा
64. लावानगर से लवेचा
65. लांवागढ से लाढ
66. भीनमाल से श्रीमाल
67. हस्तिनापुर से श्रीश्रीमाल
68. श्रीनगर से श्रीखण्ड
69. अभूता डौलाई से श्रीगुरु
70. सीधपुर से श्रीगौड़
71. सांभर से सांभरा
72. हिमलादगढ से साडौइया
73. सादड़ी से सरेडवाल
74. गिरनार से सोरठवाल
75. सीतापुर से सेतवाल
76. सौहित से सौहितपुर
77. सौनगढ बालौर से सौनेया
78. शिवगिरा वसिवान से सौरंडिया
79. सुरेन्द्रपुर अवन्ति से सुरंद्रा
80. हरसौर से हरसौरा

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

81. सादनाड से हूण्ड
82. हल्दानगर से हलद
83. हाकगड से हाकरिया

इसी तरह गुजरात देश की चौरासी, दक्षिण देव की चौरासी और मध्यप्रदेश की भी चौरासी न्यात है।

खण्डेलवाल

खण्डेलवाल वैश्य दो श्रेणियों के हैं कुछ गौत्र डीडू माहेश्वरियों के हैं और कुछ खण्डेलवाल श्रावकों के हैं। बारह न्यातों में खण्डेलवाल भी सम्मिलित हैं। मध्यप्रदेश मालवे में निम्नांकित 12 न्यात मानी जाती है।

श्रीश्रीमाल	श्रीमाल	अग्रवाल
ओसवाल	खण्डेलवा	बघेरबाल
पल्लीवाल	पौरवाल	जेसवाल
माहेश्वरी- डीडू	हूमड़ी	चौराडिया

गौड़वाड़ गुजरात काठियावाड़ में 12 न्यातों में ओसवालों के स्थान पर खण्डेलवाल जैनी है। यहाँ अग्रवाल नहीं है

चोसवाल	श्रीश्रीमाल	श्रीमाल
बघेरवाल	पल्लीवाल	चिमवाल
पौलवाल	मेड़तवाल	खण्डेलवा
ठंठवात	माहेश्वरी	हरसौरा

जयपुर नगर के खण्डेलानगर के नाग से इस जाति का नाम खण्डेलवाल पड़ा। एक समय खण्डेला नगरी शेखावत राजपूतों का केन्द्रस्थली था। एक कथा के अनुसार विक्रमसम्वत् के प्रारम्भ में जिन शैनाचार्य 507 मुनिराज के साथ लेकर माघ सुदी पंचमी को खण्डेलानगर में पधारे, उस समय वहाँ खण्डेलागिरि नाम का सूर्यवंशी चौहान राज्य करता था। उस समय वहाँ महामारी विसूचिका फैल रही थी। जिसके कारण हाहाकार मच रहा था। अनेक उपाय करने पर भी जब महामारी शान्त न हुई तब राजा उन मुनिराजों की शरण में गया और बड़ी प्रार्थना की। तब ऋषिराज ने कहा, जैनधर्म स्वीकार करो और देश में शांति हुई, 82 क्षत्रिय और 2 सुनार थे, वे श्रावक धर्म में दीक्षित हुए।

माहेश्वरी जाति से बने ओसवाल गोत्र [1]

1. कोचर
2. डागा

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 231

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

3. बंभ
4. भाभू
5. मालू
6. रीहड़
7. लूणिया
8. लोढ़ा
9. लूंकड़

खण्डेलवाल जाति से बने गोत्र

1. कोठारी
2. खण्डेलवाल
3. गांधी
4. जोहरी

बोहरा जाति से निसृत ओसवंश के गोत्र [1]

1. भीलड्या
2. सिंघवी
3. नींबजिया/सिंघवी
4. पालावत/कोठारी
5. सालेचा

माहेश्वरी जाति से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. डागा	-	जिनदत्तसूरि	खरतर	-	-
2. भाभू	-	जिनदत्तसूरि	खरतर	रतनपुर	भाभू (राठी)
3. मालू	12वीं सदी	जिनदत्तसूरि	खरतर	रतनपुर	माल्हदे
4. रीहड़	-	जिनचंद्रसूरि	खरतर	रतनपुर	-
5. लूणिया	1192	जिनदत्तसूरि	खरतर	मुल्तान	धींगड़मल
6. लोढ़ा	-	वर्धमानसूरि	खरतर	-	लढा माहेश्वरी

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय खण्ड, पृ 185

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खण्डेलवाल जाति से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
1. खण्डेलवाल	-	जिनप्रभसूरि	खरतर	जांगल प्रदेश	-

कायस्थों से निसृत ओसवंश के गोत्र

कायस्थ

ब्रह्मा की काया से जो उत्पन्न हुए हैं, वे कायस्थ कहलाते हैं। कायस्थ को चार वर्णों से इतर पांचवा वर्ण माना गया है। 'पद्मपुराण' में बारह प्रकार के गौड़ ब्राह्मण और 15 प्रकार के कायस्थ जाति की उत्पत्ति बताई है। इसके अनुसार यमराज ने कहा कि मुझे एक सहायक की आवश्यकता है, तब ब्रह्मा ने कहा, तुम्हें शीघ्र ही मुक्त कर दूंगा। यमराज के जाने के पश्चात् आजानुबाहु, श्यामवर्ण, कमल के समान नेत्र और हाथ में दवात, कलम पट्टी लिये एक पुरुष खड़ा हो गया। वह तप करने लगा, तब लोक पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हुए। चित्रगुप्त का विवाह 100 वर्ष के पश्चात् शुभ लक्षण वाली चार वैवस्वत मनु की और पितृभक्तिपरायण आठ नागों की कन्या से हुआ। इस प्रकार उन बारह कन्याओं से जगत्प्रिय 12 पुत्र उत्पन्न हुए। उस समय ब्रह्मा ने कहा हे चित्रगुप्त, मुझको तू बहुत प्रिय है, क्योंकि तू मेरी काया से उत्पन्न है। तुम इस लोक में कायस्थ नाम से विख्यात होंगे और ये तुम्हारे बारह पुत्र हैं। कायस्थ पांचवा वर्ण मान्य है। अब तुम धर्मराज के समीप जाकर मेरा काम करो, प्राणियों का पाप पुण्य सब काल लिखना। यह बारह पुत्र निम्नानुसार हैं:-

पुत्र	ऋषि	जाति
(1) माडव्य	माढव्य ऋषि	नैगम कायस्थ
(2) गौतम	गौतम ऋषि	श्री गौड कायस्थ
(3) श्री हर्ष	श्री हर्ष ऋषि	श्रीवास्तव कायस्थ
(4) हारीत	हारीत ऋषि	श्रीगीपति कायस्थ
(5) वाल्मीक	वाल्मीकि ऋषि	वाल्मीक कायस्थ
(6) वशिष्ठ	वशिष्ठ ऋषि	वशिष्ठ कायस्थ
(7) सौमरि	सौमरि ऋषि	सौरभ कायस्थ
(8) दालम्य	दालम्य ऋषि	दालम्य कायस्थ
(9) हंसनाम	हंसनामक ऋषि	सुखसेन कायस्थ
(10) भट्ट	भट्टनामक ऋषि	भटनागर कायस्थ
(11) सौरभ	सौरभ ऋषि	सूर्यध्वज कायस्थ
(12) माथुर	माथुर ऋषि	माथुर कायस्थ[1]

1. जाति भास्कर, पृ. 349

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्यादान, पवित्र, धीर, दाता, परोपकारी, राजभक्त और क्षमाशील होना, ये कायस्थों के सात लक्षण हैं।[1] कायस्थ जाति वर्णव्यवस्था में पंचम जाति है या संकर जाति, क्षत्रिय है या वैश्य, इसके बारे में विविध मत मिलते हैं, इसलिये कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।

माथुर (कायस्थ) से निसृत ओसवाल गोत्र

माथुर (कायस्थ) से निसृत ओसवंश के गोत्र (तालिका रूप में)

गोत्र	संवत	आचार्य	गच्छ	स्थान	पूर्वपुरुष
चोपड़ा गुणधर	1156	जिनदत्तसूरि	खरतर	मण्डोर	गुणधर

(जालोर के मोदी)

निष्कर्ष

अंत में यह कहा जा सकता है कि ओसवंश की स्रोतस्विनी क्षत्रियों से विक्रम संवत् 400 वर्ष पूर्व प्रवाहित हुई, किन्तु इन 2500 वर्षों में अनेक जातियां इसमें सम्मिलित होती गई, उनमें मुख्यत: क्षत्रिय और राजपूत जातियां ही रही, अन्य जातियां बहुत कम। यह एक तरह से क्षत्रियों और राजपूतों का केवल धार्मिक परिवर्तन न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन था।

• • •

1. जाति भास्कर, पृ 349

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पंचम अध्याय

जैनमत और ओसवंश : सांस्कृतिक संदर्भ

जैनमत : सांस्कृतिक संदर्भ

जैनमत ने एक नयी संस्कृति की रचना की। जैन संस्कृति या श्रमण संस्कृति का मूलाधार जैनदर्शन है। 'जैनमत ने श्रमण विचारधारा को जन्म दिया। जैनमत एक ऐसा धर्म है, जिसे जिन पालन करते हैं, जिन मुक्त आत्मा है, जो दुखी/पीड़ित मानवता के त्राण के लिये नियमों का प्रवचन करते हैं।'[1] यह मुक्त आत्माएं कर्म बंधनों से मुक्त है। यह मुक्त आत्माएं तीर्थंकर हैं, जो धर्म का प्रवचन करती है। इन तीर्थंकरों ने जीवन समुद्र को पार कर लिया है। तीर्थंकरों ने समाज की व्यवस्था का विभाजन चार श्रेणियों में किया- श्रमण और श्रमणियां, श्रावक और श्राविकाएं। जैनमत शाश्वत सत्य और आध्यात्मिकता का धर्म है। प्रत्येक युग की सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर इन तीर्थंकरों ने उपदेश दिये।

ऐसा माना जाता है कि इस अवसर्पिणी काल में- प्रागैतिहासिक युग में ऋषभ ने अहिंसा और अपरिग्रह का उपदेश दिया। ऋषभ ने अहिंसा और अपरिग्रह का उपदेश देकर जैनमत की नींव रखी। यह जैनमत का प्रवर्तन काल था।

जैनमत के प्रवर्द्धनकाल की चरम सीमा भगवान पार्श्वनाथ के युग में देख सकते हैं। अजितनाथ से लेकर अट्ठारहवें तीर्थंकर मल्लीनाथ ने ऋषभ के ही उपदेशों का विस्तार किया।

यह माना जाता है कि प्रथम और अंतिम तीर्थंकर महावीर ने धर्म के पंच महाव्रतों का उपदेश दिया, वहाँ दूसरे से लेकर तेबीसवें तीर्थंकरों ने चतुर्याम का उपदेश दिया। पार्श्व ने चार व्रतों- अहिंसा, सत्य, अदत्तादान (अचौर्य) और अपरिग्रह का उपदेश दिया, किन्तु उसमें ब्रह्मचर्य सम्मिलित नहीं, क्योंकि वे ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह का ही अंग मानते थे।

महावीर ने जैनदर्शन और जैन नीतिशास्त्र का उपदेश दिया। महावीर ने बताया कि संसार में दुख ही दुख है, यह संसार दुख बहुत है। व्यक्ति काम में लिप्त है। ये कामभोग क्षणभर सुख और चिरकाल तक दुख देने वाले हैं, बहुत देख और थोड़ा सुख देने वाले हैं, संसार मुक्ति के विरोधी और अनर्थों की खान है।[2] बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नहीं देता, वैसे ही इन्द्रिय सुख में कोई सुख दिखाई नहीं देता है।'[3] नरेन्द्र सुरेन्द्रादि का सुख परमार्थतः

---

1. T.G. Kalaghati, Study of Jainism, Page 2
2. समणसुतं, पृ 16-17
   खणमित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा, पगाम दुक्खा, अणिगाम दुक्खा।
   संसार मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ का भोगा।
3. वही, पृ 16-17
   सुट्ठि मग्गिज्जंतो, कत्थ वि केलीइ नत्थि जह सारो।
   इदि अविसरासु तहा, नथि, सुहं सुट्ठू वि गविट्ठ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुख ही है। वह तो क्षणिक है, किन्तु उसका परिणाम दारुण होता है, अत: उससे दूर रहना ही उचित है।[1] खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य कामजन्य सुख को दुख मानता है।[2] आत्मा को दूषित करने वाले भोगामिष (आसक्तिजनक भोग) में निमग्न हित और उसी तरह कर्मों में बंध जाता है, जैसे श्लेष्म में मक्खी[3]; जीव, जन्म, जरा और मरण में होने वाले दुख को विरक्त नहीं हो पाता। अहो ! माया (दम्भ) की गांठ कितनी सुदृढ़ होती है।[4] संसारी जीव के रागद्वेष परिणाम होते हैं, परिणामों से कर्मबंध होता है, कर्मबंध के जन्म से शरीर और शरीर से इन्द्रियां प्राप्त होती हैं, इंद्रियां विषयों का सेवन करती है, फिर रागद्वेष पैदा होता है, इस प्रकार जीव संसार वन में परिभ्रमण करता है।[5] इस तरह इस संसार में जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है और मृत्यु दुख है। अहो संसार दुख ही है, जिसमें जीव क्लेष पा रहे हैं।[6]

महावीर ने कर्मवाद का उपदेश दिया है। महावीर ने स्पष्ट कहा, कर्मकर्त्ता का अनुगमन करता है, जाति, मित्र, पुत्र और बांधव उसका दुख नहीं बांट सकते[7]; जीव कर्मों का बन्ध करने में स्वतंत्र होता है, परन्तु कर्म का उदय होने पर भोगने में उसके अधीन होना है, जैसे कोई पुरुष

1.समणसुत- 16-17

नर बिबु हेसरसुक्खं, दुक्खं, परमत्थओ तयं बिंति।
परिणामदारुण मसाथं च जं ता अलं तेण ॥

2. वही, पृ 16-17

नह कच्चुल्लो कच्छुं, कंडयमाणो दुहं मुण्य सुक्खं।
मोहाउरा मणुस्सा, तह काम दुहं सुहं बिंति ॥

3. वही, पृ 16-17

भोगामिस दोस विसोये, हियनिस्सेयस बुद्धिवोत्थे।
बाले य मन्दिय मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलम्मि ॥

4. वही, पृ 18-19

जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जम्मजरामरणसंभवं दुक्खं।
न य विसएसु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवड़ गंठी ॥

5. वही, पृ 18-19

जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं, कम्मोदो होदि गदिसु गदी ॥
गदिमधिगदस्स- देतो, देहादो इंदियाणिजायंते।
तोहि दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।
जायदि जीवस्सेवं, भावो संसारचक्कवालम्मि।
इरि जिणगरोंत भणिदो अणादिणीधणो सणिधणोवा ॥

6. वही, पृ 18-19

जम्म दुक्खं, जरा दुक्खं, रागा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंत वो ॥

7. वही, पृ 20-21

न तस्स दुक्खं विमयन्ति नाइओ, न मित्त वग्गा न सुआ न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्म ॥

8. वही, पृ 20-21

कम्मं चिणंति सवसा, तस्सु दयम्मि उ परव्वसा होंति।
रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइ स परव्वसो तत्तो ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वेच्छा से वृक्ष पर तो चढ़ जाता है, किन्तु प्रमादवश नीचे गिरते समय परवश हो जाता है;[8] किन्तु जो इन्द्रिय आदि पर विजय प्राप्त कर उपयोगभव (ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य) आत्मा का ध्यान करता है, वह कर्मों में नहीं बंधता। पोद्गलिक प्राण कैसे उसका अनुसरण कर सकते हैं ?'[1]

महावीर ने जीव की मुक्ति के लिये धर्म का उपदेश दिया। महावीर ने कहा, 'धर्म उत्कृष्ट मंगल है, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं[2]; रत्नत्रय और जीवों की रक्षा धर्म है ;[3] उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम अकांचिन्त्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य- ये दस धर्म हैं।'[4]

महावीर ने आत्मवादी धर्म की प्रस्थापना की। महावीर ने स्पष्ट कहा, आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूटशाल्मली वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु दुहा है और आत्मा ही नन्दनवन है।[5] आत्मा ही सुख दुख का कर्त्ता और विकर्त्ता (भोक्ता) है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में आत्मा ही अपना शत्रु है।[6] जो दुर्जेय संग्राम में हजारों हजारों योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है, उसकी विजय ही परमविजय है,[7] बाहरी युद्धों से या ? स्वयं अपने ही युद्ध करो। अपने से अपने को जीतकर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है[8] ; महावीर ने स्पष्ट कहा, जीवात्मा तीन प्रकार की है: बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। परमात्मा के दो प्रकार हैं: अर्हंत और सिद्ध।[9] इंद्रिय समूह को आत्मा के रूप में स्वीकार करने वाला बहिरात्मा है, आत्मसंकल्प देह से भिन्न आत्मा को स्वीकार करने वाला अंतरात्मा है और कर्मकलंक से विमुक्त परमात्मा है।[10] जिनेश्वरदेव का कथन है कि तुम मन, वचन और काया

---

1. समणसुत्तं, पृ 20-21
   जो इंदियादि विजई, भवीय उवओगमप्पगं झादि।
   कम्मेहिं सो ण रंजदि, किंह तं पाणा अणुचरंति ॥
2. वही, पृ 28-29
   धम्मो मंगल मुक्किटठं, असिंसा संजमो तवो।
   देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥
3. वही, पृ 28-29
   रयणतयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥
4. वही, पृ 28-29
   उत्तमखगमद्दवज्जव- सच्च सउच्चं च संजमं चेव।
   तवचागम किंत्रण्हं, बम्ह इदि दस धम्मो ॥
5. वही, पृ 39
6. वही, पृ 40-41
   आत्मा कत्ता विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य।
   अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पाट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥
7. वही, पृ 40-41
   जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।
   एगं जिणेज्ज अप्पणं, एस से परमो जओ ॥
8. वही, पृ 40-41
   अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ।
   अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहरा ॥
9. वही, पृ 56-57
10. वही, पृ 56-57

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से बहिरात्मा को छोड़कर, अन्तरात्मा में आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करो;[1] शुद्ध आत्मा में वर्ण रस, स्पर्श तथा स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि पर्याय, संस्थान और संहनन नहीं होते;[2] शुद्ध आत्मा वास्तव में अरस, अरूप, अंगध, अव्यक्त, चैतन्य गुण वाला, अशब्द, आलिंगग्राह्य और संस्थान रहित है;[3] आत्मा मन, वचन, कर्म से रहित, निर्द्वन्द्व (अकेला), निमर्म (ममत्वरहित), निष्फल (शरीर रहित), निरावलम्ब (परद्रव्यालम्बन से रहित), वीतराग, निर्दोष, मोहरहित और निर्मम है;[4] आत्मा निर्ग्रंथ है, नीराग है, निशल्य (मायारहित) है, सर्वदोषों से निर्मुक्त है, निष्काम है और नि:क्रोध, निर्मान और निर्मद है;[5] आत्मा न शरीर है, न मन है, न वाणी है, न कारण है, न कर्त्ता है, न करने वाला है और न कर्ता का अनुमोदक है।[6]

आत्मा की यात्रा बहिरात्मा से अंतरात्मा की ओर होते हुए परमात्मा तक पहुँचने के लिये मोक्ष तक पहुँचने की यात्रा है। भारतीय जीवन दृष्टि के अनुसार चारों पुरुषार्थों में यह धर्म से मोक्ष तक की यात्रा है- अर्थ और काम की स्थिति बीच में है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य मोक्ष के मार्ग हैं। यही जैन दर्शन का आचार शास्त्र है। (सम्यग) दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य तथा तप को जिनेन्द्रदेव ने मोक्ष का मार्ग कहा है। यह निश्चय और व्यवहार दो प्रकार का है। शुभ और अशुभ भाव मोक्षमार्ग नहीं है।[7] शुभभाव से विद्याधरों, देवों और मनुष्यों की करांजलिबद्द स्तुतियों से चक्रवर्ती सम्राट की विपुल राजलक्ष्मी उपलब्ध हो सकती है, किन्तु सम्यगसम्बोधि प्राप्त नहीं होती।[8]

---

1. वही, पृ 58-59

आरुहंति अंतरप्पा, बहिरप्पो छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा, उवइट्ठं जिणिवरिंदेहिं ॥

2. वही, 58-59

वण्ण रसगंध फासा, थी पुंसणवुंसुयादि- पज्जाया।
संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति ॥

3. वही, पृ 58-59

अर समरुवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥

4. वही, पृ 58-59

णिद्दंडो णिद्दंदो, णिम्ममो णिक्कालो णिरालंबो।
णिरागो णिद्दोणी, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा ॥

5. समणसुत्तं, पृ 58-59

णिग्गंथो णिसोरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो, णिम्मदो अप्पा ॥

6. वही, पृ 60-61

णाहं देहो ण मयो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण ण कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ॥

7. वही, पृ 64-65

दंसणणाण चरित्ताणि, मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधूहि इदं भणिदं, तेहि दु बंधो व मोक्खो वा ॥

8. सुमणसुतं, पृ 66-67

खयरामरमणुय- करंजलि- मालहिं च संथुया विउला,
चक्कहररायलच्छी, बोही ण भव्वणुओ ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनमत की नींव के पत्थर तीन रत्न है, जिसे रत्नत्रय कहा जाता है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य है। महावीर ने स्पष्ट कहा, धर्म आदि का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अंगों और पूर्वों का ज्ञान सम्यगज्ञान है, तप में प्रयत्नशीलता सम्यग्चारित्र है। यह व्यवहार मोक्ष मार्ग है।[1] ज्ञान से जीवादि पदार्थों को जानता है, दर्शन से उसका श्रद्धान करता है, चारित्र्य से विरोध करता है और तप से विशुद्ध होता है,[2] तीनों एक दूसरे के पूरक है। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र गुण नहीं होता, चारित्र गुण के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता;[3] आत्मा में लीन आत्मा ही सम्यग्दृष्टि है, जो आत्मा को यथार्थ रूप में जानता है, वही सम्यग्ज्ञान और उसमें स्थित रहना ही सम्यग्चरित्र है।[4] इस प्रकार आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही दर्शन है और आत्मा ही संयम और योग है।[5] अत: जैनमत मूलत: आत्मवादी दर्शन है।

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन ही सार है और यही मोक्षरूप महावृक्ष का मूल है। यह निश्चय और व्यवहार के रूप में दो प्रकार का है।[6] आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन सत्य के साक्षात्कार की सही दृष्टि है। महावीर कहते हैं, कोई तो विषयों का सेवन करते हुए भी सेवन नहीं करता और कोई सेवन न करते हुए भी सेवन करता है, जैसे कोई पुरुष विवाहादि कार्य में लगा रहने पर भी उस कार्य का स्वामी नहीं होने से कर्ता नहीं होता;[7] कामभोग न समभाव उत्पन्न करते हैं और न विकृति, जो उनके प्रति द्वेष और ममत्व रखता है वह उनमें विकृति को प्राप्त होता है।[8]

---

1. वही, पृ 68-69
   धम्मादीसंद्दहणं सम्मतं णाणमंगपुव्वगदं ।
   चिट्ठा तवंसि चरिया, ववहारो मोक्खमग्गो त्ति ॥
2. वही, पृ 68-69
   णाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
   चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परि सुज्झई ॥
3. वही, पृ 70-71
   नादं सणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
   अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥
4. समणसुतं, पृ 72-73
   अप्पा अप्पम्मि रओ, सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो ।
   जाणइ तं सण्णाणं, चरदिह चारित्त मग्गु त्ति ॥
5. समणसुतं, पृ 72-73
   आया हु महं नाणे, आया में दंसने चरित्ते य ।
   आया पच्चक्खाणे, आया में संजमे जोगे ॥
6. वही, पृ 72-73
   सम्मतरयणसारं, मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं ।
   तं जाणिज्जइ णिच्छय, ववहारसरूवदो भेयं ॥
7. वही, पृ 74-75
   सेवंतो विण सेवइ, असेवमाणो वि सेवगो कोई ।
   पगरणचेट्ठा कस्स वि, ण य पायरणो त्ति सो होई ॥
8. वही, पृ 76-77
   न कामभोगा समयं उवेंति, न यावि भोगा विगइं उवेंति ।
   जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सम्यग्दर्शन ही दिव्यदृष्टि है, जो हमें अंधकार से प्रकाश, असत्य से सत्य और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाती है। सम्दर्शन रूपी स्वर्णपात्र में चारित्र्य रूपी अमृत ही मुक्तिरूपी फल प्रदान करता है। सम्यगदर्शन मुक्ति का बीज है। जो मिथ्यावादी है, उसे सम्यगदर्शन नहीं होता। 'तत्वार्थसूत्र' के अनुसार मिथ्यात्वीको सद्-असद का विवेक नहीं होता है, वह यथार्थ-अयथार्थ का अंतर नहीं जानता। इसलिये संयोग से कभी भला बन पड़ता है, वह यदृच्छोपलब्ध है।'[1] सम्यग्दर्शन सब धर्मों का केन्द्रीय तत्व है, संयम और समता का मूल है, व्रतों और महाव्रतों का आधार स्तम्भ है, अध्यात्म साधना की आधार शिला है, मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है, चारित्र्य साधना के मंदिर का प्रवेश द्वार है, ज्ञान आराधना का स्वर्णिम सोपान है, मुक्ति प्राप्ति का अधिकार पत्र है, अध्यात्म विकास का सिंहद्वार है, पूर्णता की यात्रा का परम पाथेय है, अनन्त शक्ति पर विश्वास का प्रेरणास्रोत है, चेतना की मलिनता निवारण का अमोघ उपाय है, अन्तश्चेतना के जागरण का अग्रदूत है, परमात्मदशा का बीज है, जिनत्य की प्रशस्त भूमिका है, चेतना के उर्ध्वारोहण का मंगलमय मार्ग है, आध्यात्म शक्ति का मूलभूत नियन्ता है और भेदविज्ञान का प्राणतत्व है।[2] सम्यग्दर्शन सब रत्नों में महारत्न है, सब योगों में उत्तमयोग है, सब ऋद्धियों में महाऋद्धि है और सब सिद्धियों को प्रदान करने वाला है।[3] वस्तुत: सम्यग्दर्शन है सत्यदृष्टि, तत्वदृष्टि, शुद्ध चैतन्य दृष्टि या परमात्मदृष्टि।[4]

जैनमत एक यथार्थवादी दर्शन है। यह अपने दृष्टि में प्रयोगात्मक और विधि की दृष्टि से विश्लेषणात्मक है।[5] जैनमत के प्रत्येक दार्शनिक प्रतिपत्ति को व्यावहारिक धरातल पर उतारा जा सकता है। 'जैनधर्म का दृष्टिकोण है - पहले दृष्टि बदलें, बाद में सृष्टि। अर्थात् पहले विचार बदलें, पीछे आचार।'[6] सम्यग्दर्शन एक मूल है, एक आध्यात्मिक मूल है। भारतीय समाज और भारतीय संस्कृति ने श्रेष्ठ मूल संहिता प्रदान की है, उनमें सम्यग्दर्शन एक शाश्वत मूल्य है। सम्यग्दर्शन हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, क्योंकि यह एक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि है। 'सम्यग्दृष्टि वह नौका है, जिस पर आरूढ व्यक्ति संसार सागर को पार कर लेता है, सम्यग्दर्शन एक पारसमणि है, जिसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति जीवन रूप लोहखण्ड को स्वर्णमय बना देता है, सम्यग्दर्शन एक कवच है, जिससे आत्मा मिथ्यात्वरूपी शत्रुओं से सुरक्षित हो जाता है, सम्यक्त्व एक जगमगाता प्रकाश है, अमृत रस की धार है और सम्यकत्व आत्मा की स्वतंत्रता का राजमार्ग है, जबकि मिथ्यात्व आत्मा की परतंत्रता का कण्टकाकीर्ण मार्ग।'[7] आचार्य रजनीश ने सम्यग्दर्शन के आठ अंग माने हैं- (1) निशंका अर्थात् अभय (2) निष्कांक्षा (आकांक्षा का अभाव) 3.

1. उमास्वामी, तत्वार्थसूत्र 1/33
   सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्॥
2. जिनवाणी अगस्त, 96, सम्यग्दर्शन विशेषांक, पृ 69
3. वही, पृ 104
4. वही, पृ 149
5. Kalghatagi, T.G., Study of Jainism, Page 138
   Jainism is a realistic philosophy. It is empiricist in out look and it is analytical in methodology.
6. जिनवाणी, अगस्त, 1996, सम्यग्दर्शन विशेषांक, पृ 253
7. वही, पृ 325

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्विचिकित्सा (जुगुप्सा का अभाव- अपने दोष और दूसरों के गुणों को छुपाना) 4. अमूढ दृष्टि- (1) देवमूढता (2) गुरुमूढता 5. उपगूहन (अपने गुणों और दूसरे के दोषों को प्रकट न करना- जुगुप्सा के विपरीत) 6. स्थिरीकरण 7. वात्सल्य 8. प्रभावना (इस भांति जिओ कि धर्म की प्रभावना हो)।[1] इस प्रकार सम्यग्दर्शन जैन आचार संहिता का एक व्यावहारिक मूल्य है, जिसकी नींव पर श्रमण संस्कृति का भव्य भवन निर्मित है।

सम्यग्ज्ञान मोक्ष मार्ग की द्वितीयसीढी है। महावीर ने कहा, 'साधक सुनकर ही कल्याण या आत्माहित का मार्ग जान सकता है, सुनकर ही पाप या अहित का मार्ग जाना जा सकता है,[2] जैसे धागा पिरोई हुई सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं है, वैसे ही ससूत्र अर्थात् शास्त्र ज्ञान युक्त जीव संसार में नष्ट नहीं होता,[3] जिस व्यक्ति में परमाणु भर भी रागादि भाव विद्यमान है, वह समस्त आगम का ज्ञाता होते हुए भी आत्मा को नहीं जानता, आत्मा को नहीं जानने से अनात्मा को नहीं जानता, तब वह जीव-अजीव को नहीं जानता, तब वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है।[4] जिससे तत्व का ज्ञान होता है, चित्त का निरोध होता है, तथा आत्मा विशुद्ध होती है, उसी को जिनशासन का ज्ञान कहा गया है;[5] जिससे जीव रागाविमुख होता है, श्रेय में अनुरक्त होता है, जिससे मेत्री भाव प्रभावित होता है, उसी को जिनशासन में ज्ञान कहा गया है;[6] जो आत्मा को इस अपवित्र शरीर से तत्वत: भिन्न तथा ज्ञायक भावरूप जानता है, वही समस्त शास्त्रों को जानता है;[7] जो जीव आत्मा को शुद्ध जानता है वही शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है और जो आत्मा को अशुद्ध अर्थात्

---

1. जिनवाणी, अगस्त 96, सम्यग्दर्शन विशेषांक, पृ 401-409
2. समणसुत्तं, पृ 80-81
   सोच्चा जाणई कल्लाणं, सोच्चा जाणई पावगं।
   उभय वि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे॥
3. वही, पृ 80-81
   सुई जहा सुसत्ता, न नस्सई, कयवरम्मि पडिआ वि।
   जीवो वि तह सुसत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारो॥
4. वही, पृ 82-83
   परमाणुमित्तअं वि हु, रायादीणं तु विज्जदे जस्स।
   ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो॥
   अप्पाणमयाणंतो, अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
   कह होदि सम्मदिट्ठी, जीवाजीवे अयाणंतो॥
5. समणसुत्तं, पृ 82-83
   जेण तच्चं बिबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
   जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥
6. वही, पृ 82-83
   जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
   जेण मित्ती परमावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥
7. वही, पृ 82-83
   जो अप्पाणं जाणदि, असुइ-सरीरादु तच्चदो भिन्नं।
   जाणग-रूव-सरूवं, सो सत्थं जाणदे सव्वं॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देहादिमुक्त जानता है, वह अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त होता है;[1] जो अध्यात्म को जानता है वह बाह्य (भौतिक) को जानता है, जो बाह्य को जानता है वह अध्यात्म को जानता है;[2] जो एक को जानता है, वह सब (जगत) को जानता है और जो सब को जानता है वह एक को जानता है।[3] इस प्रकार अध्यात्म की, मोक्ष की दूसरी सीढी सम्यग्ज्ञान है।

मोक्ष की तृतीय और अंतिम सीढी सम्यग्चारित्र्य है। महावीर ने कहा, अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति ही व्यवहार चारित्र है, चारित्र्यशून्य पुरुष का विपुल शास्त्र ज्ञान भी व्यर्थ ही है, जैसे कि अंधे के आगे लाखों लाखों दीपक जलाना व्यर्थ है;[4] चारित्र्य सम्पन्न का अल्पज्ञान भी बहुत है और चारित्रविहीन का बहुत श्रुतज्ञान भी निष्फल है;[5] निश्चयनय के द्वारा आत्मा का आत्मा में आत्मा के लिये तन्मय होना ही सम्यग्चरित्र है, ऐसे चरित्रशील योगी को ही निर्वाण की प्राप्ति होती है;[6] वास्तव में चारित्र्य ही धर्म है, इस धर्म को शमरूप कहा गया है, मोह या क्षोभ से रहित आत्मा का निर्मल परिणाम ही सम या समता रूप है।[7] समता, माध्यस्थभाव, शुद्धभाव, वीतरागता, चारित्र, धर्म और स्वभाव आराधना- ये सब एकार्थक शब्द हैं।[8] सम्यग्चरित्र के द्वारा भगवान महावीर ने आध्यात्मिक भित्ति पर समतावाद की प्रतिष्ठापना की।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र- इन तीन रत्नों का समन्वय अपेक्षित है।

---

1. वही, पृ 84-85

सुद्धं तु वियाणंतो, सुद्ध चेवप्पयं लहइ जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं, असुद्धमेवप्पयं लहई ॥

2. वही, पृ 84-85

जे अज्जत्थं जाणइ, से बहिया जाणई ।
जे बहिया जाणइ, ते अज्झत्थं जाणई ॥

3. समणसुतं, पृ 84-85

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणई ।
जे सव्वं जाणई, से एगं जाणई ॥

4. वही, पृ 86-87

सुबहुं पि सुयमहीयं किं काहिय चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्स कोडी वि ॥

5. वही, पृ 86-87

थोवम्मि सिक्खदे जिणइ, बहुसुदं जो चरित्त संपुण्णो।
जो पुण चरित्तहीणो, किं तस्स सुदेण बहुएण ॥

6. वही, पृ 88-89

णिच्छयणयस्स एवं, अप्पा अपम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि सुचरित्तो, जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥

7. समणसुतं, पृ 90-91

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो, अप्पणो हु समो।

8. समणसुतं, पृ 90-91

समदा तह मज्झत्थं, सुद्धो भावो य वीयरायतं।
तह चारित्तं धम्मो, सहावआराहणा भणिया ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निश्चय चारित्र्य साध्यरूप है और व्यवहार चारित्र्य उसका साधन है;[1] श्रद्धा को नगर, तप और संवर को अर्गला, बुर्ज, खाई और शतघ्नी स्वरूप त्रिगुणि (मन वचनकाय) से सुरक्षित तथा सुदृढ़ प्रकार बनाकर तप रूपी बाणों से युक्त धनुष से कर्म कवच को भेदकर संग्राम का विजेता मुनि संसार से मुक्त होता है।[2] इस प्रकार भगवान महावीर ने जैनमत के भवन की नींव के द्वारा त्रिरत्न- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र के द्वारा रखी।

जैनमत के भव्य भवन का निर्माण पाँच स्तम्भों रूपी पांच महाव्रतों- अणुव्रतों पर टिका है- ये हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। यह श्रमण के लिये महाव्रत है और श्रावक के लिये अणुव्रत।

जैनमत का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संदर्भ अहिंसा पर टिका है। महावीर ने कहा, ज्ञानी का सार यही है कि किसी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसामूलक समता ही धर्म है, यही अहिंसा का विज्ञान है;[3] सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं, इसलिये प्राणवध को भयानक जानकर निर्ग्रंथ उसका वर्जन करते हैं;[4] जैसे तुम्हें दुख प्रिय नहीं है, वैसे ही जीवों को दुख प्रिय नहीं है- ऐसा जानकर पूर्ण आदर और सावधानीपूर्वक आत्मौपम्य की दृष्टि से सब पर दया करो;[5] जीव का वध अपना ही वध है, जीव की दया अपनी ही है;[6] जिसे तू हनन योग्य समझता है, वह तू ही है, जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है;[7] हिंसा से विरत न होना, हिंसा का परिणाम रखना हिंसा ही है, इसलिये जहाँ प्रमाद है, वहाँ नित्य हिंसा है;[8] जैसे जगत में मेरुपर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल और कुछ नहीं, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है;[9]

---

1. वही, पृ 90-91

णिच्छय सज्झसरूवं, सराय तस्सेव साहणंचरणं।
तम्हा दो वि य कमसो, पडिच्छमाणं पबुंज्झेह ॥

2. वही, पृ 92-92

सद्दं नगरं किच्चा, तवसंवर मग्गलं ।
खन्ति निडणपागारं, तिगुतं दुप्प धंसयं ॥
तवनारायजुत्तेण, भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगय संगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥

3. समणसुतं, पृष्ठ 47
4. वही, पृ 47
5. वही, पृ 49

जह ते न पिअं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
सव्वायरमुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ॥

6. वही, पृ 49
7. वही, पृ 49

तुमं सि नाम स चेव, हंतव्वं ति मन्नसि ।
तुमं सि नाम स चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ॥

8. वही, पृ 49

हिंसादोअविरमणं, वह परिणामो य होइ हिंसा हु।
तम्हा पमत्तजोगे, पाणव्ववरोवओ णिच्च ॥

9. वही, पृ 51

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनमत का मूलमंत्र अहिंसा है। जैनमत के अनुसार अध्यात्म की आधारशिला अहिंसा। श्रमण संस्कृति अहिंसा रूपी स्तम्भ पर टिकी है। अहिंसा के अभाव में संसार में दुख और पीड़ा उत्पन्न होती है। जो हिंसा करता है, वह प्रमत्त होता है, दुखी रहता है, प्रतिशोध की मानसिक वेदना से सदैव पीड़ित रहता है। 'तत्वार्थसूत्र' के अनुसार ऐसा व्यक्ति शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न झेलता है और उस मृत्यु के पश्चात् पुन: जन्म लेने की पीड़ा भोगनी पड़ती है।[1] हिंसा में घमण्ड और पूर्वाग्रह, मोह और घृणा होती है। हिंसा में दृष्टि और लक्ष्य भी महत्वपूर्ण है जो शारीरिक हिंसा करता है, वह स्थूल हिंसा है, जो मानसिक दृष्टि से हिंसा के लिये सोचता है, वह सूक्ष्म हिंसा है। जैनमत के अनुसार अहिंसा कायरता नहीं है। अहिंसा का निषेधात्मक और प्रतिबोधात्मक पक्ष दोनों है। यह प्रतिबोधात्मक रूप में करुणा, दया और वात्सल्य है।

भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा, जीव समूह की हिंसा करता है, या दूसरों के द्वारा त्रसकाय जीव समूह की हिंसा करते हुए दूसरों का अनुमोदन करते हैं, वह हिंसा कार्य मनुष्य के अहित के लिये होता है, वह उसके लिये अध्यात्महीन बने रहने का कारण होता है।[2] हिंसा का कारण कुछ भी हो, फिर भी हिंसा हिंसा ही है। महावीर ने कहा, कुछ मनुष्य पूजा सत्कार के लिये वध करते हैं, कुछ मनुष्य हरिण आदि के चमड़े के लिये वध करते हैं, कुछ मनुष्य मांस के लिये वध करते हैं, कुछ मनुष्य खून के लिये वध करते हैं, कुछ मनुष्य हृदय के लिये वध करते हैं, कुछ पित्त के लिये, कुछ चर्बी के लिये, कुछ पंख के लिये, पूंछ के लिये, बाल के लिये, सींग के लिये, हाथी दांत के लिये, दांत के लिये, दाढ के लिये, नख के लिये, स्नायु के लिये, हड्डी के लिये, भीतरी रस के लिये किसी उद्देश्य के लिया तथा बिना किसी उद्देश्य के लिये वध करते हैं, कुछ करवाते हैं।[3]

महावीर स्वामी ने स्पष्ट कहा, कोई भी प्राणी, कोई भी जन्तु, कोई भी जीव, कोई भी प्राणवान मारा नहीं जाना चाहिये, शासित नहीं किया जाना चाहिये, सताया नहीं जाना चाहिये, अशांत नहीं किया जाना चाहिये। अह अहिंसाधर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है।[4]

---

1. तत्वार्थसूत्र, VII/5

2. डा. कमलचंद सोगानी, आचरांग चयनिका, पृ 13

सयमेव तसकाणसत्थं समारंभति, अण्णेहि वा
तसकाय सत्थं सभारंभावेति, अण्णे वा तसकायसत्थं
समुणजाणति तं से अहिताए तं से अबोधीए।

3. आचरांग चयनिका, पृ 14-15

से बेमि- अप्पेगे अच्चाए बधेति, अप्पेगे अजिणाए वधेति, अप्पेगे मंसाए बधेंति, अप्पेगे हिमयाए वधेंति, एवं पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए बालाए सिंगाए विसाणाए दाढाए नहाए ण्हारुणीय अट्ठिए अट्ठिमिंजाए अट्ठाए अणट्ठाए अप्पेगे हिंसिसु मे त्ति वा, अप्पेगे हिंसति वा अप्पेगे हिंसिस्साति वा णे वधेंति।

4. वही, पृ 48-49

सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ताणहंतण्णए,
ण अज्जावेतव्वा, न परिद्येत्तव्वा, ण परितावेयत्वा,
ण उद्देवेयव्वा। एस धम्मे सुदे णितिए सासए समेच्च
लोयं खेत ण्णेहिं पवेदिते ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस प्रकार भगवान महावीर ने जैनमत की भित्ति को अहिंसारूपी सुदृढ़ स्तम्भ पर स्थापित किया। अन्य महाव्रत अणुव्रत भी अहिंसा रूपी व्रत से ही उद्भूत है। अहिंसा रूपी स्तम्भ के दृढ़ने से जीवन रूपी भवन किसी भी क्षण ढह सकता है। अहिंसा जीवन और मोक्ष दोनों का मूलमंत्र है। अहिंसा के द्वारा ही व्यक्ति का रूपान्तरण कर महावीर ने एक नयी संस्कृति की रचना की।

सत्य जैनमत का द्वितीय स्तम्भ है। भगवान महावीर की मान्यता है कि जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता, जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता[1]; मिथ्यात्व जीव तीव्र कषाय से पूरी तरह आविष्ट होकर जीव और शरीर को एक मानता है, वह बहिरात्मा है;[2] जो तत्वविचार के अनुसार नहीं चलता, उससे बड़ा मिथ्यादृष्टि और दूसरा कौन हो सकता है ? वह दूसरों को शंकाशील बनाकर अपने मिथ्यात्व को बढ़ाता रहता है।[3] हे मनुष्य ! सत्य का ही निर्णय कर, जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित है, वह मेधावी मृत्यु को जीत सकता है, सुन्दर चित्रवाला (संयमी) व्यक्ति धर्म (अध्यात्म) को ग्रहण कर श्रेष्ठता को देखता रहता है, वह व्याकुलता में नहीं फँसता[4]; जो अनुपम (आत्मा) को जानता है वह सब (विषमताओं) को जानता है, जो सब को जानता है, वह अनुपम आत्मा को जानता है;[5] जो व्यक्ति क्रोध को समझने वाला है, वह अहंकार को समझने वाला है, जो अहंकार को समझने वाला है, वह मायाचार को समझने वाला है, जो मायाचार को समझने वाला है, वह लोभ को समझने वाला है, जो लोभ को समझने वाला है, वह राग को समझने वाला है, जो राग और द्वेष को समझने वाला है, वह आसक्ति को समझने वाला है, जो आसक्ति को समझने वाला है, वह विभिन्न प्रकार के दुखों को समझने वाला है।[6]

---

1. समणसुतं, पृ 23
2. वही, पृ 24-25

   मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
   जीवं देहं एक्कं, मण्णंतो होदि बहिरण्णा ॥
3. वही, पृ 24-25

   जो जहवायं न कुणई, मिच्छादिट्ठी तओ हु को अन्नो।
   वड्ढइ य मिच्छतं, परस्स संकं जणे माणो ॥
4. आचरांग चयनिका, पृ 44-45

   पुरिसा। सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए
   से उवट्ठिए मेधावी मारं तरति ।
   सहिते धम्मादाय सेयं समणुपस्सति ।
   सहिते दुक्खमताए पुट्ठो णो झंझाए ।
5. वही, पृ 44-45
6. वही, पृ 46-49

   जे कोहदंसी से माणदंसि, जे माणदंसी से मायदंसी,
   जे मायदंसी से लोभदंसी, जे लोभदंसी से पेज्जदंसी,
   जे पेज्जदंसी से दोसदंसी, जे दोसदंसी से मोहदंसी,
   जे मोहरजी ..... से दुक्खदंसी ।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सत्य एक शाश्वत जीवनमूल्य है किन्तु स्यादवाद के द्वारा महावीर ने सत्य को शाश्वत के साथ उदारदृष्टि से सापेक्ष भी माना है। स्यादवाद के द्वारा महावीर ने सप्तभंगी न्याय- स्यात् अस्ति, स्यातनास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्यं, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यं की स्थापना की। महावीर ने स्यादवाद के द्वारा ऐसी संस्कृति की रचना करना चाहते थे, जिससे धार्मिक विवाद समाप्त हो जाय। भगवान महावीर कहते हैं, कुछ केवल अपने मत की प्रशंसा करते हैं, तथा दूसरों के वचनों की निन्दा करते हैं और इस तरह पाण्डित्य प्रदर्शन करते हैं। इस संसार में नाना प्रकार के जीव हैं, नाना प्रकार के कर्म है, नाना प्रकार की लब्धियां हैं, इसलिये कोई स्वधर्मी हो या परधर्मी किसी के साथ वचन विवाद उचित नहीं।[1]

इस प्रकार सत्य का अभिप्राय विस्तृत है।[2] प्रमाद से झूठ बोलना भी असत्य है, किसी की हिंसा कर वध करना भी असत्य है, किसी पर आरोप लगाना भी असत्य है, झूठे दस्तावेज तैयार करना भी असत्य है।

सत्य से ही आत्मा को जाना जा सकता है। सत्य से ही वह ज्ञान होता है कि जीव उत्तम गुणों का आश्रय, सब द्रव्यों में उत्तम द्रव्य और सब तत्वों में परमतत्व है।[3] सत्य से ही जाना जाता है कि आत्मा ज्ञायक है, जो ज्ञायक होता है, वह न अप्रमत्त होता है, न प्रमत्त और उसमें अशुद्धता नहीं होती।[4] आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानने वाला तथा परकीय भावों को जानने वाला ऐसा कौन ज्ञानी होगा, जो यह कहेगा, यह मेरा है,[5] और सत्य का ज्ञाता ही कहेगा, मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममता रहित हूँ तथा ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूँ। अपने इस शुद्ध स्वभाव में स्थित और तन्मय होकर मैं इन सब (परकीय भावों) का क्षय करता हूँ।[6] सत्य को जानने वाला ही त्रिरत्न के द्वारा मोक्ष मार्ग का पथिक है। सत्य को जानने वाला ही पाँच महाव्रतों/अणुव्रतों का पालन करता है।

---

1. समणसुतं, पृ 236-237
   णाणाजीवा णाणाकम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी।
   तम्हा वयणविवादं, सगणपरस मएहिं वज्जिज्जा ॥
2. Study of Jainism, Page 203
   (Truth Speeking) has also a wide connotation.
3. समणसुतं, पृ 56-57
   उत्तमगुणाण धामं, सव्वदव्वाण उत्तमं दव्वं।
   तच्चाण परं तच्चं, जीवं जाणेह णिच्छयदो ॥
4. वही, पृ 60-61
   णदि होदि अप्पमत्तो, ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
   एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो जेव ॥
5. वही, पृ 60-61
   को णाम भणिज्ज बुहो, णाडं सव्वे पराइए भावे।
   मज्झमिणं ति य वयणं, जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥
6. वही, पृ 60-61
   अहमिक्को खलु सुद्धो, णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
   तम्हि णिओ तच्चितो, सव्वे एए खयं णेमि ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रावक धर्म के लिये सत्य दूसरा अणुव्रत है। भगवान महावीर ने कहा, स्थूल रूप में असत्य विरति दूसरा अणुव्रत है। इसके भी पांच भेद हैं- कन्या अलीक, गो अलीक, भू अलीक, यथा भूमि के विषय में झूठ बोलना, किसी की धरोहर को दबा देना और झूठी गवाही देना। इसका त्याग असत्य विरति है,[1] सत्य अणुव्रती सहसा न कोई बात कहता है, न किसी का रहस्योद्घाटन करता है, न अपनी पत्नी की कोई गुप्त बात मित्रों आदि में प्रकट करता है, न मिथ्या उपदेश करता है और न कूटलेख क्रिया करता है।[2]

अचौर्य तृतीय महाव्रत/अणुव्रत है। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा, अचौर्याणुव्रती श्रावक को न चोरी का माल खरीदना चाहिये, न चोरी में प्रेरक बनना चाहिये, न ही राज्यविरुद्ध कोई कार्य करने चाहिये,[3] ग्राम, नगर अथवा अरण्य में दूसरे की वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने वाले भाव त्याग देने वाले साधु के लिये तीसरा अचौर्यव्रत होता है,[4] सचेतन अथवा अचेतन अथवा बहुत यहाँ तक की दांत साफ करने की सींक तक भी साधु बिना दिये ग्रहण नहीं करते।[5]

ब्रह्मचर्य जैनमत का चतुर्थ महाव्रत/अणुव्रत है। श्रमण के लिये ब्रह्मचर्य का अक्षरश: पालन और श्रावक के लिये विवाहित जीवन की सीमा में रहना ही ब्रह्मचर्य है। महावीर ने कहा, स्वस्त्री में सन्तुष्ट ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक को विवाहित या अविवाहित बदचलन स्त्रियों से सर्वथा दूर रहना चाहिये, अनंग क्रीड़ा नहीं करनी चाहिये, अपनी सन्तान के अतिरिक्त दूसरों के विवाह आदि कराने में दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिये और काम सेवन की तीव्र लालसा का त्याग करना चाहिये;[6] मैथुन संसर्ग अधर्म का मूल है, महान् दोषों का समूह है, इसलिये ब्रह्मचर्यव्रती निर्ग्रंथ साधु मैथुन सेवन का सर्वदा त्याग करते हैं;[7] वृद्धा, बालिका और युवती- स्त्री के इन तीन प्रतिरूपों

---

1. वही, पृ 100-101
   थूल मूसावायस्स उ, विरई दुच्चं, स पंचहा होई।
   कन्नागोभु आलिय- नासाहरण- कूड साक्खज्जे॥
2. समणसुत्तं, पृ 100-101
   सहसा अब्भक्खाणं, रहसा य सदारमंत भेयं च।
   मोसोवएसयं, कूडलेहकरणं च वज्जिज्जा॥
3. समणसुत्तं, पृ 102-103
   वज्जिज्जा तेनाहड- तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च।
   कूडतुलकूडमाणं तप्पडिरूवं च ववहारं॥
4. वही, पृ 118-119
   गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
   जो मुंचदि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव॥
5. वही, पृ 118-119
   चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
   दंतसोहणमेत्तं वि, ओग्गहंसि अजाइया॥
6. समणसुत्तं, पृ 102-103
   इत्तरियपरिगाहिया- ऽपरिगहियागमणा-णंगकीडं च।
   परविवाहक्करणं, कामे तिव्वाभिलासं॥
7. वही, पृ 120-121
   मूलमेअमहम्मस्स महादोसमुस्सयं।
   तम्हा मेहुणसंसग्गिं निग्गंथा वज्जयंति णं॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को देखकर उन्हें माता, पुत्री और बहन के समान मानना और स्त्रीकथा से निवृत्त होना ब्रह्मचर्य व्रत है। यह ब्रह्मचर्य व्रत तीनों लोकों में पूज्य है।[1]

अपरिग्रह जैनमत का अंतिम और पंचम महाव्रत/अणुव्रत है। भगवान महावीर ने कहा, जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है;[2] सजीव या निर्जीव स्वल्प वस्तु का भी जो परिग्रह रखता है, अथवा दूसरों को उसका अनुज्ञा देता है, वह दुख से मुक्त नहीं होता, जो परिग्रह की बुद्धि का त्याग करता है;[3] वही परिग्रह को त्याग करता है, जिसके पास परिग्रह नहीं, उसी मुनि ने पथ को देखा है;[4] सम्पूर्ण परिग्रह से मुक्त शीतीभूत प्रसन्नचित्त श्रमण जैसा मुक्तिसुख पाता है, वैसा सुख चक्रवर्ती को भी नहीं मिलता;[5] और जैसे हाथी को वश में रखने के लिये अंकुश होता है और नगर की रक्षा के लिये खाई होती है, वैसे ही इन्द्रियनिवारण के लिये परिग्रह का त्याग कहा गया है।

परिग्रह त्याग से इंद्रियां वश में होती है।[6] भगवान महावीर के अनुसार परिग्रह के दो भेद हैं- आभ्यंतर और बाह्य। आभ्यंतर भेद चौदह हैं- मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नंपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ। बाह्य परिग्रह दस हैं- खेत, मकान, धनधान्य, वस्त्र, भाण्ड, दास-दासी, पशु, यान, शय्या और आसन।[7]

---

1. समणसुत्तं, पृ 120-121

मादु सुदाभगिणी विय, दट्ठणित्थित्तियं य पडिरूवं।
इत्थिकहादिणियत्ति तिलोयपुज्जं हवे बंभं ॥

2. वही, पृ 44-45

संगनिमित्तं मारइ, भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं।
सेवइ मेहुण मुच्छं, अप्परिमाणं कुणइ जीवो ॥

3. वही, पृ 44-45

चितमंतम चित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि।
अन्नं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चई॥

4. वही, पृ 44-45

जे ममाइय मतिं जहाति, से जहाति ममाइयं।
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं ॥

5. वही, पृ 46-47

सव्वगंथ विमुक्को, सोईभूओ पसंतचित्तो अ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, न चक्कवट्टी वि तं लहई ॥

6. वही, 46-47

गंथगच्चाओ इंदिय-णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स।
णयरस्स खाइया वि य, इंदियगुत्ती असंगत्तं॥

7. वही, पृ 46-47

मिच्छतवेदरागा, तहेव, हासादिया य छद्दोसां।
चत्तारि तह कसाया, चउदस अब्भंतरा गंथा ॥
बहिरसंगा खेतं, वत्थु धणधन्न कुप्प भांडाणि।
दुपयचउप्पय जाणाणि, केव सयणासणे य तहा ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा, अपरिमित परिग्रह अनन्त तृष्णा का कारण है, वह बहुत दोषयुक्त है तथा नरकगति काम मार्ग है। अत: परिग्रह परिमाणाणुव्रती विशुद्ध चित्त श्रावक को क्षेत्र-मकान, सोना-चाँदी, धनधान्य, द्विपद-चतुष्पद तथा भण्डार (संग्रह) आदि परिग्रह के अंगीकृत परिमाण का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये।[1]

महावीर ने श्रमण के अपरिग्रह महाव्रत के संदर्भ में आदेश दिया, निरपेक्ष भावनापूर्ण चारित्र का भार वहन करने वाले साधु का बाह्यामंतर सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना पांचवा महाव्रत, त्याग नामक महाव्रत है।[2] भगवान महावीर ने परिग्रह को परिग्रह नहीं, मूर्च्छा कहा।[3] महावीर ने कहा, साधु लेखमात्र भी संग्रह न करें, पक्षी की तरह संग्रह से निरपेक्ष रहते हुए केवल संयमोपकरण के साथ विचरण करें;[4] संस्तारक शय्या, आसन और आहार का अतिलाभ होने पर भी जो अल्प इच्छा रखते हुए अल्प से अपने को संतुष्ट रखता है, अधिक ग्रहण नहीं करता, वह संतोष से ही प्रधान रूप से अनुरक्त रहने वाला साधु पूज्य है।[5]

अत: जैनमत में त्रिरत्न व्यक्ति के मोक्ष की प्राप्ति के वैयक्तिक मूल्य है और इन वैयक्तिक मूल्यों के द्वारा वह श्रमण पंच महाव्रतों और श्रावक पांच अणुव्रतों की सहायता से जीवनरूपी वैतरणी को पार कर सकता है। पांच महाव्रत/अणुव्रतों के स्तम्भों पर ही जैनमत का सांस्कृतिक भवन- एक नये समाज रचना और नयी संस्कृति की रचना का दायित्व है। रोमांरोलां ने स्पष्ट कहा कि जिन ऋषियों ने हिंसा के मध्य अहिंसा के नियम की संस्थापना की वे न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली और वैलिंगटन से बड़े योद्धा थे।[6] जैनमत में मूल्यों की स्थापना है, व्यावहारिक

---

1. समणसुत्तं, पृ 102-103
   विरया परिग्गहाओ, अपरिमिआओ अणंततण्हाओ।
   बहुदोससंकुलाओ, नरयगइगमणपंथाओ ॥
   खित्ताई हिरण्णाई धणाइ दुपवाइ- कुवियगस्स तहा।
   सम्मं विसुद्धचित्तो, न पमाण इक्कमं कुज्जा ॥
2. वही, पृ 120-121
   सव्वेसिं गंथाणं, तागो णिरवेक्खभावणा पुव्वं।
   पंचभवदमिदि भणिदं, चारित्त वहंतस्स ॥
3. वही, पृ 120-121
   न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा।
   मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ थुतं महेसिणा ॥
4. समणसुत्तं, पृ 122-123
   सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेव मायाए संजए।
   पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ॥
5. वही, पृ 122-123
   संथारसेज्जासणभत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाये वि संते।
   एवम्मपाणाभितोसएज्जा, संतोसपाहन्नरए सुज्जो ॥
6. T.G. Kalghatgi, Study of Jainism, Page 191
   The Rsis who discovered the law of non-violence in the midst of violence were greater genious than Newton, greater warriors than Wellington.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूल्य, आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना में सहायक है।[1] यह एक ऐसे समाज और संस्कृति की रचना का सपना है, जहाँ मूल्यों का अखण्ड साम्राज्य हो, जहाँ चारित्रिक श्रेष्ठता शीर्ष पर हो। जैनमत में सम्यग्चारित्र पूर्णता प्राप्त करने का पथ है।[2] जैनमत के अनुसार व्यक्ति के जीवन में सम्यक्त्व होना चाहिये। मैथ्यु आर्नल्ड ने तो नैतिकता को तो तीन चौथाई जीवन कहा, वस्तुत: यह सम्पूर्ण जीवन है।[3] जैनमत ने श्रावकधर्म का प्रतिपादन करते हुए आध्यात्मिक के साथ धर्मनिरपेक्षता को भी स्थान दे दिया, धर्मनिरपेक्षता की उपेक्षा नहीं की। इसे पूर्णता के लिये माध्यम माना।[4]

इस प्रकार जैनमत ने मूल्यपरक नैतिकता पर आधारित एक नयी समाज रचना और एक नयी संस्कृति व्यवस्था का सपना देखा, जो पांच सांस्कृतिक प्रतिमानों- अहिंसामूल प्रतिमान, सत्यमूलक प्रतिमान, अचौर्यमूलक प्रतिमान, ब्रह्मचर्य मूलक प्रतिमान और अपरिग्रह मूलक प्रतिमान पर आधारित है।

ओसवंश : जैनमत की एक सांस्कृतिक प्रयोगशाला
(Osvansh is cultural laboratory of Jainism)

जैनाचार्यों ने अपने लम्बे इतिहास में भगवान ऋषभ से लेकर आज तक, प्रवर्तनकाल से लेकर प्रवर्द्धनकाल तक, प्रवर्द्धनकाल से विकास काल तक, विकासकाल से लेकर आज प्रसारकाल तक व्यक्ति के रूपान्तरण के द्वारा आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के लिये सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के दायित्व को वहन किया।

जैनमत एक गैर साम्प्रदायिक चित्तवाला और जातिविहीन मत है, क्योंकि जैनमत के अनुसार जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जन्म से कोई क्षत्रिय नहीं होता, जन्म से कोई वैश्य नहीं होता और जन्म से ही कोई शूद्र नहीं होता। जीव कर्म से ही ब्राह्मण, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

जैनाचार्यों ने सांस्कृतिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में पिछले 2500 वर्षों से अधिक समय तक निरन्तर व्यक्ति/व्यक्तियों के रूपान्तरण के द्वारा नयी समाज रचना/नयी सांस्कृतिक व्यवस्था में संलग्न रहे और इसी संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जैनमत ने ओसवंश को

---

1. T.G. Kalghatgi, Study of Jainism, Page 192
   It is not the entire negation of empirical values, but only an assertion to the superiority of the spiritual, empirical values are a means to the realizrtion of supreme values.
2. वही, पृ 193
   Samyak Carita (moral life) is important as the path way of perfection.
3. वही, पृ 192
   Mathew Arnold said, it is the three fourth of life. In fact it is the whole of life.
4. Study of Jainism.
   In the Jain conception of moral life (of Sravaka) we find, there is the harmonious blending of the secular & spiritual. The secular has not been neglected. It is a stepping stone for the spiritual perfection.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सांस्कृतिक परिवर्तन के लिये जैनमत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला बनाया।

इस सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अनेक हिन्दूमतावलम्बी और शैव मतावलम्बी जैनाचार्यों के सम्पर्क में आए, उनमें अधिकता क्षत्रियों और राजपूतकाल में राजपूतों की रही। सांस्कृतिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में जैनाचार्यों ने क्षत्रियों और राजपूतों का केवल वैयक्तिक रूपान्तरण ही नहीं, सांस्कृतिक रूपान्तरण किया।

क्षत्रिय और राजपूत : सांस्कृतिक संदर्भ

इस देश के इतिहास में क्षत्रियों की गौरवपूर्ण परम्परा मिलती है। क्षत्रियों ने सदैव अपने बाहुबल से आर्य जाति की रक्षा के दायित्व का निर्वहन किया। पौराणिक साहित्य और भारतीय इतिहास क्षत्रियों की वीरता से आद्यन्तर भरे पड़े हैं।

क्षत्रियों की संस्कृति-गुण कर्म और स्वभाव आदि का वेदों में वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार क्षत्रिय नियमपालक, यज्ञ सम्पादक, महा तेजस्वी, यज्ञों के सेवक, प्रतिदिन स्वयं यज्ञ में हवन करने वाले, सत्य सेवक, द्रोहहित, युद्ध में शत्रुसंहारक वीर पुरुष माने गये हैं।[1]

ये क्षत्रिय नियमपालन करते हुए सत्य के अनुसार चलते हुए पहले क्षात्र तेज प्राप्त करते हैं और फिर उत्तमकर्म करते हुए साम्राज्य के लिये यत्न करते हैं।

अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है कि हे इन्द्र! इन क्षत्रियों में वृद्धि कर, इनकी भुजाओं को बलिष्ठ बना। इनके शत्रुओं को बलहीन कर दे, जिससे ये शत्रु नष्ट कर सकें।[2]

मनुस्मृति के अनुसार न्याय से प्रजा की रक्षा करना, प्रजा का पालन करना, विद्या, धर्म और सुपात्रों की सेवा में धन व्यय करना, अग्निहोत्री यज्ञ करना, शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना, जितेन्द्रीय रहकर शरीर और आत्मा को बलसम बनाना क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म है।[3]

श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता और युद्ध न भागने का स्वभाव, दान और ईश्वर भक्ति- ये भाव क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण और कर्म है।[4]

यही जाति कालांतर में राजपूत काल में राजपूत कहलाई। क्षत्रियों के संस्कार इनको वंशानुक्रम में मिले, किन्तु समय से उनकी अस्मिता में अन्तर आया।

---

1. ऋग्वेद 10-66-8

धृत व्रत, यज्ञ निष्कृतो वृह दिना अध्व राणर्मायार्श्रयः।
अग्नि होता कृत सायों अदु होसो असृजनु वृत्र तूये।

2. अथर्ववेद 4-4

इममिन्द्र वर्धम क्षत्रियेम इमें विशामेक वृष कृणुत्वम।
निरामित्रा नक्ष्णुआव सर्वास्तान रध्यारम्अहभुत्तरेशु॥

3. मनुस्मृति, 45

4. श्रीमद्भागवत गीता 4/43

शौर्य तेजो धृति रक्ष्यिं युद्धे चाप्यापलायनम्।
दानभीश्वर भावस्य क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राजपूत संस्कृति

राजपूत संस्कृति का बीजवपन क्षत्रियों ने कर दिया था। अपने भीतर विश्वामित्र जैसे मुनि, हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी, रघु जैसे पराक्रमी, जनक जैसे राजर्षि, राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम, कृष्ण जैसे कर्मयोगी, कर्ण जैसे दानी, अशोक जैसे प्रजावत्सल, विक्रमादित्य जैसे न्यायपालक, वीर प्रताप जैसे देशभक्त और दुर्गादास जैसे स्वामीभक्त को अपनी विरासत में छिपाए हुए हैं। राजपूत जन्मघूंटी के साथ वीरता, देशभक्ति और त्याग का पाठ सीखता है।

राजपूत माता पालने में ही पुत्र को मरने की शिक्षा देती है,[1] राजपूत वीर युद्ध भूमि में कटकर मर जाता है, किन्तु हारकर नहीं लौटता, वह युद्धभूमि के कण कण को रक्तरंजित कर देता है, किन्तु माता के दूध को नहीं लजाता। राजपूत नारी वीरांगना है, जो सतीत्व रक्षा के लिये जौहर की अग्नि में जलकर भस्म हो जाता है।

राजपूत सफल मानव, सच्चे सेनानी और कुशल प्रशासक माने गये हैं। क्षत्रिय और राजपूत शासक कमल के समान निर्लेप, सूर्य के समान तेजस्वी, चंद्र के समान शीतल और पृथ्वी के समान सहनशील है।

कर्नल टाड के अनुसार, इस वीर जाति का लगातार बहुत सी पीढ़ियों तक युद्ध करते रहना, अपने पूर्वजों के धर्म की रक्षा के लिये अपने प्रिय वस्तु की भी हानि सहना और अपना सर्वस्व देकर भी शौर्यपूर्वक अपने स्वत्वों और जातीय स्वतंत्रता को किसी प्रकार के लोभ लालच में आकर बचाना, ये सब बातें मिल कर एक ऐसा चित्र बनाती है, जिसका ध्यान करते ही हर किसी का शरीर रोमांचित हो जाता है। महान् शूरवीरता, देशभक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, अतिथि सत्कार, निर्बल की रक्षा आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों से यह जाति युक्त है। बर्नियर के अनुसार इन जैसी वीरता के उदाहरण संसार की किसी भी अन्य जाति में नहीं पाये जाते। मि. टेवलीय ह्वीलर के अनुसार राजपूत जाति भारत में सबसे कुलीन और स्वाभिमानी है। संसार में और कोई ऐसी जाति शायद ही हो, जिसकी उत्पत्ति इतनी पुरानी और शुद्ध हो। वे क्षत्रिय जाति के वंशज हैं। ये वीर लोग दीन, अनाथों और स्त्रियों के रक्षक होते हैं। कर्नल वाल्टर के अनुसार, राजपूतों को अपने पूर्वजों के महत्वशाली इतिहास का गर्व हो सकता है, क्योंकि संसार के किसी भी देश के इतिहास में ऐसी वीरता और अभिमान के योग्य चरित्र नहीं मिलते, जैसे इन वीरों के कार्यों में पाए जाते हैं, जो कि इन्होंने अपने देश, उसकी प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता के लिये किये हैं। अबुल फजल के अनुसार, विपत्तिकाल में राजपूतों का असली चरित्र जाज्ज्वल्यमान होता है।[2]

राजपूत वीरता और शौर्य के ज्वलंत प्रतिमान है, राष्ट्र की एकता और अखण्डता के कर्णधार है, जातिगत स्वाभिमान के पुरोधा है और त्याग और बलिदान के उज्ज्वल पृष्ठ हैं।

धीरे धीरे राजपूत जाति की कहानी वीरता से विलासता की कहानी है। राजपूतों की

---

1. सूर्यमल मिश्रण, वीर सतसई

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय,
पूत सिखावे पालणे, मरण बढ़ाई माय।

2. राजपूत वंशावली, पृ 31-32

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वीरता कहीं प्रतिशोध की आग में भड़की और साम्राज्य लिप्सा ने न जाने कितना रक्त बहाया। युद्ध की बलिवेदी पर न जाने कितनी नरबलि दी, रक्तरंजित तलवार से न जाने कितनों का रक्त बहाया, रणचण्डी की हुंकार ने न जाने कितनों का दिल दहलाया। राजपूत के जीवन की कहानी युद्ध से प्रारम्भ होती है और युद्ध में ही समाप्त होती है। इस देश के रक्तरंजित इतिहास के पृष्ठ राजपूतों के रक्त से आप्लावित है। राजपूत युद्ध नीति में निष्णात है किन्तु युद्ध में भी नीति का पालन करते हैं, किन्तु समय के साथ इनका स्खलन भी हुआ है। दुर्गों की रक्षा इनका धर्म है और दुर्गों की रक्षा के लिये न जाने कितनी व्यूह रचना करते हैं।

राजपूतों के जीवन में कभी युद्ध है और कभी विवाह, विवाह मण्डप में रणभेरी सुनकर युद्ध के लिये कूच कर जाते हैं और युद्ध से लौटकर पुनः विवाह। 'महाभारत काल के बाद राजपूतों में बहुविवाह का प्रचलन हो गया था। मध्यकाल तक आते आते यह प्रथा अत्यधिक जोर पकड़ती जाती है, जबकि एक राजा के यहाँ दस-बारह रानियां हुआ करती थी।'[1] सभी राजपूत विलासी और कामुक नहीं थे, किन्तु यह सत्य है कि शनैः शनैः राजपूतों में विलासता और कामुकता बढ़ती गई। यह भी सत्य है कि अनेकबार भोगविलासों की तृप्ति के लिये नहीं बल्कि देश रक्षा की भावना से ही राजपूतों में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी।

यह निश्चित है कि राजपूतों की संस्कृति में हिंसा थी, अहिंसा नहीं; सत्यनिष्ठ थे किन्तु कालांतर में साम्राज्य लिप्सा और राज्य विस्तार के लिये मिथ्या का भी सहारा लिया; युद्ध में शत्रुओं के धन और सम्पत्ति को लूटना उनका धर्म था; बहुपत्नी प्रथा और विलासता के कारण ब्रह्मचर्य से कोसों दूर थे और पूर्णरूपेण परिग्रही थे- साम्राज्य लिप्सु और राज्यलिप्सु।

राजपूत संस्कृति से ओसवंशीय संस्कृति

जैनाचार्यों ने मुख्यरूप से क्षत्रियों और राजपूतों को जैन धर्मावलम्बी बनाकर जैन जातियों के अन्तर्गत उन्हें ओसवंशी भी बनाया। यह बलात धर्मांतरण नहीं था, यह व्यक्तियों का आभ्यंतर रूप से रूपान्तरण था और इस वैयक्तिक रूपान्तरण के द्वारा सांस्कृतिक रूपान्तरण हुआ।

यह कहा जा सकता है कि श्रमण संस्कृति ने क्षत्रिय और राजपूत संस्कृति में पले एक वर्ग को जैन धर्मावलम्बी बनाकर एक नयी जाति के साथ एक नयी संस्कृति की रचना की।

2500 वर्षों तक जैनाचार्यों ने इस जाति को और अन्य जातियों को भी अनवरत उपदेश दिया कि हिंसा को छोड़कर अहिंसा को अपनाओ, असत्य को छोड़कर सत्य को अपनाओ, चौर्यकर्म को छोड़कर अचौर्य को अपनाओ, परिग्रह को छोड़कर अपरिग्रह को अपनाओ और विलासता और व्याभिचार को छोड़कर ब्रह्मचर्य को अपनाओ।

क्षत्रिय और राजपूत शत्रुओं को पराजित करने के लिये युद्ध करते थे, इसलिये महावीर की भाषा में ही कहा कि जो दुर्जेय संग्राम में हजार हजार योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है, उसकी विजय ही परमविजय है, बाहरी युद्धों से क्या ? स्वयं अपने

1. राजपूत वंशावली, पृ 44

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से युद्ध करो। अपने से अपने को ही जीतकर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है, स्वयं पर ही विजय प्राप्त करनी चाहिये। अपने पर विजय प्राप्त करना ही कठिन है। आत्म विजेता ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है और उचित यही है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपने पर ही विजय प्राप्त करूँ। बन्धन और वध के द्वारा दूसरों से मैं दमित और प्रताड़ित किया जाऊँ, यह उचित नहीं है।[1]

इन युद्धवीरों का जीवन क्रोध और प्रतिशोध का प्रतीक था। महावीर के ही शब्दों में इन्होंने अनवरत उपदेश दिया, क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान विजय को नष्ट करता है, माया मैत्री को नष्ट करती है, लोभ सब कुछ नष्ट करता है, क्षमा से क्रोध का हनन करे, नम्रता से मान को जीते, ऋजुता से माया को और संतोष से लोभ को जीतें।[2]

जैनाचार्यों ने उपदेश दिया कि किसी प्राणी की हिंसा न करें, न कर्म से, मन से, न वचन से। सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं। प्राणीवध पाप है। जीव का वध क्यों करते हो, जीव का वध अपना वध है।

इन जैनाचार्यों ने उपदेश दिया कि तुम युद्ध और हिंसा के लिये जागते हो, किन्तु अब परमात्मा को प्राप्त करने के लिये जागो, सतत जागृत रहो, जो जागता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है, सोता है वह धन्य नहीं है, धन्य वह है जो जागता है। जैनाचार्यों ने सोई हुए क्षत्रियों और राजपूतों को जगाया और सुरापान की जगह आत्मवाद का अमृत पिलाया। जैनाचार्यों के मंत्रों से सोई हुई जाति अंगड़ाई लेकर जाग गई।

जैनाचार्यों ने शिक्षा दी, अभिमान छोड़ो, क्रोध छोड़ो, प्रमाद छोड़ो, रोग और आलस्य छोड़ो और मुक्ति के पथ पर प्रशस्त हो जाओ; तुम सम्यगदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य अपनाओ। चक्रवर्ती सम्राटों की विपुल राजलक्ष्मी सम्यक्त्व के समक्ष तुच्छ है।

इन जैनाचार्यों ने कहा कि तुम युद्धवीर हो, किन्तु भयभीत हो, क्योंकि तुम शत्रु से डरते हो। तुम सातों भय- इस लोक का भय, परलोक का भय, अरक्षा का भय, अगुप्ति का भय, मृत्यु का भय, वेदना भय और अकस्मात् भय छोड़कर अभय के प्रतिमान बनो।

इन जैनाचार्यों ने क्षत्रियों और राजपुत्रों से कहा कि तुम सदैव दुर्गरक्षा में प्रवृत्त रहते हो। महावीर के शब्दों में ही कहा, "श्रद्धा को नगर, तप और संवर को अर्गला, क्षमा को (बुर्ज, खाई और शतघ्नीस्वरूप) त्रिगुप्ति (मन वचन काय) से सुरक्षित तथा अजेय सुदृढ़ प्रकार बनाकर बाणों से युक्त धनुष से कर्म कवच को भेदकर आंतरिक संग्राम के विजेता बनो, जैसे जैनश्रमण।[3]

जैनाचार्यों ने उस क्षत्रिय और राजपूत जाति का कायाकल्प कर दिया जो वीरता के माध्यम से अर्थ और काम से जुड़ी थी, उसे महावीर से जोड़कर धर्म और मोक्ष की ओर उन्मुख कर दिया।

---

1. समणसुतं, पृ 41
2. समणसुतं, पृ 44
3. समणसुतं, पृ 93

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इन जैनाचार्यों ने क्षत्रिय-राजपूतों को उपदेश दिया कि जीवन का सरस संगीत हिंसा नहीं, अहिंसा है; जीवन को लहलहाने वाली सरिता हिंसा नहीं अहिंसा है; विश्वमैत्री के फल प्रदान करने वाली वाटिका हिंसा नहीं, अहिंसा है; जीवन की विराट शक्ति हिंसा नहीं, अहिंसा है; जीवन का मूलमंत्र हिंसा नहीं, अहिंसा है; जीवन का परमतत्व हिंसा नहीं, अहिंसा है, धर्म का उद्‌गम स्थल हिंसा नहीं, अहिंसा है; और नैतिकता का प्रतिमान हिंसा नहीं, अहिंसा है।

जैनाचार्यों के अनवरत उद्‌बोधन से क्षत्रिय और राजपूत जाति हिंसा के पथ को छोड़कर अहिंसा के पथ की पथिक बनी और फिर कालांतर में धीरे धीरे नयी अस्मिता मिली और उनकी अस्मिता नयी जातियों के रूप में प्रस्फुटित हुई और उनमें एक ओसवंश का भी प्रवर्त्तन, प्रवर्द्धन, विकास और प्रसार हुआ। यह क्षत्रियों और राजपूतों का पुरानी संस्कृति की केंचुल त्यागकर नयी जीवन पद्धति और नयी जीवन शैली को अपनाकर नयी संस्कृति का वरण था।

जैनमत ओसवंश : सांस्कृतिक संदर्भ
(Osvansh is not only replica but idealised epitome of Jainism)

जैनाचार्य एक नयी जाति के पुरोधा बने ओसवंश केवल जैनमत के सांस्कृतिक पक्ष का प्रतिरूप ही नहीं, किन्तु जैनमत के पक्ष का सार और आदर्शात्मक प्रतीकात्मक रूप है। जैनमत ने इस देश में श्रमण संस्कृति को जन्म दिया। ब्राह्मण संस्कृति से भिन्न श्रमण संस्कृति कर्मवाद पर आधारित है, अपरिग्रहवाद पर आधारित है और स्यादवाद या अनेकांतवाद पर आधारित है।

ओसवंश का उद्‌गम अन्य जातियों और मुख्यरूप से क्षत्रियों और राजपूतों से हुआ, इसलिये वंशानुक्रम की दृष्टि से हिन्दूमत, शैव और शाक्तमत के अवशिष्ट चिह्न इसमें कुछ सीमा तक रहे।

ओसवंशीय सभ्यता और संस्कृति के तार क्षत्रियों और राजपूतों से जुड़े रहे, किन्तु जैनाचार्यों के निरन्तर प्रतिबोध से उनके आभ्यंतर में परिवर्तन आया और उन्होंने जैनमत द्वारा प्रतिपादित दर्शन से उद्‌भूत एक नयी आचार पद्धति के अनुरूप एक नयी जीवन पद्धति और नयी जीवनशैली का अनुगमन किया। श्रमणों ने तो अक्षरश: जैनमत द्वारा प्रतिपादित जीवन पद्धति/ जीवनशैली को अपनाया; किन्तु भगवान महावीर ने श्रावकों के लिए महाव्रतों के स्थान पर अणुव्रतों के अनुसार ही अनुशंसा की, इसलिये ओसवंश की जीवनपद्धति और जीवनशैली में हम जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का सार और निचोड़ के साथ प्रतीकात्मक रूप देख सकते हैं। बदलते संदर्भों में और बदलती परिस्थितियों में ओसवंश ने समय समय पर अपनी जीवन पद्धति में संशोधन किये, इसलिये ओसवंश की संस्कृति में जैनमत का प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप और प्रतिच्छाया न होकर, जैनमत के आदर्शात्मक स्वरूप का सार, निचोड़ और प्रतीकात्मक रूप हैं। इस संशोधित रूप में गैर साम्प्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष स्वरूप देखा जा सकता है।

ओसवंश : जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का संरक्षण, सम्प्रेषण और सृजन

ओसवंश ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का संरक्षण किया। जैनमत की सांस्कृतिक जीवनधारा और सांस्कृतिक परम्परा का संरक्षण राजस्थान के वैभव सम्पन्न सांस्कृतिक इतिहास

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का स्वर्णिम पृष्ठ ही नहीं, किन्तु भारतीय संस्कृति के इन्द्रधनुषी स्वरूप की भी एक मनोहर रंगाभा है, जिसकी दीप्ति इस सुदीर्घ काल खण्ड के झंझावातों में कभी धूमिल नहीं हुई।'[1] राजस्थान में पश्चिम क्षेत्र श्वेताम्बर सम्प्रदाय का गढ़ रहा और इसी क्षेत्र में ओसवंश ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण में योग दिया। अर्बुदमण्डल जैन सम्प्रदाय का सबसे बड़ा केन्द्र रहा। राजस्थान में जैनधर्म के महत्वपूर्ण स्तम्भ जैन संस्थाएं हैं, जिन्होंने सुदृढ़ नींव की भांति आधार प्रदान कर जैन संस्कृति की गतिशीलता को संवर्धित किया है।[2]

जैन संघ के संगठन में श्रमण और श्रमणियों का महत्वपूर्ण योग रहा है। वीरागी, निस्पृह, निस्वार्थ, शास्त्रोक्त और मर्यादित जीवन जीने के कारण इनका जीवन तीर्थ से कम नहीं है। इन श्रमण और श्रमणियों ने निरन्तर उद्‌बोधन ने समाज को जागृत किया है। इन्होंने श्रावक समाज के नैतिक और आध्यात्मिक पूर्णता के लिये सात्विक जीवन की प्रेरणा दी है। इन्होंने समाज से सूक्ष्म लिया है और स्थूल ही दिया है- कम लिया और अधिक दिया है। इन्होंने लोकभाषा में, लोकजीवन को, लोककथाओं के माध्यम से आध्यात्मिकता की स्रोतस्विनी प्रवाहित की है।

जैन साहित्य रचना

इन श्रमण और श्रमणियों ने अनवरत साहित्य का सृजन किया है। जैनमत से जुड़े साहित्य रचना में श्रमण और श्रमणियों के साथ श्रावक-श्राविकाएं भी संलग्न रही है।

जैन जातियां (ओसवंश) से सम्बद्ध श्रमण-श्रमणियों और श्रावक श्राविकाओं ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण में साहित्य रचना के द्वारा अभूतपूर्व योग दिया है।

1. उमास्वाती- तत्वार्धसूत्र (जैनधर्म की गीता)
2. विमलसूरि- पउमचरिअं (जैन रामायण)
3. आचार्य पादलिप्त- तरंगावती (प्राकृत भाषा की सुन्दर कथा)
4. सिद्धसेन दिवाकर- न्यायावतार (जैन साहित्य का पहला तर्क एवं पद्य ग्रंथ)
5. उद्योतनसूरि (नवीं शताब्दी), कुवलयमाला (कथाग्रंथ)
6. शिवशर्मासूरि (वि.सं. 500) कर्म प्रकृत, कर्मग्रंथ (101 गाथाएं)
7. चन्दर्षि महत्तर (पंचसंग्रह कर्मविषयक ग्रंथ)
8. सिद्धसेन गणि- 'तत्वार्थसूत्र' की टीका
9. धनेश्वरसूरि- कल्पसूत्र (वि.सं. 510/523)
10. महाकवि मानतुंग- भक्तामर स्तोत्र (प्रसादमयी और भावप्रधान भाषा में)
11. जिनभद्र गणी क्षमाक्षमण (वि.सं. 645)
    1. विशेषावश्यक भाष्य

---

1. डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 461
2. वही, पृ 464

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

2. वृहसंग्रहणी (400-500) गाथाएं

12. जिनदास महत्तर (वि.सं. 733)
    1. निशीर्थ चूणिका
    2. नंदीसूत्र- चूर्णी
13. हरिभद्रसूरि (कुल 1444 ग्रंथ)
    1. संबोधिप्रकरण
    2. समराइच्च कहा
14. शीलांकाचार्य (वि.सं. 925)
    1. 'आचरांगसूत्र' की टीका
    2. 'सूत्रकृतांग' की टीका
15. सिद्धर्षि सूरि- (वि.सं. 962) उपामिति भव प्रपंच गाथा (विशालरूपक ग्रंथ)
16. जम्बूनाग स्वामी (वि.सं. 1005) मणिपति चरित्र
17. अभयदेवसूरि- नवांगों पर टीकाएं
18. चन्द्रप्रभ महत्तर (वि. 1157-1137) - विजयचंद्रचरित (प्राकृत भाषा में)
19. वर्द्धमानाचार्य
    1. मनोरमाचरित (प्राकृत)
    2. आदिनाथ चरित (प्राकृत)
    3. धर्मरत्नकरण वृतिः
20. जिनवल्लभसूरि
    1. सूक्ष्मार्थ सिद्धान्त विचार सार
    2. आगमिक वस्तु विचार सार
    3. पिण्ड विशुद्धि प्रकरण
    4. पौषध विधि प्रकरण
    5. प्रश्न षष्टिशतक
    6. श्रृंगार शतक
21. जिनदत्तसूरि
    1. गणधर सार्थशतक
    2. संदेह दोहावली
    3. गणधर सप्तति
22. देवभद्रसूरि
    1. आराधनाशास्त्र (प्राकृत)
    2. वीर चरित (प्राकृत)
    3. कथारत्नकोश (प्राकृत)
23. वीरगणी (चंद्रगच्छीय 1169) पिण्डनियुक्ति पर टीका

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

24. देवचंद सूरि
    1. शांतिनाथ चरित (प्राकृत- गद्य पद्यमय)
25. देवसूरि- जीवानुशासन
26. मुनिचंद्रसूरि (वृहदगच्छ), अनेक वृतियां और चूर्णिया)
27. मलधारी हेमचंद्रसूरि
    1. धर्मोपदेशमाला (वि.सं. 1195)
    2. मुनि सुव्रतचरित (वि.सं. 1993)
28. श्रीचन्द्रसूरि- सनतकुमार चरित (सं 1214- प्राकृत में)
29. मुनिरत्नसूरि (चन्द्रगच्छीय) अभयस्वामी चरित (आगामी तीर्थंकर)
30. सोमप्रभसूरि (तपागच्छ)
    1. सुमतिनाथ चरित
    2. सूक्तिमुक्तावली
    3. शतार्थकाव्य
    4. कुमारपाल प्रतिबोध

राजस्थान में श्रमणों और श्रावकों ने राजस्थान की सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। राजस्थान के साहित्यिक आन्दोलन में ओसवंशियों का महत्वपूर्ण योग रहा है। ओसवंशियों के द्वारा सृजित साहित्य ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण, सम्प्रेषण और सृजन में योग दिया है। 13वीं शताब्दी तक राजस्थान के जैन साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है, तेरहवीं शताब्दी तक आगम, दर्शन, साहित्य, आगमिक व्याख्याएं और काव्यग्रंथ आदि मूलरूप में लिखे गये। विभिन्न कथानकों एवं चरितनायकों पर मौलिक साहित्य की रचना हुई। तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् व्याख्यात्मक साहित्य की सर्जना की गई, उनमें भाष्य, टीका, बालावबोध, वृतियां, चूर्णियां, वचनिकाएं आदि लिखी गई। जैन साहित्यकारों- ओसवंशीय साहित्यकारों का उद्देश्य जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का संरक्षण और सम्प्रेषण था, पण्डित्य प्रदर्शन नहीं।[1]

जैन साहित्य भ्रमणशील मुनियों द्वारा रचा गया। राजस्थान प्राकृत साहित्य का प्रारम्भ चौथी-पाँचवी शताब्दी में हो गया। प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश, संस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी में विपुल साहित्य रचा गया।

जैन साहित्यकारों- ओसवंशीय साहित्यकारों के लिए साहित्य धार्मिक आचार की पवित्रता का प्रतिमान था। इन साहित्यकारों ने अधिकांश साहित्य लोकभाषा में रचा। उत्तर मध्यकाल में तो राजस्थानी और हिन्दी ने प्राकृत और अपभ्रंश का स्थान ग्रहण कर लिया। 17वीं 18वीं शताब्दी में विपुल मात्रा में हिन्दी में गद्य पद्य साहित्य रचा गया।

राजस्थानी जैन साहित्य की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यहाँ के जैनशास्त्र भण्डारों में लगभग 3 लाख हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ, ताड़पत्रों एवं कागजों

1. डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 330

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर निबद्ध साहित्य सुरक्षित है।[1] इस संदर्भ में अनुसंधान की आवश्यकता है कि इनमें कितनों के रचयिता ओसवंशी है। श्वेताम्बर जैन परम्परा का अधिकांश साहित्य ओसवंशी साहित्यकारों द्वारा सृजित है।

चरित काव्य में जैन साहित्य ने प्रमुख काव्यरूपों- रास, चौपाई, ढाल, पवाड़ा संधि, चर्चरी, प्रबन्ध, चरित, आख्यानक और कथा आदि है।[2] उत्सव कव्यरूपों में फागु, धमाल, बारहमासा, विवाहलो, धवल, मंगल आदि हैं। गद्यरूपों में टब्बा और बालावबोध मुख्य है।

जैन साहित्य ने आध्यात्मिक चेतना की अभिव्यक्ति की, लोकजीवन की समकालीन घटनाओं को मुख्य अभिव्यक्ति दी और इस प्रकार जैन साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, किन्तु जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का प्रतिबिम्ब ही नहीं किन्तु जैनमत के आदर्शात्मक रूपों का सार और निचोड़ है। राजस्थानी और उत्कृष्ट जीवन आदर्शों को लोकभाषा में लोक कल्याण हेतु अभिव्यक्त किया। यह समस्त साहित्य लोक मंगलकारी है।

प्रमुख जैन प्राकृत साहित्य

राजस्थान के जैन साहित्यकारों में प्राकृत के प्रमुख साहित्यकार हरिभद्र सूरि, उद्योतनसूरि, जयसिंह सूरि, पद्मनंदि, दुर्गदेव, बुद्धिसागर सूरि, जिनेश्वरसूरि, धनेश्वर सूरि, जिनचंद्र सूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, हेमचंद्र सिंह कवि, जिनचंद्र सूरि, नेमिचंद भण्डारी, यशश्चन्द्र, जिनप्रभसूरि, जिनकुशलसूरि, गुण समृद्धि महत्तरा, जिनहर्षगणी, हीरकलाश, भट्टारक रामचंद्र और समय सुन्दर आदि मुख्य है।

प्रमुख जैन अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश के साहित्यकारों में हरिषेण (धर्मपरिक्खा) धनपाल प्रथम (महावीर जिनालम सम्बन्धी रचना), धनपाल द्वितीय (भविसयत्तकहा) घाटिल (पडमसिरी चरिय), लक्खण (जिनदत्त चरिउ), विनयचंद्र (नेमिनाथ चतुष्पादिका, उपदेशमाला कल्याण), जिनदत्तसूरि (चर्चरी, उपदेशरसायनरास, काल स्वरूप कुलकाम), जिनप्रभसूरि (ज्ञानप्रकाश) अमरकीर्ति (चक्कम्मोवरास, पुरन्दरविधान कथा), श्रीचंद्र (कथाकोश, रत्नकरणश्रावकाचार), यशकीर्ति (हरिवंशपुराण, पाण्डवपुराण) विबुध श्रीधर (सुकुमाल चरिउ और भविसयत्त चरिउ, पासनाहचरिउ) आदि मुख्य हैं। डा. देवेन्द्रकुमार ने राजस्थान के ग्रंथ भण्डारों में उपलब्ध 968 प्रतियों का विशेष विवरण दिया है।[3]

प्रमुख जैन संस्कृत साहित्य

जैन संस्कृत साहित्य में लेखक उमास्वाति के 'तत्वार्थसूत्र' से प्रारम्भ होता है। जैन साहित्यकारों ने महाकाव्य, पुराण, चरित, कथा, नाटक आदि लिखे। पौराणिक, ऐतिहासिक और शास्त्रीय महाकाव्य रचे गये, उनमें धार्मिक भावना की प्रधानता है। आचार्य रविषेण

---

1. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 416
2. वही, पृ 417
3. डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोधप्रवृतियां, पृ 33-17

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(678 ई) में सर्वप्रथम 'पद्मपुराण' लिखा। आचार्य हेमचन्द्र आसग, सकलकीर्ति, जिनदास ब्रह्मजिनदास, शुभचंद्र आदि के पुराण संस्कृत साहित्य के अनुपम ग्रंथ हैं।[1] जिनसेन के 'हरिवंशपुराण' को जैन संस्कृत साहित्य का महाभारत कहा जा सकता है।[2] चरितकाव्यों में अधिकतर तीर्थंकरों की जीवनियां हैं। कथाकाव्यों में महेन्द्रसूरि की 'नर्मदासुन्दरी कथा', नरचन्द्रसूरि की 'कथारत्नसार', राजशेखर की 'कथा संग्रह', सोमचन्द्र गणी की 'कथा महोदय' सोमकीर्ति की 'सप्तव्यसन कथा' गुणसुन्दर सूरि की 'सम्यक्त्व कौमुदी' मुख्य है। नाटकों में रामचन्द्रगुणचन्द्र का 'रघुविलास, नवलविलास', जयसिंह सूरि का 'हमीर मदमर्दन', मेघप्रभाचार्य का 'धर्माभ्युदय' मुख्य है।

प्रमुख राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी जैन साहित्यकारों में शालिभद्रसूरि (भरतेश्वर बाहुबलिरास), आसगु (चन्दनवालारास), सुमतिगणि (नेमिनाथ रास), देल्हड (गयसुकुमालरास), ऋषिवर्धन सूरि (नलदमयन्ती रास), धर्मषुन्दर गणी (सुमितकुमार रास), पार्श्वनाथसूरि (तेजपालरस), कुशललाभ (माधवावल कामकन्दला चडपइ, ढोलामरवणी चउपइ), आसकरण (तिंवरी के बोथरा- दस श्रावकों की ढाल, केशी गौतमचर्चा, साधु गुणमाला, भरतजी री सिद्धि, छोटी साधु वन्दना), सवलदास (सुपुत्र आनन्दराज लूणिया), नेमिचन्द्र (पिता देवीलाल लोढा- नेमवाणी) श्रावक कवि विनयचन्द्र (पिता गोकुलचंद कुम्भट- विनयचन्द्र चौबीस, पूज्य हमीर चरित, आत्मनिन्दा पट्टावली), कवयित्री विद्यागिरि- (सामसुखा गोत्रीय कर्मचन्द की पुत्री- विमल सिद्धि गुरुणी जीतम), भूरसुन्दरी (पिता अखमचंद रांका- भूरसुन्दरी जैन भजनोद्धार, भूरसुन्दरी विवेकविलास और भूरसुन्दरी बोध विनोद, भूरसुन्दरी अध्यात्म बोध, भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश, भूरसुन्दरी विलास) आदि प्रमुख हिन्दी साहित्य हैं।

आधुनिक जैन साहित्य में नैनमल जैन (पवनांजना), मिश्रीमलजी महाराज (पाण्डवयशो रसायन मरुधर केसरी ग्रंथावली), आचार्य श्री हस्तीमलजी (जैन आचार्य चरितावली) गणेशमुनि (वीणा वाणी, सुबह के भूले, गीतों का मधुवन, संगीत रश्मि, गीत गुंजार), आचार्य तुलसी श्री कालू उपदेश वाटिका), मुनि महेन्द्र कुमार कमल, संस्कृति के ढाई हजार स्वर, प्यासे स्वर, मन के मोती, प्रकाश के पथ पर, फूल और अंगारे), मुनि बुधमल (मंथन, आवर्त), मुनि रूपचंद (कला अकला, अर्द्धविराम, खुले आकाश में, गुलदस्ता, इन्द्रधनुष), मुनि चन्दनमल (मंजूषा), साध्वी मंजुला (चेहरा एक, दर्पण हजार), साध्वी संघमित्र (साक्षी है शब्दों की, बूंद बन गई गंगा), साध्वी सुमन (सांसो का अनुवाद, संशय का चौराहा), मरुधर केसरी मिश्रीमलजी (उपदेश बावनी, बुधविलास), केवल मुनि (गीतगुंजार, मेरे गीत, गीतावली, गीत लहरिया, गीत सौरभ), प्रकाश जैन (अन्तर्यात्रा), आचार्य हस्तीमल जी (गजेन्द्र मुक्तावली), मुनि मधुकर (गुंजन) आदि।

उपन्यास में डा. प्रेमकुमार सुमन (चितोरों के महावीर), महावीर कोटिया टीका, आत्मजयी, कुणीक आदि हैं।

1. Dr. K.C. Kasliwal, Jain Granth Bhandars in Rajasthan, Page 138
2. जैन संस्कृति और राजस्थान (सम्पादक डा. नरेन्द्र भानावत) पृ 235

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहानीकारों में गणेशमुनि शास्त्री (प्रेरणा के बिन्दु, जीवन के अमृतकण), आचार्य हस्तीमल जी (धार्मिक कहानियां), देवेन्द्रमुनि (खिलती कलियां मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, फूल और पराग, बोलते चित्र, अमिट रेखाएं, महकते फूल), मुनि महेन्द्रकुमार (जैन कहानियां भाग 1 से 25), श्री मधुकर मुनि (जैन कथामाला- भाग 1-6), श्री भगवती मुनि निर्मल (लो कहानी सुनो, लो कथा कह दूं), मुनि श्री छगमल (कथाकल्पतरु), श्री चन्दन मुनि (अन्तर्ध्वनि), मुनि श्री चन्द्रकमल (पदचिन्ह, रश्मियां), मुनि बुधमल (आंखों ने कहा) आदि।

जैन नाटक नाटकों में डा. नरेन्द्र भानावत (विष से अमृत की ओर) और महेन्द्र जैन (महासती चन्दनबाला) आदि है।

इस प्रकार ओसवंश के साहित्यकारों ने अनवरत जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों को अक्षुण्ण रखने के लिये सदैव चेष्टा की है।

जैनग्रंथ भण्डार

ओसवंश ने जैनग्रंथ भण्डारों के द्वारा जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण में योग दिया है। राजस्थान में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के अनेक विशाल ग्रंथ भण्डार है। दिगम्बर भण्डारों का विवरण डा. कस्तूरचंद कासलीवाल ने 'द जैन ग्रंथ भण्डार्स इन राजस्थान' में दिया है।

राजस्थान के शास्त्र भण्डार ज्ञानविज्ञान के संरक्षण के क्षेत्र में अभूतपूर्व है। विगत 1000 वर्ष के ग्रंथ राजस्थान के ज्ञानभण्डारों में सुरक्षित है। ये शास्त्र भण्डार कहीं व्यक्तियों के संरक्षण में है और कहीं संस्थाओं के। जैन समाज के मंदिरों, उपासरों और श्रावकों के निवासों पर पाण्डुलिपियों का अपूर्व संग्रह है। ग्यारहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के बीच सृजित साहित्य के ये अपूर्व कोष है। 13वीं शताब्दी के पूर्व कागज की उपलब्धि लगभग नगण्य थी। जैसलमेर के ग्रंथभण्डार में प्राचीनतम ग्रंथ 1060 ई का 'ओपनिर्युक्ति वृत्ति' ताड़पत्र पर लिखा हुआ है।

इन शास्त्र भण्डारों में प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी के विविध विधाओं के ग्रंथ उपलब्ध है।

जो साहित्य ज्ञानभण्डारों में उपलब्ध हैं उससे पिछले 1000 वर्षों का प्रामाणिक इतिहास सृजित किया जा सकता है।

इन ग्रंथभण्डारों में जैनकला और जैन चित्रकला की विपुल सामग्री उपलब्ध है।

जोधपुर संभाग के जैन शास्त्र भण्डार

(1) जैसलमेर के ग्रंथ भण्डार

जैसलमेर जैन भण्डारों की ओर सर्वप्रथम ध्यान जर्मन विद्वान वुहलर और हर्मन जेकोबी का गया। जैसलमेर भण्डार को प्रकाश में लाने का श्रेय डा. एस.आर. भण्डारकर ने

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया। इसमें प्राचीनतम ग्रंथ 867 ई का है।

(1) वृहद ज्ञान भण्डार, जैसलमेर

आचार्य जिनभद्रसूरि 1440 ई में सम्भवनाथ मंदिर के तलघर में इसे स्थापित किया। यहाँ ताड़पत्रीय ग्रंथों की संख्या 804 है। यहाँ विमलसूरि के 'पडम चरिउ' (141 ई) परमानंदसूरि के 'हितोपदेशामृत' (1253 ई), देवेन्द्र सूरि के 'शांतिनाथ चरित', यशोदेवसूरि के 'चन्द्रप्रभस्वामी चरित' (1160 ई), धनपाल कृत "तिलक मंजरी' आदि अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियां हैं।

इसके अतिरिक्त खरतरगच्छ का पंचायती भण्डार में 14 ताड़पत्रीय और शेष 1000 हस्तलिखित ग्रंथ है। यहाँ 1505 ई की सचित्र "कल्पसूत्र' की प्रति है। पंचानों शास्त्र भण्डार में 42 ताड़पत्रीय हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है। तपागच्छ ज्ञानभण्डार को 1502 में आनन्दविजयगणी ने व्यवस्थित किया। "बड़ा उपासरा ज्ञान भण्डार' में यति वृद्धिचंद की गुरु परम्परा का संग्रह है। यहाँ 1019 ई का एक ग्रंथ है। यहाँ ज्ञानसागर सूरि की टीका 1429 ई की है। 'लोकगच्छीय ज्ञान भण्डार' का संग्रह डूंगरयति ने किया, यहाँ ताड़पत्रीय ग्रंथ 500 अन्य हस्तलिखित ग्रंथ है। "यारूशाह ज्ञानभण्डार' की स्थापना सत्रहवीं शताब्दी में थाहसशाह भंसाली ने की। यहाँ 1612 ई. और 1827 ई के मध्य की अनेक पाण्डुलिपियाँ है। यहाँ 4 ताड़पत्रीय और अन्य 1000 ग्रंथ है।

इसके अतिरिक्त 'हरिसागर ज्ञान भण्डार, लोहावत' (2100 ग्रंथ और 87 गुटके), 'भट्टारक ज्ञान भण्डार, नागौर' (14000 पाण्डुलिपियां और 1000 गुटके हैं)। यहाँ अधिकतर पाण्डुलिपियां 14वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य की है।

जोधपुर क्षेत्र के ज्ञान भण्डार

राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान (30000 हस्तलिखित ग्रंथ) राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी (15000 हस्तलिखित ग्रंथ), केशरियान मंदिर भण्डार (1000 पाण्डुलिपियां) है। अन्य ज्ञान भण्डारों में जैन ज्ञान रत्नपुस्तकालय, मंगलचंद ज्ञान भण्डार, कानमल नाहटा का स्थानकवासी ज्ञान भण्डार आदि हैं।

फलोदी के ज्ञान भण्डारों में फूलचंद छाबक के पास 500 ग्रंथ, पुष्प श्री ज्ञानभण्डार में 375 ग्रंथ, धर्मशाला के महावीर ज्ञान भण्डार के पास 150 ग्रंथ संग्रहीत है। राजेन्द्र सूरि ज्ञानभण्डार, आहोर में विशाल संग्रह 4 बण्डलों में बंधे हैं। कुचामन सिटी के ज्ञानभण्डार के 3 मंदिरों में छोटे छोटे ज्ञानभण्डार है। धनारी (सिरोही राज) में पूज्य ज्ञानभण्डार पद्मसूरि की निश्रा में संचालित ा। सिरोही का जय विजय ज्ञानभण्डार मुनि जय विजय की निश्रा में संचालित था। कलिन्दी के केवल विजय ज्ञान भण्डार में 2000 दुर्लभग्रंथ है। शिवगंज के पंकुबाई ज्ञान मंदिर में अनेक ग्रंथों की प्राचीन पाण्डुलिपियां है। सिरोही में सोहनलाल पाटनी के निजी संग्रह में 14वीं से 19वीं शताब्दी के 1300 हस्तलिखित ग्रंथ बताए जाते हैं।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बीकानेर सम्भाग के जैनशास्त्र भण्डार

बीकानेर सम्भाग में लगभग एक लाख हस्तलिखित ग्रंथों का भण्डार है जिसमें 60000 अभय जैन ग्रंथालय, 15000 अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और शेष अन्य भण्डारों में है जिनमें मुख्य है- वृहद ज्ञान भण्डार, रांगड़ी का चौक (10000 हस्तलिखित ग्रंथ), पूज्यभण्डार, खरतरगच्छ का बड़ा उपासरा (2500 ग्रंथ और 100 गुटके) श्री जैनलक्ष्मी मोहन भण्डार, रांगड़ी का चौक (2529 ग्रंथ और 200 गुटके), सुमनाजी के उपासरे में क्षमा कल्याण ज्ञान भण्डार (715 ग्रंथ खरतर गच्छीय गुर्वावली नामक दुर्लभग्रंथ उपलब्ध है), बोहरों की सेरी में उपाश्रय ज्ञानभण्डार (300 ग्रंथ) महोपाध्याय रामलाल का संग्रह (507 ग्रंथ), खरतराचार्य शाखा का ग्रंथ भण्डार (1875 ग्रंथ), सुराणा की गुवाड़ में मोहनलाल का संग्रह, यति लच्छीराम का संग्रह, कोचटों के उपाश्रय स्थित ग्रंथ भण्डार (800 ग्रंथ) श्री जयकरण संग्रह (250 ग्रंथ) सेठिया लाइब्रेरी (1500 हस्तलिखित पाण्डुलिपियां), नाहटों की गुवाड़ में गोविन्द पुस्तकालय (6000 हस्तलिखित पाण्डु लिपियां) मोतीचंद खजांची का संग्रह (6000 हस्तलिखित ग्रंथ) बोथरों की गुवाड़ में जेठीबाई का ज्ञान भण्डार (500 हस्तलिखित ग्रंथ) है।

इसके अतिरिक्त गंगाशहर का शास्त्र भण्डार (300 हस्तलिखित ग्रंथ, श्वेताम्बर तेरापंथी सभा), चुरु के पुस्तकालयों में सुराणा लाइब्रेरी (2500 ग्रंथ), खरतरगच्छीय यति वरजी का उपासरा (3785 ग्रंथ) सरदार शहर में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा का ज्ञानभण्डार (1471 हस्तलिखित ग्रंथ, 1477 ई की कल्पसूत्र की स्वर्णिम स्याही में लिखी प्रति), श्रीचंद गणेशदास गधैया की हवेली का संग्रह, उपकेशगच्छ (केवलागच्छ) के पूज्य और यति प्रेमसुन्दर के संग्रह, भीनासर का ज्ञानभण्डार (700-800 ग्रंथ) कालूग्राम का ज्ञान भण्डार (यति किशनलाल के संग्रह के कुछ ग्रंथ) नोहर में कुछ श्रावकों के संग्रह सूरतगढ़ में जैन मंदिर के शास्त्र भण्डार, हनुमानगढ़ में ताराचंद तातेड़ का संग्रह, राजलदेसर में उपकेश गच्छीय यति दौलतपुर के संग्रह, रतनगढ़ में वेदों की लाइब्रेरी और सोहनलाल वेद के कुछ ग्रंथ, छापर में मोहनलाल दुधोरिया के संग्रह, सुजानगढ़ में लोंकागच्छ के अनुयायी रामलाल यति, खरतरगच्छ के यति दुधेचंद और दानचंद चोपड़ा की लाइब्रेरी के ग्रंथ और रिणी में पन्नालाल के व्यक्तिगत संग्रह है।

अजमेर-जयपुर सम्भाग के जैन भण्डार

आमेर शास्त्र भण्डार (2705 हस्तलिखित ग्रंथ और 150 गुटके), कुन्दीगरों भैरों जी का रास्ता में जैन उपाश्रय में श्वेताम्बर जैन भण्डार (3500 ग्रंथ, प्राचीनतम ग्रंथ 1447 ई का पार्श्वनाथ चरित और 1452 ई का आचरांग बालाबोण), भोमियों के रास्ते में बेराठियों के मंदिर में स्थित नया मंदिर का भण्डार (1549 ई), ब्रह्मजिनदास कृत हरिवंश पुराण (1584 ई), लाल भवन स्थित विनयचंद ज्ञानभण्डार (7000 मुद्रित और अमुद्रित ग्रंथ), कुंदीगरों के भैरों जी के रास्ते में शिवजीरामभवन में मुनि कांति सागर की हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह, जयपुर का महाराजा पोथीखाना (18000 हस्तलिखित प्रतियां), राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान (2000 ग्रंथ) है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अलवर का खण्डेलवाल पंचायती मंदिर भण्डार (23 हस्तलिखित ग्रंथ, भक्ताभर और तत्वार्थसूत्र की स्वर्णाक्षरी प्रतियां), अग्रवाल पंचायती मंदिर (186 ग्रंथ) छाजू जी का मंदिर (60 ग्रंथ) नया बाजार जैन मंदिर (39 ग्रंथ) आदि है।

भरतपुर का पंचायती मंदिर शास्त्र भण्डार (801 ग्रंथ, प्राचीनतम ग्रंथ तपागच्छ गुर्वावली (1433 ई), डीग में पंचायती मंदिर शास्त्र भण्डार (21 हस्तलिखित ग्रंथ) सेवटराम पाटनी की मल्लिनाथ चरित (1493), जैनमंदिर पुरानी डीग शास्त्र भण्डार (101 हस्तलिखित ग्रंथ) आदि है।

उदयपुर सम्भाग के शास्त्र भण्डार

केसरिया जी में 1070 हस्तलिखित ग्रंथ है। यहाँ 1359 ई में लिखित 'संग्रहणी सूत्र' बालावबोध है।

कोटा सम्भाग के शास्त्रभण्डार

कोटा का खरतरगच्छीय शास्त्र भण्डार (317 हस्तलिखित ग्रंथ), कल्पसूत्र की स्वर्णांकित कृति (1473 ई) महोपाध्याय विनयसागर के संग्रह में 1500 पाण्डुलिपियां है और बूंदी का स्थानकवासी शास्त्र भण्डार आदि है।

इसके अतिरिक्त रघुनाथ ज्ञानभण्डार सोजत, जयमल ज्ञानभण्डार पीपाड़, जयमल ज्ञान भण्डार जोधपुर, जैन रत्नपुस्तकालय, मंगलचंद ज्ञान भण्डार जोधपुर, जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी ज्ञान भण्डार अलवर, जैन दिवाकर ज्ञानभण्डार ब्यावर, स्थानकवासी ज्ञान भण्डार भिनाय, नानकराम ज्ञानमंदिर, लाखनकोटड़ी अजमेर आदि ज्ञानभण्डार स्थानकवासी सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

अन्य ज्ञान भण्डारों में जालोर का मुनि कल्याणविजय का संग्रह, मेड़ता का पंचायती ज्ञान भण्डार, सिरोही का तपागच्छीय भण्डार, घाणेराव का हिमाचल सूरि ज्ञानभण्डार, उदयपुर का हाथीपोल की जैनधर्मशाला और देशनोक में डोसीजी के पास भी अच्छा संग्रह है।

इस प्रकार राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों ने अनूठे रत्न संग्रहीत कर रखे हैं। श्वेताम्बर जैनशास्त्र भण्डारों में अधिकतर रखरखाव ओसवंशीय श्रावकों के द्वारा हुआ है।

जैनकला

ओसवंशी श्रावकों के प्रयत्नों से राजस्थान में जैनकलाएं फलीफूली। धर्म और संस्कृति का अविभाज्य सम्बन्ध है।

जैन चित्रकला

भित्ति चित्रों की कला के पश्चात् 10वीं 3वीं शताब्दी में ताड़पत्रीय चित्रों के रूप में जैन लघु चित्रशैली विकसित हुई। नार्मन ब्राउन तो इसे 'श्वेताम्बर जैन शैली' कहा हैं।[1]

---

1. डा. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 269

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

डा. कुमारस्वामी ने इसे जैनकला, एन.सी. मेहता ने 'गुजराती शैली', रामकृष्णदास ने 'अपभ्रंशशैली'[1], तिब्बती इतिहासज्ञ तारानाथ ने 'पश्चिम भारतीय शैली' कहा। साराभाई नवाब ने इसे 'पश्चिमी जैन शैली'[2] कहा है। जैन चित्रकला का समय 3वीं से 16वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। इसके पश्चात् जैनशैली ने मुगल शैली के साथ संयुक्त होकर 16वीं शताब्दी के पश्चात राजस्थान की विविध शैलियों को जन्म दिया।

राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भ ताड़पत्रीय ग्रंथों से माना जाता है। जैसलमेर के जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार में 'दशवैकालिक सूत्र चूर्णि' और 'ओघनिर्युक्ति' के रूप में देखा जा सकता है। राजस्थान में जैनकला वस्त्रों और काष्ठफलक पर भी मिले हैं। सबसे प्राचीन काष्ठफलक 'सेठ शंकरदास नाहटा कला भवन' में है। 12वीं शताब्दी के उपरान्त भी ताड़पत्रीय ग्रंथों की परम्परा सतत् रही है। चित्रनिर्माण के लिये कागज का प्रयोग 14वीं शताब्दी के पश्चात् हुआ। 14वीं शताब्दी से ही वस्त्रांकित ग्रंथ और चित्र मिलना प्रारम्भ हो जाते हैं। 17वीं से 18वीं शताब्दी के भित्ति चित्र अनेक स्थानों पर सुरक्षित है।

लघुचित्र शैली, सचित्र कागजग्रंथ, सचित्र वस्त्रपट्ट, काष्टफलक, विज्ञप्तिपत्र आदि के रूप में मिलते हैं।

ताड़पत्रीय चित्रों में तीर्थंकरों, देवी देवियों, मुनियों और धर्मरक्षकों की आकृतियां है। यह कहा गया है कि पश्चिम भारत में उत्पन्न चित्र शैली नख-शिख, रंगविधान एवं रेखा सौष्ठव की दृष्टि से राजस्थानी शैली या अन्य किसी भी चित्र शैली से भिन्न है। इसका आलेखन अजंता की बौद्ध शैली के पर्याप्त निकट है।[3] जैनचित्रों का आलेखन मुख्यत: नागौर, जालोर, जोधपुर, बीकानेर, चित्तोड़, उदयपुर, जैसलमेर, पाली और कुचामन आदि क्षेत्रों में हुआ।

जैन मूर्तिकला

तीर्थंकरों की मूर्तियां दो रूपों में मिलती है- 1. कायोत्सर्गमुद्रा (खड़ी हुई), 2. पद्मासन मुद्रा (बैठी हुई)। 8वीं शताब्दी के पूर्व और गुप्तकाल में राजस्थान में धातु प्रतिमाएं उपलब्ध होने लगी। कलात्मक दृष्टि से जैन मूर्तियों में धातु प्रतिमाएं बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन धातु प्रतिमाओं में वैविध्य है, वह पाषाण प्रतिमाओं में नहीं है। बसन्तगढ़ में प्राप्त 687 ई की 4 फुट ऊँची दो खड़गासन सवस्त्र धातु प्रतिमाएं धातु मूर्तिकला में नया अध्याय जोड़ती है। इनमें गांधारशैली की बुद्ध प्रतिमाओं की तरह का पहनावा दिखाया गया है।[4] धातु प्रतिमाओं में पार्श्वनाथ की पद्मासन की मूर्तियां है, जिसमें एक पर 669 ई और दूसरी पर 699 के लेख है।[5] ये धातु प्रतिमाएं पश्चिमी भारत की सर्व प्राचीन धातु प्रतिमाएं है। राजस्थान में जैनधातु मूर्तियां विशाल संख्या में प्राप्त है। बीकानेर संग्रहालय में 14 धातु मूर्तियां संग्रहीत है।

---

1. रायकृष्णदास, भारतीय चित्रकला, पृ 29
2. हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ 368
3. डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन, मध्यकालीन राजस्थान में धर्म, पृ 288
4. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 295
5. अर्बुद मण्डल का सांस्कृतिक वैभव, पृ 42

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मध्यकाल की धातु प्रतिमाओं में बसन्तगढ़ शैली की धातु प्रतिमाओं में अचलगढ के मंदिर की धातु प्रतिमाएं महत्तवपूर्ण है।[1] डूंगरपुर में 12 मूर्तियों का वजन 1444 मन है। 1603 ई. में सिरोही के अजितनाथ मंदिर में चिंतामणि पार्श्वनाथ की 1313 संवत् की प्रतिमा बदलती कलात्मक रुप को सूचित करती है।[2]

मंदिरों में तीर्थंकरों के अतिरिक्त सरस्वती, अम्बिका, पद्मावती, चक्रेश्वरी, सच्चिकादेवी, मरुदेवी, यक्ष, कुबेर, आचार्यों, दानियों और संरक्षकों, हिन्दूदेव देवताओं की मूर्तियां मिलती है। अर्बुदमण्डल शिल्पकारों का गढ़ रहा है।

प्रस्तर प्रतिमाओं में भरतपुर क्षेत्र में जटाधारी आदिनाथ की मूर्ति है। पत्थर और पारे की कुबेर की मूर्ति विलक्षण है। भरतपुर में नेमिनाथ की 2'-4" ऊँची मूर्ति गुप्तकालीन कला परम्परा की है। खींवसर से प्राप्त 11वीं सदी की महावीर की विशालकाय प्रतिमा अलौकिक है। पिलानी के पास नरभट्ट में सुमतिनाथ और नेमिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा की अन्य प्रतिमाए गुप्तोत्तरकालीन है। अलवर प्रदेश में 11वीं शताब्दी की 24 फीट ऊँची विशाल जैन प्रतिमा भंगुर ग्राम से खोजी गई है।[3]

12वीं शताब्दी के पश्चात् की प्रस्तर प्रतिमाएं अधिक सुन्दर तो नहीं, किन्तु कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नागदा के अद्भुतजी के मंदिर में शांतिनाथ की 10 फीट ऊँची एक पद्मासन प्रतिमा अद्भुत है। यह 1473 में निर्मित हुई। अधिकतर मूर्तियां 12वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के मध्य की है, जिनके लेखों में आचार्यों, प्रतिष्ठाकारों, श्रावकों, उनकी जाति, गच्छ, और परिवार आदि के वर्णन है।[4] राजस्थान के जैन प्रस्तरकाल में स्थानीय शिल्पियों की साधना रही है।

जैन स्थापत्य कला

'राजस्थान के जैनमंदिर सात्विक, पवित्र भावनाओं के उद्गाता, साहित्य के संरक्षक, साधना के केन्द्र स्थल होने के साथ ही अपने उत्कृष्टतम स्थापत्य, शिल्पवैभव एवं सांस्कृतिक भूमिका के लिये विख्यात रहे हैं।'[5]

राजस्थान के कुछ मंदिर आठवीं शताब्दी के पूर्व के भी थे, जिन्हें ध्वस्त कर दिया गया। 8वीं शताब्दी के ही मंदिरों में जैन स्थापत्य का विशिष्ट स्वरूप दृष्टिगत होता है।

जैन मंदिरों का निर्माण अनेक धनी ओसवंश के श्रेष्ठियों ने भी करवाया। जैनमंदिर मूलत: स्थापत्य की नागर शैली के हैं, जिसका शिखर गोल होता है, अग्रभाग पर कलशाकृति बनाई जाती है, शिखर गर्भगृह के ऊपर होता है।[6] मंदिर निर्माण सादगी और पवित्रता होती है।

---

1. मध्यकालीन, राजस्थान में जैनधर्म, पृ 297
2. वही, पृ 299
3. History of Indian & Eastern Architecture, Page 250.
4. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 297
5. वही, पृ 305
6. वही, पृ 305

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

783-84 ई में प्रतिहार वत्सराज के शासनकाल में निर्मित ओसिया का जैनमंदिर इस काल के स्थापत्य का सम्पूर्ण प्रतीक है।[1]

जैन स्थापत्य की दृष्टि से 11वीं से 13वीं शताब्दी के काल को जैन स्थापत्य का स्वर्णकाल माना जा सकता है।[2] जैन धर्मावलम्बियों में ओसवंश के श्रेष्ठियों, व्यापारियों आदि ने धर्म की प्रभावना के लिये प्रोत्साहन दिया। जैन धर्मावलम्बियों ने चालुक्य निर्माण शैली को अपनाया। इसके अनुसार एक गर्भगृह, वक्रभाग युक्त एक गूढ मण्डप, छ या नौ चौकियों वाला एक स्तम्भ युक्त मुख मण्डप, सामने एक नृत्य मण्डप। ये सब चतुष्कोण में होते हैं।

जीरावला, वरमाण, छिंडवाड़ा, नितोड़ा, कालंद्री, गोहली आदि के मंदिर बावन जिनालय पद्धति के हैं।[3] इसकी प्रथम पद्धति में मूलमंदिर के चारों ओर मुख्यद्वार को छोड़कर 51 देवकुलिकाएं होती है, सामने स्तम्भों पर टिका एक बरामदा होता है। दूसरी पद्धति में मुख्य मंदिर के पीछे और गर्भगृह के दोनों पार्श्वों में अन्तरंग मंदिर और उसके सामने टिका हुआ गुम्बद होता है। इन गुम्बदों को मिलाते हुए बरामदों के भीतर 48 देवकुल प्रकोष्ठ चारों ओर होते हैं। सिरोंही के चौमुखा मंदिर, अजितनाथ मंदिर, आदीश्वर मंदिर और देलवाड़ा के मन्दिरों की यही शैली है।

श्वेताम्बर जैन मंदिरों में देलवाड़ा आबू का जैन मंदिर (वि.सं. 1088) लूणवसति का मन्दिर (1287- नेमिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा), अचलगढ़ के मंदिर (आदिनाथ भगवान का चौक्षुरवा मंदिर), भगवान ऋषभदेव का मंदिर (1721), दरवाजे के पास कुथुनाथ का मंदिर (सं 1527) है। पिंडवाडा में बावन जिनालय वाले मंदिर में कायोत्सर्ग की जिनमूर्तियां है, जिनमें प्राचीन खरोष्ठी लिपि का लेख वि.सं. 744 का है। मारवाड़ के बड़ी पंचतीर्थी के मंदिर राणकपुर, मुंछाला, महावीरजी, नारलोई, नाडोल और वरकाणा में है। सादड़ी से 6 मील दूर कपूर में 1444 स्तम्भों पर आश्रित मंदिर में पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग की मुद्रा है। नारलोई के 3 मंदिरों में आदीश्वर भगवान का 1000 पुराना मंदिर स्थापत्यकला की दृष्टि से श्रेष्ठ है। नाडौल तीर्थ में कलात्मक और विशाल पद्मप्रभु जी का मंदिर है। वरकाणा पार्श्वनाथ मंदिर वि.सं. 1211 के पूर्व का है। राता महावीरजी (जवाई बांध से 14 मील पूर्व) में महावीर स्वामी की लाल रंग की मूर्ति है। कोरंटा तीर्थ एरनपुरा छावनी से 6 मील पर भगवान महावीर का मंदिर है। सिरोही में 18 जैन मंदिर है। 15 मन्दिर एक ही मोहल्ले में है। जालोर जिले सुवर्णगिरि तीर्थ से भगवान महावीर का गगनचुम्बी मंदिर है। नाकौड़ तीर्थ में 12 से 17वीं शताब्दी की मूर्तियां है। कापरड़ातीर्थ की स्थापना वि.सं. 1678 में जैतारण निवासी भाणजी भण्डारी ने की। घांघाणी तीर्थ 400 पुराना माना जाता है। नागौर में 1515 का शांतिनाथ भगवान का प्राचीन मंदिर है। जैसलमेर की पंचतीर्थी में- जैसलमेर, अमरसागर, लोडवा, पोकरण और ब्रह्मसागर है। बीकानेर में 30 जैन मंदिर है। जोधपुर का जूनी मण्डी का भगवान महावीर का मंदिर वि.सं. 1800 का है। मेवाड़ में करीब 350 मंदिर है। आहाड़ तीर्थ में 1000 वर्ष पुराने मंदिर है। श्री केसरिया में प्राचीनतम

1. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 307
2. वही, पृ 310
3. Propressive Report of Archealogical Survey, Western Circle, Page 173.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिलालेख सं 1431 का है। करेड़ा पार्श्वनाथ (भोपालसागर स्टेशन के पास) के कुछ लेख 12वीं से 19वीं शताब्दी के मध्य के हैं। चित्तोड़गढ़ का शान्ति जिनचैत्य स्थापत्य की दृष्टि से बेजोड़ है। वि.सं. 1505 में कर्माशाह की देखरेख में इसका निर्माण हुआ। कुंभलगढ़ में तीन मंदिर हैं जिसमें वि.सं. 1515, वि.सं. 1608 के लेख है। अजमेर के पांच श्वेताम्बर मंदिर सं 1800 के है। किशनगढ़ का शांतिनाथ मंदिर सं 1698 का है। जयपुर में 9 श्वेताम्बर मंदिर हैं, जिसमें सुमतिनाथ का मंदिर वि.सं. 1784 का और पार्श्वनाथ का मंदिर 1800 का है। आमेर का चन्द्रप्रभ स्वामी का मंदिर वि.सं. 1871 का है। अलवर में दो श्वेताम्बर मंदिर है। विशाल पार्श्वनाथ मंदिर संवत् 1800 का है। झालावाड़ के नागेश्वर तीर्थ में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की 9 फीट की सैंकड़ों वर्ष पुरानी प्रतिमा है।

निष्कर्ष:- जैनशैली की मुख्य विशेषण चक्षु चित्रण के हैं, जो जैन स्थापत्य और शिष्य से आई है। रंग संयोजन में अधिकतर लाल रंग का प्रयोग किया जाता है। रेखाओं की दृष्टि से जैन चित्र सम्पन्न है। स्वर्ण और रजत सामग्री से चित्र निर्माण भी जैन शैली की विशेषण है। धर्मप्रधान चित्रों में नारी का अंकन सीमित ही है। वस्त्राभरणों में भी जैन चित्रों का वैशिष्ट्य है। जैन चित्रों में लोककला भी अभिव्यक्त हुई है। अहिंसा प्रधान जैन धर्म के चित्रों में दया और लोकोपकार की भावना है। इन कृतियों में मानवीय आदर्श है। जैन वास्तुकला धर्माश्रित वास्तुकला है। जैनमत के सांस्कृतिक चेतना के संरक्षण में जैन चित्रकला, जैनमूर्तिकला और जैन स्थापत्य कला ने महत्वपूर्ण योग दिया। जैनकला में जैनधर्म और जैनमत का सांस्कृतिक आदर्श प्रतिबिम्बित होता है। अर्थूणा, ओसिया, नाडौल और नागदा के विविध मंदिर में आत्मोत्थान के भाव प्रतिबिम्बित होते हैं। इन कलाओं में श्रमण संस्कृति के अमरतत्वों का प्रस्फुटन है।

जैनतीर्थ

जैनधर्मावलम्बियों ने आत्मशुद्धि और आत्मकल्याण के लिये तीर्थयात्रा लोकप्रिय थी। जिनसेन कृत आनन्दपुराण के अनुसार जो अपार संसार समुद्र पार करे, उसे तीर्थ कहते हैं।[1]

राजस्थान में कुल चार पंचतीर्थ है-

1. मारवाड़ की बड़ी पंचतीर्थी- केन्द्र सादड़ी- रणकपुर, मुंछाला, नाडलाई, नाडौर, वरकाणा।

2. मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी- नाणा, दियाणा, नांदिया, वरमाण, अजारी।

3. मेवाड़ की पंचतीर्थी- केसरियाजी, नागदा, देलवाड़ा, दयालशाह का किला, करेड़ा तीर्थ।

4. जैसलमेर की पंचतीर्थी- जैसलमेर, लुद्रवा, अमरसार, देवीकोट, वरसलपुर।

प्रमुख तीर्थों में पूर्वमध्यकाल में आबू (1032 ई से पूर्व ही), विमल वसति

1. जिनसेन, आदिपुराण, पृ 418

संसाराब्धेपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते ।
चेष्टितं जिन नाथानां तस्यो क्तिस्तीर्थसंकथा ॥

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(1031 ई), लूणवसहि (प्रतिष्ठा 1230 ई- नागेन्द्रगच्छ के विजयसेन सूरि), जैनमंदिर भीमाशाह (पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य), चौमुखा या पार्श्वनाथमंदिर (खरतरगच्छाचार्य जिनचन्द्रसूरि- 1458 ई) मंदिर वर्धमान स्वामी (पन्द्रहवीं शताब्दी) अचलगढ़, मन्दिर चौमुखी (1509 ई का लेख), आदिनाथ मंदिर, कुंथुनाथ मंदिर (प्रतिष्ठा 1470 ई) है, नरेना (1026 ई का अभिलेख), मूंगथला (सिरोही, नवीं शताब्दी के पूर्व का), तलवाड़ा (बांसवाड़ा के पास, 10वीं शताब्दी में प्रद्युम्न सूरि आए थे) मोरवानो (देशनोक के पास, 1666 ई का अभिलेख), फलौदी 1124 ई में धर्मघोष सूरि ने तीर्थ की स्थापना की), जीरावला (देलवाड़ा के चित्र, जैनाचार्य देवसूरि ने 274 ई में इसकी प्रतिष्ठा की,[1] हरिभद्रसूरि के शिष्य शिवचन्द्र गणी ने यहाँ यात्रा की, हरिदत्तसूरि ने इस मंदिर की प्रतिष्ठा की[2], किराडू (वर्तमान में कोई मंदिर नहीं), भीनमाल (सिद्धसेन सूरि ने भीनमाल के जैनतीर्थ कहा [3]),ओसिया (8वीं शताब्दी में प्रतिहार वत्सराज का शासन, 18 जैन और ब्राह्मण मंदिर, 700-800 ई के मध्य के हैं, महावीर मंदिर पर 895 का अभिलेख, मेड़ता (3वीं शताब्दी में अभयदेवसूरि ने ब्राह्मणों को जैनमत में दीक्षित कर यहाँ मंदिर का निर्माण करवाया, जिनचंद्रसूरि 1322 ई. में आए और 24 दिन तक विहार किया,[4] जालोर (जाबालिपुर, सिद्धसेन सूरि ने इस तीर्थ का उल्लेख किया है, 1182 ई. में यशोवीर नाम श्रीलाली वैश्य ने अपने भाई यशराज, जगधर तथा गोष्ठी के समस्त सदस्यों के साथ आदिनाथ मंदिर में एक मण्डप बनवाया था,[5] 1164 ई का अभिलेख भी है पार्श्वनाथ मंदिर में है, भण्डारी यशोवीर ने 1185 ई में इसको पुनर्निर्मित करवाया, 1126 ई में नरपति नामक ओसवाल ने इस मंदिर (तृतीय महावीर मंदिर) को 100 द्रम भेंट की, 1224 ई में जिनेश्वर सूरि ने इस मंदिर पर ध्वजा फहराई, 1300 ई के अभिलेख से ज्ञात होता है कि नरपति और उसके पिता ओसवाल सोनी थे[6] सांचोर (1265 ई के एक अभिलेख के अनुसार ओसवाल भण्डारी छाधिका ने एक चतुष्किका का जीर्णोद्धार करवाया,[7] 1226 ई. में जिनकुशलसूरि सांचोर आए,[8] नागदा (अद्भुतजी, 13वीं शताब्दी में विशाल कीर्ति के शिष्यय मदनकीर्ति ने नागद्रह में पार्श्वनाथ की वन्दना की) आघाट (उदयपुर के पास, यशोभद्रसूरि 972 ई में यहीं दिवंगत हुए) नागौर (नागपुरा, नाडार, नागपट्टन, अहिपुर, भुजंगनगर- कई जैन मंदिर थे, 860 में एक जैन मंदिर की स्थापना श्रेष्ठि नारायण द्वारा हुई, धनदेव ने नेमिनाथ मंदिर बनवाया और स्थापना जिनवल्लभसूरि द्वारा हुई,[9] ओसवंशी पेथड़शाह ने 13वीं शताब्दी में एक जैन मंदिर बनवाया था,[10] 1467 ई में आदित्यनाग गोत्र के श्रीवन्त और शिवरत ने उपकेशगच्छ के कक्कसूरि के द्वारा शीतलनाथ की प्रतिमा का स्थापना समारोह करवाया,[11] उपकेशगच्छ के

1. अर्बुदाचल का सांस्कृतिक वैभव, पृ 88
2. मध्यकाल में राजस्थान में जैनधर्म, पृ 191
3. गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, पृ 76, पृ 156
4. खरतरगच्छ वृहद गुर्णावली, पृ 68
5. Epigraphica India, Page 26, Page 73
6. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 204
7. Progress Report of Achaeotigical Survey, Western Circle, Page 35
8. खरतरगच्छ वृहद गुर्वावली, पृ 80
9. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ 233
10. वही, पृ 405
11. जैन लेख संग्रह (नाहर) क्रमांक 1274

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनुयायी यहाँ विपुल मात्रा में थे, तपागच्छ की नागपुरिया शाखा का उद्भव यहीं से हुआ) खण्डेला (सीकर के पास) हथूण्डी (राता महावीर, प्रतिमाओं का स्थापना समारोह वासुदेवाचार्य के शिष्य शालिभद्र द्वारा 997 ई सम्पन्न हुआ, 1278 ई का भी अभिलेख उपलब्ध है, हथूण्डिया राठौड़ यहाँ दीक्षित होकर हथूण्डिया श्रावक कहलाए), नाडौल (जालोर के पास), दो कायोत्सर्ग प्रतिमाओं के 1158 ई. के अभिलेख उपलब्ध हैं, ये प्रतिमाएं देवसूरि के शिष्य पदमचन्द्र गणी द्वारा महावीर मन्दिर में स्थापित की गई,[1] मुख्यवेदी पर 1629 ई की अभिलेख युक्त3 प्रतिमाए हैं, जो जोधपुर के मुहणोत जयमल के द्वारा स्थापित करवाई गई है)[2], कोरटा तीर्थ (प्राचीन नाम कोरंटक, उपकेशगच्छ चरित्र के अनुसार यह 2000 वर्ष पुराना है, 10वीं शताब्दी के धनपाल ने अपनी कविता में महावीर मंदिर का उल्लेख किया है,[3] उपकेश गच्छ की शाखा कोरंटगच्छ की उत्पत्ति इसी स्थान से हुई), संडेरा तीर्थ (पाली के पास, यहाँ संडेरक गच्छ के महावीर और पार्श्वनाथ के दो मंदिर थे), नाडलाई (प्राचीन नाम- नडुलडागिका, नन्दकुलवती, नाडुलाई, नारदपुरी आदि, प्राचीनकाल में 16 मंदिर, 1500 ई को अभिलेख के अनुसार संडेरक गच्छ के यशोभद्रसूरि 907 ई में नाडलाई आए थे), पाली (पाल्लिका, पल्लिका, पल्ली-पल्लीवाल गच्छ का उत्पत्ति स्थान), खेड़ा (खेहा, लवणखेड़ा, 12वीं शताब्दी के सिद्धसेन सूरि ने तीर्थरूप में इसका उल्लेख किया, यहाँ ऋषभदेव मन्दिर का एक तोरण निर्माण स्थापना समारोह भावहड़ गच्छ के विजयसिंह सूरि द्वारा 1180 ई में सम्पन्न करवाया गया, 1326 में ये जिनकुशलसूरि बाडमेर से जालोर आते खेड़ा रुके थे,[3] जिनपतिसूरि में 1186 ई में चातुर्मास यहीं किया था, जिनपतिसूरि ने नेमिचंद भण्डारी के पुत्र अंबड़कुमार को दीक्षित कर वीरप्रभ नाम दिया और यही जिनेश्वर सूरि के नाम से जाने जाने लगे, हरसूर (पुष्कर डेगाना बस मार्ग पर, प्राचीन नाम हर्षपुरा, हर्षपुरा गच्छ यहीं से उत्पन्न हुआ, यहाँ 13वीं शताब्दी का ओसवालों का मंदिर है, इसकी प्रस्तर प्रतिमा पर 996 ई का अभिलेख अंकित है [4]), रणथम्भोर (सिद्धसेन सूरि ने रणथम्भोर को तीर्थों की सूची में सम्मिलित किया)[5], बरोदा (वाटपद्रक, डूंगरपुर से 45 किमी दूर, एक अभिलेख 1516 का उपलब्ध है, अन्य 1302 ई, 1307 ई के अभिलेख भी उत्कीर्ण है, दीवाल का स्थापना समारोह खरतरगच्छीय के जिनचन्द्रसूरि द्वारा 1308 में किया गया)[6], जूना (बाडमेर के निकट, प्राचीन नाम जूना बाहड़मेर, बहड़मेरु, बाहडगिरी, बाप्पडाई आदि, 1262 ई के शिलालेख में चौहान चाचिकदेव का उल्लेख) बरमाण तीर्थ (वामनवाड महावीर तीर्थ, सिरोही के पास, प्राचीन नाम- ब्राह्मणवाड़ा, ब्रह्माण, ब्राह्मवाटक, बम्मनवाड़ आदि, सिद्धसेन कृत 'सकल तीर्थ स्तोत्र' में इसका उल्लेख है,[7] इस स्थान से ब्रहमाणक गच्छ की उत्पत्ति हुई, महावीर मन्दिर सन् 1185 में निर्मित हुआ, कलात्मकता और शिल्पदर्शनीय है), चन्द्रावली तीर्थ (आबू के निकट, प्राचीन नाम चट्टावली, चडढावली, चढाडति, 'सकल तीर्थ स्तोत्र' में इसका उल्लेख है,[1] जिनप्रभसूरि द्वारा

1. मुनि जिनविनय, प्राचीन जैन लेख संग्रह,2 क्रमांक 364, 365
2. वही, पृ 366, 367
3. खरतरगच्छ वृहद गुर्वावली, पृ 80
4. Ancient Cities & Towns of Rajasthan, No. 32
5. Gayakwad Oriental Series, Page 156.
6. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डूंगरपुर राज्य, पृ 16
7. Gayakwad Oriental Series, 76, Page 156.

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

1389 में विरचित 'विविध तीर्थकल्प' में चन्द्रप्रभु मन्दिर का वर्णन है,[2] पद्मसेन सूरि के आचार्य ने 1235 ई में चन्द्रप्रभु मंदिर बनवा,[3]), मीरपुर तीर्थ (अनादरा सिरोह मार्ग पर, प्राचीन नाम हमीरपुर, अशोक के पौत्र सम्प्राति ने हमीरगढ़ में पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया था,[4] एनसाइक्लोपीडिया ऑफ वर्ड आर्ट में इस मंदिर का उल्लेख है)[5], नादहद तीर्थ। झुंझुनु जिले में, वागड़ का महत्वपूर्ण नगर, आचार्य विनयप्रभ सूरि ने 'तीर्थयात्रा उपवन' में इसका उल्लेख किया है, चौहानों के शासनकाल में जिनदत्तसूरि ने पार्श्वनाथ की एक नौफणी प्रतिमा स्थापित की थी,[6] जिनकुशल सूरि नरहद में जिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ प्रतिमा के दर्शन के लिये रुके थे)[7] आरासणा तीर्थ (अर्बुदाचल की तलहटी में, नेमिनाथ की श्वेत संगमरमर की 1618 ई के लेखवाली प्रतिमा है, जिसके उपकेश गच्छीय विजयदेव सूरि द्वारा प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है,[8] प्रथम मंदिर पर 1251 ई का लेख है, दूसरे महावीर मन्दिर पर 1618 ई का लेख है, तीसरे शांतिनाथ मंदिर में 1089 ई और 1081 ई के उल्लेख हैं[9], चतुर्थ मंदिर की वेदी पर 359 ई का लेख है, परिक्रमा के अंतिम देवालय पर 1104 ई का लेख है और पांचवा मंदिर सम्भवनाथ का है,[10] घंघाणी तीर्थ (अर्जुनपुर, यहाँ सम्प्रति द्वारा बनाया गया 2200 वर्ष पुराना मंदिर बताया जाता है, यहाँ 880 ई की एक आदिनाथ की प्रतिमा खोजी गई है)[11] 1184 ई के अभिलेख में भण्डारी गुणधर द्वारा मण्डारे की मण्डपिका से आधा द्रम प्रतिमाह देने का उल्लेख है, मुछाला महावीर तीर्थ (घाणेराव के निकट, 10वीं शताब्दी का मंदिर, प्राचीनतम अभिलेख 976 ई का है,[12]) वरकाणा तीर्थ (गोड़वाड़ा की पंचतीर्थी का एक महत्वपूर्ण तीर्थ, नवचौकी के स्तम्भ पर चौहानकाल का 1154 का उल्लेख है। यह मंदिर 12वीं शताब्दी में निर्मित प्रतीत होता है), करेड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ (यह मेवाड़ की पंचतीर्थी का पार्श्वनाथ तीर्थ है, स्थापत्य वैशिष्ट्य के कारण महत्वपूर्ण है, यह 10वीं शताब्दी के पूर्व का प्रतीत होता है। यहाँ की एक धातु प्रतिमा से 7वीं शताब्दी का लेख प्राप्त हुआ है,[13] इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा संडेरक गच्छ के यशोभद्र के शिष्य श्यामाचार्य ने करवाई थी, श्याम पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर 982 ई का लेख उत्कीर्ण है)[14] नांदिया तीर्थ (मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी के अन्तर्गत, प्राचीन नाम नंदिग्राम, नन्दिपुर, नन्दिवर्द्धनपुर, महावीर मंदिर पर 1073 ई का अभिलेख है,[15]), दियाणा तीर्थ (मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी का तीर्थ, मूलमंदिर शांतिनाथ का, वर्तमान में

1. वही, पृ 156
2. जिनप्रभसूरि, विविध तीर्थकाल, पृष्ठ 16, 85
3. Ancient Cities & Towns of Rajasthan, Page 345.
4. जैन साहित्य संशोधक, 1, अंक 3, पृष्ठ 8
5. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 49
6. खरतरगच्छ वृहद गुर्वावली, पृ 72
7. Ancient Cities & Towns of Rajasthan, Page 325.
8. जैन तीर्थ गाइड, पृ 106
9. वही, पृ 107
10. वही, पृ 109
11. जैन लेख संग्रह (नाहर) भाग 2, क्रमांक 1709
12. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 323
13. जैनलेख संग्रह (नाहर), भाग 2, क्रमांक 1905
14. वही, क्रमांक 1948
15. अर्बुदाचल जैन प्रदिक्षणा लेख संदोह, क्रमांक 452

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

967 ई की महावीर प्रतिमा का 954 ई का लेख, जिसकी प्रतिष्ठा वृहदगच्छीय यक्षदेवसूरि द्वारा की गई[1]), अजारी तीर्थ (मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी का एक तीर्थ, पिंडवाड़ा के पास, 961 ई से 1397 ई तक के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं, 1397 ई में पिप्पलागच्छाचार्य के सोमप्रभसूरि ने सुमतिनाथ की प्रतिमा निर्मित करवाई[2]), लोटाणा तीर्थ (शांतिनाथ पंचतीर्थी का 1054 ई का प्राचीनतम लेख मिलता है, जिसमें उपकेशगच्छीय देवगुप्तसूरि का उल्लेख है,[3]) आदि महत्वपूर्ण श्वेताम्बर परम्परा के तीर्थ हैं। चित्तौड़ (8वीं शताब्दी के सन्त हरिभद्रसूरि का जन्म और कार्यक्षेत्र रहा, जिनदत्तसूरि का पट्ट समारोह 1112 ई. में यहीं सम्पन्न हुआ,[4] एक मंदिर का जीर्णोद्धार भण्डारी श्रेष्ठि वेला ने 1448 में करवाया, यह तपागच्छ का मंदिर है, शेष खरतरगच्छ के हैं, 12वीं शताब्दी में यह जैनमतावलम्बियों का महत्वपूर्ण तीर्थ माना जाता था।

जैसलमेर के तीर्थ धर्म, कला और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह राजस्थान में जैनधर्म का गढ़ रहा है। यहाँ के कुशल शिल्पियों ने छेनी और हथौड़ों के माध्यम से नीरस पाषाणों में जिस प्रकार कला की रसधारा बहाई, वह अद्वितीय है।[5] यह श्वेताम्बर सम्प्रदाय का बहुत बड़ा तीर्थ है। यहाँ 10 जैनमंदिर है। चित्रकूट दुर्ग में स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर 1218 ई में क्षेमंधर के पुत्र जगधर ने निर्मित करवाया।[6] सम्भवनाथ मंदिर का प्रारम्भ 1437 ई में चोपड़ा गोत्रीय हेमराजपूना ने करवाया।[7] इस मंदिर के 1440 ई के एक लेख में चोपड़ा वंशीय श्रेष्ठियों की वंशावली दी गई है। त्रिकूट दुर्ग में शीतलनाथ मंदिर डागा लूणसा मूणसा ने 1452 ई में करवाया। शांतिनाथ और अष्टापद मंदिर का निर्माण चोपड़ा गोत्रीय खेता और पांचा ने करवाया और प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के जिनसमुद्रसूरि ने 1479 ई में की। चन्द्रप्रभस्वामी मंदिर की प्रतिष्ठा भणसाली गोत्रीय बीदा ने 1452 ई में करवाई। त्रिकूट दुर्ग के ऋषभदेव मंदिर का निर्माण चोपड़ा गोत्रीय सच्चा के पुत्र धन्ना ने 1479 ई में करवाया और प्रतिष्ठा 1479 ई में करवाई। अंतिम और आठवें मंदिर- महावीर स्वामी मंदिर का निर्माण 1416 ई में ओसवाल वंश के वरडिया गोत्र के दीपा ने करवाई।[8]

नगर में दो और मंदिर महत्वपूर्ण है- सुपार्श्वनाथ मंदिर (1812 ई) और विमलनाथ मंदिर (1609 ई)। लोद्रवा भी नगर निर्माण के बाद जैनधर्म का केन्द्र रहा।

रणकपुर जैनतीर्थ श्वेताम्बर परम्परा का प्रसिद्ध तीर्थ है। इस मंदिर को राणपुर का चौमुखमंदिर भी कहते हैं। यह मारवाड़ के बड़े पंचतीर्थी का एक मंदिर है। इस मंदिर में आदिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। यह सुन्दर और कलात्मक है। यह भारत का विशिष्ट श्वेताम्बर जैनतीर्थ

---

1. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, क्रमांक 331
2. Ancient Cities & Towns of Rajasthan, Page 131.
3. श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह, 321
4. प्रभावक चरित्र, पृ 171-182
5. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म, पृ 243
6. खरतरगच्छ वृहद गुर्वावली, पृ 34
7. जैन लेख संग्रह, क्रमांक 2139
8. जैन लेख संग्रह (नाहर) भाग 3, क्रमांक 2400

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही नहीं, कला तीर्थ भी है। 1442 ई में मेह कवि ने इसे 'त्रैलोक्य दीपक' कहा। इसे आदिनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसमें राजस्थान की जैनकला और धार्मिक परम्परा का अपूर्व प्रदर्शन हुआ है। यह 48000 वर्गफुट जमीन पर निर्मित है। इस मंदिर में कुल 24 मण्डप, 84 शिखर और 1444 स्तम्भ हैं। स्तम्भों का संयोजन ऐसा है कि कोई भी स्तम्भ प्रतिमा के देखने में बन्धक नहीं है। वास्तुशास्त्री फर्ग्युसन के अनुसार "मैं ऐसा अन्य कोई भवन नहीं जानता जो इतना रोचक और प्रभावशाली हो या जो स्तम्भों की व्यवस्था में इतनी सुन्दरता व्यक्त करते हो।[1]

ऋषभदेव (केसरिया जी) तीर्थ- यह उदयपुर से 64 किलोमीटर दूर धुलेव नामक ग्राम में है। भील लोग ऋषभदेव की श्याम प्रतिमा को 'कारिया बाबा' कहते हैं। यहाँ कुल 72 पाषाण की मूर्तियां है, जिससे केवल 9-10 श्वेतवर्ण की है। इस मन्दिर के बारे में श्वेताम्बर-दिगम्बरों में उग्रमतभेद रहा है। ऐसा कहा जाता है कि 13वीं शताब्दी के अंत में यह गुजरात से लाई गई। केसरिया जी की प्रतिमा विश्वविश्रुत मानी गई है।[2]

नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ- यह जसोलगांव से 5 किलोमीटर दूर स्थित है। इसका इतिहास पुराना है। नगर का प्राचीन नाम 'महेवा' या 'वीरमपुर' भी मिलता है। ऐसा माना जाता है कि यह नगर ईसा से 54 वर्ष पर स्थापित हुआ था और आचार्य स्थूलिभद्र ने वीरमपुर में चन्द्रप्रभु की ओर नाकोर नगर में सुविधिनाथ की जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाई और फिर वीर निर्वाण संवत् 281 में सम्प्रति, वीर निर्वाण संवत् 505 में उज्जेन के विक्रमादित्य और वीर निर्वाण संवत् 532 (5 ई) में मानतुंगसूरि ने इन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया।[3] 1158 ई में आचार्य देवसूरि ने वीरमपुर व 1164 ई में नाकोर में जीर्णोद्धार करवाकर प्रतिष्ठा करवाई।[4] इसके पश्चात् 852 ई में वीरमपुर निवासी तातेड़ गोत्रीय हरकचन्द्र ने जीर्णोद्धार करवाकर महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा कराई।

राजस्थान के बाहर भी श्वेताम्बर परम्परा के जैनतीर्थों के निर्माण और प्रतिष्ठाएँ और जीर्णोद्धार आदि में ओसवंशीय श्रावकों का महत्वपूर्ण योग रहा है।

'तक्षशिलातीर्थ' में मानदेवसूरि प्रबन्ध के अनुसार एक समय यहाँ 500 मंदिर थे। श्री धनेश्वरसूरि कृत 'शत्रुंजय महात्म्य' के अनुसार तक्षशिला के महाजन श्रेष्ठि भावड़शाह के पुत्र जावड़शाह ने वि.सं. 187 में शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार किया और तक्षशिला से भगवान ऋषभ की मूर्ति लेजाकर वहाँ प्रस्थापित की।[5]

शत्रुंजय तीर्थ जैनों के प्राचीनतम तीर्थों में एक है। संवत् 477 में आचार्य धनेश्वरसूरि के महाराजा शिलादित्य के समय शत्रुंजय महात्म्य किया। सं 1682 में रचित समयसुन्दर उपाध्याय

---

1. History of Indian & Eastern Architecture, Part I, Page 240-242.
2. भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ, पृ 106-126
3. वीर निर्वाण स्मारिका, 1975, पृ 2-21
4. वही, पृ 2-21
5. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम भाग, पृ 280

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रचित 'शत्रुंजय रास' के अनुसार भगवान ऋषभदेव ने यहाँ प्रथम समवशरण किया।[1] इस तीर्थ का चौदहवां उद्धार 'शत्रुंजयरास' के अनुसार वि.सं. 1273 में श्रीमाल श्रेष्ठि वाहणदे मुहंते (मुथा) ने किया। तीर्थ का सोलहक उद्धार रास के अनुसार सं 1587 में कर्मशाह दोशी ने किया। संवत् 1649 में खम्भात के श्रेष्ठि शाह तेजपाल सोनी ने तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया।[2] संवत् 1675 में जामनगर के वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह ने इस तीर्थ पर एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया और 204 प्रतिमाएं स्थापित करवाई। संवत् 1682 में भंसाली गोत्रीय थाहरूशाह ने शत्रुंजय तीर्थ में गणधरों के चरण युगल प्रस्थापित करवाए। इसी तरह संवत् 1710 में आगरा निवासी कुहाड़ गोत्रीय शाह किशनचंद का लेख, संवत् 1987 का अजमेर के लूणिया गोत्रीय लेख ओसवाल श्रेष्ठियों के धर्मानुराग का बखान करते हैं।[3]

पावापुरी की व्यवस्था 1000 वर्षों से श्वेताम्बर ओसवालों के हाथों में है। यहाँ बिम्ब प्रतिष्ठा और जीर्णोद्धार का दायित्व अधिकतर अजीमगंज के नोलखा परिवार और सुंचति परिवार ने निबाहा। चम्पापुरी समय समय पर ओसवाल श्रेष्ठियों ने अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया। संवत 1725 में मुर्शिदाबाद के गेहलड़ा गोत्रीय शाह हीरानंद ने एक भव्य मंदिर बनवाया। संवत् 1856 में बीकानेर के श्रेष्ठि कोठारी जेठमल ने चन्द्रप्रभु स्वामी ने जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा जिनचन्द्र सूरि के हाथों करवाई। इसी समय गोलछा गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठि ने वासुपूज्य स्वामी की बिम्ब प्रतिष्ठा करवाई।[4] संवत् 1551 में ओसवाल जाति के सिंघाडिया गोत्रीय शाह चम्पा ने आदिनाथ भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई।[5]

राजगृह में दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के मंदिर है। संवत् 1412 के एक शिलालेख में ओसवाल श्रेष्ठि देवराज व बच्छराज द्वारा पार्श्वनाथ का मंदिर बनाने का उल्लेख है। यहाँ स्थानकवासी उपाध्याय श्री अमरमुनि की प्रेरणा में 'वीरायतन' संस्था की स्थापना हुई, जिसमें आचार्य श्री चन्दना जी मुख्य कार्यवाहिका है।[6] पाटलीपुत्र, यह तीर्थ राजा श्रेमिक के पौत्र उदयन (उदई) ने विक्रम संवत् 444 वर्ष पूर्व बसाया। यहाँ मंदिर में सं 1486 के लेख में दूगड़ गोत्रीय शाह उदयसिंह का उल्लेख है। संवत् 1492 के एक लेख में कांकरिया गोत्रीय शाह सोहड़ और उनकी भार्या हीरादेवी का आदिनाथ भगवान की बिम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख है। अन्य लेखों में गेहलड़ा गोत्रीय सेठ महताबचंद और आगरा के लोढ़ा गोत्रीय कुंवरपाल सोनपाल का उल्लेख है।[7]

मधुवनतीर्थ - संवत 1570 के एक लेख में ओसवंशी सुराणा गोत्रीय सा. केशव के पौत्र पृथ्वीमल ने अजितनाथ भगवान की बिम्ब की प्रतिष्ठा करवाई।

सम्भेद शिखर तीर्थ - संवत् 1670 में लोढ़ा गोत्रीय श्रेष्ठि कुंवरपाल सोनपाल ने

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम भाग, पृ 281
2. वही, पृ 282
3. वही, पृ 283
4. वही, पृ 304
5. वही, पृ 305
6. वही, पृ 305
7. वही, पृ 306

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृहद संघ का आयोजन किया। संवत् 1805 में बादशाह अहमदशाह ने समूचा पारसनाथ पहाड़ जगतसेठ गेहलड़ा महताबराय को उपहार में दे दिया। वर्तमान में पहाड़ी की 31 देहरियों और मंदिरों की देखभाल अजीमगंज निवास दूगड़ गोत्रीय श्री बहादुर सिंह द्वारा की जाती है।[1]

प्रभासपाटन- सोमनाथ मंदिर से 400 मीटर दूरी पर इस मंदिर में चन्द्रप्रभ भगवान का अति प्राचीन मंदिर है। ओसवाल श्रेष्ठि पेथड़शाह, सभराशाह, राजसी सधवी ने संघ समायोजन कर पुण्य कमाया।[2]

भद्रेश्वर गच्छ के किनारे भद्रेश्वर ग्राम में भगवान पार्श्वनाथ का प्राचीन मंदिर है। संवत् 1682 में उपकेश वंशीय लालनगोत्रीय सेठ वर्धमान शाह ने तीर्थ का उद्धार करवा कर महावीर स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई।

अनहिलपाटन गुजरात के मेहसाणा क्षेत्र में स्थित यह नगर चावड़ा वंश के वनराज ने विक्रम संवत 802 में बसाया था। संवत 1371 में शत्रुंजय तीर्थ के उद्धारक ओसवाल श्रेष्ठि समराशाह ने यहाँ के मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया।[3]

गिरनार- यह सौराष्ट्र प्रदेश का प्राचीनतम तीर्थ है। यहाँ चौदहवीं शताब्दी में ओसवाल श्रेष्ठि समरसिंह सोनी ने, सत्रहवीं शताब्दी में वर्धमान शाह ने और बीसवीं सदी ने ओसवाल श्रेष्ठि नरसी केशवजी ने तीर्थों का जीर्णोद्धार करवाया।[4]

यह कहा जा सकता है कि पश्चिम राजस्थान के अनेक नगर और ग्राम श्वेताम्बर परम्परा के प्रसिद्ध जैन तीर्थ रहे हैं। इन तीर्थ स्थानों के द्वारा ओसवंशी श्रावकों ने जैनमत के धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रतिमानों के परिरक्षण में अपूर्व योग दिया है।

जैन शिक्षण संस्थाएं

जैनमत की श्वेताम्बर परम्परा की शिक्षण संस्थाओं के द्वारा ओसवंशियों ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के सम्प्रेषण में योग दिया है।

श्वेताम्बर जैन महाविद्यालयों में श्री जैन सुबोध महाविद्यालय जयपुर, जैन कॉलेज बीकानेर, सेठिया विद्या मंदिर सुजानगढ़, पी.यू. कॉलेज फालना, जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बीकानेर, जैन टी.टी. कॉलेज अलवर, जे.बी.एन. वाणिज्य महाविद्यालय राणावास, प्राज्ञ जैन महाविद्यालय, विजयनगर, वीर बालिका महाविद्यालय जयपुर और जवाहर विद्यापीठ ग्रामीण महाविद्यालय, कानोड़ आदि मुख्य है।

उच्च और उच्चतर स्तर के श्वेताम्बर जैन विद्यालय ब्यावर, अलवर, जयपुर, बीकानेर, चुरू, सुजानगढ़, ओसिया, भोपालगढ़, लाडनू, फालना, राजावास, वरकाणा, भीलवाड़ा, गुलाबपुरा, कानोड़, छोटी सादड़ी, रानी, उदयपुर, और जोधपुर आदि में है। इसके अतिरिक्त

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, प्रथम भाग, पृ 307
2. वही, पृ 284
3. वही, पृ 285
4. वही, पृ 289

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर की लगभग तीन दर्जन संस्थाएं है।

लाडनू में 'जैन विश्व भारती' ने स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन के द्वारा नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

जैन पत्रकारिता

श्वेताम्बर परम्परा के जैन पत्रकारिता के द्वारा भी ओसवंशियों ने जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के सम्प्रेषण में योग दिया है। राजस्थान में प्राचीनतम जैनपत्र 'जैन गजट' (1895 ई) अजमेर से प्रकाशित होता था।[1] 1923 ई में दुर्गाप्रसाद ने अहिंसा प्रचारिक, साप्ताहिक का अजमेर से प्रकाशन प्रारम्भ किया।[2] 1924 में 'कांफ्रेस प्रकाश' के रूप में भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी कांफ्रेंस के मुख पत्र के रूप में प्रकाशित हुआ। 1925 में आबू रोड़ से 'मारवाड़ जैन सुधारक' का प्रकाशन हुआ और उसी वर्ष अजमेर से 'जैन जगत' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 1943 में आचार्य हस्तीमलजी महाराज की प्रेरणा से जैनरत्न विद्यालय भोपालगढ में 'जिनवाणी' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। फिर इसका प्रकाशन जोधपुर से और विगत कई दशकों से जयपुर से अनवरत रूप में हो रहा है। सर्वश्री चम्पालाल कर्णावट, शांतिचन्द्र मेहता, चांदमल कर्नावट, पारसमल प्रसून और नरेन्द्र भानावत इसके सम्पादक हैं। इसके वर्तमान सम्पादक डॉ. धर्मचन्द जैन हैं। जयपुर में डॉ. नरेन्द्र भानावत ने इसको साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया और अनेक अविस्मरणीय विशेषांक इसकी उपलब्धियां रही।[3]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रकाशित मुख्य-मुख्य श्वेताम्बर जैन सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत है-

पत्र-पत्रिकाएं	स्थान	प्रारम्भिक वर्ष	सम्पादक प्रकाशक
1. जिनवाणी (मासिक)	जयपुर	1943	डा. धर्मचंद जैन
2. शाश्वतधर्म (मासिक)	निवाहेड़ा	1952	सौभाग्यसिंह गोखरू
3. ओसवाल	-	1954	मानमल जैन
4. जैनकल्याण (मासिक)		1954	सी.एल. कोठारी
5. ओसवाल समाज (मासिक)	-	1964	माणक चोरड़िया
6. महात्मा संदेश (मासिक)	चित्तोड़गढ़	-	फतहचंद महात्मा
7. श्रेष्ठिसमाज (त्रैमासिक)	अजमेर	1967	मिश्रीलाल
8. तरुण जैन (साप्ताहिक)	जोधपुर	1952	पदमसिंह जैन
9. वीर लोंकाशाह (साप्ताहिक)	बिलाडा	-	विजयमोहन जैन
10. अभयसंदेश	बीकानेर	1955	बख्शी चम्पालाल जैन
11. मरुधर केशरी (आजकल बंद है)	जालोर	1956	-
12. जैन प्रहरी (आजकल बंद है)	जोधपुर	1964	-

1. जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ 291
2. वही, पृ 291
3. वही, पृ 292

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

13. अहिंसा (पाक्षिक)	जयपुर	1953	पं. इन्द्रचंद्र शास्त्री
14. सुमति (पाक्षिक)	चूरू	1556	सुमेरमल कोठारी
15. श्रमणोपासक (पाक्षिक)	बीकानेर	1963	जुगराज सेठिया
(साधुमार्गी जैन संघ का मुखपत्र, नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है)			
16. श्री नाकोड़ा अधिष्ठायक भैरव बालोतर (पाक्षिक)		1964	-
17. वीरवाणी (पाक्षिक)	जयपुर	-	श्री भंवरलाल
18. धर्मज्योति (मासिक)	भीलवाड़ा	-	
19. अनुसंधान पत्रिका (त्रैमासिक) लाडनूं जैन विश्व भारती (अब तुलसी प्रज्ञा नाम से प्रकाशित है)			
20. शांतज्योति	जोधपुर		कमलेश चतुर्वेदी विजयसिंह कोठारी
21. कथालोक	दिल्ली		
22. वल्लभसंदेश (मासिक)	जयपुर		रामरतनकोचर
23. विश्वेश्वर महावीर (मासिक)	जोधपुर		प्रकाश जैन बांठिया
24. बंधुसंदेश	पूना		चंचलमल लोढा

ओसवंशीय विशिष्ट पुरुष एवं महिलाएं

ओसवंश के पुरुषों और महिलाओं ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से जैनमत द्वारा प्रतिपादित जीवनमूल्यों और आदर्शों की अखण्ड ज्योति प्रज्ज्वलित की है। ओसवंश के असंख्य पुरुषों और महिलाओं ने कितनी ही शताब्दियों के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के पांच महाव्रतों/अणुव्रतों और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र्य के त्रिरत्न के पथ के पाथेय बनकर धर्म के द्वारा मोक्ष के साधक और साधिकाएं बने है। जैनमत ने जो सांस्कृतिक मूल्य प्रदान किये हैं, उन सांस्कृतिक प्रतिमानों का शतशत रूपों में संरक्षण, संवर्धन, सम्प्रेषण और सृजन ओसवंश के पुरुषों और महिलाओं ने वैयक्तिक और सामाजिक रूप में किया है।

ओसवंश के नरपुंगवों और श्रेष्ठ नारियों ने देवप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई, मंदिरों का निर्माण और जीर्णोद्धार करवाया, उनके नाम अब भी इन अभिलेखों में अंकित है।

प्रशासन और राजनीति

प्रशासन और राजनीति में भी ओसवंशी पुरुषों ने अपनी छाप छोड़ी और मूल्यपरक राजनीतिक और मूल्यपरक प्रशासन में योग दिया। क्षत्रिय और राजपूत युद्धवीर थे, किन्तु कालांतर में इस जाति के अनेक परिवारों के ओसवंशी होने पर यही युद्धवीर- धर्मवीर, दानवीर, दयावीर और कर्मवीर बन गये। वस्तुतः 'जैनधर्म के अनुयायी वीरों और नरपुंगवों के बाहुबल, कुशाग्रबुद्धि, विवेक, कूटनीतिक, दूरदर्शिता एवं सर्वस्व न्यौछावर करने की उनकी त्यागमय लालसा को इतिहास में उचित और प्रामाणिक स्थान नहीं मिल पाया है।'[1]

'जैन मतावलम्बियों के सैनिक और राजनीतिक योगदान की विपुल सामग्री सिक्कों, ताम्रपत्रों, पट्टेखानों, शिलालेखों, काव्यग्रंथों, गीतों, वंशावलियों, ख्यातों, बातों तथा भाटों की

1. जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ 307

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहियों में विद्यमान है, जिसका अगर शोधपरक और तटस्थ दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाय तो मेवाड़, जोधपुर, बीकानेर और अन्य राज्यों के इतिहास की अनेक लुप्त कड़ियां जुड़ सकती हैं।'[1] जैनजातियों में ओसवंशियों में मेहता, कावड़िया, सिंघी-सिंघवी, भण्डारी, कोठारी, बच्छावत, मुहणौत, लोढ़ा, बाफणा, गांधी, बेलिया, गलूण्डिया, कोचर मेहता, वेद मेहता, कटारिया मेहता, राखेचा और समदड़िया मेहता आदि प्रमुख हैं।'[2]

मेवाड़ राज्य में जालसी मेहता (14वीं शताब्दी) मेवाड़ उद्धारक और अनन्य स्वामीभक्त थे। जालसी के सहयोग से वि.सं. 1383 में मेवाड़ का महाराणा बना और स्वतंत्रता प्राप्ति तक इसी सिसोदिया वंश का आधिपत्य रहा। कावड़िया भारमल में सैनिक योग्यता और राजनीतिक दूरदर्शिता थी। भामाशाह और ताराचंद भारमल के पुत्र थे। ताराचंद कुशल सैनिक और अच्छा प्रशासक था। कावड़िया भामाशाह की दानवीरता जगतप्रसिद्ध है। रंगोजी बोलीया ने महाराणा अमरसिंह (वि.सं. 1653-76) में मेवाड़ मुगल संधि में प्रमुख भूमिका निभाई। सिंघवी दयालदास महाराणा राजसिंह (वि.सं. 1709-37) का प्रधान था, जिसने औरंगजेब के साथ युद्ध में भाग लिया। मेहता अगरचंद की सेवाएं महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) (वि.सं. 1817-29) के समय में अद्वितीय थी, जिसने माधवराव सिंधिया के साथ युद्ध में भाग लिया। मेहता मालदास महाराणा भीमसिंह (वि.सं. 1834-1885) के शासनकाल में कुशल योद्धा, वीर सेनापति और साहसी पुरुष थे। इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रधान हुए और, जैसे नवलखा रामदेव, बोलिया निहालचंद, कावड़िया जीवाशाह, रंगोजी बोलिया, कावड़िया अक्षयराम, बोलिया मोतीराम, बोलिया एकलिंगराज, गांधी सोमचंद, गांधी सतीदास, गांधी शिवदास, मेहता देवीचंद, मेहता रामसिंह, मेहता शेरसिंह, मेहता गोकुलचंद, कोठारी केशरीसिंह, मेहता पन्नालाल, मेहता बलवंतसिंह और मेहता भोपालसिंह आदि। किलेदार और फोजबख्शी में मेहता जालसी और मेहता चीलजी आदि।

राव समरा और उनके पुत्र नराभण्डारी का जोधपुर राज्य में वही स्थान है, जो मेवाड़ में जालसी मेहता का है। राव समरा तीन सौ सैनिकों के साथ लड़ते हुए मारा गया। नरा भण्डारी ने राव जोधा का साथ दिया। घमासान युद्ध के पश्चात् वि.सं. 1510 में जोधा का मण्डोर पर पुनः अधिकार हो गया।[3] इस युद्ध में नरा भण्डारी ने अपूर्व शौर्य का परिचय दिया। नराभण्डारी ने जोधपुर नगर के बसाने में योग दिया। जोधपुर नगर के बसाने में नरा भण्डारी की सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। मुहणोत नैणसी (वि.सं. 1667) ने कई युद्धों में भाग लिया। नेणसी तलवार और कलम दोनों का धनी था। 'मुहंता नैणसी री ख्यात' और 'मारवाड़ रा परगना री विगत' मुहणौत नेणसी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। सिंघी इन्दरराज का योग्य योद्धा और दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ के रूप में जोधपुर राज्य के इतिहास में अद्वितीय स्थान है।

इसके अतिरिक्त दीवानों में मुहणौत महाराज जी, भण्डारी नाथाजी, भण्डारी अदाजी,

---

1. जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ 308
2. वही, पृ 308
3. ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ 236

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भण्डारी गोरजी, भण्डारी धनोजी, भण्डारी लूणाजी, भण्डारी मानाजी, भण्डारी हमीरजी, भण्डारी रायचंदजी, कोचर भूया बेलानी, भण्डारी ईसरदासजी, भण्डारी भानाजी, भण्डारी पृथ्वीराजजी, भण्डारी लूणाजी, सिंघवी शाहमलजी, मुहणौत जयमलजी, सिंघवी सुखमलजी, भण्डारी रायमलजी, सिंघवी रायमलजी, भण्डारी ताराचन्द नारायणोत, मुहणौत नैणसी, भण्डारी विट्ठलदासजी, भण्डारी खींवसी जी, भण्डारी रघुनाथजी रायचन्दोत, भण्डारी भमाईदासजी, समदड़िया मूथा गोकुलदासजी, भण्डारी रघुनाथसिंहजी, भण्डारी अमरसिंह जी, भण्डारी अमरचंदजी, भण्डारी गिरधरदासजी, भण्डारी मनरूपजी, भण्डारी सूरतरामजी, भण्डारी दौलतसिंहजी, भण्डारी सवाईरामजी, सिंघवी फतेहचंदजी, भण्डारी नरसिंहदासजी, मुहणौत सूरतरामजी, सिंघवी ज्ञानमलजी, भण्डारी भवानीदासजी, भण्डारी शिवचंदजी, सिंघवी नवलराजजी, मुहणोत सरदारमलजी, भण्डारी गंगारामजी, मुहणौत ज्ञानमलजी, कोचर मेहता सूरजमलजी, सिंघी इन्दरराजजी, सिंघवी फतहराजजी, मेहता अखेचंदजी, मेहता लक्ष्मीचंदजी, सिंघवी इन्द्रमलजी, सिंघवी गम्भीरमलजी, मेहता जसरूपजी, भण्डारी लखमीचंदजी, सिंघवी इन्द्रमल जी, कोचर बुधमलजी, सिंघवी सुखरामजी, भण्डारी शिवचंद जी, मेहता मुकुन्दचंदजी, राव राजमल लोढ़ा, मेहता विजयसिंहजी, मेहता विजयसिंहजी, मेहता गोपाल लाल जी, लोढ़ा सरदारमलजी और मेहता सरदारसिंहजी जोधपुर राज्य के दीवान रहे।

जोधपुर राज्य के फोजबख्शी में सर्वश्री मुहणौत सूरतरामजी, भण्डारी दौलतरामजी, सिंघवी भंवराजी, सिंघवी हिन्दूमलजी, सिंघवी अखेराजजी, भण्डारी शिवचंदजी, भण्डारी भवानीरामजी, सिंघवी मेघराजजी, भण्डारी चतुर्भुजजी, भण्डारी अगरचंदजी, सिंघवी फौजराज जी, सिंघवी देवराजजी, सिंघवी समरथराजजी, सिंघवी करणरामजी, सिंघवी किशनराजजी और सिंघवी बच्छराजजी रहे।

बीकानेर राज्य की स्थापना में मेहता बच्छराज का महत्वपूर्ण योग रहा। बच्छराज की चौथी पीढ़ी में मेहता कर्मचंद बच्छावत कुशल प्रशासक ही नहीं, अपूर्व योद्धा भी था। बीकानेर राज्य के संस्थापकों में वेद मेहता लखणणी का सातवां वंशधर वेद मेहता मूलचंद का पुत्र हिन्दूमल महाराजा सूरतसिंह (वि.सं. 1844-85) और रत्नसिंह (वि.सं. 1885-1905) का एक प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी प्रशासक था।

बीकानेर के दीवानों से सर्वश्री बच्छराज, मेहता लावणसी, मेहता करमसी बच्छावत, मेहता वरसिंह बच्छावत, मेहता नगराज बच्छावत, मेहता संग्राम सिंह बच्छावत, मेहता कर्मचंद बच्छावत, वेद मेहता ठाकुरसी, मेहता भागचंद और लक्ष्मीचंद, अमरचंद सुराणा, वेद मेहता महाराज हिन्दूमल, मेहता किशनसिंह जी, राखेचा मानमलजी और कोचर मेहता शाहमलजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

किशनगढ़ राज्य में मुहणौत रायचन्दजी, मुहणोत मेहता कृष्णसिंह, मेहता आसकरण मुहणौत, मेहता, रामचन्द्र मुहणौत, मेहता हठीसिंह मुहणौत, मुहणौत हिन्दूसिंह, मेहता जोगीदास मुहणौत, मेहता चैनसिंह मुहणौत, मेहता शिवदास मुहणौत, मेहता करणसिंह मुहणौत और मेहता मोखमसिंह की सेवाएं दीवान के रूप में उल्लेखनीय रही।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिरोही राज्य में दीवान के रूप में सिंघी श्रीवंतजी, सिंघी श्यामजी, सिंघी सुन्दर जी, सिंघी अमरसिंह जी, सिंघी हेमराज जी, सिंघी कानजी, सिंघी पोमाजी, सिंघी जोरजी, सिंघी कस्तूरचंदजी और रायबहादुर सिंघी जवाहरचंदजी की सेवाएं उल्लेखनीय रही।

इसके अतिरिक्त सुजानमलजी बांठिया दीवान के पद पर, झालावाड़ में सुराणा गंगाप्रसाद जी फोजबख्शी रहे और बांसवाड़ा में कोठारी परिवार के अनेक सदस्य दीवान पद पर रहे।

जयपुर राज्य में अधिकतर दिगम्बर पद पर रहे। मानकचंद ओसवाल (संवत 1906 -1912) और नथमल गोलछा माधोसिंहजी के समय में दीवान रहे।

स्वाधीनता सैनानी

ओसवंशियों ने स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योग दिया। राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम को दिशा देने वालों में जोधपुर राज्य के श्री आनन्दराज सुराणा का नाम अग्रगण्य माना जाता है। मेवाड़ प्रजामण्डल के प्रथम अध्यक्ष मेहता बलवंतसिंह मेहता ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भाग लिया और स्वाधीनता के पश्चात् उद्योग मंत्री के पद पर भी रहे। श्री भूरेलाल बया ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया, आर्थरोड और यरवदा जेल में जेल भुगती, आदिवासियों और किसानों के सत्याग्रहों के साथ रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लिया। भीलवाड़ा के उमरावसिंह ढाबरिया मेवाड़ प्रजामण्डल के आन्दोलनों से सम्बद्ध रहे। कुशलगढ़ के डाडमचन्द दोषी, झब्बालाल कावड़िया, उच्छवलाल मेहता, भेरूंलाल तलेसरा, कन्हैयालाल मेहता, किशनलाल दोषी और सोभागमल दोषी आदि प्रमुख है। कोटा के बागमल बांठिया ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया।

जयपुर में स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने वाले ओसवंशियों में श्री दौलतमल भण्डारी और सिद्धराज ढढा का नाम उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त नथमल लोढ़ा, भंवरलाल बोथरा, रतनचंद कांसटिया आदि ने कृष्ण मंदिर की यातनाएं सही।

जोधपुर में अभयमल जैन, मानमल जैन, उगमराज मोहनोत, अमृत नाहटा, गुमानमललोढ़ा और विरदमल सिंघवी ने आजादी के आन्दोलनों से सक्रिय भाग लिया।

लाडनूं के चम्पालाल फूलफगर, बिलाड़ा के श्री पुखराज, फलौदी के सिंघी सम्पतलाल (लूंकड़), सरदार शहर के आंचलिया नेमीचंद, सिरोही के धर्मचन्द सुराणा, दुलीचंद सिंघी, रूपराज सिंघी, शोभाराम सिंघी, हजारीमल जैन आदि मुख्य रहे। पाली जिले में सादड़ी के फूलचंद बाफना, कोटा के रिखबचंद धाडीवाल, भीलवाड़ा के मनोहरसिंह मेहता, अजमेर के जीतमल लूणिया की स्वाधीनता आन्दोलन की सेवाएं भुलाई नहीं जा सकती।

भीलवाड़ा के रोशनलाल चोरड़िया, अजमेर के कालूराम लोढ़ा, अमोलकचन्द सुराणा, वीरसिंह मेहता, उदयपुर के हुकमराज जैन, जयपुर के श्री सरदारमल गोलेछा, सोहनलाल लोढ़ा, पाली के तेजराज सिंघवी, सिरोही के धनराज सिंघी, जोधपुर के श्री सुगनचंद भण्डारी, ऋषभराज जैन, पारसमल खिंवसरा, करोड़ीमल मेहता, सम्पमल लूंकड़, पी.एम. लूंकड़, इन्द्रमल जैन और रिखबराज कर्णावट आदि अनेक स्वाधीनता संग्राम के सेनानी रहे।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

19वीं शताब्दी में काश्मीर में ओसवंश की कीर्तिपताका फहराने वाले मेजर जनरल विशनदास दूगड़ का नाम इतिहास के पन्नों में अमर रहेगा।[1]

स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रशासनिक क्षेत्र में ओसवंशी प्रशासकों में सर्वश्री डा. मोहनसिंह मेहता, सत्यप्रसन्नसिंह भण्डारी, गोकुललाल मेहता, जगन्नाथसिंह मेहता, नारायणदास मेहता, देवेन्द्रराज मेहता, रणजीतसिंह कुमट, अनिल बोर्दिया, श्रीमती ओतिमा बोर्दिया, मीठलाल मेहता, जसवंतसिंह सिंघवी, पशुपतिनाथ भण्डारी, बाबूलाल पानगड़िया, हिम्मतसिंह गलूण्डिया, हिम्मतसिंह सरुपूरिया, कन्हैयालाल कोचर, श्री अर्जुनराज भण्डारी, पदमचंद सिंघी, सम्पतराज सिंघी, सवाई सिंह सिंघवी, हरकराज भण्डारी, हीरालाल सिंघवी, चन्द्रराज सिंघवी, नरपतसिंह भण्डारी, अजीतसिंह सिंघवी और महेन्द्र सुराणा और पुलिस में खुली जेल की दृष्टि से अरूण दूगड़ और आई. बी. के सेवानिवृत्त महानिदेशक सुरेश मेहता आदि ने अपनी मूल्यपरक प्रशासनिक दृष्टिकोणसे ओसवंश के गौरव में अभिवृद्धि की।

साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में अनेक ओसवंशी पुरुषों और महिलाओं ने ओसवंश के गौरव में अभिवृद्धि की। ओसवंशी श्रेष्ठियों ने अमूल्य हस्तलिखित ग्रंथ लिखवाकर नष्ट होती सांस्कृतिक धरोहर को बचाया। ज्ञान भण्डारों की स्थापना की, सरस्वती भण्डार खोले, मौलिक साहित्य का सृजन किया। ओसवंशीय सोनी संग्रामसिंह ने 'बुद्धिसंग्राम' (संस्कृत) पद्य रचना की। महाकवि रयधू संघवी भट्टारक कमलकीर्ति (1506-1536) के शिष्य थे। 'सावड चरिड' (श्रावक चरित्र) आपकी प्रधानकृति मानी जाती है। ओसवंशीय मुकीम गोत्र के आगरा सेठ हीराचंद ने 'अध्यात्म बावनी' की रचना की, गोरा बादल की कथा के रचयिता ओसवाल जाति के नाहर गोत्रीय सिबुला ग्राम के रहने वाले श्रेष्ठि धरमसी के पुत्र जटमल थे।[2] कवि भगवती प्रसाद भैया- ओसवाल जाति के कटारिया गोत्रीय दशरथसाहू के पौत्र और लालजी साहू के पुत्र प्रतिभाशाली आध्यात्मिक कवि थे। ब्रह्मविलास में आपकी 67 कृतियों का संग्रह है।[3]

इसके अतिरिक्त भण्डारी उत्तमचंद (1857) का 'अलंकार आशय', भण्डारी उदयचंद का 'साहित्यसार', हाजराम ओसवाल की 'साधु गुणरत्नमाला' और देव रचना, कुम्भट विनयचंद के 'चौबीस स्तवन', जेठमल चोर्डिया की जम्बूगुण रत्नमाला, सुखसम्पतराज भण्डारी की 'भारत के देशी राज्य', 'अंग्रेजी हिन्दी कोश' और 'ओसवाल जाति का इतिहास' महत्वपूर्ण कृतियां है। श्री पूरणचंद्र नाहर के "जैन शिलालेख संग्रह' (पाँच भाग), बेचरदास डोसी का जैन साहित्य का बृहत इतिहास', श्री अगरचंद नाहटा का 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' श्री दौलतसिंह लोढ़ा का 'जैन प्रतिमा लेख संग्रह', मुनि विनयसागर का प्रतिष्ठा लेख संग्रह, स्यालकोट के भावड़ा ओसवाल लाला ठाकुरदास का 'अज्ञान तिमिर भास्कर', मुनि ज्ञानसुन्दरजी (वेद मुहता) का जैन जाति महोदय', ओसवंशीय परमानन्द भाई कापड़िया का 'पूर्यूषण व्याख्यानमाला' संघवी गोत्रीय पण्डित

---

1. इतिहास की अमरबेल- ओसवाल, द्वितीय भाग, पृ 425
2. वही, भाग 2, पृ 404
3. वही. पृ 405

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखलाल का "दर्शन और चिन्तन (तीन खण्ड) बेचरदास दोसी की 'व्याख्यान मालाएं', अगरचंद नाहटा के असंख्य अनुसंधान परक लेख के अतिरिक्त सरदार शहर के कन्हैयालाल सेठिया और अजमेर के प्रकाश जैन (लोढ़ा) के नाम लिये जा सकते हैं। तीन दशकों तक श्री प्रकाश जैन 'लहर' के सम्पादन के द्वारा हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता को नया आयाम दिया। इनका काव्यसंग्रह "अन्तर्यात्रा' जैनमत पर लिखी कविताएं है। श्रीमती मनमोहिनी ने 'ओसवाल दर्शन : दिग्दर्शन में पहली बार "ओसवाल कौन क्या?' (Whose who) पहली बार प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ में भूमिका के अतिरिक्त समस्त सामग्री जुटाने का श्रेय लोढ़ा कुलभूषण चंचलमल को दिया जा सकता है। लोढ़ा चंचलमाला ने इस देश के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करके अथक परिश्रम से एक एक व्यक्ति का परिचय प्राप्त कर समस्त ओसवाल जाति को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया।

श्री सोहनराज भंसाली की 'ओसवाल अनुसंधान के आलोक में' और श्री मांगीलाल भूतोड़िया का "इतिहास की अमरबेल' (दो खण्ड) महत्वपूर्ण कृतियां है जिसमें ओसवंश के उद्‌भव और विकास को पूरी प्रतिबद्धता से महिमामण्डित किया गया है। पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रकाशक सेठ कपूरचंद कुलिश (कोठारी) भंवर सुराणा, अनिल लोढा और डॉ. महेन्द्र मधुप की सेवाएं भी प्रशंसनीय रही है। तीन दशकों तक 'लहर' (साहित्यिक मासिक) के प्रकाशन से श्री प्रकाश जैन ने हिन्दी साहित्यिक पत्रकारिता को नया आयाम दिया। श्री 'कुलिश' की 'राजस्थान पत्रिका' पत्रकारिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण धटना है।

प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक की कृति "नैतिक शिक्षा: विविध आयाम' में मूल्यपरक नैतिक शिक्षा का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवेचन है। यह कृति जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों और आचारशास्त्र के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध है।

अनगिनत ओसवंशी लेखक हैं, जिनकी उपलब्धियां सराहनीय है। 'भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन के लिये ओसवाल श्रेष्ठि बाबू बहादुरसिंह जी सिंघी हमेशा याद किये जाएंगे। जैनमत के प्राचीन ग्रंथों के शोध के लिये आपके ही कारण शांति निकेतन में सिंघवी जैन विद्यापीठ है।'[1]

ओसवंशीय शिक्षाविरों में विश्व विद्यालय अनुदान आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. दौलतसिंह कोठारी, दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. वीरेन्द्रराज मेहता, उस्मानिया विश्वविद्यालय के डॉ. गोवर्धन मेहता और जोधपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. कल्याणमल लोढ़ा के नाम उल्लेखनीय है। अनेक ओसवंशी पुरुषों और महिलाओं ने विद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अपनी उल्लेखनीय सेवाओं के द्वारा मूल्यपरक शिक्षा के दायित्व का निर्वाह किया है। पूर्व निदेशक कॉलेज शिक्षा राजस्थान और पूर्व कुलपति जैन विश्वभण्रती लाडनू के डा. महावीर राज गेलडा ने उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान की है। हिन्दी के अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में सर्वश्री प्रो. कल्याणमल लोढ़ा, गणपतिचंद्र भण्डारी, नरपतचंद सिंघवी, मूलचंद सेठिया और स्वर्गीय डॉ. नरेन्द्र भानावत की उपलब्धियां सराहनीय रही है।

---

1. इतिहास की अमरबेल-ओसवाल, द्वितीय भाग, पृ 432

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समाजशास्त्र के क्षेत्र में डॉ. नरेन्द्र सिंघी (सेवानिवृत्त) और जोधपुर विश्वविद्यालय के डॉ. उम्मेदराज नाहर की उपलब्धियां उल्लेखनीय है।

जोधपुर विश्वविद्यालय में तो अनेक विषयों में अनेक ओसवंशी आचार्य पदों पर प्रतिष्ठित रहे है। इस संदर्भ में सर्वश्री डॉ. पुष्पेन्द्र सुराणा (समाजशास्त्र) डॉ. अक्षयमल भण्डारी (रसायनविज्ञान) डॉ. घाडीवाल (भौतिक विज्ञान) डॉ. पी.सी. मोहनोत (सेवानिवृत्त, गणित) डॉ. एस.आर. भण्डारी (सेवानिवृत्त, कानून) और डॉ. सुशील ललवाणी (वाणिज्य) मुख्य है। जोधपुर विश्वविद्यालय के अभियांत्रिकी संकाय में अनेक ओसवंशी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे हैं, इनमें मुख्य हैं- डॉ. डी.सी. सुराणा (सेवानिवृत्त), प्रो. वी.के. भंसाली, डॉ. डी.एस. भण्डारी, डॉ. सुशील भण्डारी, प्रो. एम.सी. सेठिया, प्रो. एस.एल. सुराणा, प्रो. डी.एम. सुराणा और अभियांत्रिकी महाविद्यालय कोटा के प्रो. नरेश भण्डारी आदि।

ओसवंश में दानवीरों की भी कमी नहीं है। भामाशाह कावड़िया ने जिस परम्परा को आगे बढ़ाया, उसे ओसवंशी दानवीरों ने अक्षुण्ण रखा है। ओसवंशियों ने ऋण मानवता की सेवा के लिये कितना दान किया, धर्म और शिक्षा के लिये कितना दान किया, इसकी थाह पाना कठिन है। कोट्याधिपति ओसवाल श्रेष्ठि प्रेमचंद रायचंद गांधी भी के ट्रस्टीशिव सिद्धान्त के मानने वाले थे। 'गुजरात के ओसवंशियों में आपकी गाथा अद्वितीय है।'[1] ओसवंशी लोढ़ा गोत्रीय यशरूपमल ने नाकौड़ा महाविद्यालय, जोधपुर और जोधपुर में ही शववाहन के द्वारा दान की परम्परा को आगे बढ़ाया है। ओसवंशियों ने कितना दान किया, यह अनुसंधान का विषय है। इस ग्रंथ की सीमा में इसे आबद्ध नहीं किया जा सकता।

न्याय के क्षेत्र में मुख्य न्यायाधिपति चांदमल लोढ़ा (सेवानिवृत्त) और श्री गुमानमल लोढ़ा (सेवानिवृत्त) के अतिरिक्त न्यायविदों में श्री रणजीत सिंह बच्छावत (सेवानिवृत्त), श्री कृष्णमल लोढ़ा (सेवानिवृत्त), श्री किशोरसिंह लोढ़ा (सेवानिवृत्त), श्री जसराज चोपड़ा, श्री राजेश वालिया, श्री राजेन्द्र लोढ़ा (बम्बई उच्च न्यायालय) श्री सिंघवी (पंजाब उच्च न्यायालय) के नाम महत्वपूर्ण है जिन्होंने न्याय के क्षेत्र में मूल्य आधारित न्याय की अवधारणा प्रस्तुत की है।

कानूनविदों में तो ओसवंशियों का वर्चस्व रहा है। संविधान विशेषज्ञ डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी को कौन भूल सकता है ! राजस्थान उच्च न्यायालय में ओसवंशी कानूनविदों की भरमार है।

चिकित्सा के क्षेत्र में डा. शीतल राज मेहता (चिकित्सक) डा. सूरजमल दूगड़ (विधि विज्ञान और निदान विज्ञान), डा. सुखदेव लोढा (शल्य ज्ञान), डा. अजीतमल सिंघवी (शल्यचिकित्सा) डा. एल.एम. सिंघवी (चिकित्सा) डा. जगदीश मेहता (शल्य चिकित्सा), डा. अरुण बोर्दिया (हृदयरोग) नरेन्द्र भण्डारी (मूलरोगविज्ञान) और डा. नरपतमल सिंघवी (चिकित्सा) की सेवाएं उल्लेखनीय रही है।

ओसवंशी अभियांत्रिकों में सर्व श्री सायरमल दूगड़, रमेश भण्डारी, सूरजराज मेहता,

---

1. इतिहास की अमरबेल, ओसवाल, द्वितीय भाग, पृ 423

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुरली मनोहर सिंघवी, भूरचंद जैन और दौलतमल सिंघवी आदि ने अपनी उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान की है।

ओसवंशी चार्टरित लेखापालों में सर्व श्री अजीत सिंह भण्डारी, यशरूपमल लोढा, सुरेन्द्रसिंह भण्डारी, महेन्द्र दूगड़, बी.सी. छाजेड़, चैनराज मेहता, पी.सी. छाजेड़ और सज्जनमल दूगड़ आदि की सेवाएं उल्लेखनीय है।

सेवा के क्षेत्र में 'सेबी' के अध्यक्ष श्री देवेन्द्र राज मेहता ने 'महावीर विकलांग' के जयपुर फुट के द्वारा सेवा के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है।

कला के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठित चित्रकार इन्द्र दूगड़ ने राजगृह के प्राकृतिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य को अपने चित्रों में उकेरा है। जोधपुर निवासी पारस भंसाली ने भी कलात्मक चित्रों की दृष्टि से ख्याति अर्जित की है।

ओसवंशीय नारीरत्नों में महासती सरदारा जी (कोठारी), महासती गुलाबांजी (बैंगानी), भूरसुन्दरी जी (रांका), प्रवर्तिनी साध्वी देवश्री जी (भाभू) महत्तरा साध्वी मृगावती जी (संघवी), प्रवर्तिनी पुण्यश्री जी (पारख), प्रवर्तिनी साध्वी विचक्षणा जी (मूथा) चंदना जी (कटारिया) और बिलमकंवरजी (लोढ़ा) आदि अनेक साध्वियों ने जैनमत की ज्योति प्रज्ज्वलित की है।

ओसवंश की अनेक नारी रत्नों ने आजादी के आन्दोलनों में भाग लिया, जिसमें मुख्य है कलकत्ता की श्रीमती गोविन्दी देवी पटवा, सूरत की पुष्पादेवी कोटेचा, नागपुर की श्रीमती सरस्वती देवी रांका, अजमेर की सरदारबाई लूणिया और नागपुर की श्रीमती धनवती बाई रांका आदि।

सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ओसवंशी नारी रत्नों में पूना की नन्दूबाई ओसवाल, कोटा की प्रसन्नकुमारी और जोधपुर की श्रीमती सुशीला बोहरा आदि मुख्य हैं।

नारी रत्नों में हीराकुमारी बोथरा ने भाषाशास्त्र और दर्शन में निष्णात होकर जैनशास्त्रों का अध्ययन किया और आचारांगसूत्र का बंगला में अनुवाद किया; श्री कमलदेवी दूगड़ ओसवाल समाज की प्रथम महिला डाक्टर बनी; चिकित्सा विज्ञान में पेरासाइटोलोजी पर पी.एच.डी. करके जोधपुर की श्रीमती डॉ. अरुणा सिंघवी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की; जोधपुर की डॉ. किरण कुचेरिया मानवीय मनोकोशानुवांशिकी की प्रभारी अधिकारी और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में एसोसियट प्रोफेसर है और शोध वैज्ञानिक कांति जैन अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त शोध वैज्ञानिक है, जो आजकल कल्याण सेवा ट्रस्ट जोधपुर की प्रमुख संचालिका है।

इसके अतिरिक्त श्रीमती कमला सिंघवी (लेखिका), श्रीमती विमला मेहता (लेखिका) श्रीमती रेणुका पामेचा (नारी जागृति), श्रीमती शशि मेहता (संवाददाता), कुमारी प्रभाशाह (चित्रकार), श्रीमती ममता डाकलिया (लोकगीतकार), श्रीमती प्रीति लोढ़ा (संगीत), सरयू डोसी (सूक्ष्म चित्रांकन कला की विशेषज्ञ) और मल्लिका साराभाई (नृत्य और नाट्य) के अतिरिक्त अनेकानेक नारी रत्न हैं, जिन्होंने श्रेयस्कर मूल्यों की प्रस्थापना की है।

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैनमत और ओसवंश: सांस्कृतिक संदर्भ

जैनमत और ओसवंश के बीच सांस्कृतिक सेतु है। जैनमत ने जिन जिन सांस्कृतिक प्रतिमानों की संस्थापना की, उनके संरक्षण (conservation), संवर्धन (growth), सम्प्रेषण (communication) और सृजन (creation) में ओसवंश ने जैन साहित्य और जैन ग्रंथागार, जैनकला चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला और जैनतीर्थों द्वारा योग दिया। ओसवंशी पुरुषों और महिलाओं ने जैनमत द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक प्रतिमानों को अक्षुण्ण रखने के लिये उनके संरक्षण, संवर्धन, सम्प्रेषण और सृजन में योग दिया।

जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों के संरक्षण, संवर्धन, सम्प्रेषण और सृजन के कारण ओसवंश को जैनमत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला (Cultural Laboratory) कहा जा सकता है।

अंत में कहा जा सकता है कि जैनमत और ओसवंश के बीच सांस्कृतिक सेतु है और यह भी कहना उचित ही है कि ओसवंश जैनमत के सांस्कृतिक प्रतिमानों का केवल प्रतिरूप (Replica) न होकर सार, निचोड़ और आदर्शात्मक प्रतीक (ideelized epitome) है।

• • •

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिशिष्ट

सहायक पुस्तकें

(क) हिन्दी

1. संस्कृति के चार अध्याय — श्री रामधारी सिंह दिनकर
2. भारतीय समाज, संस्कृति और संस्थाएं — डा. रामनाथ शर्मा और राजेन्द्र शर्मा
3. आर्यों का आदि देश — डा. सम्पूर्णानन्द
4. जैन साहित्य का इतिहास — डा. कैलाशचंद्र शास्त्री
5. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी — डा. सुनीतिकुमार चटर्जी
6. मनुस्मृति
7. शतपथ ब्राह्मण
8. ऋग्वेद
9. अथर्ववेद
10. जाति भास्कर
11. तैतिरीय ब्राह्मण
12. ओसवाल वंश: अनुसंधान के आलोक में — श्री सोहनराज भंसाली
13. राजपूत वंशावली — ठाकुर ईश्वरसिंह मडाढ
14. राजपूताने का इतिहास — कर्नल टाड
15. राजस्थान का इतिहास — डा. गोपीनाथ शर्मा
16. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण
17. राजपूताने का इतिहास — श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा
18. राजपूताने का इतिहास — श्री जगदीश सिंह गहलोत
19. राजस्थान का इतिहास — श्री बी.एम. दिवाकर
20. ओसवाल: दर्शन: दिग्दर्शन — (श्रीमती) मनमोहिनी
21. हिन्दू सभ्यता — डा. राधाकुमुन्द मुखर्जी
22. महापुराण — पुष्पदंत रचित
23. महाभारत
24. शिवपुराण
25. जैनधर्म का मौलिक इतिहास प्रथम खण्ड — आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.
26. वही द्वितीय खण्ड — वही
27. वही तृतीय खण्ड — वही
28. वही चतुर्थ खण्ड — वही
29. श्री मद्भागवत पुराण

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

30. आवश्यक चूर्णि	आचार्य जिनदास गणि महत्तर
31. कल्पसूत्र	सं. देवेन्द्र मुनि
32. महाभाष्य	पातंजलि
33. श्वेताश्वर उपनिषद्	
34. तिलोयपण्णति	यतिवृषभ
35. चउपन्न महापुरिस चरित	शीलाकाचार्य
36. त्रिषष्टि शलाका पुरिस चरित	हेमचंद्राचार्य
37. यजुर्वेद ब्राह्मण	
38. ऐतरेय ब्राह्मण	
39. जैन परम्परा का इतिहास	युवाचार्य महाप्रज्ञ
40. भारतीय इतिहास: एक दृष्टि	डा. ज्योतिप्रसाद
41. आचरांग सूत्र	
42. सूत्रकृतांग	
43. उत्तर पुराण	आचार्य गुणभद्र
44. उत्तराध्ययन सूत्र	सं. घासीलाल जी महाराज
45. वृहतकथाकोश	हरिषेण आचार्य
46. समणसुतं	सं. विनोबा भाव
47. जम्बू प्रज्ञप्ति सूत्र	
48. मौर्य साम्राज्य का इतिहास	डा. सत्यकेतु विद्यालंकार
49. जैन शिलालेख संग्रह भाग-1	श्री पूर्णचन्द्र नाहर
50. वही भाग-2	वही
51. वही भाग-3	वही
52. दर्शनसार	आचार्य देवसेन
53. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग 10	डा. वासुदेव अग्रवाल
54. भारत के प्राचीन राजवंश	पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ
55. श्रमण भगवान महावीर	मुनि कल्याण विजय
56. भगवती सूत्र	सं. मुनि ज्ञानसुन्दर जी महाराज
57. नन्दि स्थिरावली	
58. हिमवंत स्थिरावली	
59. मेरूतुंग थेरावाली	
60. जैन धर्म का इतिहास	मुनि सुशील कुमार
61. राजतरांगिणी	कल्हण
62. विशेषावश्यक भाष्य	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

63. कथाकोश — मुनि जिनविजय
64. सम्बोधि प्रकरण — आचार्य हरिभद्रसूरि
65. जैन साहित्य संशोधक भाग 1 — धर्मसागर गाय रचित
66. वही भाग 2 — वही
67. तपागच्छ पट्टावली भाग 1 — धर्मसागर गणि
68. पट्टावली प्रबन्ध संग्रह — सं. आचार्य हस्तीमल जी म.सा.
69. मध्यकालीन राजस्थान में जैनधर्म — डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन
70. जैन प्रतिमा लेख संग्रह — दौलत सिंह लोढा
71. प्राचीन लेख संग्रह — मुनि जिनविजय
72. अर्बुदाचल प्रदिक्षणा लेख संदोह
73. लोंकाशाह कंजीवन प्रभुवीर पट्टावली — मुनि कांतिविजय
74. श्रीमद् धर्मदास जी महाराज और उनकी मालव शिष्य परम्पराएं — सूर्य मुनि
75. आचार्य चरितावली — आचार्य हस्तीमलजी म.सा.
76. श्री तपागच्छ श्रमण वंशवृक्ष — श्री जयन्तीलाल छोटेलालशाह
77. इतिहास की अमरबेल- ओसवाल प्रथमखण्ड — श्री मांगीलाल भूतोड़िया
78. वही द्वितीय खण्ड
79. भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास- प्रथम खण्ड — मुनि ज्ञान सुन्दर जी म.
80. वही द्वितीय खण्ड
81. जैन जाति महोदय
82. उपकेशगच्छ पट्टावली
83. उपकेशगच्छ चरित्र
84. ओसवाल जाति का इतिहास — श्री सुखसम्पतराज भण्डारी
85. मारवाड़ के परगनों की विगत — मुहणौत नैणसी
86. राजस्थान की जैन जातियों की खोज
87. बीकानेर जैन लेख संग्रह — श्री अगरचंद और श्री भंवरलाल नाहटा
88. हिन्दी भाषा — डा. भोलानाथ तिवारी
89. हिमवंत स्थिरावली
90. प्रभावक चरित्र प्रबन्ध पर्यायलोचन — मुनि कल्याण विजय
91. वर्ण, जाति, धर्म — सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचंद शास्त्री
92. तत्वार्थ सूत्र — उमास्वाति
93. महाजन वंश मुक्तावली — उपाध्याय श्री रामलालजी

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

94. कल्पसूत्र की कल्पद्रुम कलिका की टीका की स्थिरावली
95. श्रीमद्भागवत गीता
96. वीर सतसई — श्री सूर्यमल मिश्रण
97. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृतियां — डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री
98. भारतीय चित्रकला — रायकृष्णदास
99. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान — श्री हीरालाल जैन
100. आदिपुराण — आचार्य जिनसेन
101. जैन साहित्य नो इतिहास — त्रिपुटि महाराज
102. डूंगरपुर राज्य — श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा
103. जैन तीर्थ गाइड
104. भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ
105. जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग — श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा
106. ब्रह्मवैवर्तपुराण
107. प्रतिष्ठा लेखसंग्रह — मुनि विनयसागर
108. भद्रबाहु चरित — दिगम्बर रत्नंदी
109. नाभिनन्दन जिनोद्धार
110. आचरांग चयनिका — श्री कमलचंद सोगानी
111. विविध तीर्थकाल — श्री जिनप्रभसूरि
112. पद्मपुराण
113. वरांगचरित
114. शिशुपाल वध — माघ
115. परमार वंश — डा. जगदीशसिंह गहलोत
116. सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, — गौरीशंकर हीराचंद ओझा
117. मत्स्य पुराण
118. वाल्मीकि रामायण

(ख) अंग्रेजी

1. Vedic Age
2. Religions of India — Prof. Hopkins
3. Castes in India — Emile Senart
4. An Introduction to Social Anthropology — D.N. Majumdar & T.N. Madan

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

5. Elements of Sociology	Martiadale & Monachesi
6. History of Caste in India	Ketkar
7. Social Organisation	C.H. Cooley
8. Sociology	Green
9. Sociology	MacIver & Page
10. Races & Castes of India	D.N. Majumdar
11. Castes in India	J.H. Majumdar
12. People of India	Gilbert
13. Hindu Trides & Castes	Sherring
14. Caste & Democracy	K.M. Pannikav
15. Origin of Rajputs	G.N. Sharma
16. Studies in Rajput History	Dr. Kanungo
16. Collected works of Dr. R.G. Bhandarkar	Dr. R.G. Bhandarkar
17. Political History of Ancient India	Dr. R. Chaudhary
18. The Sacred Books of the East	Dr. H. Yakobi
19. Oxford History of India	Dr. V. Smith
20. History of India Part IX	Dr. Vincent Smith
21. Encyclopaedia, Ethics & Religion	
22. House of Jainism	Mrs. Stevension
23. History of Indian Literature	Winternitze
24. An outline of Religion & Literature	J.N. Farguhar
25. Indian Antiquary Part 18	Dr. Webar
26. Part 21	Ibid
27. History of Indian Literature Part II	
28. Jainism in Early Mediveal	Ram Bhushan Prasad Karnataka Singh
29. Jain Sects & Schools	
30. Annual Report of Rajasthan Museum	
31. Jainism in Rajasthan	
32. Jain Inscription of Rajasthan.	
33. Heart of Jainism	
34. Archeological Survey of India	
35. Rajasthan through the Ages	Dr. Dashrath Sharma
36. History of Indian & Eastern Achitecture	
37. Archeological Survey, western Circle.	
38. Gayakwad Oriental Series	
39. Epigraphica India	
40. Indian Cities & Towns of Rajasthan.	
41. Vedic Index Part I	
42. Ibid, Part II	

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

43. The Uttaradhyan Sutras
44. Indian Sects of Jains.
45. Study of Jainism — T.G. Kalaghati
46. The Gurjar Pratihar — B.N. Puri
47. History of Kanauj — R.S. Tripathi
48. Early History of India, Part III — Dr. Smith
49. Annals & Antiquities of Rajasthan — Col. Tod.
50. Jain Inscriptions — P.C. Nahar

(ग) पत्र-पत्रिकाएं

1. आजकल, मार्च, 1962
2. जिनवाणी, आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. श्रद्धांजलि विशेषांक
3. जिनवाणी, आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. व्यक्तिव्व एवं कृतित्व विशेषांक
4. श्रमण (मासिक) अगस्त 1952
5. जिनवाणी, अगस्त 96, सम्यग्दर्शन विशेषांक
6. वीर निर्वाण स्मारिका, 1975
7. बंधु संदेश

(घ) Journals (English)

1. Journal of Bihar Orrisa Research Society.
2. Jain Journal, Mahavir Jayanti Special, April, 69
3. Indian Historical Quarter, 1959 (Paper of Dr. Dashrath Sharma on Ranthambore & Bhoj)

For Private and Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

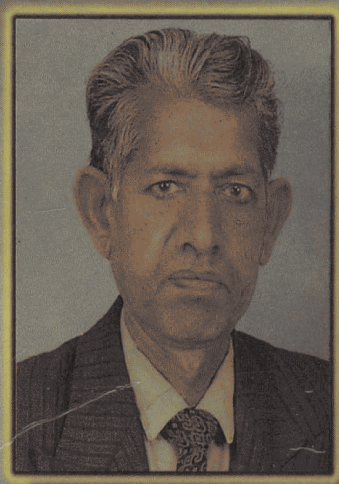

डॉ. महावीरमल लोढ़ा - एम.ए. हिन्दी (राजस्थान विश्वविद्यालय), एम.एड. (कर्नाटक विश्वविद्यालय) और पी एच. डी. (जोधपुर विश्वविद्यालय)। विगत चार दशकों से विधालय स्तर से लेकर महाविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर का अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान कार्य से जुड़े रहे हैं।

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्री गंगानगर से प्राध्यापक (हिन्दी विभाग) पद से सेवानिवृति के प[illegible] समय तक एस.एस.जी. पारीक महिला महाविद्यालय, [illegible]र्य कर चुके हैं।

Serving JinShasan
133690
gyanmandir@kobatirth.org

इनके शोधप्रबन्ध 'हि[illegible] विवेचन' ने उपन्यास विषयक शोध को नयी दिशा प्रदान की। [illegible]ी ग्रंथ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'नैतिक शिक्षाः विविध आयाम' नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और सार्थक दस्तावेज है।

शोधनिदेशक के रूप में अनेक लघुशोध प्रबन्धों के अतिरिक्त 'हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि' का सफल निर्देशन।

वार्ताकार के रूप में आकाशवाणी सूरतगढ़ से सामयिक, शैक्षिक ओर साहित्यिक विषयों पर अनेक वार्ताएं प्रसारित ।

For Private and Personal Use Only